॥ श्रीहरिः ॥

॥ ॐ नमो भगवते त्रिविक्रमाय ॥

अथ श्रीवामनपुराणम्

पहला अध्याय

श्रीनारदजीका पुलस्त्य ऋषिसे वामनाश्रयी प्रश्न; शिवजीका लीलाचरित्र और जीमूतवाहन होना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

त्रैलोक्यराज्यमाक्षिप्य बलेरिन्द्राय यो ददौ।
श्रीधराय नमस्तस्मै छद्मवामनरूपिणे॥ १

पुलस्त्यमृषिमासीनमाश्रमे वाग्विदां वरम्।
नारदः परिपप्रच्छ पुराणं वामनाश्रयम्॥ २

कथं भगवता ब्रह्मन् विष्णुना प्रभविष्णुना।
वामनत्वं धृतं पूर्वं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥ ३

कथं च वैष्णवो भूत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।
त्रिदशैर्युयुधे सार्धमत्र मे संशयो महान्॥ ४

भगवान् श्रीनारायण, मनुष्योंमें श्रेष्ठ नर, भगवती सरस्वतीदेवी और (पुराणोंके कर्ता) महर्षि व्यासजीको नमस्कार करके जय (पुराणों तथा महाभारत आदि ग्रन्थों)-का उच्चारण (पठन) करना चाहिये[1]।

जिन्होंने बलिसे (भूमि, स्वर्ग और पाताल—इन) तीनों लोकोंके राज्यको छीनकर इन्द्रको दे दिया, उन मायामय वामनरूपधारी और लक्ष्मीको हृदयमें धारण करनेवाले विष्णुको नमस्कार है।

(एक बारकी बात है कि—) वाग्मियोंमें श्रेष्ठ विद्वद्वर पुलस्त्य ऋषि अपने आश्रममें बैठे हुए थे; (वहाँ) नारदजीने उनसे वामनपुराणकी कथा—(इस प्रकार) पूछी। उन्होंने कहा—ब्रह्मन्! महाप्रभावशाली भगवान् विष्णुने कैसे वामनका अवतार ग्रहण किया था, इसे आप मुझ जिज्ञासुको बतलायें। एक तो मेरी यह शङ्का है कि दैत्यवर्य प्रह्लादने विष्णुभक्त होकर भी

---

१. महाभारतके उल्लेखानुसार नर-नारायण ब्रह्मर्षिरूपमें विभक्त परमात्मा ही हैं, जो बादमें अर्जुन और कृष्ण हुए। ये ही नारायणीय या भागवतधर्मके प्रधान प्रचारक हैं, अतः भागवतीय ग्रन्थोंमें सर्वत्र इन दोनोंको नमस्कार किया गया है। पुराण-प्रवचनमें भी इस श्लोकको माङ्गलिक रूपमें पढ़नेकी प्राचीन प्रथा है।

महाभारतका प्राचीन नाम 'जय' है; पर उपलक्षणसे पुराणोंका भी ग्रहण किया जाता है। भविष्यपुराणका वचन है—

अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा। कार्त्स्नं वेदपञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः॥
जयेति नाम चैतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः॥ (भविष्यपुराण १।१।५-६)

अर्थात्—अठारहों पुराण, रामायण और सम्पूर्ण (वेदार्थ) पाँचवाँ वेद, जिसे महाभारत-रूपमें जानते हैं—इन सबको मनीषीलोग 'जय' कहते हैं।

श्रूयते च द्विजश्रेष्ठ दक्षस्य दुहिता सती।
शंकरस्य प्रिया भार्या बभूव वरवर्णिनी॥ ५

किमर्थं सा परित्यज्य स्वशरीरं वरानना।
जाता हिमवतो गेहे गिरीन्द्रस्य महात्मनः॥ ६

पुनश्च देवदेवस्य पत्नीत्वमगमच्छुभा।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्ववित् त्वं मतोऽसि मे॥ ७

तीर्थानां चैव माहात्म्यं दानानां चैव सत्तम।
व्रतानां विविधानां च विधिमाचक्ष्व मे द्विज॥ ८

एवमुक्तो नारदेन पुलस्त्यो मुनिसत्तमः।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो नारदं तपसो निधिम्॥ ९

पुलस्त्य उवाच

पुराणं वामनं वक्ष्ये क्रमान्निखिलमादितः।
अवधानं स्थिरं कृत्वा शृणुष्व मुनिसत्तम॥ १०

पुरा हैमवती देवी मन्दरस्थं महेश्वरम्।
उवाच वचनं दृष्ट्वा ग्रीष्मकालमुपस्थितम्॥ ११

ग्रीष्मः प्रवृत्तो देवेश न च ते विद्यते गृहम्।
यत्र वातातपौ ग्रीष्मे स्थितयोर्नौ गमिष्यतः॥ १२

एवमुक्तो भवान्या तु शंकरो वाक्यमब्रवीत्।
निराश्रयोऽहं सुदति सदारण्यचरः शुभे॥ १३
इत्युक्ता शंकरेणाथ वृक्षच्छायासु नारद।
निदाघकालमनयत् समं शर्वेण सा सती॥ १४

निदाघान्ते समुद्भूतो निर्जनाचरितोऽद्भुतः।
घनान्धकारिताशो वै प्रावृट्कालोऽतिरागवान्॥ १५

तं दृष्ट्वा दक्षतनुजा प्रावृट्कालमुपस्थितम्।
प्रोवाच वाक्यं देवेशं सती सप्रणयं तदा॥ १६

देवताओंके साथ युद्ध कैसे किया और ब्राह्मणश्रेष्ठ! दूसरी जिज्ञासा यह है कि दक्षप्रजापतिकी पुत्री भगवती सती, जो भगवान् शंकरकी प्रिय पत्नी थीं, उन श्रेष्ठ मुखवाली (सती)-ने अपना शरीर त्यागकर पर्वतराज हिमालयके घरमें किसलिये जन्म लिया? और पुनः वे कल्याणी देवदेव (महादेव)-की पत्नी कैसे बनीं? मैं मानता हूँ कि आपको सब कुछका ज्ञान है, अतः आप मेरी इस शंकाको दूर कर दें। साथ ही सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ हे द्विज! तीर्थों तथा दानोंकी महिमा और विविध व्रतोंकी अनुष्ठान-विधि भी मुझे बताइये॥ १—८॥

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर मुनियोंमें मुख्य तथा वक्ताओंमें श्रेष्ठ तपोधन पुलस्त्यजी नारदजीसे कहने लगे॥ ९॥

पुलस्त्यजी बोले—नारद! आपसे मैं सम्पूर्ण वामनपुराणकी कथा आदिसे (अन्ततक) वर्णन करूँगा। मुनिश्रेष्ठ! आप मनको स्थिर कर ध्यानसे सुनें![1] प्राचीन समयमें देवी हैमवती (सती)-ने ग्रीष्म-ऋतुका आगमन देखकर मन्दर पर्वतपर बैठे हुए भगवान् शंकरसे कहा—देवेश! ग्रीष्म-ऋतु तो आ गयी है, परंतु आपका कोई घर नहीं है, जहाँ हम दोनों ग्रीष्मकालमें निवास करते हुए वायु और तापजनित कठिन समयको बिता सकेंगे। सतीके ऐसा कहनेपर भगवान् शंकर बोले—हे सुन्दर दाँतोंवाली सति! मेरा कभी कोई घर नहीं रहा। मैं तो सदा वनोंमें ही घूमता रहता हूँ॥ १०—१३॥

नारदजी! भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर सती-देवीने उनके साथ वृक्षोंकी छायामें (जैसे-तैसे रहकर) निदाघ (गर्मी)-का समय बिताया। फिर ग्रीष्मके अन्तमें अद्भुत वर्षा-ऋतु आ गयी, जो अत्यधिक रागको बढ़ानेवाली होती है और जिसमें प्रायः सबका आवागमन अवरुद्ध हो जाता है। (उस समय) मेघोंसे आवृत हो जानेसे दिशाएँ अन्धकारमय हो जाती हैं। उस वर्षा-ऋतुको आयी देखकर दक्ष-पुत्री सतीने प्रेमसे महादेवजीसे यह वचन कहा—॥ १४—१६॥

१. भविष्यपुराणके प्रमाणानुसार वामनपुराणके वक्ता चतुर्मुख (ब्रह्माजी) हैं, पर यहाँ पुलस्त्यजी ऐसा उल्लेख नहीं करते कि 'पुराणं वामनं वक्ष्ये ब्रह्मणा च मया श्रुतम्।' इससे प्रतीत होता है कि एतत्-सम्बन्धी श्लोक अनुपलब्ध है। मत्स्यपुराणमें भी चतुर्मुख (ब्रह्मा)-के वक्ता होनेका उल्लेख है—

'त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः। त्रिवर्गमभ्यधात् तच्च वामनं परिकीर्तितम्॥'

विवहन्ति वाता हृदयावदारणा
गर्जन्त्यमी तोयधरा महेश्वर।
स्फुरन्ति नीलाभ्रगणेषु विद्युतो
वाशन्ति केकारवमेव बर्हिणः॥ १७

पतन्ति धारा गगनात् परिच्युता
बका बलाकाश्च सरन्ति तोयदान्।
कदम्बसर्ज्जार्जुनकेतकीद्रुमाः
पुष्पाणि मुञ्चन्ति सुमारुताहताः॥ १८

श्रुत्वैव मेघस्य दृढं तु गर्जितं
त्यजन्ति हंसाश्च सरांसि तत्क्षणात्।
यथाश्रयान् योगिगणाः समन्तात्
प्रवृद्धमूलानपि संत्यजन्ति॥ १९

इमानि यूथानि वने मृगाणां
चरन्ति धावन्ति रमन्ति शंभो।
तथाचिराभाः सुतरां स्फुरन्ति
पश्येह नीलेषु घनेषु देव।
नूनं समृद्धिं सलिलस्य दृष्ट्वा
चरन्ति शूरास्तरुणद्रुमेषु॥ २०

उद्वृत्तवेगाः सहसैव निम्नगा
जाताः शशाङ्काङ्कितचारुमौले।
किमत्र चित्रं यदनुज्ज्वलं जनं
निषेव्य योषिद् भवति त्वशीला॥ २१

नीलैश्च मेघैश्च समावृतं नभः
पुष्पैश्च सर्ज्जा मुकुलैश्च नीपाः।
फलैश्च बिल्वाः पयसा तथापगाः
पत्रैः सपद्मैश्च महासरांसि॥ २२

इतीदृशे शंकर दुःसहेऽद्भुते
काले सुरौद्रे ननु ते ब्रवीमि।
गृहं कुरुष्वात्र महाचलोत्तमे
सुनिर्वृता येन भवामि शंभो॥ २३

इत्थं त्रिनेत्रः श्रुतिरामणीयकं
श्रुत्वा वचो वाक्यमिदं बभाषे।
न मेऽस्ति वित्तं गृहसंचयार्थे
मृगारिचर्मावरणं मम प्रिये॥ २४

ममोपवीतं भुजगेश्वरः शुभे
कर्णेऽपि पद्मश्च तथैव पिङ्गलः।
केयूरमेकं मम कम्बलस्त्वहि-
र्द्वितीयमन्यो भुजगो धनंजयः॥ २५

महेश्वर! हृदयको विदीर्ण करनेवाली वायु वेगसे चल रही है। ये मेघ भी गर्जन कर रहे हैं, नीले मेघोंमें बिजलियाँ कौंध रही हैं और मयूरगण केकाध्वनि कर रहे हैं। आकाशसे गिरती हुई जलधाराएँ नीचे आ रही हैं। बगुले तथा बगुलोंकी पंक्तियाँ जलाशयोंमें तैर रही हैं। प्रबल वायुके झोंके खाकर कदम्ब, सर्ज, अर्जुन तथा केतकीके वृक्ष पुष्पोंको गिरा रहे हैं—वृक्षोंसे फूल झड़ रहे हैं। मेघका गम्भीर गर्जन सुनकर हंस तुरंत जलाशयोंको छोड़कर चले जा रहे हैं, जिस प्रकार योगिजन अपने सब प्रकारसे समृद्ध घरको भी छोड़ देते हैं। शिवजी! वनमें मृगोंके ये यूथ आनन्दित होकर इधर-उधर दौड़ लगाकर, खेल-कूदकर आनन्दित हो रहे हैं और देव! देखिये, नीले बादलोंमें विद्युत् भलीभाँति चमक रही है। लगता है, जलकी वृद्धिको देखकर वीरगण हरे-भरे सुपुष्ट नये वृक्षोंपर विचरण कर रहे हैं। नदियाँ सहसा उद्दाम (बड़े) वेगसे बहने लगी हैं। चन्द्रशेखर! ऐसे उत्तेजक समयमें यदि असुवृत्त व्यक्तिके फंदेमें आकर स्त्री दुःशील हो जाती है तो इसमें क्या आश्चर्य॥ १७—२१॥

आकाश नीले बादलोंसे घिर गया है। इसी प्रकार पुष्पोंके द्वारा सर्ज, मुकुलों (कलियों)-के द्वारा नीप (कदम्ब), फलोंके द्वारा बिल्व-वृक्ष एवं जलके द्वारा नदियाँ और कमल-पुष्पों एवं कमल-पत्रोंसे बड़े-बड़े सरोवर भी ढक गये हैं। हे शंकरजी! ऐसी दुःसह, अद्भुत तथा भयंकर दशामें आपसे प्रार्थना करती हूँ कि इस महान् तथा उत्तम पर्वतपर गृह-निर्माण कीजिये; हे शंभो! जिससे मैं सर्वथा निश्चिन्त हो जाऊँ। कानोंको प्रिय लगनेवाले सतीके इन वचनोंको सुनकर तीन नयनवाले भगवान् शंकरजी बोले—प्रिये! घर बनानेके लिये (और उसकी साज-सज्जाके लिये) मेरे पास धन नहीं है। मैं व्याघ्रके चर्ममात्रसे अपना शरीर ढकता हूँ। शुभे! (सूत्रोंके अभावमें) सर्पराज ही मेरा उपवीत (जनेऊ) बना है। पद्म और पिंगल नामके दो सर्प मेरे दोनों कानोंमें (कुण्डलका काम करते) हैं। कंबल और धनंजय नामके ये दो सर्प मेरी दोनों बाँहोंके बाजूबंद

नागस्तथैवाश्वतरो हि कङ्कणं
सव्येतरे तक्षक उत्तरे तथा।
नीलोऽपि नीलाञ्जनतुल्यवर्णः
श्रोणीतटे राजति सुप्रतिष्ठः॥ २६

पुलस्त्य उवाच

इति वचनमथोग्रं शंकरात्सा मृडानी
ऋतमपि तदसत्यं श्रीमदाकर्ण्य भीता।
अवनितलमवेक्ष्य स्वामिनो वासकृच्छ्रात्
परिवदति सरोषं लज्जयोच्छ्वस्य चोष्णम्॥ २७

देव्युवाच

कथं हि देवदेवेश प्रावृट्कालो गमिष्यति।
वृक्षमूले स्थिताया मे सुदुःखेन वदाम्यतः॥ २८

शंकर उवाच

घनावस्थितदेहायाः प्रावृट्कालः प्रयास्यति।
यथाम्बुधारा न तव निपतिष्यन्ति विग्रहे॥ २९

पुलस्त्य उवाच

ततो हरस्तद्घनखण्डमुन्नत-
मारुह्य तस्थौ सह दक्षकन्यया।
ततोऽभवन्नाम महेश्वरस्य
जीमूतकेतुस्त्विति विश्रुतं दिवि॥ ३०

हैं। मेरे दाहिने और बायें हाथोंमें भी क्रमशः अश्वतर तथा तक्षक नाग कङ्कण बने हुए हैं। इसी प्रकार मेरी कमरमें नीलाञ्जनके वर्णवाला नील नामका सर्प अवस्थित होकर सुशोभित हो रहा है॥ २२—२६॥

पुलस्त्यजी बोले— महादेवजीसे इस प्रकार कठोर तथा ओजस्वी एवं सत्य होनेपर भी असत्य प्रतीत हो रहे वचनको सुनकर सतीजी बहुत डर गयीं और स्वामीके निवासकष्टको देखकर गरम साँस छोड़ती हुई और पृथ्वीकी ओर देखती हुई (कुछ) क्रोध और लज्जासे इस प्रकार कहने लगीं— ॥ २७॥

सतीदेवी बोलीं— देवेश! वृक्षके मूलमें दुःखपूर्वक रहकर भी मेरा वर्षाकाल कैसे व्यतीत होगा! इसीलिये तो मैं आपसे (गृहके निर्माणकी बात) कहती हूँ॥ २८॥

शंकरजी बोले— देवि! मेघ-मण्डलके ऊपर अपने शरीरको स्थित कर तुम वर्षाकाल भलीभाँति व्यतीत कर सकोगी। इससे वर्षाकी जलधाराएँ तुम्हारे शरीरपर नहीं गिर पायेंगी॥ २९॥

पुलस्त्यजी बोले— उसके बाद महादेवजी दक्षकन्या सतीके साथ आकाशमें उन्नत मेघमण्डलके ऊपर चढ़कर बैठ गये। तभीसे स्वर्गमें उन महादेवजीका नाम 'जीमूतकेतु' या 'जीमूतवाहन' विख्यात हो गया॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पहला अध्याय समाप्त हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

शरदागम होनेपर शंकरजीका मन्दरपर्वतपर जाना और दक्षका यज्ञ

पुलस्त्य उवाच

ततस्त्रिनेत्रस्य गतः प्रावृट्कालो घनोपरि।
लोकानन्दकरी रम्या शरत् समभवन्मुने॥ १

त्यजन्ति नीलाम्बुधरा नभस्तलं
वृक्षांश्च कङ्काः सरितस्तटानि।
पद्माः सुगन्धं निलयानि वायसा
रुरुर्विषाणं कलुषं जलाशयाः॥ २

पुलस्त्यजी बोले— इस प्रकार तीन नयनवाले भगवान् शिवका वर्षाकाल मेघोंपर बसते हुए ही व्यतीत हो गया। हे मुने! तत्पश्चात् लोगोंको आनन्द देनेवाली रमणीय शरद् ऋतु आ गयी। इस ऋतुमें नीले मेघ आकाशको और बगुले वृक्षोंको छोड़कर अलग हो जाते हैं। नदियाँ भी तटको छोड़कर बहने लगती हैं। इसमें कमलपुष्प सुगन्ध फैलाते हैं, कौवे भी घोसलोंको छोड़ देते हैं। रुरुमृगोंके शृङ्ग गिर पड़ते हैं और जलाशय

विकासमायान्ति च पङ्कजानि
चन्द्रांशवो भान्ति लताः सुपुष्पाः।
नन्दन्ति हृष्टान्यपि गोकुलानि
सन्तश्च संतोषमनुव्रजन्ति॥ ३

सरःसु पद्मा गगने च तारका
जलाशयेष्वेव तथा पयांसि।
सतां च चित्तं हि दिशां मुखैः समं
वैमल्यमायान्ति शशाङ्ककान्तयः॥ ४

एतादृशे हरः काले मेघपृष्ठाधिवासिनीम्।
सतीमादाय शैलेन्द्रं मन्दरं समुपाययौ॥ ५

ततो मन्दरपृष्ठेऽसौ स्थितः समशिलातले।
रराम शंभुर्भगवान् सत्या सह महाद्युतिः॥ ६

ततो व्यतीते शरदि प्रतिबुद्धे च केशवे।
दक्षः प्रजापतिश्रेष्ठो यष्टुमारभत क्रतुम्॥ ७

द्वादशैव स चादित्याञ्शक्रादींश्च सुरोत्तमान्।
सकश्यपान् समामन्त्र्य सदस्यान् समचीकरत्॥ ८

अरुन्धत्या च सहितं वसिष्ठं शंसितव्रतम्।
सहानसूययात्रिं च सह धृत्या च कौशिकम्॥ ९

अहल्यया गौतमं च भरद्वाजममायया।
चन्द्रया सहितं ब्रह्मन्नृषिमङ्गिरसं तथा॥ १०

आमन्त्र्य कृतवान्दक्षः सदस्यान् यज्ञसंसदि।
विद्वान् गुणसंपन्नान् वेदवेदाङ्गपारगान्॥ ११

धर्मं च स समाहूय भार्ययाऽहिंसया सह।
निमन्त्र्य यज्ञवाटस्य द्वारपालत्वमादिशत्॥ १२

अरिष्टनेमिनं चक्रे इध्माहरणकारिणम्।
भृगुं च मन्त्रसंस्कारे सम्यग् दक्षः प्रयुक्तवान्॥ १३

तथा चन्द्रमसं देवं रोहिण्या सहितं शुचिम्।
धनानामाधिपत्ये च युक्तवान् हि प्रजापतिः॥ १४

जामातृदुहितृंश्चैव दौहित्रांश्च प्रजापतिः।
सशंकरां सतीं मुक्त्वा मखे सर्वान् न्यमन्त्रयत्॥ १५

नारद उवाच

किमर्थं लोकपतिना धनाध्यक्षो महेश्वरः।
ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि न निमन्त्रितः॥ १६

सर्वथा स्वच्छ हो जाते हैं। इस समय कमल विकसित होते हैं, शुभ्र चन्द्रमाकी किरणें आनन्ददायिनी होकर फैल जाती हैं, लताएँ पुष्पित हो जाती हैं, गौवें हृष्ट-पुष्ट होकर आनन्दसे विहरती हैं तथा संतोंको बड़ा सुख मिलता है। तालाबोंमें कमल, गगनमें तारागण, जलाशयोंमें निर्मल जल और दिशाओंके मुखमण्डलके साथ सज्जनोंका चित्त तथा चन्द्रमाकी ज्योति भी सर्वथा स्वच्छ एवं निर्मल हो जाती है॥ १—४॥

ऐसी शरद्-ऋतुमें शंकरजी मेघके ऊपर वास करनेवाली सतीको साथ लेकर श्रेष्ठ मन्दरपर्वतपर पहुँचे और महातेजस्वी (महाकान्तिमान्) भगवान् शंकर मन्दराचलके ऊपरी भागमें एक समतल शिलापर अवस्थित होकर सतीके साथ विश्राम करने लगे। उसके बाद शरद्-ऋतुके बीत जानेपर तथा भगवान् विष्णुके जाग जानेपर प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ दक्षने एक विशाल यज्ञका आयोजन किया। उन्होंने द्वादश आदित्यों तथा कश्यप आदि (ऋषियों)-के साथ ही इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंको भी निमन्त्रित कर उन्हें यज्ञका सदस्य बनाया॥ ५—८॥

नारदजी! उन्होंने अरुन्धतीसहित प्रशस्तव्रतधारी वसिष्ठको, अनसूयासहित अत्रिमुनिको, धृतिके सहित कौशिक (विश्वामित्र) मुनिको, अहल्याके साथ गौतमको, अमायाके सहित भरद्वाजको और चन्द्राके साथ अङ्गिरा ऋषिको आमन्त्रित किया। विद्वान् दक्षने इन गुणसम्पन्न वेद-वेदाङ्गपारगामी विद्वान् ऋषियोंको निमन्त्रितकर उन्हें अपने यज्ञमें सदस्य बनाया। और, उन्होंने (प्रजापति दक्षने) यज्ञमें धर्मको भी उनकी पत्नी अहिंसाके साथ निमन्त्रितकर यज्ञमण्डपका द्वारपाल नियुक्त किया॥ ९—१२॥

दक्षने अरिष्टनेमिको समिधा लानेका कार्य सौंपा और भृगुको समुचित मन्त्र-पाठमें नियुक्त किया। फिर दक्ष-प्रजापतिने रोहिणीसहित 'अर्थशुचि' चन्द्रमाको कोषाध्यक्षके पदपर नियुक्त किया। इस प्रकार दक्षप्रजापतिने केवल शंकरसहित सतीको छोड़कर अपने सभी जामाताओं, पुत्रियों एवं दौहित्रोंको यज्ञमें आमन्त्रित किया॥ १३—१५॥

नारदजीने कहा (पूछा)—(पुलस्त्यजी महाराज!) लोकस्वामी दक्षने महेश्वरको सबसे बड़े, श्रेष्ठ, वरिष्ठ, सबके आदिमें रहनेवाले एवं समग्र ऐश्वर्योंके स्वामी होनेपर भी (यज्ञमें) क्यों नहीं निमन्त्रित किया?॥ १६॥

पुलस्त्य उवाच

ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि भगवाञ्शिवः।
कपालीति विदित्वेशो दक्षेण न निमन्त्रितः॥ १७

नारद उवाच

किमर्थं देवताश्रेष्ठः शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
कपाली भगवान् जातः कर्मणा केन शंकरः॥ १८

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्।
प्रोक्तामादिपुराणे च ब्रह्मणाऽव्यक्तमूर्त्तिना॥ १९

पुरा त्वेकार्णवं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
नष्टचन्द्रार्कनक्षत्रं प्रणष्टपवनानलम्॥ २०

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं भावाभावविवर्जितम्।
निमग्नपर्वततरु तमोभूतं सुदुर्दशम्॥ २१

तस्मिन् स शेते भगवान् निद्रां वर्षसहस्त्रिकीम्।
रात्र्यन्ते सृजते लोकान् राजसं रूपमास्थितः॥ २२

राजसः पञ्चवदनो वेदवेदाङ्गपारगः।
स्रष्टा चराचरस्यास्य जगतोऽद्भुतदर्शनः॥ २३

तमोमयस्तथैवान्यः समुद्भूतस्त्रिलोचनः।
शूलपाणिः कपर्दी च अक्षमालां च दर्शयन्॥ २४

ततो महात्मा ह्यसृजदहंकारं सुदारुणम्।
येनाक्रान्तावुभौ देवौ तावेव ब्रह्मशंकरौ॥ २५

अहंकारावृतो रुद्रः प्रत्युवाच पितामहम्।
को भवानिह संप्राप्तः केन सृष्टोऽसि मां वद॥ २६

पितामहोऽप्यहंकारात् प्रत्युवाचाथ को भवान्।
भवतो जनकः कोऽत्र जननी वा तदुच्यताम्॥ २७

इत्यन्योन्यं पुरा ताभ्यां ब्रह्मेशाभ्यां कलिप्रिय।
परिवादोऽभवत् तत्र उत्पत्तिर्भवतोऽभवत्॥ २८

भवानप्यन्तरिक्षं हि जातमात्रस्तदोत्पतत्।
धारयन्नतुलां वीणां कुर्वन् किलकिलाध्वनिम्॥ २९

पुलस्त्यजीने कहा—(नारदजी!) ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ तथा अग्रगणी होनेपर भी भगवान् शिवको कपाली जानकर प्रजापति दक्षने उन्हें (यज्ञमें) निमन्त्रित नहीं किया॥ १७॥

नारदजीने (फिर) पूछा—(महाराज!) देवश्रेष्ठ शूलपाणि, त्रिलोचन भगवान् शंकर किस कर्मसे और किस प्रकार कपाली हो गये, यह बतलायें॥ १८॥

पुलस्त्यजीने कहा—नारदजी! आप ध्यान देकर सुनें। यह पुरानी कथा आदिपुराणमें अव्यक्तमूर्ति ब्रह्माजीके द्वारा कही गयी है। (मैं उसी प्राचीन कथाको आपसे कहता हूँ।) प्राचीन समयमें समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् एकीभूत महासमुद्रमें निमग्न (डूबा हुआ) था। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, वायु एवं अग्नि—किसीका भी कोई (अलग) अस्तित्व नहीं था। 'भाव' एवं 'अभाव'से रहित जगत्की उस समयकी अवस्थाका कोई ठीक-ठीक ज्ञान, विचार, तर्कना या वर्णन सम्भव नहीं है। सभी पर्वत एवं वृक्ष जलमें निमग्न थे तथा सम्पूर्ण जगत् अन्धकारसे व्याप्त एवं दुर्दशाग्रस्त था। ऐसे समयमें भगवान् विष्णु हजारों वर्षोंकी निद्रामें शयन करते हैं एवं रात्रिके अन्तमें राजस रूप ग्रहणकर वे सभी लोकोंकी रचना करते हैं॥ १९—२२॥

इस चराचरात्मक जगत्का स्रष्टा भगवान् विष्णुका यह अद्भुत राजस स्वरूप पञ्चमुख एवं वेद-वेदाङ्गोंका ज्ञाता था। उसी समय तमोमय, त्रिलोचन, शूलपाणि, कपर्दी तथा रुद्राक्षमाला धारण किया हुआ एक अन्य पुरुष भी प्रकट हुआ। उसके बाद भगवान्ने अतिदारुण अहंकारकी रचना की, जिससे ब्रह्मा तथा शंकर—ये दोनों ही देवता आक्रान्त हो गये। अहंकारसे व्याप्त शिवने ब्रह्मासे कहा—तुम कौन हो और यहाँ कैसे आये हो? तुम मुझे यह भी बतलाओ कि तुम्हारी सृष्टि किसने की है?॥ २३—२६॥

(फिर) इसपर ब्रह्माने भी अहंकारसे उत्तर दिया—आप भी बतलाइये कि आप कौन हैं तथा आपके माता-पिता कौन हैं? लोक-कल्याणके लिये कलहको प्रिय माननेवाले नारदजी! इस प्रकार प्राचीनकालमें ब्रह्मा और शंकरके बीच एक-दूसरेसे दुर्विवाद हुआ। उसी समय आपका भी प्रादुर्भाव हुआ। आप उत्पन्न होते ही अनुपम वीणा धारण किये किलकिला शब्द करते हुए अन्तरिक्षकी ओर ऊपर चले गये। इसके बाद भगवान् शिव मानो

ततो विनिर्जितः शंभुर्मानिना पद्मयोनिना।
तस्थावधोमुखो दीनो ग्रहाक्रान्तो यथा शशी॥ ३०
पराजिते लोकपतौ देवेन परमेष्ठिना।
क्रोधान्धकारितं रुद्रं पञ्चमोऽथ मुखोऽब्रवीत्॥ ३१
अहं ते प्रतिजानामि तमोमूर्ते त्रिलोचन।
दिग्वासा वृषभारूढो लोकक्षयकरो भवान्॥ ३२
इत्युक्तः शंकरः क्रुद्धो वदनं घोरचक्षुषा।
निर्दग्धुकामस्त्वनिशं ददर्श भगवानजः॥ ३३
ततस्त्रिनेत्रस्य समुद्भवन्ति
वक्त्राणि पञ्चाथ सुदर्शनानि।
श्वेतं च रक्तं कनकावदातं
नीलं तथा पिङ्गजटं च शुभ्रम्॥ ३४
वक्त्राणि दृष्ट्वाऽर्कसमानि सद्यः
पैतामहं वक्त्रमुवाच वाक्यम्।
समाहतस्याथ जलस्य बुद्बुदा
भवन्ति किं तेषु पराक्रमोऽस्ति॥ ३५
तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तेन शंकरेण महात्मना।
नखाग्रेण शिरश्छिन्नं ब्राह्मं परुषवादिनम्॥ ३६
तच्छिन्नं शंकरस्यैव सव्ये करतलेऽपतत्।
पतते न कदाचिच्च तच्छंकरकराच्छिरः॥ ३७
अथ क्रोधावृतेनापि ब्रह्मणाद्भुतकर्मणा।
सृष्टस्तु पुरुषो धीमान् कवची कुण्डली शरी॥ ३८
धनुष्पाणिर्महाबाहुर्बाणशक्तिधरोऽव्ययः।
चतुर्भुजो महातूणी आदित्यसमदर्शनः॥ ३९
स प्राह गच्छ दुर्बुद्धे मा त्वां शूलिन् निपातये।
भवान् पापसमायुक्तः पापिष्ठं को जिघांसति॥ ४०
इत्युक्तः शंकरस्तेन पुरुषेण महात्मना।
त्रपायुक्तो जगामाथ रुद्रो बदरिकाश्रमम्॥ ४१
नरनारायणस्थानं पर्वते हि हिमाश्रये।
सरस्वती यत्र पुण्या स्यन्दते सरितां वरा॥ ४२
तत्र गत्वा च तं दृष्ट्वा नारायणमुवाच ह।
भिक्षां प्रयच्छ भगवन् महाकापालिकोऽस्मि भोः॥ ४३
इत्युक्तो धर्मपुत्रस्तु रुद्रं वचनमब्रवीत्।
सव्यं भुजं ताडयस्व त्रिशूलेन महेश्वर॥ ४४

ब्रह्माद्वारा पराजित-से होकर राहुग्रस्त चन्द्रमाके समान दीन एवं अधोमुख होकर खड़े हो गये॥ २७—३०॥

(ब्रह्माके द्वारा) लोकपति (शंकर)-के पराजित हो जानेपर क्रोधसे अन्धे हुए रुद्रसे (श्रीब्रह्माजीके) पाँचवें मुखने कहा—तमोमूर्ति त्रिलोचन! मैं आपको जानता हूँ। आप दिगम्बर, वृषारोही एवं लोकोंको नष्ट करनेवाले (प्रलयंकारी) हैं। इसपर अजन्मा भगवान् शंकर अपने तीसरे घोर नेत्रद्वारा भस्म करनेकी इच्छासे ब्रह्माके उस मुखको एकटक देखने लगे। तदनन्तर श्रीशंकरके श्वेत, रक्त, स्वर्णिम, नील एवं पिंगल वर्णके सुन्दर पाँच मुख समुद्भूत हो गये॥ ३१—३४॥

सूर्यके समान दीप्त (उन) मुखोंको देखकर पितामहके मुखने कहा—जलमें आघात करनेसे बुद्बुद तो उत्पन्न होते हैं, पर क्या उनमें कुछ शक्ति भी होती है? यह सुनकर क्रोधभरे भगवान् शंकरने ब्रह्माके कठोर भाषण करनेवाले सिरको अपने नखके अग्रभागसे काट डाला; पर वह कटा हुआ ब्रह्माजीका सिर शंकरजीके ही वाम हथेलीपर जा गिरा एवं वह कपाल श्रीशंकरके उस हथेलीसे (इस प्रकार चिपक गया कि गिरानेपर भी) किसी प्रकार न गिरा। इसपर अद्भुतकर्मा ब्रह्माजी अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कवच-कुण्डल एवं शर धारण करनेवाले धनुर्धर विशाल बाहुवाले एक पुरुषकी रचना की। वह अव्यय, चतुर्भुज बाण, शक्ति और भारी तरकस धारण किये था तथा सूर्यके समान तेजस्वी दीख पड़ता था॥ ३५—३९॥

उस नये पुरुषने शिवजीसे कहा—दुर्बुद्धि शूलधारी शंकर! तुम शीघ्र (यहाँसे) चले जाओ, अन्यथा मैं तुम्हें मार डालूँगा। पर तुम पापयुक्त हो; भला, इतने बड़े पापीको कौन मारना चाहेगा? जब उस महापुरुषने शंकरसे इस प्रकार कहा, तब शिवजी लज्जित होकर हिमालय पर्वतपर स्थित बदरिकाश्रमको चले गये, जहाँ नर-नारायणका स्थान है और जहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ पवित्र सरस्वती नदी बहती है। वहाँ जाकर और उन नारायणको देखकर शंकरने कहा—भगवन्! मैं महाकापालिक हूँ। आप मुझे भिक्षा दें। ऐसा कहनेपर धर्मपुत्र (नारायण)-ने रुद्रसे कहा—महेश्वर! तुम अपने त्रिशूलके द्वारा मेरी बायीं भुजापर ताड़ना करो॥ ४०—४४॥

नारायणवचः श्रुत्वा त्रिशूलेन त्रिलोचनः।
सव्यं नारायणभुजं ताडयामास वेगवान्॥ ४५
त्रिशूलाभिहतान्मार्गात् तिस्रो धारा विनिर्ययुः।
एका गगनमाक्रम्य स्थिता ताराभिमण्डिता॥ ४६
द्वितीया न्यपतद् भूमौ तां जग्राह तपोधनः।
अत्रिस्तस्मात् समुद्भूतो दुर्वासा शंकरांशतः॥ ४७
तृतीया न्यपतद्धारा कपाले रौद्रदर्शने।
तस्माच्छिशुः समभवत् संनद्धकवचो युवा॥ ४८
श्यामावदातः शरचापपाणि-
र्गर्जन्यथा प्रावृषि तोयदोऽसौ।
इत्थं ब्रुवन् कस्य विशातयामि
स्कन्धाच्छिरस्तालफलं यथैव॥ ४९
तं शंकरोऽभ्येत्य वचो बभाषे
नरं हि नारायणबाहुजातम्।
निपातयैनं नर दुष्टवाक्यं
ब्रह्मात्मजं सूर्यशतप्रकाशम्॥ ५०
इत्येवमुक्तः स तु शंकरेण
आद्यं धनुस्त्वाजगवं प्रसिद्धम्।
जग्राह तूणानि तथाऽक्षयाणि
युद्धाय वीरः स मतिं चकार॥ ५१
ततः प्रयुद्धौ सुभृशं महाबलौ
ब्रह्मात्मजो बाहुभवश्च शार्वः।
दिव्यं सहस्रं परिवत्सराणां
ततो हरोऽभ्येत्य विरिञ्चिमूचे॥ ५२
जितस्त्वदीयः पुरुषः पितामह
नरेण दिव्याद्भुतकर्मणा बली।
महापृषत्कैरभिपत्य ताडित-
स्तदद्भुतं चेह दिशो दशैव॥ ५३
ब्रह्मा तमीशं वचनं बभाषे
नेहास्य जन्मान्यजितस्य शंभो।
पराजितश्चोच्यतेऽसौ त्वदीयो
नरो मदीयः पुरुषो महात्मा॥ ५४
इत्येवमुक्त्वा वचनं त्रिनेत्र-
श्चिक्षेप सूर्ये पुरुषं विरिञ्चेः।
नरे नरस्यैव तदा स विग्रहे
चिक्षेप धर्मप्रभवस्य देवः॥ ५५

शिवजीने नारायणकी बात सुनकर त्रिशूलद्वारा बड़े वेगसे उनकी बाम भुजापर आघात किया। त्रिशूलद्वारा (भुजापर) प्रताड़ित मार्गसे जलकी तीन धाराएँ निकल पड़ीं। एक धारा आकाशमें जाकर ताराओंसे मण्डित आकाशगङ्गा हुई; दूसरी धारा पृथ्वीपर गिरी, जिसे तपोधन अत्रिने (मन्दाकिनीके रूपमें) प्राप्त किया। शंकरके उसी अंशसे दुर्वासाका प्रादुर्भाव हुआ। तीसरी धारा भयानक दिखायी पड़नेवाले कपालपर गिरी, जिससे एक शिशु उत्पन्न हुआ। वह (जन्म लेते ही) कवच बाँधे, श्यामवर्णका युवक था। उसके हाथोंमें धनुष और बाण था। फिर वह वर्षाकालमें मेघ-गर्जनके समान कहने लगा—'मैं किसके स्कन्धसे सिरको तालफलके सदृश काट गिराऊँ?'॥ ४५—४९॥

श्रीनारायणकी बाहुसे उत्पन्न उस पुरुषके समीप जाकर श्रीशंकरने कहा—हे नर! तुम सूर्यके समान प्रकाशमान, पर कटुभाषी, ब्रह्मासे उत्पन्न इस पुरुषको मार डालो। शंकरजीके ऐसा कहनेपर उस वीर नरने प्रसिद्ध आजगव नामका धनुष एवं अक्षय तूणीर ग्रहणकर युद्धका निश्चय किया। उसके बाद ब्रह्मात्मज और नारायणकी भुजासे उत्पन्न दोनों नरोंमें सहस्र दिव्य वर्षोंतक प्रबल युद्ध होता रहा। तत्पश्चात् श्रीशंकरजीने ब्रह्माके पास जाकर कहा—पितामह! यह एक अद्भुत बात है कि दिव्य एवं अद्भुत कर्मवाले (मेरे) नरने दसों दिशाओंमें व्याप्त महान् बाणोंके प्रहारसे ताडित कर आपके पुरुषको जीत लिया। ब्रह्माने उस ईशसे कहा कि इस अजितका जन्म यहाँ दूसरोंद्वारा पराजित होनेके लिये नहीं हुआ है। यदि किसीको पराजित कहा जाना अभीष्ट है तो वह तेरा नर ही है। मेरा पुरुष तो महाबली है—ऐसा कहे जानेपर श्रीशंकरजीने ब्रह्माजीके पुरुषको सूर्यमण्डलमें फेंक दिया तथा उन्हीं शंकरने उस नरको धर्मपुत्र नरके शरीरमें फेंक दिया॥ ५०—५५॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें दूसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

शंकरजीका ब्रह्महत्यासे छूटनेके लिये तीर्थोंमें भ्रमण; बदरिकाश्रममें नारायणकी स्तुति; वाराणसीमें ब्रह्महत्यासे मुक्ति एवं कपाली नाम पड़ना

पुलस्त्य उवाच

ततः करतले रुद्रः कपाले दारुणे स्थिते।
संतापमगमद् ब्रह्मंश्चिन्तया व्याकुलेन्द्रियः॥ १

ततः समागता रौद्रा नीलाञ्जनचयप्रभा।
सरक्तमूर्द्धजा भीमा ब्रह्महत्या हरान्तिकम्॥ २

तामागतां हरो दृष्ट्वा पप्रच्छ विकरालिनीम्।
काऽसि त्वमागता रौद्रे केनाप्यर्थेन तद्वद॥ ३

कपालिनमथोवाच ब्रह्महत्या सुदारुणा।
ब्रह्मवध्याऽस्मि सम्प्राप्ता मां प्रतीच्छ त्रिलोचन॥ ४

इत्येवमुक्त्वा वचनं ब्रह्महत्या विवेश ह।
त्रिशूलपाणिनं रुद्रं सम्प्रतापितविग्रहम्॥ ५

ब्रह्महत्याभिभूतश्च शर्वो बदरिकाश्रमम्।
आगच्छन्न ददर्शाथ नरनारायणावृषी॥ ६

अदृष्ट्वा धर्मतनयौ चिन्ताशोकसमन्वितः।
जगाम यमुनां स्नातुं साऽपि शुष्कजलाऽभवत्॥ ७

कालिन्दीं शुष्कसलिलां निरीक्ष्य वृषकेतनः।
प्लक्षजां स्नातुमगमदन्तर्द्धानं च सा गता॥ ८

ततो नु पुष्करारण्यं मागधारण्यमेव च।
सैन्धवारण्यमेवासौ गत्वा स्नातो यथेच्छया॥ ९

तथैव नैमिषारण्यं धर्मारण्यं तथेश्वरः।
स्नातो नैव च सा रौद्रा ब्रह्महत्या व्यमुञ्चत॥ १०

सरित्सु तीर्थेषु तथाश्रमेषु
पुण्येषु देवायतनेषु शर्वः।
समायुतो योगयुतोऽपि पापा-
न्नावाप मोक्षं जलदध्वजोऽसौ॥ ११

ततो जगाम निर्विण्णः शंकरः कुरुजाङ्गलम्।
तत्र गत्वा ददर्शाथ चक्रपाणिं खगध्वजम्॥ १२

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हरः स्तोत्रमुदीरयत्॥ १३

पुलस्त्यजी बोले— नारदजी! तत्पश्चात् शिवजीको अपने करतलमें भयंकर कपालके सट जानेसे बड़ी चिन्ता हुई। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं। उन्हें बड़ा संताप हुआ। उसके बाद कालिखके समान नीले रंगकी, रक्तवर्णके केशवाली भयंकर ब्रह्महत्या शंकरके निकट आयी। उस विकराल रूपवाली स्त्रीको आयी देखकर शंकरजीने पूछा—ओ भयावनी स्त्री! यह बतलाओ कि तुम कौन हो एवं किसलिये यहाँ आयी हो? इसपर उस अत्यन्त दारुण ब्रह्महत्याने उनसे कहा—मैं ब्रह्महत्या हूँ; हे त्रिलोचन! आप मुझे स्वीकार करें—इसलिये यहाँ आयी हूँ॥ १—४॥

ऐसा कहकर ब्रह्महत्या संतापसे जलते शरीरवाले त्रिशूलपाणि शिवके शरीरमें समा गयी। ब्रह्महत्यासे अभिभूत होकर श्रीशंकर बदरिकाश्रममें आये; किंतु वहाँ नर एवं नारायण ऋषियोंके उन्हें दर्शन नहीं हुए। धर्मके उन दोनों पुत्रोंको वहाँ न देखकर वे चिन्ता और शोकसे युक्त हो यमुनाजीमें स्नान करने गये; परंतु उसका जल भी सूख गया। यमुनाजीको निर्जल देखकर भगवान् शंकर सरस्वतीमें स्नान करने गये; किंतु वह भी लुप्त हो गयी॥ ५—८॥

फिर पुष्करारण्य, धर्मारण्य और सैन्धवारण्यमें जाकर उन्होंने बहुत समयतक स्नान किया। उसी प्रकार वे नैमिषारण्य तथा सिद्धपुरमें भी गये और स्नान किये; फिर भी उस भयंकर ब्रह्महत्याने उन्हें नहीं छोड़ा। जीमूतकेतु शंकरने अनेक नदियों, तीर्थों, आश्रमों एवं पवित्र देवायतनोंकी यात्रा की; पर योगी होनेपर भी वे पापसे मुक्ति न प्राप्त कर सके। तत्पश्चात् वे खिन्न होकर कुरुक्षेत्र गये। वहाँ जाकर उन्होंने गरुडध्वज चक्रपाणि (विष्णु)-को देखा और उन शङ्ख-चक्र-गदाधारी पुण्डरीकाक्ष (श्रीनारायण)-का दर्शनकर वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—॥ ९—१३॥

हर उवाच

नमस्ते देवतानाथ नमस्ते गरुडध्वज।
शङ्खचक्रगदापाणे वासुदेव नमोऽस्तु ते॥ १४
नमस्ते निर्गुणानन्त अप्रतर्क्याय वेधसे।
ज्ञानाज्ञान निरालम्ब सर्वालम्ब नमोऽस्तु ते॥ १५
रजोयुक्त नमस्तेऽस्तु ब्रह्ममूर्ते सनातन।
त्वया सर्वमिदं नाथ जगत्सृष्टं चराचरम्॥ १६
सत्त्वाधिष्ठित लोकेश विष्णुमूर्ते अधोक्षज।
प्रजापाल महाबाहो जनार्दन नमोऽस्तु ते॥ १७
तमोमूर्ते अहं ह्येष त्वदंशक्रोधसंभवः।
गुणाभियुक्त देवेश सर्वव्यापिन् नमोऽस्तु ते॥ १८
भूरियं त्वं जगन्नाथ जलाम्बरहुताशनः।
वायुर्बुद्धिर्मनश्चापि शर्वरी त्वं नमोऽस्तु ते॥ १९
धर्मो यज्ञस्तपः सत्यमहिंसा शौचमार्जवम्।
क्षमा दानं दया लक्ष्मीर्ब्रह्मचर्यं त्वमीश्वर॥ २०
त्वं साङ्गाश्चतुरो वेदास्त्वं वेद्यो वेदपारगः।
उपवेदा भवानीश सर्वोऽसि त्वं नमोऽस्तु ते॥ २१
नमो नमस्तेऽच्युत चक्रपाणे
नमोऽस्तु ते माधव मीनमूर्ते।
लोके भवान् कारुणिको मतो मे
त्रायस्व मां केशव पापबन्धात्॥ २२
ममाशुभं नाशय विग्रहस्थं
यद् ब्रह्महत्याऽभिभवं बभूव।
दग्धोऽस्मि नष्टोऽस्म्यसमीक्ष्यकारी
पुनीहि तीर्थोऽसि नमो नमस्ते॥ २३

पुलस्त्य उवाच

इत्थं स्तुतश्चक्रधरः शंकरेण महात्मना।
प्रोवाच भगवान् वाक्यं ब्रह्महत्याक्षयाय हि॥ २४

हरिरुवाच

महेश्वर शृणुष्वेमां मम वाचं कलस्वनाम्।
ब्रह्महत्याक्षयकरीं शुभदां पुण्यवर्धनीम्॥ २५
योऽसौ प्राङ्मण्डले पुण्ये मदंशप्रभवोऽव्ययः।
प्रयागे वसते नित्यं योगशायीति विश्रुतः॥ २६
चरणाद् दक्षिणात्तस्य विनिर्याता सरिद्वरा।
विश्रुता वरणेत्येव सर्वपापहरा शुभा॥ २७

भगवान् शंकर बोले— हे देवताओंके स्वामी! आपको नमस्कार है। गरुडध्वज! आपको प्रणाम है। शङ्ख-चक्र-गदाधारी वासुदेव! आपको नमस्कार है। निर्गुण, अनन्त एवं अतर्कनीय विधाता! आपको नमस्कार है। ज्ञानाज्ञानस्वरूप, स्वयं निराश्रय किंतु सबके आश्रय! आपको नमस्कार है। रजोगुण, सनातन, ब्रह्ममूर्ति! आपको नमस्कार है। नाथ! आपने इस सम्पूर्ण चराचर विश्वकी रचना की है। सत्त्वगुणके आश्रय लोकेश! विष्णुमूर्ति, अधोक्षज, प्रजापालक, महाबाहु, जनार्दन! आपको नमस्कार है। हे तमोमूर्ति! मैं आपके अंशभूत क्रोधसे उत्पन्न हूँ। हे महान् गुणवाले सर्वव्यापी देवेश! आपको नमस्कार है॥ १४—१८॥

जगन्नाथ! आप ही पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु, बुद्धि, मन एवं रात्रि हैं; आपको नमस्कार है। ईश्वर! आप ही धर्म, यज्ञ, तप, सत्य, अहिंसा, पवित्रता, सरलता, क्षमा, दान, दया, लक्ष्मी एवं ब्रह्मचर्य हैं। हे ईश! आप अङ्गोंसहित चतुर्वेदस्वरूप, वेद्य एवं वेदपारगामी हैं। आप ही उपवेद हैं तथा सभी कुछ आप ही हैं; आपको नमस्कार है। अच्युत! चक्रपाणि! आपको बारंबार नमस्कार है। मीनमूर्तिधारी (मत्स्यावतारी) माधव! आपको नमस्कार है। मैं आपको लोकमें दयालु मानता हूँ। केशव! आप मेरे शरीरमें स्थित ब्रह्महत्यासे उत्पन्न अशुभको नष्ट कर मुझे पाप-बन्धनसे मुक्त करें। बिना विचार किये कार्य करनेवाला मैं दग्ध एवं नष्ट हो गया हूँ। आप साक्षात् तीर्थ हैं, अतः आप मुझे पवित्र करें। आपको बारंबार नमस्कार है॥ १९—२३॥

पुलस्त्यजीने कहा— भगवान् शंकरद्वारा इस प्रकार स्तुत होनेपर चक्रधारी भगवान् विष्णु शंकरकी ब्रह्महत्याको नष्ट करनेके लिये उनसे वचन बोले—॥ २४॥

भगवान् विष्णु बोले— महेश्वर! आप ब्रह्महत्याको नष्ट करनेवाली मेरी मधुर वाणी सुनें। यह शुभप्रद एवं पुण्यको बढ़ानेवाली है।

यहाँसे पूर्व प्रयागमें मेरे अंशसे उत्पन्न 'योगशायी' नामसे विख्यात देवता हैं। वे अव्यय—विकाररहित पुरुष हैं। वहाँ उनका नित्य निवास है। वहींसे उनके दक्षिण चरणसे 'वरणा' नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ नदी निकली है। वह

सव्यादन्या द्वितीया च असिरित्येव विश्रुता।
ते उभे तु सरिच्छ्रेष्ठे लोकपूज्ये बभूवतुः॥ २८

ताभ्यां मध्ये तु यो देशस्तत्क्षेत्रं योगशायिनः।
त्रैलोक्यप्रवरं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम्।
न तादृशोऽस्ति गगने न भूम्यां न रसातले॥ २९
तत्रास्ति नगरी पुण्या ख्याता वाराणसी शुभा।
यस्यां हि भोगिनोऽपीश प्रयान्ति भवतो लयम्॥ ३०
विलासिनीनां रशनास्वनेन
श्रुतिस्वनैर्ब्राह्मणपुंगवानाम्।
शुचिस्वरत्वं गुरवो निशम्य
हास्याद्‌शासन्त मुहुर्मुहुस्तान्॥ ३१
व्रजत्सु योषित्सु चतुष्पथेषु
पदान्यलक्तारुणितानि दृष्ट्वा।
ययौ शशी विस्मयमेव यस्यां
किंस्वित् प्रयाता स्थलपद्मिनीयम्॥ ३२
तुङ्गानि यस्यां सुरमन्दिराणि
रुन्धन्ति चन्द्रं रजनीमुखेषु
दिवाऽपि सूर्यं पवनाप्लुताभि-
र्दीर्घाभिरेवं सुपताकिकाभिः॥ ३३
भृङ्गाश्च यस्यां शशिकान्तभित्तौ
प्रलोभ्यमानाः प्रतिबिम्बितेषु।
आलेख्ययोषिद्विमलाननाब्जे-
ष्वीयुर्भ्रमान्नैव च पुष्पकान्तरम्॥ ३४
पराभवश्चापि पराजितेषु
नरेषु संमोहनलेखनेन।
यस्यां जलक्रीडनसंगतासु
न स्त्रीषु शंभो गृहदीर्घिकासु॥ ३५
न चैव कश्चित् परमन्दिराणि
रुणद्धि शंभो सहसा ऋतेऽक्षान्।
न चाबलानां तरसा पराक्रमं
करोति यस्यां सुरतं हि मुक्त्वा॥ ३६
पाशग्रन्थिर्गजेन्द्राणां दानच्छेदो मदच्युतौ।
यस्यां मानमदौ पुंसां करिणां यौवनागमे॥ ३७

सब पापोंको हरनेवाली एवं पवित्र है। वहीं उनके वाम पादसे 'असि' नामसे प्रसिद्ध एक दूसरी नदी भी निकली है। ये दोनों नदियाँ श्रेष्ठ एवं लोकपूज्य हैं॥ २५—२८॥

उन दोनोंके मध्यका प्रदेश योगशायीका क्षेत्र है। वह तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा सभी पापोंसे छुड़ा देनेवाला तीर्थ है। उसके समान अन्य कोई तीर्थ आकाश, पृथ्वी एवं रसातलमें नहीं है। ईश! वहाँ पवित्र शुभप्रद विख्यात वाराणसी नगरी है, जिसमें भोगी लोग भी आपके लोकको प्राप्त करते हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि विलासिनी स्त्रियोंकी करधनीकी ध्वनिसे मिश्रित होकर मङ्गल स्वरका रूप धारण करती है। उस ध्वनिको सुनकर गुरुजन बारंबार उपहासपूर्वक उनका शासन करते हैं। जहाँ चौराहोंपर भ्रमण करनेवाली स्त्रियोंके अलक्त (महावर)-से अरुणित चरणोंको देखकर चन्द्रमाको स्थल-पद्मिनीके चलनेका भ्रम हो जाता है और जहाँ रात्रिका आरम्भ होनेपर ऊँचे ऊँचे देवमन्दिर चन्द्रमाका (मानो) अवरोध करते हैं एवं दिनमें पवनान्दोलित (हवासे फहरा रही) दीर्घ पताकाओंसे सूर्य भी छिपे रहते हैं॥ २९—३३॥

जिस (वाराणसी)-में चन्द्रकान्तमणिकी भित्तियोंपर प्रतिबिम्बित चित्रमें निर्मित स्त्रियोंके निर्मल मुख-कमलोंको देखकर भ्रमर उनपर भ्रमवश लुब्ध हो जाते हैं और दूसरे पुष्पोंकी ओर नहीं जाते। हे शम्भो! वहाँ सम्मोहनलेखनसे पराजित पुरुषोंमें तथा घरकी बावलियोंमें जलक्रीडाके लिये एकत्र हुई स्त्रियोंमें ही 'भ्रमण' देखा जाता है, अन्यत्र किसीको 'भ्रमण' (चक्कर रोग) नहीं होता[1]। द्यूतक्रीडा (जुआके खेल)-के पासोंके सिवाय अन्य कोई भी दूसरेके 'पाश' (बन्धन)-में नहीं डाला जाता तथा सुरत-समयके सिवाय स्त्रियोंके साथ कोई आवेगयुक्त पराक्रम नहीं करता। जहाँ हाथियोंके बन्धनमें ही पाशग्रन्थि (रस्सीकी गाँठ) होती है, उनकी मदच्युतिमें (मदके चूनेमें) ही 'दानच्छेद' (मदकी धाराका टूटना) एवं नर हाथियोंके यौवनागममें ही 'मान' और 'मद' होते हैं, अन्यत्र नहीं; तात्पर्य यह कि दान देनेकी धारा निरन्तर चलती रहती है और अभिमानी एवं मदवाले लोग नहीं हैं॥ ३४—३७॥

१. यहाँ श्लेष परिसंख्यालंकार है। परिसंख्यालंकार वहाँ होता है, जहाँ किसी वस्तुका एक स्थानसे निषेध करके उसका दूसरे स्थानमें स्थापन हो। ऐसा वर्णन आनन्दरामायणके अयोध्या-वर्णनमें, कादम्बरीमें, काशीखण्डमें काशी आदिके वर्णनमें भी प्राप्त होता है।

प्रियदोषाः सदा यस्यां कौशिका नेतरे जनाः ।
तारागणेऽकुलीनत्वं गद्ये वृत्तच्युतिर्विभो ॥ ३८

भूतिलुब्धा विलासिन्यो भुजंगपरिवारिताः ।
चन्द्रभूषितदेहाश्च यस्यां त्वमिव शंकर ॥ ३९

ईदृशायां सुरेशान वाराणस्यां महाश्रमे ।
वसते भगवाँल्लोलः सर्वपापहरो रविः ॥ ४०

दशाश्वमेधं यत्प्रोक्तं मदंशो यत्र केशवः ।
तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठ पापमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ४१

विभो! वहाँ उलूक ही सदा दोषा (रात्रि) प्रिय होते हैं, अन्य लोग दोषोंके प्रेमी नहीं हैं। तारागणोंमें ही अकुलीनता (पृथ्वीमें न छिपना) है, लोगोंमें कहीं अकुलीनताका नाम नहीं है; गद्यमें ही वृत्तच्युति (छन्दोभङ्ग) होती है, अन्यत्र वृत्त (चरित्र)-च्युति नहीं दीखती। शंकर! वहाँकी विलासिनियाँ आपके सदृश (भस्म) 'भूतिलुब्धा' 'भुजंग (सर्प)-परिवारिता' एवं 'चन्द्रभूषितदेहा' होती हैं। (यहाँ पक्षान्तरमें—विलासिनियोंके पक्षमें—संगतिके लिये 'भूति' पद 'भस्म' और 'धन'के अर्थमें, 'भुजङ्ग' पद 'सर्प' एवं 'जार'के अर्थमें तथा 'चन्द्र' पद 'चन्द्राभूषण'के अर्थमें प्रयुक्त हैं।) सुरेशान! इस प्रकारकी वाराणसीके महान् आश्रममें सभी पापोंको दूर करनेवाले भगवान् 'लोल' नामके सूर्य निवास करते हैं। सुरश्रेष्ठ! वहीं दशाश्वमेध नामका स्थान है तथा वहीं मेरे अंशस्वरूप केशव स्थित हैं। वहाँ जाकर आप पापसे छुटकारा प्राप्त करेंगे॥ ३८—४१॥

इत्येवमुक्तो गरुडध्वजेन
वृषध्वजस्तं शिरसा प्रणम्य ।
जगाम वेगाद् गरुडो यथाऽसौ
वाराणसीं पापविमोचनाय ॥ ४२
गत्वा सुपुण्यां नगरीं सुतीर्थां
दृष्ट्वा च लोलं सदशाश्वमेधम् ।
स्नात्वा च तीर्थेषु विमुक्तपापः
स केशवं द्रष्टुमुपाजगाम ॥ ४३
केशवं शंकरो दृष्ट्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत् ।
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश ब्रह्महत्या क्षयं गता ॥ ४४
नेदं कपालं देवेश मद्धस्तं परिमुञ्चति ।
कारणं वेद्मि न च तदेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥ ४५

भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर शिवजीने उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। फिर वे पाप छुड़ानेके लिये गरुड़के समान तेज वेगसे वाराणसी गये। वहाँ परमपवित्र तथा तीर्थभूत नगरीमें जाकर दशाश्वमेधके साथ 'असी' स्थानमें स्थित भगवान् लोलार्कका[1] दर्शन किया तथा (वहाँके) तीर्थोंमें स्नान कर और पाप-मुक्त होकर वे (वरुणासंगमपर) केशवका दर्शन करने गये। उन्होंने केशवका दर्शन करके प्रणामकर कहा—हृषीकेश! आपके प्रसादसे ब्रह्महत्या तो नष्ट हो गयी, पर देवेश! यह कपाल मेरे हाथको नहीं छोड़ रहा है। इसका कारण मैं नहीं जानता। आप ही मुझे यह बतला सकते हैं॥ ४२—४५॥

पुलस्त्य उवाच

महादेववचः श्रुत्वा केशवो वाक्यमब्रवीत् ।
विद्यते कारणं रुद्र तत्सर्वं कथयामि ते ॥ ४६
योऽसौ ममाग्रतो दिव्यो ह्रदः पद्मोत्पलैर्युतः ।
एष तीर्थवरः पुण्यो देवगन्धर्वपूजितः ॥ ४७
एतस्मिन्प्रवरे तीर्थे स्नानं शंभो समाचर ।
स्नातमात्रस्य चाद्यैव कपालं परिमोक्ष्यति ॥ ४८

पुलस्त्यजी बोले—महादेवका वचन सुनकर केशवने यह वाक्य कहा—रुद्र! इसके समस्त कारणोंको मैं तुम्हें बतलाता हूँ। मेरे सामने कमलोंसे भरा यह जो दिव्य सरोवर है, यह पवित्र तथा तीर्थोंमें श्रेष्ठ है एवं देवताओं तथा गन्धर्वोंसे पूजित है। शिवजी! आप इस परम श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करें। स्नान करनेमात्रसे आज ही यह कपाल (आपके हाथको) छोड़ देगा। इससे रुद्र! संसारमें आप

[1] लोलार्कके सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिये देखिये सूर्याङ्कके ३०८वें से ३१०वें पृष्ठतक प्रकाशित विवरण।

ततः कपाली लोके च ख्यातो रुद्र भविष्यसि।
कपालमोचनंत्येवं तीर्थं चेदं भविष्यति ॥ ४९

कपाली' नामसे प्रसिद्ध होंगे तथा यह तीर्थ भी कपालमोचन नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ४६—४९॥

पुलस्त्य उवाच

एवमुक्तः सुरेशेन केशवेन महेश्वरः।
कपालमोचने सस्नौ वेदोक्तविधिना मुने॥ ५०
स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य
परिच्युतं हस्ततलात् कपालम्।
नाम्ना बभूवाथ कपालमोचनं
तत्तीर्थवर्यं भगवत्प्रसादात्॥ ५१

पुलस्त्यजी बोले—मुने! सुरेश्वर केशवके ऐसा कहनेपर महेश्वरने कपालमोचनतीर्थमें वेदोक्त विधिसे स्नान किया। उस तीर्थमें स्नान करते ही उनके हाथसे ब्रह्म-कपाल गिर गया। तभीसे भगवान्‌की कृपासे इस उत्तम तीर्थका नाम 'कपालमोचन' पड़ा[1]॥ ५०-५१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तीसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

विजयाकी मौसी सतीसे दक्ष-यज्ञकी वार्ता, सतीका प्राण-त्याग; शिवका क्रोध एवं उनके गणोंद्वारा दक्ष-यज्ञका विध्वंस

पुलस्त्य उवाच

एवं कपाली संजातो देवर्षे भगवान् हरः।
अनेन कारणेनासौ दक्षेण न निमन्त्रितः॥ १
कपालिजायेति सतीं विज्ञायाथ प्रजापतिः।
यज्ञे चार्हापि दुहिता दक्षेण न निमन्त्रिता॥ २
एतस्मिन्नन्तरे देवीं द्रष्टुं गौतमनन्दिनी।
जया जगाम शैलेन्द्रं मन्दरं चारुकन्दरम्॥ ३
तामागतां सती दृष्ट्वा जयामेकामुवाच ह।
किमर्थं विजया नागाज्जयन्ती चापराजिता॥ ४

पुलस्त्यजी बोले—देवर्षे! भगवान् शिव इस प्रकार कपाली नामसे ख्यात हुए और इसी कारण वे दक्षके द्वारा निमन्त्रित नहीं हुए। प्रजापति दक्षने सतीको अपनी पुत्री होनेपर भी कपालीकी पत्नी समझकर निमन्त्रणके योग्य न मानकर उन्हें यज्ञमें नहीं बुलाया। इसी बीच देवीका दर्शन करनेके लिये गौतम-पुत्री जया सुन्दर गुफावाले पर्वतश्रेष्ठ मन्दरपर गयी। जयाको वहाँ अकेली आयी देखकर सती बोलीं—विजये! जयन्ती और अपराजिता यहाँ क्यों नहीं आयीं?॥ १—४॥

सा देव्या वचनं श्रुत्वा उवाच परमेश्वरीम्।
गता निमन्त्रिताः सर्वा मखं मातामहस्य ताः॥ ५
समं पित्रा गौतमेन मात्रा चैवाप्यहल्यया।
अहं समागता द्रष्टुं त्वां तत्र गमनोत्सुका॥ ६
किं त्वं न व्रजसे तत्र तथा देवो महेश्वरः।
नामन्त्रितासि तातेन उताहोस्विद् व्रजिष्यसि॥ ७
गतास्तु ऋषयः सर्वे ऋषिपत्न्यः सुरास्तथा।
मातृष्वसः शशाङ्कश्च सपत्नीको गतः क्रतुम्॥ ८
चतुर्दशसु लोकेषु जन्तवो ये चराचराः।
निमन्त्रिताः क्रतौ सर्वे किं नासि त्वं निमन्त्रिता॥ ९

देवीके वचनको सुनकर विजयाने उन सती परमेश्वरीसे कहा—अपने पिता गौतम और माता अहल्याके साथ वे मातामहके सत्र (यज्ञ)-में निमन्त्रित होकर चली गयी हैं। वहाँ जानेके लिये उत्सुक मैं आपसे मिलने आयी हूँ। क्या आप तथा भगवान् शिव वहाँ नहीं जा रहे हैं? क्या पिताजीने आपको नहीं बुलाया है? अथवा आप वहाँ जायँगी? सभी ऋषि, ऋषि-पत्नियाँ तथा देवगण वहाँ गये हैं। हे मातृष्वसः (मौसी)! पत्नीके सहित शशाङ्क भी उस यज्ञमें गये हैं। चौदहों लोकोंके समस्त चराचर प्राणी उस यज्ञमें निमन्त्रित हुए हैं। क्या आप निमन्त्रित नहीं हैं?॥ ५—९॥

[1] कपालमोचन तीर्थ काशीके परिसरमें बकरियाकुण्डसे १ मीलपर स्थित है। इस सम्बन्धमें द्रष्टव्य तीर्थाङ्क पृष्ठ १३४।

पुलस्त्य उवाच

जयायास्तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातसमं सती।
मन्युनाऽभिप्लुता ब्रह्मन् पञ्चत्वमगमत् ततः॥ १०
जया मृतां सतीं दृष्ट्वा क्रोधशोकपरिप्लुता।
मुञ्चन्ती वारि नेत्राभ्यां सस्वरं विललाप ह॥ ११
आक्रन्दितध्वनिं श्रुत्वा शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
आः किमेतदितीत्युक्त्वा जयाभ्याशमुपागतः॥ १२
आगतो ददृशे देवीं लतामिव वनस्पतेः।
कृत्तां परशुना भूमौ श्लथाङ्गीं पतितां सतीम्॥ १३
देवीं निपतितां दृष्ट्वा जयां पप्रच्छ शंकरः।
किमियं पतिता भूमौ निकृत्तेव लता सती॥ १४
सा शंकरवचः श्रुत्वा जया वचनमब्रवीत्।
श्रुत्वा मखस्थां दक्षस्य भगिन्यः पतिभिः सह॥ १५
आदित्याद्यांस्त्रिलोकेश समं शक्रादिभिः सुरैः।
मातृष्वसा विपन्नेयमन्तर्दुःखेन दह्यती॥ १६

पुलस्त्य उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो रौद्रं रुद्रः क्रोधाप्लुतो बभौ।
क्रुद्धस्य सर्वगात्रेभ्यो निश्चेरुः सहसार्चिषः॥ १७
ततः क्रोधात् त्रिनेत्रस्य गात्ररोमोद्भवा मुने।
गणाः सिंहमुखा जाता वीरभद्रपुरोगमाः॥ १८
गणैः परिवृतस्तस्मान्मन्दराद्धिमसाह्वयम्।
गतः कनखलं तस्माद् यत्र दक्षोऽयजत् क्रतुम्॥ १९
ततो गणानामधिपो वीरभद्रो महाबलः।
दिशि प्रतीच्युत्तरायां तस्थौ शूलधरो मुने॥ २०
जया क्रोधाद् गदां गृह्य पूर्वदक्षिणतः स्थिता।
मध्ये त्रिशूलधृक् शर्वस्तस्थौ क्रोधान्महामुने॥ २१
मृगारिवदनं दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः।
ऋषयो यक्षगन्धर्वाः किमिदं त्वित्यचिन्तयन्॥ २२
ततस्तु धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान्।
द्वारपालस्तदा धर्मो वीरभद्रमुपाद्रवत्॥ २३
तमापतन्तं सहसा धर्मं दृष्ट्वा गणेश्वरः।
करेणैकेन जग्राह त्रिशूलं वह्निसन्निभम्॥ २४
कार्मुकं च द्वितीयेन तृतीयेनाथ मार्गणान्।
चतुर्थेन गदां गृह्य धर्ममभ्यद्रवद् गणः॥ २५

पुलस्त्यजी बोले—ब्रह्मन्! (नारदजी!) वज्रपातके समान जयाकी उस बातको सुनकर क्रोध एवं दुःखसे भरकर सतीने प्राण छोड़ दिये। सतीको मरी हुई देखकर क्रोध एवं दुःखसे भरी जया आँसू बहाते हुए जोर-जोरसे विलाप करने लगी। रोनेकी करुणध्वनि सुनकर शूलपाणि भगवान् शिव 'अरे क्या हुआ, क्या हुआ' ऐसा कहकर उसके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने फरसेसे कटी वृक्षपर चढ़ी लताकी तरह सतीको भूमिपर मरी पड़ी देखा तो जयासे पूछा—ये सती कटी लताकी तरह भूमिपर क्यों पड़ी हुई हैं? शिवके वचनको सुनकर जया बोली—हे त्रिलोकेश्वर! दक्षके यज्ञमें अपने अपने पतिके साथ बहनोंका एवं इन्द्र आदि देवोंके साथ आदित्य आदिका निमन्त्रित होकर उपस्थित होना सुनकर आन्तरिक दुःख (की ज्वाला)-से दग्ध हो गयीं। इससे मेरी माताकी बहन (सती)-के प्राण निकल गये॥ १०—१६॥

पुलस्त्यजीने कहा—जयाके इस भयंकर (अमङ्गल) वचनको सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उनके शरीरसे सहसा अग्निकी तेज ज्वालाएँ निकलने लगीं। मुने! इसके बाद क्रोधके कारण त्रिनेत्र भगवान् शिवके शरीरके लोमोंसे सिंहके समान मुखवाले वीरभद्र आदि बहुत-से रुद्रगण उत्पन्न हो गये। अपने गणोंसे घिरे भगवान् शिव मंदरपर्वतसे हिमालयपर गये और वहाँसे कनखल चले गये, जहाँ दक्ष यज्ञ कर रहे थे। इसके बाद सभी गणोंमें अग्रणी महाबली वीरभद्र शूल धारण किये पश्चिमोत्तर (वायव्य) दिशामें चले गये॥ १७—२०॥

महामुने! क्रोधसे गदा लेकर जया पूर्व दक्षिण दिशा (अग्निकोण) में खड़ी हो गयी और मध्यमें क्रोधसे भरे त्रिशूल लिये शंकर खड़े हो गये। सिंहवदन (वीरभद्र)-को देखकर इन्द्र आदि देवता, ऋषि, यक्ष एवं गन्धर्वलोग सोचने लगे कि यह क्या है? तदनन्तर द्वारपाल धर्म धनुष एवं सर्पके समान बाणोंको लेकर वीरभद्रकी ओर दौड़े। सहसा धर्मको आता हुआ देखकर गणेश्वर एक हाथमें अग्निके सदृश त्रिशूल, दूसरे हाथमें धनुष, तीसरे हाथमें बाण और चौथे हाथमें गदा लेकर उनकी ओर दौड़ पड़े॥ २१—२५॥

ततश्चतुर्भुजं दृष्ट्वा धर्मराजो गणेश्वरम्।
सस्थावष्टभुजो भूत्वा नानायुधधरोऽव्ययः ॥ २६

खड्गचर्मगदाप्रासपरश्वधवराङ्कुशैः ।
चापमार्गणभृत्तस्थौ हन्तुकामो गणेश्वरम् ॥ २७

गणेश्वरोऽपि संक्रुद्धो हन्तुं धर्मं सनातनम्।
ववर्ष मार्गणांस्तीक्ष्णान् यथा प्रावृषि तोयदः ॥ २८

तावन्योन्यं महात्मानौ शरचापधरौ मुने।
रुधिरारुणसिक्ताङ्गौ किंशुकाविव रेजतुः ॥ २९

ततो वरास्त्रैर्गणनायकेन
जितः स धर्मः तरसा प्रसह्य।
पराङ्मुखोऽभूद्विमना मुनीन्द्र
स वीरभद्रः प्रविवेश यज्ञम् ॥ ३०

यज्ञवाटं प्रविष्टं तं वीरभद्रं गणेश्वरम्।
दृष्ट्वा तु सहसा देवा उत्तस्थुः सायुधा मुने ॥ ३१
वसवोऽष्टौ महाभागा ग्रहा नव सुदारुणाः।
इन्द्राद्या द्वादशादित्या रुद्रास्त्वेकादशैव हि ॥ ३२
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च सिद्धगन्धर्वपन्नगाः।
यक्षाः किंपुरुषाश्चैव खगाश्चक्रधरास्तथा ॥ ३३
राजा वैवस्वताद् वंशाद् धर्मकीर्तिस्तु विश्रुतः।
सोमवंशोद्भवश्चोग्रो भोजकीर्तिर्महाभुजः ॥ ३४
दितिजा दानवाश्चान्ये येऽन्ये तत्र समागताः।
ते सर्वेऽभ्यद्रवन् रौद्रं वीरभद्रमुदायुधाः ॥ ३५

तमापतन्त एवाशु चापबाणधरो गणः।
अभिदुद्राव वेगेन सर्वानेव शरोत्करैः ॥ ३६

ते शस्त्रवर्षमतुलं गणेशाय समुत्सृजन्।
गणेशोऽपि वरास्त्रैस्तान् प्रचिच्छेद बिभेद च ॥ ३७

शरैः शस्त्रैश्च सततं वध्यमाना महात्मना।
वीरभद्रेण देवाद्या अवहारमकुर्वत ॥ ३८

ततो विवेश गणपो यज्ञमध्यं सुविस्तृतम्।
जुह्वाना ऋषयो यत्र हवींषि प्रवितन्वते ॥ ३९

इसके बाद धर्मराजने चतुर्भुज गणेश्वरको देख और नानाप्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित हो तथा आठ भुजाओंको धारणकर उनका सामना किया और गणोंके स्वामी वीरभद्रपर प्रहार करनेकी इच्छासे वे अपने हाथोंमें ढाल, तलवार, गदा, भाला, फरसा, अंकुश, धनुष एवं बाण लेकर खड़े हो गये। गणेश्वर वीरभद्र भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर धर्मको मारनेके लिये वर्षाकालिक मेघके सदृश उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे। मुने! धनुषको लिये रुधिरसे लथपथ (अतएव) लाल शरीरवाले वे दोनों महात्मा पलाश-पुष्पके समान दीखने लगे॥ २६—२९॥

मुनिराज! इसके बाद श्रेष्ठ शस्त्रास्त्रोंके कारण वीरभद्रसे पराजित होकर धर्मराज खिन्न होकर पीछे हट गये। इधर वीरभद्र यज्ञशालामें घुस गये। मुने! गणेश्वर वीरभद्रको यज्ञमण्डपमें घुसते देखकर सहसा सभी देवता अस्त्र-शस्त्र लेकर उठ खड़े हुए। महाभाग आठों वसु, अत्यन्त दारुण नवों ग्रह, इन्द्र आदि दिक्पाल, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, विश्वेदेव, साध्यगण, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग, यक्ष, किंपुरुष, महाबाहु, विहंगम, चक्रधर, वैवस्वत-वंशीय प्रसिद्ध राजा धर्मकीर्ति, चन्द्रवंशीय महाबाहु, उग्र बलशाली राजा भोजकीर्ति, दैत्य-दानव तथा वहाँ आये हुए अन्य सभी लोग आयुध लेकर रौद्र वीरभद्रकी ओर दौड़ पड़े॥ ३०—३५॥

धनुष-बाण धारण किये गणोंने उन देवताओंके आते ही उनपर वेगपूर्वक शस्त्रोंद्वारा आक्रमण कर दिया। इधर देवताओंने भी वीरभद्रके ऊपर अतुलनीय बाणोंकी वर्षा की। गणनायक वीरभद्रने देवताओंके अस्त्रोंको छिन्न-भिन्न कर डाला। महात्मा वीरभद्रद्वारा विविध बाणों और अस्त्रोंसे आहत होकर देवता आदि रणभूमिसे भाग चले। तब गणपति वीरभद्र सुविस्तृत यज्ञके मध्यमें प्रविष्ट हुए जहाँ मुनिगण यज्ञकुण्डमें हविकी आहुति दे रहे थे॥ ३६—३९॥

ततो महर्षयो दृष्ट्वा मृगेन्द्रवदनं गणम्।
भीता होत्रं परित्यज्य जग्मुः शरणमच्युतम्॥ ४०

त्रस्तांश्चक्रभृद् दृष्ट्वा महर्षीस्त्रस्तमानसान्।
न भेतव्यमितीत्युक्त्वा समुत्तस्थौ वरायुधः॥ ४१

समानम्य ततः शार्ङ्गं शरानग्निशिखोपमान्।
मुमोच वीरभद्राय कायावरणदारणान्॥ ४२

ते तस्य कायमासाद्य अमोघा वै हरेः शराः।
निपेतुर्भुवि भग्नाशा नास्तिकादिव याचकाः॥ ४३

शरांस्त्वमोघान्मोघत्वमापन्नान्वीक्ष्य केशवः।
दिव्यैरस्त्रैर्वीरभद्रं प्रच्छादयितुमुद्यतः॥ ४४

तानस्त्रान् वासुदेवेन प्रक्षिप्तान् गणनायकः।
वारयामास शूलेन गदया मार्गणैस्तथा॥ ४५

दृष्ट्वा विपन्नान्यस्त्राणि गदां चिक्षेप माधवः।
त्रिशूलेन समाहत्य पातयामास भूतले॥ ४६

मुशलं वीरभद्राय प्रचिक्षेप हलायुधः।
लाङ्गलं च गणेशोऽपि गदया प्रत्यवारयत्॥ ४७

मुशलं सगदं दृष्ट्वा लाङ्गलं च निवारितम्।
वीरभद्राय चिक्षेप चक्रं क्रोधात् खगध्वजः॥ ४८

समापतन्तं शतसूर्यकल्पं
सुदर्शनं वीक्ष्य गणेश्वरस्तु।
शूलं परित्यज्य जग्राह चक्रं
यथा मधुं मीनवपुः सुरेन्द्रः॥ ४९

चक्रे निगीर्णे गणनायकेन
क्रोधातिरक्तोऽसितचारुनेत्रः।
मुरारिरभ्येत्य गणाधिपेन्द्र-
मुत्क्षिप्य वेगाद् भुवि निष्पिपेष॥ ५०

हरिबाहूरुवेगेन विनिष्पिष्टस्य भूतले।
सहितं रुधिरोद्गारैर्मुखाच्चक्रं विनिर्गतम्॥ ५१

ततो निःसृतमालोक्य चक्रं कैटभनाशनः।
समादाय हृषीकेशो वीरभद्रं मुमोच ह॥ ५२

हृषीकेशेन मुक्तस्तु वीरभद्रो जटाधरम्।
गत्वा निवेदयामास वासुदेवात्पराजयम्॥ ५३

ततो जटाधरो दृष्ट्वा गणेशं शोणिताप्लुतम्।
निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोधं चक्रे तदाव्ययः॥ ५४

तब वे महर्षि सिंहमुख वीरभद्रको देखकर भयसे हवन छोड़कर विष्णुकी शरणमें चले गये। चक्रधारी विष्णुने भयभीत महर्षियोंको दुःखी देखकर 'डरो मत' ऐसा कहकर अपने श्रेष्ठ अस्त्र लेकर खड़े हो गये और अपने शार्ङ्ग धनुषको चढ़ाकर वीरभद्रके ऊपर शरीरको विदीर्ण करनेवाले अग्निशिखाके तुल्य बाणोंकी वर्षा करने लगे। पर श्रीहरिके वे अमोघ (सफल) बाण वीरभद्रके शरीरपर पहुँचकर भी पृथ्वीपर ऐसे (यों ही व्यर्थ होकर) गिर पड़े, जैसे कि याचक नास्तिकके पाससे विफल—निराश होकर लौट जाते हैं॥ ४०—४३॥

अपने (अव्यर्थ) बाणोंको व्यर्थ होते देखकर भगवान् विष्णु पुनः वीरभद्रको दिव्य अस्त्रोंसे ढक देनेके लिये तैयार हो गये। वासुदेवके द्वारा प्रयुक्त उन बाणोंको गणश्रेष्ठ वीरभद्रने शूल, गदा और बाणोंसे रोककर विफल कर दिया। भगवान् विष्णुने अपने अस्त्रोंको नष्ट होते देखकर उसपर कौमोदकी गदा फेंकी। किंतु वीरभद्रने उसे भी अपने त्रिशूलसे काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। हलायुधने वीरभद्रकी ओर मूसल और हल फेंका जिसे वीरभद्रने गदासे निवारित कर दिया। गदाके सहित मूसल और हलको नष्ट हुआ देखकर गरुडध्वज विष्णुने क्रोधसे वीरभद्रके ऊपर सुदर्शनचक्र चला दिया॥ ४४—४८॥

गणेश्वर वीरभद्रने सैकड़ों सूर्यके सदृश सुदर्शन चक्रको अपनी ओर आते देखा तो शूलको छोड़कर चक्रको वह ऐसे निगल लिया जैसे मीनशरीरधारी विष्णु मधुदैत्यको निगल गये थे। वीरभद्रद्वारा चक्रके निगल लिये जानेपर विष्णुके सुन्दर काले नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वे उसके निकट पहुँच गये और उसे वेगसे उठा लिया तथा पृथ्वीपर पटककर उसे पीसने लगे। भगवान् विष्णुकी भुजाओं और जाँघोंके प्रबल वेगसे भूतलमें पटके गये वीरभद्रके मुखसे रुधिरके फौहारेके साथ चक्र बाहर निकल आया। चक्रको मुखसे निकला देखकर भगवान् विष्णुने उसे ले लिया और वीरभद्रको छोड़ दिया॥ ४९—५२॥

भगवान् विष्णुद्वारा छोड़ दिये जानेपर वीरभद्रने जटाधारी शिवके निकट जाकर वासुदेवसे हुई अपनी पराजयका वर्णन किया। फिर वीरभद्रको खूनसे लथपथ तथा सर्पके सदृश निःश्वास लेते देख अव्यय

ततः क्रोधाभिभूतेन वीरभद्रोऽथ शंभुना।
पूर्वोद्दिष्टे तदा स्थाने सायुधस्तु निवेशितः॥ ५५
वीरभद्रमथादिश्य भद्रकालीं च शंकरः।
विवेश क्रोधताम्राक्षो यज्ञवाटं त्रिशूलभृत्॥ ५६
ततस्तु देवप्रवरे जटाधरे
त्रिशूलपाणौ त्रिपुरान्तकारिणि।
दक्षस्य यज्ञं विशति क्षयंकरे
जातो ऋषीणां प्रवरो हि साध्वसः॥ ५७

जटाधर (शंकर) ने क्रोध किया। इसके बाद क्रोधसे तिलमिलाये शंकरने अस्त्रसहित वीरभद्रको पहले बतलाये स्थानपर बैठा दिया। वे त्रिशूलधर शंकर वीरभद्र तथा भद्रकालीको आदेश देकर क्रोधसे लाल आँखें किये यज्ञमण्डपमें प्रविष्ट हुए। त्रिपुर नामक राक्षसको मारनेवाले उन त्रिशूलपाणि त्रिपुरारि देवश्रेष्ठ जटाधरके दक्ष-यज्ञमें प्रवेश करते ही ऋषियोंमें भारी भय उत्पन्न हो गया॥ ५३-५७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौथा अध्याय समाप्त हुआ॥ ४॥

दक्ष-यज्ञका विध्वंस, देवताओंका प्रताड़न, शंकरके कालरूप और राश्यादि रूपोंमें स्वरूप-कथन

पुलस्त्य उवाच

जटाधरं हरिर्दृष्ट्वा क्रोधादारक्तलोचनम्।
तस्मात् स्थानादपाक्रम्य कुब्जाग्रेऽन्तर्हितः स्थितः॥ १
वसवोऽष्टौ हरं दृष्ट्वा सुस्रुवुर्वेगतो मुने।
सा तु जाता सरिच्छ्रेष्ठा सीता नाम सरस्वती॥ २
एकादश तथा रुद्रास्त्रिनेत्रा वृषकेतना।
कान्दिशीका लयं जग्मुः समभ्येत्यैव शंकरम्॥ ३
विश्वेऽश्विनौ च साध्याश्च मरुतोऽनलभास्कराः।
समासाद्य पुरोडाशं भक्षयन्तो महामुने॥ ४
चन्द्रः सममृक्षगणैर्निशां समुपदर्शयन्।
उत्पत्याकाश गगनं स्वमधिष्ठानमास्थितः॥ ५
कश्यपाद्याश्च ऋषयो जपन्तः शतरुद्रियम्।
पुष्पाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रणताः संस्थिता मुने॥ ६
असकृद् दक्षदयिता दृष्ट्वा रुद्रं बलाधिकम्।
शक्रादीनां सुरेशानां कृपणं विललाप ह॥ ७
ततः क्रोधाभिभूतेन शंकरेण महात्मना।
तलप्रहारैरमरा बहवो विनिपातिताः॥ ८

पुलस्त्यजी बोले—जटाधारी भगवान् शिवको क्रोधसे आँखें लाल किये देखकर भगवान् विष्णु उस स्थानसे हटकर कुब्जाग्र (ऋषिकेश)-में छिप गये। मुने! क्रुद्ध शिवको देखकर आठ वसु तेजीसे पिघलने लगे। इस कारण वहाँ सीता नामकी श्रेष्ठ नदी प्रवाहित हुई। वहाँ पूजाके लिये स्थित त्रिनेत्रधारी ग्यारहों रुद्र भयके मारे इधर-उधर भागते हुए शंकरके निकट आकर उनमें ही लीन हो गये। महामुनि नारद! शंकरको निकट आते देख विश्वेदेवगण, अश्विनीकुमार, साध्यवृन्द, वायु, अग्नि एवं सूर्य पुरोडाश खाते हुए भाग गये॥ १—४॥

फिर तो ताराओंके साथ चन्द्रमा रात्रिको प्रकाशित करते हुए आकाशमें ऊपर जाकर अपने स्थानपर स्थित हो गये। इधर कश्यप आदि ऋषि शतरुद्रिय (मन्त्र)-का जप करते हुए अञ्जलिमें पुष्प लेकर विनीतभावसे खड़े हो गये। इन्द्रादि सभी देवताओंसे अधिक बली रुद्रको देखकर दक्ष-पत्नी अत्यन्त दीन होकर बार-बार करुण विलाप करने लगी। इधर क्रुद्ध भगवान् शंकरने थप्पड़ोंके प्रहारसे अनेक देवताओंको मार गिराया॥ ५—८॥

पादप्रहारैरपरे त्रिशूलेनापरे मुने।
दृष्ट्यग्निना तथैवान्ये देवाद्या प्रलयीकृता ॥ ९

ततः पूषा हरं वीक्ष्य विनिघ्नन्तं सुरासुरान्।
क्रोधाद् बाहू प्रसार्याथ प्रदुद्राव महेश्वरम्॥ १०

तमापतन्तं भगवान् संनिरीक्ष्य त्रिलोचनः।
बाहुभ्यां प्रतिजग्राह करेणैकेन शंकरः॥ ११

कराभ्यां प्रगृहीतस्य शंभुनांशुमतोऽपि हि।
कराङ्गुलिभ्यो निश्चेरुरसृग्धाराः समन्ततः॥ १२

ततो वेगेन महता अंशुमन्तं दिवाकरम्।
भ्रामयामास सततं सिंहो मृगशिशुं यथा॥ १३

भ्रामितस्यातिवेगेन नारदांशुमतोऽपि हि।
भुजौ ह्रस्वत्वमापन्नौ त्रुटितस्नायुबन्धनौ॥ १४

रुधिराप्लुतसर्वाङ्गमंशुमन्तं महेश्वरः।
संनिरीक्ष्योत्ससर्जैनमन्यतोऽभिजगाम ह॥ १५

ततस्तु पूषा विहसन् दशनानि विदर्शयन्।
प्रोवाचैह्येहि कापालिन् पुनः पुनरथेश्वरम्॥ १६

ततः क्रोधाभिभूतेन पूष्णो वेगेन शंभुना।
मुष्टिनाहत्य दशनाः पातिता धरणीतले॥ १७

भग्नदन्तस्तथा पूषा शोणिताभिप्लुताननः।
पपात भुवि निःसंज्ञो वज्राहत इवाचलः॥ १८

भगोऽभिवीक्ष्य पूषाणं पतितं रुधिरोक्षितम्।
नेत्राभ्यां घोररूपाभ्यां वृषध्वजमवैक्षत॥ १९

त्रिपुरघ्नस्ततः क्रुद्धस्तलेनाहत्य चक्षुषी।
निपातयामास भुवि क्षोभयन् सर्वदेवताः॥ २०

ततो दिवाकराः सर्वे पुरस्कृत्य शतक्रतुम्।
मरुद्भिश्च हुताशैश्च भयाज्जग्मुर्दिशो दश॥ २१

प्रतियातेषु देवेषु प्रह्लादाद्या दितीश्वराः।
नमस्कृत्य ततः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयो मुने॥ २२

ततस्तं यज्ञवाटं तु शंकरो घोरचक्षुषा।
ददर्श दग्धुं कोपेन सर्वांश्चैव सुरासुरान्॥ २३

ततो निलिलियरे वीराः प्रणेमुर्दुद्रुवुस्तथा।
भयादन्ये हरं दृष्ट्वा गता वैवस्वतक्षयम्॥ २४

मुने! शंकरने इसी प्रकार कुछ देवताओंको पैरोंके प्रहारसे, कुछको त्रिशूलसे और कुछको अपने तृतीय नेत्रकी अग्निद्वारा नष्ट कर दिया। उसके बाद देवों एवं असुरोंका संहार करते हुए शंकरको देखकर पूषादेवता (अन्यतम सूर्य) क्रोधपूर्वक दोनों बाहोंको फैलाकर शिवजीकी ओर दौड़े। त्रिलोचन शिवने उन्हें अपनी ओर आते देख एक ही हाथसे उनकी दोनों भुजाओंको पकड़ लिया। शिवद्वारा सूर्यके पकड़ी गयी दोनों भुजाओंकी अङ्गुलियोंसे चारों ओर रक्तकी धारा प्रवाहित होने लगी॥ ९-१२॥

फिर भगवान् शिव दिवाकर सूर्यदेवको अत्यन्त वेगसे ऐसे घुमाने लगे जैसे सिंह हिरण-शावकको घुमाता (दौड़ाता) है। नारदजी! अत्यन्त वेगसे घुमाये गये सूर्यकी भुजाओंके स्नायुबन्ध टूट गये और वे (स्नायुएँ) बहुत छोटी—नष्टप्राय हो गयीं। सूर्यके सभी अङ्गोंको रक्तसे लथपथ देखकर उन्हें छोड़कर शंकरजी दूसरी ओर चले गये। उसी समय हँसते एवं दाँत दिखलाते हुए पूषा देवता (बारह आदित्योंमेंसे एक सूर्य) कहने लगे—ओ कपालिन्! आओ, इधर आओ॥ १३—१६॥

इसपर क्रुद्ध रुद्रने वेगपूर्वक मुक्केसे मारकर पूषाके दाँतोंको धरतीपर गिरा दिया। इस प्रकार दाँत टूटने एवं रक्तसे लथपथ होकर पूषा देवता वज्रसे नष्ट हुए पर्वतके समान बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस प्रकार गिरे हुए पूषाको रुधिरसे लथपथ देखकर भग देवता (तृतीय सूर्यभेद) भयंकर नेत्रोंसे शिवजीको देखने लगे। इससे क्रुद्ध त्रिपुरान्तक शिवने सभी देवताओंको क्षुब्ध करते हुए हथेलीसे पीटकर भगकी दोनों आँखें पृथ्वीपर गिरा दीं॥ १७—२०॥

फिर क्या था? सभी दसों सूर्य इन्द्रको आगे कर मरुद्गणों तथा अग्नियोंके साथ भयसे दसों दिशाओंमें भाग गये। मुने! देवताओंके चले जानेपर प्रह्लाद आदि दैत्य महेश्वरको प्रणामकर अञ्जलि बाँधकर खड़े हो गये। इसके बाद शंकर उस यज्ञमण्डपको तथा सभी देवासुरोंको दग्ध करनेके लिये क्रोधपूर्ण घोर दृष्टिसे देखने लगे। इधर दूसरे वीर महादेवको देखकर भयसे जहाँ-तहाँ छिप गये, कुछ लोग प्रणाम करने लगे, कुछ भाग गये और कुछ तो भयसे ही सीधे यमपुरी पहुँच गये॥ २१—२४॥

त्र्योऽग्नयस्त्रिभिर्नेत्रैर्दुःसहं समवैक्षत।
दृष्टमात्रास्त्रिनेत्रेण भस्मीभूताभवन् क्षणात्॥ २५

अग्नौ प्रनष्टे यज्ञोऽपि भूत्वा दिव्यवपुर्मृगः।
दुद्राव विक्लवगतिर्दक्षिणासहितोऽम्बरे॥ २६

तमेवानुससारेशश्चापमानम्य वेगवान्
शरं पाशुपतं कृत्वा कालरूपी महेश्वरः॥ २७

अर्द्धेन यज्ञवाटान्ते जटाधर इति श्रुतः।
अर्द्धेन गगने शर्वः कालरूपी च कथ्यते॥ २८

नारद उवाच

कालरूपी त्वयाख्यातः शंभुर्गगनगोचरः।
लक्षणं च स्वरूपं च सर्वं व्याख्यातुमर्हसि॥ २९

पुलस्त्य उवाच

स्वरूपं त्रिपुरघ्नस्य वदिष्ये कालरूपिणः।
येनाम्बरं मुनिश्रेष्ठ व्याप्तं लोकहितेप्सुना॥ ३०

यत्राश्विनी च भरणी कृत्तिकायास्तथांशकः।
मेषो राशिः कुजक्षेत्रं तच्छिरः कालरूपिणः॥ ३१

आग्नेयांशास्त्रयो ब्रह्मन् प्राजापत्यं कवेर्गृहम्।
सौम्यार्द्धं वृषनामेदं वदनं परिकीर्तितम्॥ ३२

मृगार्द्धमार्द्रादित्यांशास्त्रयः सौम्यगृहं त्विदम्।
मिथुनं भुजयोस्तस्य गगनस्थस्य शूलिनः॥ ३३

आदित्यांशश्च पुष्यं च आश्लेषा शशिनो गृहम्।
राशिः कर्कटको नाम पार्श्वे मखविनाशिनः॥ ३४

पित्र्यर्क्षं भगदैवत्यमुत्तरांशश्च केसरी।
सूर्यक्षेत्रं विभोर्ब्रह्मन् हृदयं परिगीयते॥ ३५

उत्तरांशास्त्रयः पाणिश्चित्रार्धं कन्यका त्वियम्।
सोमपुत्रस्य सद्मैतद् द्वितीयं जठरं विभोः॥ ३६

चित्रांशद्वितयं स्वातिर्विशाखायांशकत्रयम्।
द्वितीयं शुक्रसदनं तुला नाभिरुदाहृता॥ ३७

फिर भगवान् शिवने अपने तीनों नेत्रोंसे तीनों अग्नियों (आहवनीय, गार्हपत्य और शालाग्नियों) को देखा। उनके देखते ही वे अग्नियाँ क्षणभरमें नष्ट हो गयीं। उनके नष्ट होनेपर यज्ञ भी मृगका शरीर धारण कर आकाशमें दक्षिणाके साथ तीव्रगतिसे भाग गया। कालरूपी वेगवान् भगवान् शिव धनुषको झुकाकर उसपर पाशुपत बाण संधानकर उस मृगके पीछे दौड़े और आधे रूपसे तो यज्ञशालामें स्थित हुए, जिनका नाम 'जटाधर' पड़ा। इधर आधे दूसरे रूपसे वे आकाशमें स्थित होकर 'काल' कहलाये॥ २५—२८॥

नारदजी बोले— (मुने!) आपने आकाशमें स्थित शिवको कालरूपी कहा है। आप उनके सम्पूर्ण स्वरूप और लक्षणोंकी भी व्याख्या कर दें॥ २९॥

पुलस्त्यजीने कहा— मुनिवर! मैं त्रिपुरको मारनेवाले कालरूपी उन शंकरके स्वरूपको (वास्तविक रूपको) बतलाता हूँ। उन्होंने लोककी भलाईकी इच्छासे ही आकाशको व्याप्त किया है। सम्पूर्ण अश्विनी तथा भरणी नक्षत्र एवं कृत्तिकाके एक चरणसे युक्त भौमका क्षेत्र मेष राशि ही कालरूपी महादेवका सिर कही गयी है। ब्रह्मन्! इसी प्रकार कृत्तिकाके तीन चरण, सम्पूर्ण रोहिणी नक्षत्र एवं मृगशिराके दो चरण, यह शुक्रकी वृष राशि ही उनका मुख है। मृगशिराके शेष दो चरण, सम्पूर्ण आर्द्रा और पुनर्वसुके तीन चरण बुधकी (प्रथम) स्थितिस्थान मिथुन राशि आकाशमें स्थित शिवकी दोनों भुजाएँ हैं॥ ३०—३३॥

इसी प्रकार पुनर्वसुका अन्तिम चरण, सम्पूर्ण पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रोंवाला चन्द्रमाका क्षेत्र कर्क राशि यज्ञविनाशक शंकरके दोनों पार्श्व (बगल) हैं। ब्रह्मन्! सम्पूर्ण मघा, सम्पूर्ण पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीका प्रथम चरण, सूर्यकी सिंह राशि शंकरका हृदय कही जाती है। उत्तराफाल्गुनीके तीन चरण, सम्पूर्ण हस्त नक्षत्र एवं चित्राके दो पहले चरण, बुधकी द्वितीय राशि, कन्या राशि शंकरका जठर है। चित्राके शेष दो चरण, स्वातीके चारों चरण एवं विशाखाके तीन चरणोंसे युक्त शुक्रका दूसरा क्षेत्र तुला राशि महादेवकी नाभि है॥ ३४—३७॥

विशाखांशमनूराधा ज्येष्ठा भौमगृहं त्विदम्।
द्वितीयं वृश्चिको राशिर्मेढ्रं कालस्वरूपिणः ॥ ३८

मूलं पूर्वोत्तरांशश्च देवाचार्यगृहं धनुः।
ऊरुयुगलमीशस्य अमरर्षे प्रगीयते ॥ ३९

उत्तरांशास्त्रयो ऋक्षं श्रवणं मकरो मुने।
धनिष्ठार्धं शनिक्षेत्रं जानुनी परमेष्ठिनः ॥ ४०

धनिष्ठार्धं शतभिषा प्रौष्ठपद्यांशकत्रयम्।
सौरेः सद्मापरमिदं कुम्भो जङ्घे च विश्रुते ॥ ४१

प्रौष्ठपद्यांशमेकं तु उत्तरा रेवती तथा।
द्वितीयं जीवसदनं मीनस्तु चरणावुभौ ॥ ४२
एवं कृत्वा कालरूपं त्रिनेत्रो
यज्ञं क्रोधान्मार्गणैराजघान।
विद्धश्चासौ वेदनाबुद्धिमुक्तः
खे संतस्थौ तारकाभिश्चिताङ्गः ॥ ४३

नारद उवाच

राशयो गदिता ब्रह्मंस्त्वया द्वादश वै मम।
तेषां विशेषतो ब्रूहि लक्षणानि स्वरूपतः ॥ ४४

पुलस्त्य उवाच

स्वरूपं तव वक्ष्यामि राशीनां शृणु नारद।
यादृशा यत्र संचारा यस्मिन् स्थाने वसन्ति च ॥ ४५
मेषः समानमूर्तिश्च अजाविकधनादिषु।
संचारस्थानमेवास्य धान्यरत्नाकरादिषु ॥ ४६
नवशाद्वलसंछन्नवसुधायां च सर्वशः।
नित्यं चरति फुल्लेषु सरसां पुलिनेषु च ॥ ४७
वृषः सदृशरूपो हि चरते गोकुलादिषु।
तस्याधिवासभूमिस्तु कृषीवलधराश्रयः ॥ ४८
स्त्रीपुंसयोः समं रूपं शय्यासनपरिग्रहः।
वीणावाद्यधृङ् मिथुनं गीतनर्तकशिल्पिषु ॥ ४९

स्थितः क्रीडारतिर्नित्यं विहारावनिरस्य तु।
मिथुनं नाम विख्यातं राशिर्द्वैधात्मकः स्थितः ॥ ५०

विशाखाका एक चरण, सम्पूर्ण अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र, मङ्गलका द्वितीय क्षेत्र वृश्चिक राशि कालरूपी महादेवका उपस्थ है। सम्पूर्ण मूल, पूरा पूर्वाषाढ और उत्तराषाढका प्रथम चरणवाली धनु राशि जो बृहस्पतिका क्षेत्र है, महेश्वरके दोनों ऊरु हैं। मुने! उत्तराषाढके शेष तीन चरण, सम्पूर्ण श्रवण नक्षत्र और धनिष्ठाके दो पूर्व चरणकी मकर राशि शनिका क्षेत्र और परमेष्ठी महेश्वरके दोनों घुटने हैं। धनिष्ठाके दो चरण, सम्पूर्ण शतभिष और पूर्वभाद्रपदके तीन चरणवाली कुम्भ राशि शनिका द्वितीय गृह और शिवकी दो जंघाएँ हैं ॥ ३८-४१ ॥

पूर्वभाद्रपदके शेष एक चरण, सम्पूर्ण उत्तरभाद्रपद और सम्पूर्ण रेवती नक्षत्रोंवाला बृहस्पतिका द्वितीय क्षेत्र एवं मीन राशि उनके दो चरण हैं। इस प्रकार कालरूप धारणकर शिवने क्रोधपूर्वक हरिणरूपधारी यज्ञको बाणोंसे मारा। उसके बाद बाणोंसे विद्ध होकर, किंतु वेदनाकी अनुभूति न करता हुआ, वह यज्ञ ताराओंसे चित्रित शरीरवाला होकर आकाशमें स्थित हो गया ॥ ४२-४३ ॥

नारदजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने मुझसे बारहों राशियोंका वर्णन किया। अब विशेषरूपसे उनके स्वरूपके अनुसार लक्षणोंको बतलायें ॥ ४४ ॥

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! आपको मैं राशियोंका स्वरूप बतलाता हूँ; सुनिये। वे जैसी हैं तथा जहाँ संचार और निवास करती हैं वह सभी वर्णित करता हूँ। मेष राशि भेड़के समान आकारवाली है। बकरी, भेड़, धन-धान्य एवं रत्नाकरादि इसके संचार-स्थान हैं तथा नवदूर्वासे आच्छादित समग्र पृथ्वी एवं पुष्पित वनस्पतियोंसे युक्त सरोवरोंके पुलिनोंमें यह नित्य संचरण करती है। वृषभके समान रूपयुक्त वृषराशि गोकुलादिमें विचरण करती है तथा कृषकोंकी भूमि इसका निवास-स्थान है ॥ ४५-४८ ॥

मिथुन राशि एक स्त्री और एक पुरुषके साथ-साथ रहनेके समान रूपवाली है। यह शय्या और आसनोंपर स्थित है। पुरुष-स्त्रीके हाथोंमें वीणा एवं (अन्य) वाद्य हैं। इस राशिका संचरण गानेवालों, नाचनेवालों एवं शिल्पियोंमें होता है। इस द्विस्वभाव राशिको मिथुन कहते हैं। इस राशिका निवास क्रीडास्थल एवं

कर्कः कुलीरेण समः सलिलस्थः प्रकीर्तितः।
केदारवापीपुलिने विविक्तावनिरेव च॥ ५१

सिंहस्तु पर्वतारण्यदुर्गकन्दरभूमिषु।
वसते व्याधपल्लीषु गह्वरेषु गुहासु च॥ ५२

व्रीहिप्रदीपिककरा नावारूढा च कन्यका।
चरते स्त्रीरतिस्थाने वसते नड्वलेषु च॥ ५३

तुलापाणिश्च पुरुषो वीथ्यापणविचारकः।
नगराध्वानशालासु वसते तत्र नारद॥ ५४

श्वभ्रवल्मीकसंचारी वृश्चिको वृश्चिकाकृतिः।
विषगोमयकीटादिपाषाणादिषु संस्थितः॥ ५५

धनुस्तुरङ्गजघनो दीप्यमानो धनुर्धरः।
वाजिशूरास्त्रविद्वीरः स्थायी गजरथादिषु॥ ५६

मृगास्यो मकरो ब्रह्मन् वृषस्कन्धेक्षणाङ्गजः।
मकरोऽसौ नदीचारी वसते च महोदधौ॥ ५७

रिक्तकुम्भश्च पुरुषः स्कन्धधारी जलाप्लुतः।
द्यूतशालाचरः कुम्भः स्थायी शौण्डिकसद्मसु॥ ५८

मीनद्वयमथासक्तं मीनस्तीर्थाब्धिसंचरः।
वसते पुण्यदेशेषु देवब्राह्मणसद्मसु॥ ५९

लक्षणा गदितास्तुभ्यं मेषादीनां महामुने।
न कस्यचित् त्वयाख्येयं गुह्यमेतत्पुरातनम्॥ ६०

एतन् मया ते कथितं सुरर्षे
यथा त्रिनेत्रः प्रममाथ यज्ञम्।
पुण्यं पुराणं परमं पवित्र-
माख्यातवान्पापहरं शिवं च॥ ६१

विहार-भूमियोंमें होता है। कर्क राशि केकड़ेके रूपके समान रूपवाली है एवं जलमें रहनेवाली है। जलसे पूर्ण क्यारी एवं नदी-तीर अथवा बालुका एवं एकान्त भूमि इसके रहनेके स्थान हैं। सिंह राशिका निवास वन, पर्वत, दुर्गमस्थान, कन्दरा, व्याधोंके स्थान, गुफा आदि होता है॥ ४९—५२॥

कन्या राशि अन्न एवं दीपक हाथमें लिये हुए है तथा नौकापर आरूढ़ है। यह स्त्रियोंके रतिस्थान और सरपत, कण्डा आदिमें विचरण करती है। नारदजी! तुला राशि हाथमें तुला लिये हुए पुरुषके रूपमें गलियों और बाजारोंमें विचरण करती है तथा नगरों, मार्गों एवं भवनोंमें निवास करती है। वृश्चिक राशिका आकार बिच्छू-जैसा है। यह गड्ढे एवं वल्मीक आदिमें विचरण करती है। यह विष, गोबर, कीट एवं पत्थर आदिमें भी निवास करती है। धनु राशिकी जंघा घोड़ेके समान है। यह ज्योतिःस्वरूप एवं धनुष लिये है। यह घुड़सवारी, वीरताके कार्य एवं अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता तथा शूर है। गज एवं रथ आदिमें इसका निवास होता है॥ ५३—५६॥

ब्रह्मन्! मकर राशिका मुख मृगके मुख-सदृश एवं कंधे वृषके कन्धोंके तुल्य तथा नेत्र हाथीके नेत्रके समान हैं। यह राशि नदीमें विचरण करती तथा समुद्रमें विश्राम करती है। कुम्भ राशि रिक्त घड़ेको कंधेपर लिये जलसे भीगे पुरुषके समान है। इसका संचार-स्थान द्यूतगृह एवं सुरालय (मद्यशाला) है। मीन राशि दो संयुक्त मछलियोंके आकारवाली है। यह तीर्थस्थान एवं समुद्र-देशमें संचरण करती है। इसका निवास पवित्र देशों, देवमन्दिरों एवं ब्राह्मणोंके घरोंमें होता है। महामुने! मैंने आपको मेषादि राशियोंका लक्षण बतलाया। आप इस प्राचीन रहस्यको किसी अपात्रसे न बतलाइयेगा। देवर्षे! भगवान् शिवने जिस प्रकार यज्ञको प्रमथित किया, उसका मैंने आपसे वर्णन कर दिया। इस प्रकार मैंने आपको श्रेयस्कर, परम पवित्र, पापहारी एवं कल्याणकारी अत्यन्त पुरातन पुराण-आख्यान सुनाया॥ ५७—६१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

नर-नारायणकी उत्पत्ति, तपश्चर्या, बदरिकाश्रमकी वसन्तकी शोभा, काम दाह और कामकी अनङ्गताका वर्णन

पुलस्त्य उवाच

हृदयो ब्रह्मणो योऽसौ धर्मो दिव्यवपुर्मुने।
दाक्षायणी तस्य भार्या तस्यामजनयत्सुतान्॥ १
हरिं कृष्णं च देवर्षे नारायणनरौ तथा।
योगाभ्यासरतौ नित्यं हरिकृष्णौ बभूवतुः॥ २
नरनारायणौ चैव जगतो हितकाम्यया
तप्येतां च तपः सौम्यौ पुराणावृषिसत्तमौ॥ ३
प्रालेयाद्रिं समागम्य तीर्थे बदरिकाश्रमे।
गृणन्तौ तत्परं ब्रह्म गङ्गाया विपुले तटे॥ ४
नरनारायणाभ्यां च जगदेतच्चराचरम्।
तापितं तपसा ब्रह्मञ्शक्रः क्षोभं तदा ययौ। ५
संक्षुब्धस्तपसा ताभ्यां क्षोभणाय शतक्रतुः।
रम्भाद्याप्सरसः श्रेष्ठाः प्रेषयत्स महाश्रमम्॥ ६
कन्दर्पश्च सुदुर्धर्षश्चूताङ्कुरमहायुधः।
समं सहचरेणैव वसन्तेनाश्रमं गतः॥ ७
ततो माधवकन्दर्पौ ताश्चैवाप्सरसो वराः।
बदर्याश्रममागम्य विचिक्रीडुर्यथेच्छया॥ ८
ततो वसन्ते संप्राप्ते किंशुका ज्वलनप्रभाः।
निष्पत्राः सततं रेजुः शोभयन्तो धरातलम्॥ ९
शिशिरं नाम मातङ्गं विदार्य नखरैरिव।
वसन्तकेसरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने॥ १०
मया तुषारौघकरी निर्जितः स्वेन तेजसा।
तमेव हसतेत्युच्चैः वसन्तः कुन्दकुड्मलैः॥ ११
वनानि कर्णिकाराणां पुष्पितानि विरेजिरे।
यथा नरेन्द्रपुत्राणि कनकाभरणानि हि॥ १२

पुलस्त्यजी बोले—मुने! ब्रह्माजीके हृदयसे जो दिव्यदेहधारी धर्म प्रकट हुआ था, उसने दक्षकी पुत्री 'मूर्ति' नामकी भार्यासे हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्रोंको उत्पन्न किया।[1] देवर्षे! इनमें हरि और कृष्ण ये दो तो नित्य योगाभ्यासमें निरत हो गये और पुरातन ऋषि शान्तमना नर तथा नारायण संसारके कल्याणके लिये हिमालय पर्वतपर आकर बदरिकाश्रम तीर्थमें गङ्गाके विमल तटपर (परब्रह्मका नाम ॐकारका जप करते हुए) तप करने लगे॥ १—४॥

ब्रह्मन्! नर-नारायणकी दुष्कर तपस्यासे सारा स्थावर जंगमात्मक यह जगत् परितप्त हो गया। इससे इन्द्र विक्षुब्ध हो उठे। उन दोनोंकी तपस्यासे अत्यन्त व्यग्र इन्द्रने उन्हें मोहित करनेके लिये रम्भा आदि श्रेष्ठ अप्सराओंको उनके विशाल आश्रममें भेजा। कामदेवके आयुधोंमें अशोक, आम्रादिकी मंजरियाँ विशेष प्रभावक हैं। इन्हें तथा अपने सहयोगी वसन्त ऋतुको साथ लेकर वह भी उस आश्रममें गया। अब वे वसन्त, कामदेव तथा श्रेष्ठ अप्सराएँ—ये सब बदरिकाश्रममें आकर निर्बाध क्रीडा करने लग गये॥ ५—८॥

तब वसन्त ऋतुके आ जानेपर अग्नि-शिखाके सदृश कान्तिवाले पलाश पत्रहीन होकर रात-दिन पृथ्वीकी शोभा बढ़ाते हुए सुशोभित होने लगे। मुने! वसन्तरूपी सिंह मानो पलाश-पुष्परूपी नखोंसे शिशिररूपी गजराजको विदीर्ण कर वहाँ अपना साम्राज्य जमा चुका था। वह सोचने लगा—मैंने अपने तेजसे शीतसमूहरूपी हाथीको जीत लिया है और वह कुन्दकी कलियोंके बहाने उसका उपहास भी करने लगा है। इधर सुवर्णके अलंकारोंसे मण्डित राजकुमारोंके समान पुष्पित कचनार-अमलतासके वन सुशोभित होने लगे॥ ९—१२॥

1. यह बात भागवत २। ७। ६ आदिमें विशेष स्पष्टरूपसे कही गयी है। जिज्ञासु वहाँ भी देखें।

तेषामनु तथा नीपाः किङ्करा इव रेजिरे।
स्वामिसंलब्धसंमाना भृत्या राजसुतानिव॥ १३

रक्ताशोकवना भान्ति पुष्पिताः सहसोज्ज्वलाः।
भृत्या वसन्तनृपतेः संग्रामे सृक्प्लुता इव॥ १४

मृगवृन्दाः पिञ्जरिता राजन्ते गहने वने।
पुलकाभिर्वृता यद्वत् सज्जनाः सुहृदागमे॥ १५

मञ्जरीभिर्विराजन्ते नदीकूलेषु वेतसाः।
वक्तुकामा इवाङ्गुल्या कोऽस्माकं सदृशो नगः॥ १६

रक्ताशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकाङ्घ्रिका।
नीलाशोककचा श्यामा विकासिकमलानना॥ १७
नीलेन्दीवरनेत्रा च ब्रह्मन् बिल्वफलस्तनी।
प्रफुल्लकुन्ददशना मञ्जरीकरशोभिता॥ १८
बन्धुजीवाधरा शुभ्रा सिन्दुवारनखाङ्कुला।
पुंस्कोकिलस्वना दिव्या अङ्कोलवसना शुभा॥ १९
बर्हिवृन्दकलापा च सारसस्वरनूपुरा।
प्राग्वंशरसना ब्रह्मन् मत्तहंसगतिस्तथा॥ २०
पुत्रजीवांशुका भृङ्गरोमराजिविराजिता।
वसन्तलक्ष्मीः सम्प्राप्ता ब्रह्मन् बदरिकाश्रमे॥ २१
ततो नारायणो दृष्ट्वा आश्रमस्यानवद्यताम्।
समीक्ष्य च दिशः सर्वास्ततोऽनङ्गमपश्यत॥ २२

नारद उवाच

कोऽसावनङ्गो ब्रह्मर्षे तस्मिन् बदरिकाश्रमे।
यं ददर्श जगन्नाथो देवो नारायणोऽव्ययः॥ २३

पुलस्त्य उवाच

कन्दर्पो हर्षतनयो योऽसौ कामो निगद्यते।
स शंकरेण संदग्धो ह्यनङ्गत्वमुपागतः॥ २४

नारद उवाच

किमर्थं कामदेवोऽसौ देवदेवेन शंभुना।
दग्धस्तु कारणे कस्मिन्नेतद्व्याख्यातुमर्हसि॥ २५

पुलस्त्य उवाच

यदा दक्षसुता ब्रह्मन् सती यातः यमक्षयम्।
विनाश्य दक्षयज्ञं स विचचार त्रिलोचनः॥ २६
ततो वृषध्वजं दृष्ट्वा कन्दर्पः कुसुमायुधः।
अपत्नीकं तदाऽस्त्रेण उन्मादेनाभ्यताडयत्॥ २७

जैसे राजपुत्रोंके पीछे उनके द्वारा सम्मानित सेवक खड़े रहते हैं, वैसे ही उन (वर्णित-वनों)-के पीछे पीछे कदम्बवृक्ष सुशोभित हो रहे थे। इसी प्रकार लाल अशोक आदिके समूह भी सहसा पुष्पित एवं उद्भासित हो सुशोभित होने लगे। लगता था मानो ऋतुराज वसन्तके अनुयायी युद्धमें रक्तसे लथपथ हो रहे हों। घने वनमें पीले रंगके हरिण इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार सुहृद्‌के आनेसे सज्जन (आनन्दसे) पुलकित होकर सुशोभित होते हैं। नदीके तटोंपर अपनी मंजरियोंके द्वारा बेतस ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो वे अंगुलियोंके द्वारा यह कहना चाहते हैं कि हमारे सदृश अन्य कौन वृक्ष है॥ १३—१६॥

देवर्षे! जो दिव्य पतली एवं यौवनसे भरी वसन्त-लक्ष्मी उस बदरिकाश्रममें प्रकट हुई थी, उसके मानो रक्ताशोक ही हाथ, पलाश ही चरण, नीलाशोक केश-पाश, विकसित कमल ही मुख और नीलकमल ही नेत्र थे। उसके बिल्वफल मानों स्तन, कुन्दपुष्प दन्त, मञ्जरी हाथ, दुपहरियाफूल अधर, सिन्दुवार नख, नर कोयलकी काकली (बोली) स्वर, अंकोल वस्त्र, मयूरयूथ आभूषण, सारस नूपुरस्वरूप और आश्रमके शिखर करधनी थे। उसके मत्त हंस गति, पुत्रजीव ऊर्ध्व वस्त्र और भ्रमर मानो रोमावलीरूपमें विराजित थे। तब नारायणने आश्रमकी अद्भुत रमणीयता देखकर सभी दिशाओंकी ओर देखा और फिर कामदेवको भी देखा॥ १७—२२॥

नारदजीने पूछा— ब्रह्मर्षे! जिसे अव्यय जगन्नाथ नारायणने बदरिकाश्रममें देखा था, वह अनङ्ग (काम) कौन है?॥ २३॥

पुलस्त्यजीने कहा— यह कंदर्प हर्षका पुत्र है, इसे ही काम कहा जाता है। शंकर-(की नेत्राग्नि-) द्वारा भस्म होकर वह 'अनङ्ग' हो गया॥ २४॥

नारदजीने पूछा— पुलस्त्यजी! आप यह बतलायें कि देवाधिदेव शंकरने कामदेवको किस कारणसे भस्म किया?॥ २५॥

पुलस्त्यजीने कहा— ब्रह्मन्! दक्ष-पुत्री सतीके प्राण त्याग करनेपर शिवजी दक्ष-यज्ञका ध्वंस कर (जहाँ-तहाँ) विचरण करने लगे। तब शिवजीको स्त्री-रहित देखकर पुष्पास्त्रवाले कामदेवने उनपर अपना 'उन्मादन' नामक अस्त्र छोड़ा। इस उन्मादन-बाणसे

ततो हरः शरेणाथ उन्मादेनाशु ताडितः।
विचचार मदोन्मत्तः काननानि सरांसि च॥ २८
स्मरन् सतीं महादेवस्तथोन्मादेन ताडितः।
न शर्म लेभे देवर्षे बाणविद्ध इव द्विपः॥ २९
ततः पपात देवेशः कालिन्दीसरितं मुने।
निमग्ने शंकरे आपो दग्धाः कृष्णत्वमागताः॥ ३०

तदाप्रभृति कालिन्द्या भृङ्गाञ्जननिभं जलम्।
आस्यन्दत् पुण्यतीर्था सा केशपाशमिवावनेः॥ ३१

ततो नदीषु पुण्यासु सरस्सु च नदेषु च।
पुलिनेषु च रम्येषु वापीषु नलिनीषु च॥ ३२

पर्वतेषु च रम्येषु काननेषु च सानुषु।
विचरन् स्वेच्छया नैव शर्म लेभे महेश्वरः॥ ३३
क्षणं गायति देवर्षे क्षणं रोदिति शंकरः।
क्षणं ध्यायति तन्वङ्गीं दक्षकन्यां मनोरमाम्॥ ३४

ध्यात्वा क्षणं प्रस्वपिति क्षणं स्वप्नायते हरः।
स्वप्ने तथेदं गदति तां दृष्ट्वा दक्षकन्यकाम्॥ ३५
निर्घृणे तिष्ठ किं मूढे त्यजसे मामनिन्दिते।
मुग्धे त्वया विरहितो दग्धोऽस्मि मदनाग्निना॥ ३६
सति सत्यं प्रकुपिता मा कोपं कुरु सुन्दरि।
पादप्रणामावनतमभिभाषितुमर्हसि॥ ३७
श्रूयसे दृश्यसे नित्यं स्पृश्यसे वन्द्यसे प्रिये।
आलिङ्ग्यसे च सततं किमर्थं नाभिभाषसे॥ ३८

विलपन्तं जनं दृष्ट्वा कृपा कस्य न जायते।
विशेषतः पतिं बाले ननु त्वमतिनिर्घृणा॥ ३९

त्वयोक्तानि वचांस्येवं पूर्वं मम कृशोदरि।
विना त्वया न जीवेयं तदसत्यं त्वया कृतम्॥ ४०

एह्येहि कामसंतप्तं परिष्वज सुलोचने।
नान्यथा नश्यते तापः सत्येनापि शपे प्रिये॥ ४१
इत्थं विलप्य स्वप्नान्ते प्रतिबुद्धस्तु तत्क्षणात्।
उत्कूजति तथारण्ये मुक्तकण्ठं पुनः पुनः॥ ४२

आहत होकर शिवजी उन्मत्त होकर वनों और सरोवरोंमें घूमने लगे। देवर्षे! बाणविद्ध गजके समान उन्मादसे व्यथित महादेव सतीका स्मरण करते हुए बड़े अशान्त हो रहे थे—उन्हें चैन नहीं था॥ २८—२९॥

मुने! उसके बाद शिवजी यमुना नदीमें कूद पड़े, उनके जलमें निमज्जन करनेसे उस नदीका जल काला हो गया। उस समयसे कालिन्दी नदीका जल भृंग और अंजनके सदृश कृष्णवर्णका हो गया एवं वह पवित्र तीर्थोंवाली नदी पृथ्वीके केशपाशके सदृश प्रवाहित होने लगी। उसके बाद पवित्र नदियों, सरोवरों, नदों, रमणीय नदी तटों, बावलियों, कमलवनों, पर्वतों, मनोहर काननों तथा पर्वत-शृङ्गोंपर स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हुए भगवान् शिव कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सके॥ ३०—३३॥

देवर्षे! वे कभी गाते, कभी रोते और कभी कृशाङ्गी सुन्दरी सतीका ध्यान करते। ध्यान करके कभी सोते और कभी स्वप्न देखने लगते थे; स्वप्नकालमें सतीको देखकर वे इस प्रकार कहते थे—निर्दये! रुको, हे मूढे! मुझे क्यों छोड़ रही हो? हे अनिन्दिते! हे मुग्धे! तुम्हारे विरहमें मैं कामाग्निसे दग्ध हो रहा हूँ। हे सति! क्या तुम वस्तुतः क्रुद्ध हो? सुन्दरि! क्रोध मत करो। मैं तुम्हारे चरणोंमें अवनत होकर प्रणाम करता हूँ। तुम्हें मेरे साथ बात तो करनी ही चाहिये॥ ३४—३७॥

प्रिये! मैं सतत तुम्हारी ध्वनि सुनता हूँ, तुम्हें देखता हूँ, तुम्हारा स्पर्श करता हूँ, तुम्हारी वन्दना करता हूँ और तुम्हारा परिष्वङ्ग करता हूँ, तुम मुझसे बात क्यों नहीं कर रही हो? बाले! विलाप करनेवाले व्यक्तिको देखकर किसे दया नहीं उत्पन्न होती? विशेषतः अपने पतिको विलाप करता देखकर तो किसे दया नहीं आती? निश्चय ही तुम अति निर्दयी हो। सूक्ष्मकटिवाली! तुमने पहले मुझसे कहा था कि तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रहूँगी। उसे तुमने असत्य कर दिया। सुलोचने! आओ, आओ, कामसन्तप्त मुझे आलिङ्गित करो। प्रिये! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि अन्य किसी प्रकार मेरा ताप नहीं शान्त होगा॥ ३८—४१॥

इस प्रकार वे विलाप कर स्वप्नके अन्तमें उठकर वनमें बार-बार रोने लगे। इस प्रकार मुक्तकण्ठसे

तं कूजमानं विलपन्तमारात्
समीक्ष्य कामो वृषकेतनं हि।
विव्याध चापं तरसा विनाम्य
संतापनाम्ना तु शरेण भूयः ॥ ४३

संतापनास्त्रेण तदा स विद्धो
भूयः स संतप्ततरो बभूव।
संतापयंश्चापि जगत्समग्रं
फूत्कृत्य फूत्कृत्य विवासते स्म ॥ ४४

तं चापि भूयो मदनो जघान
विजृम्भणास्त्रेण ततो विजृम्भे।
ततो भृशं कामशरैर्वितुन्नो
विजृम्भमाणः परितो भ्रमंश्च ॥ ४५

ददर्श यक्षाधिपतेस्तनूजं
पाञ्चालिकं नाम जगत्प्रधानम्।
दृष्ट्वा त्रिनेत्रो धनदस्य पुत्रं
पार्श्वं समभ्येत्य वचो बभाषे।
भ्रातृव्य वक्ष्यामि वचो यदद्य
तत् त्वं कुरुष्वामितविक्रमोऽसि ॥ ४६

पाञ्चालिक उवाच

यन्नाथ मां वक्ष्यसि तत्करिष्ये
सुदुष्करं यद्यपि देवसंघैः।
आज्ञापयस्वातुलवीर्य शंभो
दासोऽस्मि ते भक्तियुतस्तथेश ॥ ४७

ईश्वर उवाच

नाशं गतायां वरदाम्बिकायां
कामाग्निना प्लुष्टसुविग्रहोऽस्मि।
विजृम्भणोन्मादशरैर्विभिन्नो
धृतिं न विन्दामि रतिं सुखं वा ॥ ४८

विजृम्भणं पुत्र तथैव तापं
मुन्मादमुग्रं मदनप्रणुन्नम्।
नान्यः पुमान् धारयितुं हि शक्तो
मुक्त्वा भवन्तं हि ततः प्रतीच्छ ॥ ४९

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्तो वृषभध्वजेन
यक्षः प्रतीच्छत् स विजृम्भणादीन्।
तोषं जगामाशु ततस्त्रिशूली
तुष्टस्तदैवं वचनं बभाषे ॥ ५०

हर उवाच

यस्मात्त्वया पुत्र सुदुर्धराणि
विजृम्भणादीनि प्रतीच्छितानि।

विलाप करते हुए भगवान् शंकरको दूरसे देखकर कामने अपना धनुष झुका (चढ़ा) कर पुनः वेगसे उन्हें संतापक अस्त्रसे वेध डाला। अब वे इससे विद्ध होकर और भी अधिक संतप्त हो गये एवं मुखसे बारंबार (विलख) फूत्कार कर सम्पूर्ण विश्वको दुःखी करते हुए जैसे-तैसे समय बिताने लगे। फिर कामने उनपर विजृम्भण नामक अस्त्रसे प्रहार किया। इससे उन्हें जँभाई आने लगी। अब कामके बाणोंसे विशेष पीड़ित होकर जँभाई लेते हुए वे चारों ओर घूमने लगे। इसी समय उन्होंने कुबेरके पुत्र पाञ्चालिकको देखा और उसको देखकर उसके पास आकर त्रिनेत्र शंकरने यह बात कही—भ्रातृव्य! तुम अमित विक्रमशाली हो, मैं जो आज बात कहता हूँ, तुम उसे करो ॥ ४३-४६ ॥

पाञ्चालिकने कहा— स्वामिन्! आप जो कहेंगे, देवताओंद्वारा सुदुष्कर होनेपर भी उसे मैं करूँगा। हे अतुल बलशाली शिव! आप आज्ञा करें, ईश! मैं आपका श्रद्धालु भक्त एवं दास हूँ ॥ ४७ ॥

भगवान् शिव बोले— वरदायिनी अम्बिका (सती)-के नष्ट होनेसे मेरा सुन्दर शरीर कामाग्निसे अत्यन्त दग्ध हो रहा है। कामके विजृम्भण और उन्माद शरोंसे विद्ध होनेसे मुझे धैर्य, रति या सुख नहीं प्राप्त हो रहा है। पुत्र! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष, कामदेवसे प्रेरित विजृम्भण, संतापन और उन्माद नामक उग्र अस्त्र सहन करनेमें समर्थ नहीं है। अतः तुम इन्हें ग्रहण कर लो ॥ ४८-४९ ॥

पुलस्त्यजी बोले— भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर उस यक्ष (कुबेर-पुत्र पाञ्चालिक)-ने विजृम्भण आदि सभी अस्त्रोंको उनसे ले लिया। इससे त्रिशूलीको तत्काल संतोष प्राप्त हो गया और प्रसन्न होकर उन्होंने उससे ये वचन कहे— ॥ ५० ॥

भगवान् महादेवजी बोले— पुत्र! तुमने अति भयंकर विजृम्भण आदि अस्त्रोंको ग्रहण कर लिया,

तस्माद्वरं त्वां प्रतिपूजनाय
दास्यामि लोकस्य च हास्यकारि ॥ ५१
यस्त्वां यदा पश्यति चैत्रमासे
स्पृशेन्नरो वार्चयते च भक्त्या।
वृद्धोऽथ बालोऽथ युवाथ योषित्
सर्वे तदोन्मादधरा भवन्ति ॥ ५२
गायन्ति नृत्यन्ति रमन्ति यक्ष
वाद्यानि यत्नादपि वादयन्ति।
तवाग्रतो हास्यवचोऽभिरक्ता
भवन्ति ते योगयुतास्तु ते स्युः ॥ ५३
ममैव नाम्ना भविताऽसि पूज्यः
पाञ्चालिकेशः प्रथितः पृथिव्याम्।
मम प्रसादाद् वरदो नराणां
भविष्यसे पूज्यतमोऽभिगच्छ ॥ ५४
इत्येवमुक्तो विभुना स यक्षो
जगाम देशान् सहसैव सर्वान्।
कालञ्जरस्योत्तरतः सुपुण्यो
देशो हिमाद्रेरपि दक्षिणस्थः ॥ ५५
तस्मिन् सुपुण्ये विषये निविष्टो
रुद्रप्रसादादभिपूज्यतेऽसौ ।
तस्मिन् प्रयाते भगवांस्त्रिनेत्रो
देवोऽपि विन्ध्यं गिरिमभ्यगच्छत् ॥ ५६
तत्रापि मदनो गत्वा ददर्श वृषकेतनम्।
दृष्ट्वा प्रहर्तुकामं च ततः प्राद्रवदीश्वरः ॥ ५७
ततो दारुवनं घोरं मदनाभिसृतो हरः ।
विवेश ऋषयो यत्र सपत्नीका व्यवस्थिताः ॥ ५८
ते चापि ऋषयः सर्वे दृष्ट्वा मूर्ध्ना नताभवन्।
ततस्तान् प्राह भगवान् भिक्षा मे प्रतिदीयताम् ॥ ५९
ततस्ते मौनिनस्तस्थुः सर्व एव महर्षयः ।
तदाश्रमाणि सर्वाणि परिचक्राम नारद ॥ ६०
तं प्रविष्टं तदा दृष्ट्वा भार्गवात्रेययोषितः।
प्रक्षोभमगमन् सर्वा हीनसत्त्वाः समन्ततः ॥ ६१
ऋते त्वरुन्धतीमेकामनसूयां च भामिनीम्।
एताभ्यां भर्तृपूजासु तच्चिन्तासु स्थितं मनः ॥ ६२
ततः संक्षुभिताः सर्वा यत्र याति महेश्वरः ।
तत्र प्रयान्ति कामार्त्ता मदविह्वलितेन्द्रियाः ॥ ६३

त्यक्त्वाश्रमाणि शून्यानि स्वानि ता मुनियोषितः ।
अनुजग्मुर्यथा मत्तं करिण्य इव कुञ्जरम् ॥ ६४

अतः प्रत्युपकारमें तुम्हें सब लोगोंके लिये आनन्ददायक वर दूँगा। चैत्रमासमें जो वृद्ध, बालक, युवा या स्त्री तुम्हारा स्पर्श करेंगे या भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे वे सभी उन्मत्त हो जायँगे। यक्ष! फिर वे गायेंगे, नाचेंगे, आनन्दित होंगे और निपुणताके साथ बाजे बजायेंगे, किंतु तुम्हारे सम्मुख हँसीकी बात करते हुए भी वे योगयुक्त रहेंगे। मेरे ही नामसे तुम पूज्य होगे। विश्वमें तुम्हारा पाञ्चालिकेश नाम प्रसिद्ध होगा। मेरे आशीर्वादसे तुम लोगोंके वरदाता और पूज्यतम होगे; जाओ ॥ ५१—५४ ॥

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर वह यक्ष तुरंत सब देशोंमें घूमने लगा। फिर वह कालंजरके उत्तर और हिमालयके दक्षिण परम पवित्र स्थानमें स्थिर हो गया। वह शिवजीकी कृपासे पूजित हुआ। उसके चले जानेपर भगवान् त्रिनेत्र भी विन्ध्यपर्वतपर आ गये। वहाँ भी कामने उन्हें देखा। उसे पुनः प्रहारकी चेष्टा करते देख शिवजी भागने लगे। उसके बाद कामदेवके द्वारा पीछा किये जानेपर महादेवजी घोर दारुवनमें चले गये, जहाँ ऋषिगण अपनी पत्नियोंके साथ निवास करते थे ॥ ५५—५८ ॥

उन ऋषियोंने भी उन्हें देखकर सिर झुकाकर प्रणाम किया। फिर भगवान्ने उनसे कहा—आप लोग मुझे भिक्षा दीजिये। इसपर सभी महर्षि मौन रह गये। नारदजी! इसपर महादेवजी सभी आश्रमोंमें घूमने लगे। उस समय उन्हें आश्रममें आया हुआ देख पतिव्रता अरुन्धती और अनुसूयाको छोड़कर ऋषियोंकी समस्त पत्नियाँ प्रक्षुब्ध एवं सत्त्वहीन हो गयीं। पर अरुन्धती और अनुसूया पतिसेवामें ही लगी रहीं ॥ ५९—६२ ॥

अब शिवजी जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ-वहाँ संक्षुभित, कामार्त एवं मदसे विकल इन्द्रियोंवाली स्त्रियाँ भी जाने लगीं। मुनियोंकी वे स्त्रियाँ अपने आश्रमोंको सूना छोड़ उनका इस प्रकार अनुसरण करने लगीं, जैसे करेणु मदमत्त गजका अनुसरण करे। मुने! यह देखकर

ततस्तु ऋषयो दृष्ट्वा भार्गवाङ्गिरसो मुने।
क्रोधान्विताब्रुवन्सर्वे लिङ्गोऽस्य पततां भुवि॥ ६५

ततः पपात देवस्य लिङ्गं पृथ्वीं विदारयन्।
अन्तर्द्धानं जगामाथ त्रिशूली नीललोहितः॥ ६६

ततः स पतितो लिङ्गो विभिद्य वसुधातलम्।
रसातलं विवेशाशु ब्रह्माण्डं चोर्ध्वतोऽभिनत्॥ ६७

ततश्चचाल पृथिवी गिरयः सरितो नगाः।
पातालभुवनाः सर्वे जङ्गमाजङ्गमैर्वृताः॥ ६८

संक्षुब्धान् भुवनान् दृष्ट्वा भूर्लोकादीन् पितामहः।
जगाम माधवं द्रष्टुं क्षीरोदं नाम सागरम्॥ ६९

तत्र दृष्ट्वा हृषीकेशं प्रणिपत्य च भक्तितः।
उवाच देव भुवनाः किमर्थं क्षुभिता विभो॥ ७०

अथोवाच हरिर्ब्रह्मन् शार्वो लिङ्गो महर्षिभिः।
पातितस्तस्य भारार्ता संचचाल वसुंधरा॥ ७१

ततस्तदद्भुततमं श्रुत्वा देवः पितामहः।
तत्र गच्छाम देवेश एवमाह पुनः पुनः॥ ७२

ततः पितामहो देवः केशवश्च जगत्पतिः।
आजग्मतुस्तमुद्देशं यत्र लिङ्गं भवस्य तत्॥ ७३

ततोऽनन्तं हरिर्लिङ्गं दृष्ट्वारुह्य खगेश्वरम्।
पातालं प्रविवेशाथ विस्मयान्तरितो विभुः॥ ७४

ब्रह्मा पद्मविमानेन ऊर्ध्वमाक्रम्य सर्वतः।
नैवान्तमलभद् ब्रह्मन् विस्मितः पुनरागतः॥ ७५

विष्णुर्गत्वाऽथ पातालान् सप्त लोकपरायणः।
चक्रपाणिर्विनिष्क्रान्तो लेभेऽन्तं न महामुने॥ ७६

विष्णुः पितामहश्चोभौ हरलिङ्गं समेत्य हि।
कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा स्तोतुं देवं प्रचक्रतुः॥ ७७

हरिब्रह्माणावूचतुः

नमोऽस्तु ते शूलपाणे नमोऽस्तु वृषभध्वज।
जीमूतवाहन कवे शर्व त्र्यम्बक शंकर॥ ७८
महेश्वर महेशान सुवर्णाक्ष वृषाकपे।
दक्षयज्ञक्षयकर कालरूप नमोऽस्तु ते॥ ७९
त्वमादिरस्य जगतस्त्वं मध्यं परमेश्वर।
भवानन्तश्च भगवान् सर्वगस्त्वं नमोऽस्तु ते॥ ८०

ऋषिगण क्रुद्ध हो गये एवं कहा कि इनका लिङ्ग भूमिपर गिर जाय। फिर तो महादेवका लिङ्ग पृथ्वीको विदीर्ण करता हुआ गिर गया एवं तब नीललोहित त्रिशूली अन्तर्धान हो गये॥ ६५-६६॥

वह पृथ्वीपर गिरा लिंग उसका भेदन कर तुरंत रसातलमें प्रविष्ट हो गया एवं ऊपरकी ओर भी उसने विश्वब्रह्माण्डका भेदन कर दिया। इसके बाद पृथ्वी, पर्वत, नदियाँ, पादप तथा चराचरसे पूर्ण समस्त पाताललोक काँप उठे। पितामह ब्रह्मा भूर्लोक आदि भुवनोंको संक्षुब्ध देखकर श्रीविष्णुसे मिलने क्षीरसागर पहुँचे। वहाँ उन्हें देख भक्तिपूर्वक प्रणाम कर ब्रह्माने कहा—देव! समस्त भुवन विक्षुब्ध कैसे हो गये हैं?॥ ६७—७०॥

इसपर श्रीहरिने कहा—ब्रह्मन्! महर्षियोंने शिवके लिङ्गको गिरा दिया है। उसके भारसे कष्टमें पड़ी आर्त पृथ्वी विचलित हो रही है। इसके बाद ब्रह्माजी उस अद्भुत बातको सुनकर 'देवेश! हम लोग वहाँ चलें'—ऐसा बार-बार कहने लगे। फिर ब्रह्मा और जगत्पति विष्णु वहाँ पहुँचे, जहाँ शंकरका लिङ्ग गिरा था। वहाँ उस अनन्त लिङ्गको देखकर आश्चर्यचकित होकर हरि गरुडपर सवार हो उसका पता लगानेके लिये पातालमें प्रविष्ट हुए॥ ७१—७४॥

नारदजी! ब्रह्माजी अपने पद्मयानके द्वारा सम्पूर्ण ऊर्ध्वाकाशको लाँघ गये, पर उस लिङ्गका अन्त नहीं पा सके और आश्चर्यचकित होकर वे लौट आये। मुने! इसी प्रकार जब चक्रपाणि भगवान् विष्णु भी सातों पातालोंमें प्रवेश कर उस लिङ्गका बिना अन्त पाये ही वहाँसे बाहर आये, तब ब्रह्मा, विष्णु दोनों शिवलिङ्गके पास जाकर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे॥ ७५—७७॥

ब्रह्मा-विष्णु बोले—शूलपाणिजी! आपको प्रणाम है। वृषभध्वज! जीमूतवाहन! कवि! शर्व! त्र्यम्बक शंकर! आपको प्रणाम है। महेश्वर! महेशान! सुवर्णाक्ष वृषाकपे! दक्ष-यज्ञ-विध्वंसक! कालरूप शिव! आपको प्रणाम है। परमेश्वर! आप इस जगत्के आदि, मध्य एवं अन्त हैं। आप षडैश्वर्यपूर्ण भगवान् सर्वत्रगामी या सर्वत्रव्याप्त हैं। आपको प्रणाम है॥ ७८—८०॥

पुलस्त्य उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु तस्मिन् दारुवने हरः।
स्वरूपी ताविदं वाक्यमुवाच वदतां वरः॥ ८१

पुलस्त्यजी बोले— उस दारुवनमें इस प्रकार स्तुति किये जानेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ हरने अपने स्वरूपमें प्रकट होकर (अर्थात् मूर्तिमान् होकर) उन दोनोंसे इस प्रकार कहा— ॥ ८१ ॥

हर उवाच

किमर्थं देवतानाथौ परिभूतक्रमं त्विह।
मां स्तुवाते भृशास्वस्थं कामतापितविग्रहम्॥ ८२

भगवान् शंकर बोले— आप दोनों सभी देवताओंके स्वामी हैं, आप लोग चलते-चलते थके हुए तथा कामाग्निसे दग्ध और मुझ सब प्रकारसे अस्वस्थ व्यक्तिकी क्यों स्तुति कर रहे हैं ?॥ ८२ ॥

देवावूचतुः

भवतः पातितं लिङ्गं यदेतद् भुवि शंकर।
एतत् प्रगृह्यतां भूयः अतो देव स्तुवावहे॥ ८३

इसपर ब्रह्मा-विष्णु दोनों बोले— शिवजी! पृथ्वीपर आपका जो यह लिङ्ग गिराया गया है, उसे पुनः आप ग्रहण करें। इसीलिये हम आपकी स्तुति कर रहे हैं॥ ८३ ॥

हर उवाच

यद्यर्चयन्ति त्रिदशा मम लिङ्गं सुरोत्तमौ।
तदेतत्प्रतिगृह्णीयां नान्यथेति कथंचन॥ ८४

ततः प्रोवाच भगवानेवमस्त्विति केशवः।
ब्रह्मा स्वयं च जग्राह लिङ्गं कनकपिङ्गलम्॥ ८५

ततश्चकार भगवांश्चातुर्वर्ण्यं हरार्चने।
शास्त्राणि चैषां मुख्यानि नानोक्तिविदितानि च॥ ८६

आद्यं शैवं परिख्यातमन्यत्पाशुपतं मुने।
तृतीयं कालवदनं चतुर्थं च कपालिनम्॥ ८७

शिवजीने कहा— श्रेष्ठ देवो! यदि सभी देवता मेरे लिङ्गकी पूजा करना स्वीकार करें, तभी मैं इसे पुनः ग्रहण करूँगा, अन्यथा किसी प्रकार भी इसे नहीं धारण करूँगा। तब भगवान् विष्णु बोले— ऐसा ही होगा। फिर ब्रह्माजीने स्वयं उस स्वर्णके सदृश पिंगल लिङ्गको ग्रहण किया। तब भगवान्‌ने चारों वर्णोंको हर लिङ्गकी अर्चनाका अधिकारी बनाया। इनके मुख्य शास्त्र नाना प्रकारके वचनोंसे प्रख्यात हैं मुने! उन शिव-भक्तोंका प्रथम सम्प्रदाय शैव, द्वितीय पाशुपत, तृतीय कालमुख[1] और चतुर्थ सम्प्रदाय कापालिक या भैरवनामसे विख्यात है[2]॥ ८४—८७ ॥

शैवश्चासीत्स्वयं शक्तिर्वसिष्ठस्य प्रियः सुतः।
तस्य शिष्यो बभूवाथ गोपायन इति श्रुतः॥ ८८

महापाशुपतश्चासीद्भरद्वाजस्तपोधनः।
तस्य शिष्योऽप्यभूद्राजा ऋषभः सोमकेश्वरः॥ ८९

कालास्यो भगवानासीदापस्तम्बस्तपोधनः।
तस्य शिष्यो भवद्वैश्यो नाम्ना क्राथेश्वरो मुने॥ ९०

महर्षि वसिष्ठके प्रियपुत्र शक्ति ऋषि स्वयं शैव थे। उनके एक शिष्य गोपायन नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने शैव सम्प्रदायको दूरतक फैलाया। तपोधन भरद्वाज महापाशुपत थे और सोमकेश्वर राजा ऋषभ उनके शिष्य हुए, जिनसे पाशुपत सम्प्रदाय विशेषरूपसे परिवर्तित हुआ। मुने! ऐश्वर्य एवं तपस्याके धनी महर्षि आपस्तम्ब कालमुख सम्प्रदायके आचार्य थे। क्राथेश्वर नामके उनके वैश्य शिष्यने इस सम्प्रदायका विशेष रूपसे प्रचार

१ गणेशसहस्रनामके 'खद्योत' भाष्यमें कालमुखमतका विशेष परिचय है।
२-शैवं पाशुपतं कालमुखं भैरवशासनम्। (गणेशसहस्रनाम १२९)

महाव्रती च धनदस्तस्य शिष्यश्च वीर्यवान्।
कर्णोदर इति ख्यातो जात्या शूद्रो महातपाः ॥ ९१

किया। महाव्रती साक्षात् कुबेर प्रथम कापालिक या भैरव-सम्प्रदायके आचार्य हुए थे। शूद्रजातिके महातपस्वी कर्णोदर नामक उनके एक प्रसिद्ध शिष्य हुए। इन्होंने इस मतका विशेष प्रचार किया[1] ॥ ८८—९१ ॥

एवं स भगवान् ब्रह्मा पूजनाय शिवस्य तु।
कृत्वा तु चातुराश्रम्यं स्वमेव भवनं गतः ॥ ९२

गते ब्रह्मणि शर्वोऽपि उपसंहृत्य तं तदा।
लिङ्गं चित्रवने सूक्ष्मं प्रतिष्ठाप्य चचार ह ॥ ९३

विचरन्तं तदा भूयो महेशं कुसुमायुधः।
आरात्स्थित्वाऽग्रतो धन्वी संतापयितुमुद्यतः ॥ ९४

ततस्तमग्रतो दृष्ट्वा क्रोधाध्मातदृशा हरः।
स्मरमालोकयामास शिखाग्राच्चरणान्तिकम् ॥ ९५

इस प्रकार ब्रह्माजी शिवकी उपासनाके लिये चार सम्प्रदायोंका विधान कर ब्रह्मलोकको चले गये। ब्रह्माजीके जानेपर महादेवने उस लिङ्गको उपसंहृत कर लिया—समेट लिया एवं वे चित्रवनमें सूक्ष्म लिङ्ग प्रतिष्ठापित कर विचरण करने लगे। वहाँ भी शिवजीको घूमते देख पुष्पधनुष कामदेव पुनः उनके सामने सहसा बहुत निकट आकर उन्हें संतापन बाणसे बेधनेको उद्यत हुआ। तब उसे इस प्रकार सामने खड़ा देखकर शिवजीने उस कामदेवको सिरसे चरणतक क्रोधभरी दृष्टिसे देखा ॥ ९२—९५ ॥

आलोकितस्त्रिनेत्रेण मदनो द्युतिमानपि।
प्रादह्यत तदा ब्रह्मन् पादादारभ्य कक्षवत् ॥ ९६

प्रदह्यमानौ चरणौ दृष्ट्वाऽसौ कुसुमायुधः।
उत्ससर्ज धनुः श्रेष्ठं तज्जगामाथ पञ्चधा ॥ ९७

यदासीन्मुष्टिबन्धं तु रुक्मपृष्ठं महाप्रभम्।
स चम्पकतरुर्जातः सुगन्धाढ्यो गुणाकृतिः ॥ ९८

नाहस्थानं शुभाकारं यदासीद्वज्रभूषितम्।
तज्जातं केसरारण्यं बकुलं नामतो मुने ॥ ९९

या च कोटी शुभा ह्यासीदिन्द्रनीलविभूषिता।
जाता सा पाटला रम्या भृङ्गराजिविभूषिता ॥ १००

ब्रह्मन्! वह कामदेव अत्यन्त तेजस्वी था। फिर भी भगवान्‌द्वारा इस प्रकार दृष्ट होनेपर वह पैरसे लेकर कटिपर्यन्त दग्ध हो गया। अपने चरणोंको जलते हुए देखकर पुष्पायुध कामने अपने श्रेष्ठ धनुषको दूर फेंक दिया। इससे उसके पाँच टुकड़े हो गये। उस धनुषका जो चमचमाता हुआ सुवर्णयुक्त मुठबंध था, वह सुगन्धपूर्ण सुन्दर चम्पक वृक्ष हो गया। मुने! उस धनुषका जो हीरा जड़ा हुआ सुन्दर कृतिवाला नाहस्थान था, वह केसरवनमें बकुल (मौलेसरी) नामका वृक्ष बना। इन्द्रनीलसे सुशोभित उसकी सुन्दर कोटि भृंगोंसे विभूषित सुन्दर पाटला (गुलाब)-के रूपमें परिणत हो गयी ॥ ९६—१०० ॥

नाहोपरि तथा मुष्टौ स्थानं शशिमणिप्रभम्।
पञ्चगुल्माऽभवज्जाती शशाङ्ककिरणोज्ज्वला ॥ १०१

ऊर्ध्वं मुष्ट्या अधः कोट्योः स्थाने विद्रुमभूषितम्।
तस्माद्बहुपुटा मल्ली संजाता विविधा मुने ॥ १०२

पुष्पोत्तमानि रम्याणि सुरभीणि च नारद।
जातियुक्तानि देवेन स्वयमाचरितानि च ॥ १०३

मुमोच मार्गणान् भूम्यां शरीरे दह्यति स्मरः।
फलोपगानि वृक्षाणि संभूतानि सहस्रशः ॥ १०४

धनुषनाहके ऊपर मुष्टिमें स्थित चन्द्रकान्तमणिकी प्रभासे युक्त स्थान चन्द्रकिरणके समान उज्ज्वल पाँच गुल्मवाली जाती (चमेली पुष्प) बन गया। मुने! मुष्टिके ऊपर और दोनों कोटियोंके नीचेवाले विद्रुममणि-विभूषित स्थानसे अनेक पुटोंवाली मल्लिका (मालती) हो गयी। नारदजी! देवके द्वारा जातीके साथ अन्य सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पोंकी सृष्टि हुई। ऊर्ध्व शरीरके दग्ध होनेके समय कामदेवने अपने बाणोंको भी पृथ्वीपर फेंका था, इससे हजारों प्रकारके फलयुक्त वृक्ष

१-इसपर डॉ० भण्डारकरके 'वैष्णविज्म शैविज्म'में विस्तृत विचार है।

घृतादीनि सुगन्धीनि स्वादूनि विविधानि च।
हरप्रसादाज्जातानि भोज्यान्यपि सुरोत्तमैः॥ १०५

एवं दग्ध्वा स्मरं रुद्रः संयम्य स्वतनुं विभुः।
पुण्यार्थी शिशिराद्रिं स जगाम तपसेऽव्ययः॥ १०६

एवं पुरा देववरेण शम्भुना
कामस्तु दग्धः सशरः सचापः।
ततस्त्वनङ्गेति महाधनुर्द्धरो
देवैस्तु गीतः सुरपूर्वपूजितः॥ १०७

उत्पन्न हो गये। शिवजीकी कृपासे श्रेष्ठ देवताओंद्वारा भी अनेक प्रकारके सुगन्धित एवं स्वादिष्ट आम्र आदि फल उत्पन्न हुए, जो खानेमें स्वादयुक्त हैं। इस प्रकार कामदेवको भस्म कर एवं अपने शरीरको संयतकर समर्थ, अविनाशी शिव पुण्यकी कामनासे हिमालयपर तपस्या करने चले गये। इस प्रकार प्राचीन समयमें देवश्रेष्ठ शिवजीद्वारा धनुषबाणसहित काम दग्ध किया गया था। तबसे देवताओंमें प्रथम पूजित वह महाधनुर्धर देवोंद्वारा 'अनङ्ग' कहा गया॥ १०१—१०७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

उर्वशीकी उत्पत्ति-कथा, प्रह्लाद प्रसंग—नरनारायणसे संवाद एवं युद्धोपक्रम

पुलस्त्य उवाच

ततोऽनङ्गं विभुर्दृष्ट्वा ब्रह्मन् नारायणो मुनिः।
प्रहस्यैवं वचः प्राह कन्दर्प इह आस्यताम्॥ १

तदक्षुब्धत्वमीक्ष्यास्य कामो विस्मयमागतः।
वसन्तोऽपि महाचिन्तां जगामाशु महामुने॥ २

ततश्चाप्सरसो दृष्ट्वा स्वागतेनाभिपूज्य च।
वसन्तमाह भगवानेह्येहि स्थीयतामिति॥ ३

ततो विहस्य भगवान् मञ्जरीं कुसुमावृताम्।
आदाय प्राक्सुवर्णाङ्गीमूर्वोर्बालां विनिर्ममे॥ ४

ऊरूद्भवां स कन्दर्पो दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरीम्।
अमन्यत तदाऽनङ्गः किमियं सा प्रिया रतिः॥ ५
तदेव वदनं चारु स्वाक्षिभ्रुकुटिलालकम्।
सुनासावंशाधरोष्ठमालोकनपरायणम्॥ ६

तावेवाहार्यविरली पीवरौ मग्नचूचुकौ।
राजेतेऽस्याः कुचौ पीनौ सज्जनाविव संहतौ॥ ७

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी, उसके बाद समर्थ नारायण ऋषि कामदेवको हँसते हुए देखकर यों बोले—काम! तुम यहाँ बैठो। काम उनकी उस अक्षुब्धता (स्थिरता) को देखकर चकित हो गया। महामुने! वसन्तको भी उस समय बड़ी चिन्ता हुई। फिर अप्सराओंकी ओर देखकर स्वागतके द्वारा उनकी पूजा कर भगवान् नारायणने वसन्तसे कहा—आओ बैठो। उसके पश्चात् भगवान् नारायण मुनिने हँसकर एक फूलसे भरी मञ्जरी ली और अपने ऊरुपर एक सुवर्ण अङ्गवाली तरुणीका चित्र लिखकर उसकी सजीव रचना कर दी। नारायणकी जाँघसे उत्पन्न उस सर्वाङ्ग सुन्दरीको देखकर कामदेव मनमें सोचने लगा—क्या यह सुन्दरी मेरी पत्नी रति है!॥ १—५॥

इसकी वैसी ही सुन्दर आँखें, भौंह एवं कुटिल अलकें हैं। इसका वैसा ही मुखमण्डल, वैसी सुन्दर नासिका, वैसा वंश और वैसा ही इसका अधरोष्ठ भी सुन्दर है। इसे देखनेसे तृप्ति नहीं होती है। रतिके समान ही मनोहर तथा अत्यन्त मग्न चूचुकवाले स्थूल (मांसल) स्तन दो सज्जन पुरुषोंके सदृश परस्पर मिले हैं। इस

तदेव तनु चार्वङ्ग्या वलित्रयविभूषितम्।
उदरं राजते श्लक्ष्णं रोमावलिविभूषितम्॥ ८

रोमावली च जघनाद् यान्ती स्तनतटं त्वियम्।
राजते भृङ्गमालेव पुलिनात् कमलाकरम्॥ ९

जघनं त्वतिविस्तीर्णं भात्यस्या रशनावृतम्।
क्षीरोदमथने नद्धं भुजङ्गेनेव मन्दरम्॥ १०

कदलीस्तम्भसदृशैरूर्ध्वमूलैरथोरुभिः।
विभाति सा सुचार्वङ्गी पद्मकिञ्जल्कसंनिभा॥ ११

जानुनी गूढगुल्फे च शुभे जङ्घे त्वरोमशे।
विभातोऽस्यास्तथा पादावलक्तकसमत्विषौ॥ १२

इति संचिन्तयन् कामस्तामनिन्दितलोचनाम्।
कामातुरोऽसौ संजातः किमुतान्यो जनो मुने॥ १३

सुन्दरीका वैसा ही कृश, त्रिवलीयुक्त, कोमल तथा रोमावलिवाला उदर भी शोभित हो रहा है। उदरपर नीचेसे ऊपरकी ओर स्तनतटतक जाती हुई इसकी रोमराजि सरोवर आदिके तटसे कमलवृन्दकी ओर जाती हुई भ्रमर मण्डलीके समान सुशोभित हो रही है॥ ६—९॥

इसका करधनीसे मण्डित स्थूल जघन-प्रदेश क्षीरसागरके मन्थनके समयमें वासुकि नागसे वेष्टित मन्दरपर्वतके समान सुशोभित हो रहा है। कदली-स्तम्भके समान ऊर्ध्वमूल ऊरुओंवाली कमलके केसरके समान गौरवर्णकी यह सुन्दरी है। इसके दोनों घुटने, गूढगुल्फ, रोमरहित सुन्दर जंघा तथा अलक्तकके समान कान्तिवाले दोनों पैर अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। मुने! इस प्रकार उस सुन्दरीके विषयमें सोचते हुए जब यह कामदेव स्वयमेव कामातुर हो गया तो फिर अन्य पुरुषोंकी तो बात ही क्या थी॥ १०—१३॥

माधवोऽप्युर्वशीं दृष्ट्वा संचिन्तयत नारद।
किंस्वित् कामनरेन्द्रस्य राजधानी स्वयं स्थिता॥ १४

आयाता शशिनो नूनमियं कान्तिर्निशाक्षये।
रविरश्मिप्रतापार्तिभीता शरणमागता॥ १५

इत्थं संचिन्तयन्नेव अवष्टभ्याप्सरोगणम्।
तस्थौ मुनिरिव ध्यानमास्थितः स तु माधवः॥ १६

ततः स विस्मितान् सर्वान् कन्दर्पादीन् महामुने।
दृष्ट्वा प्रोवाच वचनं स्मितं कृत्वा शुभव्रतः॥ १७

इयं ममोरुसम्भूता कामाप्सरस माधव।
नीयतां सुरलोकाय दीयतां वासवाय च॥ १८

इत्युक्ताः कम्पमानास्ते जग्मुर्गृह्योर्वशीं दिवम्।
सहस्राक्षाय तां प्रादाद् रूपयौवनशालिनीम्॥ १९

आचख्युश्चरितं ताभ्यां धर्मजाभ्यां महामुने।
देवराजाय कामाद्यास्ततोऽभूद् विस्मयः परः॥ २०

एतादृशं हि चरितं ख्यातिमग्र्यां जगाम ह।
पातालेषु तथा मर्त्ये दिक्ष्वष्टासु जगाम च॥ २१

नारदजी! तब वसन्त भी उस उर्वशीको देखकर सोचने लगा कि क्या यह राजा कामकी राजधानी ही स्वयं आकर उपस्थित हो गयी है? अथवा रात्रिका अन्त होनेपर सूर्यकी किरणोंके तापके भयसे स्वयं चन्द्रिका ही शरणमें आ गयी है। इस प्रकार सोचते हुए अप्सराओंको रोककर वसन्त मुनिके सदृश ध्यानस्थ हो गया। महामुने! उसके बाद शुभव्रत नारायण मुनिने कामादि सभीको चकित देखकर हँसते हुए कहा—हे काम, हे अप्सराओ, हे वसन्त! यह अप्सरा मेरी जाँघसे उत्पन्न हुई है। इसे तुम लोग देवलोकमें ले जाओ और इन्द्रको दे दो। उनके ऐसा कहनेपर वे सभी भयसे काँपते हुए उर्वशीको लेकर स्वर्गमें चले गये और उस रूप-यौवनशालिनी अप्सराको इन्द्रको दे दिया। महामुने! उन कामादिने इन्द्रसे उन दोनों धर्मके पुत्रों (नर-नारायण)-के चरित्रको कहा, जिससे इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। नर और नारायणके इस चरित्रकी चर्चा आगे सर्वत्र बढ़ती गयी तथा वह पाताल, मर्त्यलोक एवं सभी दिशाओंमें व्याप्त हो गयी॥ १४—२१॥

एकदा निहते रौद्रे हिरण्यकशिपौ मुने।
अभिषिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम दानवः॥ २२

मुने! एक बारकी बात है। जब भयंकर हिरण्यकशिपु मारा गया तब प्रह्लाद नामक दानव राजगद्दीपर बैठा

तस्मिञ्शासति दैत्येन्द्रे देवब्राह्मणपूजके।
मखानि भुवि राजानो यजन्ते विधिवत्तदा॥ २३

ब्राह्मणाश्च तपो धर्मं तीर्थयात्राश्च कुर्वते।
वैश्याश्च पशुवृत्तिस्थाः शूद्राः शुश्रूषणे रताः॥ २४
चातुर्वर्ण्यं ततः स्वे स्वे आश्रमे धर्मकर्मणि।
आवर्त्तत ततो देवा वृत्त्या युक्ताभवन् मुने॥ २५

ततस्तु च्यवनो नाम भार्गवेन्द्रो महातपाः।
जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थं च नकुलीश्वरम्॥ २६

तत्र दृष्ट्वा महादेवं नदीं स्नातुमवातरत्।
अवतीर्णं प्रजग्राह नागः केकरलोहितः॥ २७

गृहीतस्तेन नागेन सस्मार मनसा हरिम्।
संस्मृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः॥ २८
नीतस्तेनातिरौद्रेण पन्नगेन रसातलम्।
निर्विषश्चापि तत्याज च्यवनं भुजगोत्तमः॥ २९
संत्यक्तमात्रो नागेन च्यवनो भार्गवोत्तमः।
चचार नागकन्याभिः पूज्यमानः समन्ततः॥ ३०
विचरन् प्रविवेशाथ दानवानां महत् पुरम्।
संपूज्यमानो दैत्येन्द्रैः प्रह्लादोऽथ ददर्श तम्॥ ३१
भृगुपुत्रे महातेजाः पूजां चक्रे यथार्हतः।
संपूजितोपविष्टश्च पृष्टश्चागमनं प्रति॥ ३२
स चोवाच महाराज महातीर्थं महाफलम्।
स्नातुमेवागतोऽस्म्यद्य द्रष्टुं च नकुलीश्वरम्॥ ३३

नद्यामेवावतीर्णोऽस्मि गृहीतश्चाहिना बलात्।
समानीतोऽस्मि पाताले दृष्टश्चात्र भवानपि॥ ३४

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं च्यवनस्य दितीश्वरः।
प्रोवाच धर्मसंयुक्तं स वाक्यं वाक्यकोविदः॥ ३५

प्रह्लाद उवाच

भगवन् कानि तीर्थानि पृथिव्यां कानि चाम्बरे।
रसातले च कानि स्युरेतद् वक्तुं त्वमर्हसि॥ ३६

वह देवता और ब्राह्मणोंका पूजक था। उसके शासनकालमें पृथ्वीपर राजा लोग विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान करते थे। ब्राह्मण लोग तपस्या, धर्म-कार्य और तीर्थयात्रा, वैश्य लोग पशुपालन तथा शूद्र लोग सबकी सेवा प्रेमसे करते थे॥ २३—२४॥

मुने! इस प्रकार चारों वर्ण अपने आश्रममें स्थित रहकर धर्म कार्योंमें लगे रहते थे। इससे देवता भी अपने कर्ममें संलग्न हो गये।[1] उसी समय ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ भार्गववंशी महातपस्वी च्यवन नामक ऋषि नर्मदाके नकुलीश्वर तीर्थमें स्नान करने गये। वहाँ वे महादेवका दर्शनकर नदीमें स्नान करनेके लिये उतरे। जलमें उतरते ही ऋषिको एक भूरे वर्णके साँपने पकड़ लिया। उस साँपद्वारा पकड़े जानेपर ऋषिने अपने मनमें विष्णु भगवान्का स्मरण किया। कमलनयन भगवान् श्रीहरिका स्मरण करनेपर वह महान् सर्प विषहीन हो गया॥ २५—२८॥

फिर उस भयंकर विषरहित सर्पने च्यवन मुनिको रसातलमें ले जाकर छोड़ दिया। सर्पने भार्गवश्रेष्ठ च्यवनको मुक्त कर दिया। फिर वे नागकन्याओंसे पूजित होते हुए चारों ओर विचरण करने लगे। वहाँ घूमते हुए वे दानवोंके विशाल नगरमें प्रविष्ट हुए। इसके बाद श्रेष्ठ दैत्योंद्वारा पूजित प्रह्लादने उन्हें देखा। महातेजस्वी प्रह्लादने भृगुपुत्रकी यथायोग्य पूजा की। पूजाके बाद उनके बैठनेपर प्रह्लादने उनसे उनके आगमनका कारण पूछा॥ २९—३२॥

उन्होंने कहा—महाराज! आज मैं महाफलदायक महातीर्थमें स्नान एवं नकुलीश्वरका दर्शन करने आया था। वहाँ नदीमें उतरते ही एक नागने मुझे बलात् पकड़ लिया। वही मुझे पातालमें लाया और मैंने यहाँ आपको भी देखा। च्यवनकी इस बातको सुनकर सुन्दर वचन बोलनेवाले दैत्योंके ईश्वर (प्रह्लाद)-ने धर्मसंयुक्त यह वाक्य कहा॥ ३३—३५॥

प्रह्लादने पूछा—भगवन्! कृपा करके मुझे बतलाइये कि पृथ्वी, आकाश और पातालमें कौन-कौनसे (महान्) तीर्थ हैं?॥ ३६॥

१. देवताओंके धर्मका वर्णन सुकेशी-उपाख्यानमें आगे आया है।

च्यवन उवाच

पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम्।
चक्रतीर्थं महाबाहो रसातलतले विदुः॥ ३७

पुलस्त्य उवाच

श्रुत्वा तद्भार्गववचो दैत्यराजो महामुने।
नैमिषे गन्तुकामस्तु दानवानिदमब्रवीत्॥ ३८

प्रह्लाद उवाच

उत्तिष्ठध्वं गमिष्यामः स्नातुं तीर्थं हि नैमिषम्।
द्रक्ष्यामः पुण्डरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम्॥ ३९

(प्रह्लादके वचनको सुनकर) च्यवनजीने कहा—महाबाहो! पृथ्वीमें नैमिषारण्यतीर्थ, अन्तरिक्षमें पुष्कर और पातालमें चक्रतीर्थ प्रसिद्ध हैं॥ ३७॥

पुलस्त्यजीने कहा—महामुने! भार्गवकी इसी बातको सुनकर दैत्यराज प्रह्लादने नैमिषतीर्थमें जानेके लिये इच्छा प्रकट की और दानवोंसे यह बात कही॥ ३८॥

प्रह्लाद बोले—उठो, हम सभी नैमिष-तीर्थमें स्नान करने जायँगे तथा वहाँ पीताम्बरधारी एवं कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् अच्युत (विष्णु)-के दर्शन करेंगे॥ ३९॥

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्ता दानवेन्द्रेण सर्वे ते दैत्यदानवाः।
चक्रुरुद्योगमतुलं निर्जग्मुश्च रसातलात्॥ ४०

ते समभ्येत्य दैतेया दानवाश्च महाबलाः।
नैमिषारण्यमागत्य स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः॥ ४१

ततो दितीश्वरः श्रीमान् मृगव्यां स चचार ह।
चरन् सरस्वतीं पुण्यां ददर्श विमलोदकाम्॥ ४२

तस्यादूरे महाशाखं शालवृक्षं शरैश्चितम्।
ददर्श बाणानपरान् मुखे लग्नान् परस्परम्॥ ४३

पुलस्त्यजीने कहा—दैत्यराज प्रह्लादके ऐसा कहनेपर वे सभी दैत्य और दानव रसातलसे बाहर निकले एवं अतुलनीय उद्योगमें लग गये। उन महाबलवान् दितिपुत्रों एवं दानवोंने नैमिषारण्यमें आकर आनन्दपूर्वक स्नान किया। इसके बाद श्रीमान् दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद मृगया (आखेट या शिकार)-के लिये वनमें घूमने लगे। वहाँ घूमते हुए उन्होंने पवित्र एवं निर्मल जलवाली सरस्वती नदीको देखा। वहीं समीप ही बाणोंसे खचाखच बिंधे बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले एक शाल वृक्षको देखा। वे सभी बाण एक-दूसरेके मुखसे लगे हुए थे॥ ४०—४३॥

ततस्तानद्भुताकारान् बाणान् नागोपवीतकान्।
दृष्ट्वाऽतुलं तदा चक्रे क्रोधं दैत्येश्वरः किल॥ ४४

स ददर्श ततो दूरात्कृष्णाजिनधरौ मुनी।
समुन्नतजटाभारौ तपस्यासक्तमानसौ॥ ४५

तयोश्च पार्श्वयोर्दिव्ये धनुषी लक्षणान्विते।
शार्ङ्गमाजगवं चैव अक्षय्यौ च महेषुधी॥ ४६

तौ दृष्ट्वाऽमन्यत तदा दाम्भिकाविति दानवः।
ततः प्रोवाच वचनं तावुभौ पुरुषोत्तमौ॥ ४७

तब उन अद्भुत आकारवाले नागोपवीत (साँपोंसे लिपटे) बाणोंको देखकर दैत्येश्वरको बड़ा क्रोध हुआ। फिर उन्होंने दूरसे ही काले मृगचर्मको धारण किये हुए बड़ी-बड़ी जटाओंवाले तथा तपस्यामें लगे दो मुनियोंको देखा। उन दोनोंके बगलमें सुलक्षण शार्ङ्ग और आजगव नामक दो दिव्य धनुष एवं दो अक्षय तथा बड़े-बड़े तरकस वर्तमान थे। उन दोनोंको इस प्रकार देखकर दानवराज प्रह्लादने उन्हें दम्भसे युक्त समझा। फिर उन्होंने उन दोनों श्रेष्ठ पुरुषोंसे कहा—॥ ४४—४७॥

किं भवद्भ्यां समारब्धं दम्भं धर्मविनाशनम्।
क्व तपः क्व जटाभारः क्व चेमौ प्रवरायुधौ॥ ४८

आप दोनों यह धर्मविनाशक दम्भपूर्ण कार्य क्यों कर रहे हैं? कहाँ तो आपकी यह तपस्या और जटाभार, कहाँ ये दोनों श्रेष्ठ अस्त्र? इसपर नरने उनसे कहा—

अथोवाच नरो दैत्यं का ते चिन्ता दितीश्वर।
सामर्थ्ये सति यः कुर्यात् तत्संपद्येत तस्य हि॥ ४९

दैत्येश्वर! तुम उसकी चिन्ता क्यों कर रहे हो? सामर्थ्य रहनेपर कोई भी व्यक्ति जो कर्म करता है, उसे वही

अथोवाच दितीशस्तौ का शक्तिर्युवयोरिह।
मयि तिष्ठति दैत्येन्द्रे धर्मसेतुप्रवर्तके॥५०

नरस्तं प्रत्युवाचाथ आवाभ्यां शक्तिरर्जिता।
न कश्चिच्छक्नुयाद् योद्धुं नरनारायणौ युधि॥५१
दैत्येश्वरस्ततः क्रुद्धः प्रतिज्ञामारुरोह च।
यथा कथंचिज्जेष्यामि नरनारायणौ रणे॥५२
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
दितीश्वरः स्थाप्य बलं वनान्ते।
वितत्य चापं गुणमाविकृष्य
तलध्वनिं घोरतरं चकार॥५३
ततो नरस्त्वाजगवं हि चाप-
मानम्य बाणान् सुबहूञ्छिताग्रान्।
मुमोच तानप्रतिमैः पृषत्कै-
श्चिच्छेद दैत्यस्तपनीयपुङ्खैः॥५४
छिन्नान् समीक्ष्याथ नरः पृषत्कान्
दैत्येश्वरेणाप्रतिमेन संख्ये।
क्रुद्धः समानम्य महाधनुस्ततो
मुमोच चान्यान् विविधान् पृषत्कान्॥५५
एकं नरो द्वौ दितिजेश्वरश्च
त्रीन् धर्मसूनुश्चतुरो दितीशः।
नरस्तु बाणान् प्रमुमोच पञ्च
षड् दैत्यनाथो निशितान् पृषत्कान्॥५६
सप्तर्षिमुख्यो द्विचतुश्च दैत्यो
नरस्तु षट् त्रीणि च दैत्यमुख्ये।
षट्त्रीणि चैकं च दितीश्वरेण
मुक्तानि बाणानि नराय विप्र॥५७
एकं च षट् पञ्च नरेण मुक्ता-
स्त्वष्टौ शराः सप्त च दानवेन।
षट् सप्त चाष्टौ नव षण्नरेण
द्विसप्ततिं दैत्यपतिः ससर्ज॥५८
शतं नरस्त्रीणि शतानि दैत्यः
षड् धर्मपुत्रो दश दैत्यराजः।
ततोऽप्यसंख्येयतरान् हि बाणान्
मुमोचतुस्तौ सुभृशं हि कोपात्॥५९
ततो नरो बाणगणैरसंख्यै-
रवास्तरद्भूमिमथो दिशः खम्।
स चापि दैत्यप्रवरः पृषत्कै-
श्चिच्छेद वेगात् तपनीयपुङ्खैः॥६०

शोभा देता है। तब दितीश्वर प्रह्लादने उन दोनोंसे कहा—धर्मसेतुके स्थापित करनेवाले मुझ दैत्येन्द्रके रहते यहाँ आप लोग (सामर्थ्य-बलसे) क्या कर सकते हैं? इसपर नरने उन्हें उत्तर दिया—हमने पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर ली है। हम नर और नारायण—दोनोंसे कोई भी युद्ध नहीं कर सकता॥ ४८—५१॥

इसपर दैत्येश्वरने क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा कर दी कि मैं युद्धमें जिस किसी भी प्रकार आप नर और नारायण दोनोंको जीतूँगा। ऐसी प्रतिज्ञाकर दैत्येश्वर प्रह्लादने वनकी सीमापर अपनी सेना खड़ी कर दी और धनुषको फैलाकर उसपर डोरी चढ़ायी तथा घोरतर करतलध्वनि की ताल ठोंकी। इसपर नरने भी आजगव धनुषको चढ़ाकर बहुत-से तेज बाण छोड़े परंतु प्रह्लादने अनेक स्वर्ण-पुंखवाले अप्रतिम बाणोंसे उन बाणोंको काट डाला। फिर नरने युद्धमें अप्रतिम दैत्येश्वरके द्वारा बाणोंको नष्ट हुआ देख क्रुद्ध होकर अपने महान् धनुषको चढ़ाकर पुनः अन्य अनेक तीक्ष्ण बाण छोड़े॥ ५२—५५॥

नरके एक बाण छोड़नेपर प्रह्लादने दो बाण छोड़े; नरके तीन बाण छोड़नेपर प्रह्लादने चार बाण छोड़े इसके बाद पुनः नरने पाँच बाण और फिर दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लादने छः तेज बाण छोड़े। विप्र! नरके सात बाण छोड़नेपर दैत्यने आठ बाण छोड़े। नरके नव बाण छोड़नेपर प्रह्लादने उनपर दस बाण छोड़े। नरके बारह बाण छोड़नेपर दानवने पंद्रह बाण छोड़े। नरके छत्तीस बाण छोड़नेपर दैत्यपतिने बहत्तर बाण चलाये। नरके सौ बाणोंपर दैत्यने तीन सौ बाण चलाये। धर्मपुत्रके छः सौ बाणोंपर दैत्यराजने एक हजार बाण छोड़े। फिर तो उन दोनोंने अत्यन्त क्रोधसे (एक-दूसरेपर) असंख्य बाण छोड़े॥ ५६—५९॥

उसके बाद नरने असंख्य बाणोंसे पृथ्वी, आकाश और दिशाओंको ढक दिया। फिर दैत्यप्रवर प्रह्लादने स्वर्णपुंखवाले बाणोंको बड़े वेगसे छोड़कर उनके बाणोंको काट दिया। तब नर और दानव दोनों वीर बाणों

ततः पतत्त्रिभिर्वीरौ सुभृशं नरदानवौ।
युद्धे वरास्त्रैर्युध्येतां घोररूपैः परस्परम्॥ ६१
ततस्तु दैत्येन वरास्त्रपाणिना
चापे नियुक्तं तु पितामहास्त्रम्।
महेश्वरास्त्रं पुरुषोत्तमेन
समं समाहत्य निपेततुस्तौ॥ ६२
ब्रह्मास्त्रे तु प्रशमिते प्रह्लादः क्रोधमूर्च्छितः।
गदां प्रगृह्य तरसा प्रचस्कन्द रथोत्तमात्॥ ६३
गदापाणिं समायान्तं दैत्यं नारायणस्तदा।
दृष्ट्वाऽथ पृष्ठतश्चक्रे नरं योद्धुमनाः स्वयम्॥ ६४
ततो दितीशः सगदः समाद्रवत्
सशार्ङ्गपाणिं तपसां निधानम्।
ख्यातं पुराणर्षिमुदारविक्रमं
नारायणं नारद लोकपालम्॥ ६५

तथा भयंकर श्रेष्ठ अस्त्रोंसे परस्पर युद्ध करने लगे। इसके बाद दैत्यने हाथमें ब्रह्मास्त्र लेकर उस धनुषपर नियोजित कर चला दिया एवं उन पुरुषोत्तमने भी माहेश्वरास्त्रका प्रयोग कर दिया। वे दोनों अस्त्र परस्पर एक-दूसरेसे टकरा खाकर गिर गये। ब्रह्मास्त्रके व्यर्थ होनेपर क्रोधसे मूर्च्छित हुए प्रह्लाद वेगसे गदा लेकर उत्तम रथसे कूद पड़े॥ ६०—६३॥

ऋषि नारायणने उस समय दैत्यको हाथमें गदा लिये अपनी ओर आते देखकर स्वयं युद्ध करनेकी इच्छासे नरको पीछे हटा दिया। नारदजी! तब प्रह्लादजी गदा लेकर तपोनिधान, शार्ङ्गधनुषको धारण करनेवाले, प्रसिद्ध पुरातन ऋषि, महापराक्रमशाली, लोकपति नारायणकी ओर दौड़ पड़े॥ ६४-६५॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७॥

प्रह्लाद और नारायणका तुमुल युद्ध, भक्तिसे विजय

पुलस्त्य उवाच

शार्ङ्गपाणिनमायान्तं दृष्ट्वाऽग्रे दानवेश्वरः।
परिभ्राम्य गदां वेगान्मूर्ध्नि साध्यमताडयत्॥ १
ताडितस्याथ गदया धर्मपुत्रस्य नारद।
नेत्राभ्यामपतद् वारि वह्निवर्षनिभं भुवि॥ २
मूर्ध्नि नारायणस्यापि सा गदा दानवार्पिता।
जगाम शतधा ब्रह्मन्शैलशृङ्गे यथाऽशनिः॥ ३
ततो निवृत्य दैत्येन्द्रः समास्थाय रथं द्रुतम्।
आदाय कार्मुकं वीरस्तूणाद् बाणं समाददे॥ ४
आनम्य चापं वेगेन गार्ध्रपत्राञ्छिलीमुखान्।
मुमोच साध्याय तदा क्रोधान्धकारिताननः॥ ५
तानापतत एवाशु बाणांश्चन्द्रार्धसन्निभान्।
चिच्छेद बाणैरपरैर्निर्बिभेद च दानवम्॥ ६

पुलस्त्यजी बोले— प्रह्लादने जब हाथमें शार्ङ्गधनुष लिये भगवान् नारायणको सामनेसे आते देखा तो अपनी गदा घुमाकर वेगसे उनके सिरपर प्रहार कर दिया। नारदजी! गदासे प्रताड़ित होनेपर नारायणके नेत्रोंसे आगके स्फुलिंगके समान आँसू पृथ्वीपर गिरने लगे। ब्रह्मन्! पर्वतकी चोटीपर गिरकर जैसे वज्र टूट जाता है, उसी प्रकार दानवद्वारा नारायणके सिरपर चलायी गयी वह गदा भी सैकड़ों टुकड़े हो गयी। इसके बाद शीघ्रतापूर्वक लौटकर वीर दैत्येन्द्रने रथपर आरूढ़ हो धनुष लेकर अपनी तरकससे बाण निकाल लिया॥ १—४॥

फिर क्रोधान्ध प्रह्लादने शीघ्रतासे धनुषको चढ़ाकर गृध्रके पंखवाले अनेक बाणोंको नारायणकी ओर चलाया। नारायणने भी बड़ी शीघ्रतासे अपनी ओर आ रहे उन अर्धचन्द्र-तुल्य बाणोंको अपने बाणोंसे काट डाला और कुछ दूसरे बाणोंसे प्रह्लादको विद्ध कर दिया। तब दैत्यने

ततो नारायणं दैत्यो दैत्यं नारायणः शरैः।
आविध्येतां तदाऽन्योन्यं मर्मभिद्भिरजिह्मगैः॥ ७

ततोऽम्बरे संनिपातो देवानामभवन्मुने।
दिदृक्षूणां तदा युद्धं लघु चित्रं च सुष्ठु च॥ ८

नारायणको और नारायणने दैत्यको—एक-दूसरेको—मर्मभेदी एवं सीधे चलनेवाले बाणोंसे बेध दिया। मुने! उस समय शीघ्रतापूर्वक हो रहे इस कौशलयुक्त विचित्र एवं सुन्दर युद्धको देखनेकी इच्छावाले देवताओंका समूह आकाशमें एकत्र हो गया॥ ५—८॥

ततः सुराणां दुन्दुभ्यस्त्ववाद्यन्त महास्वनाः।
पुष्पवर्षमनौपम्यं मुमुचुः साध्यदैत्ययोः॥ ९
ततः पश्यत्सु देवेषु गगनस्थेषु तावुभौ।
अयुध्येतां महेष्वासौ प्रेक्षकप्रीतिवर्द्धनम्॥ १०
बबन्धतुस्तदाकाशं तावुभौ शरवृष्टिभिः।
दिशश्च विदिशश्चैव छादयेतां शरोत्करैः॥ ११
ततो नारायणश्चापं समाकृष्य महामुने।
बिभेद मार्गणैस्तीक्ष्णैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु॥ १२
तथा दैत्येश्वरः क्रुद्धश्चापमानम्य वेगवान्।
बिभेद हृदये बाह्वोर्वदने च नरोत्तमम्॥ १३

उसके बाद बड़े जोरसे बजनेवाले नगाड़ोंको बजाकर देवताओंने भगवान् नारायणके और दैत्यके ऊपर अनुपमरूपमें पुष्पोंकी वर्षा की। फिर उन दोनों धनुर्धारियोंने आकाशमें स्थित देवताओंके सामने दर्शकोंको आनन्द देनेवाला (दिलचस्प) अनूठा युद्ध किया। उस समय उन दोनोंने बाणोंकी वृष्टिसे आकाशको मानो बाँध दिया और बाणवृष्टिसे दिशाओं एवं विदिशाओंको ढक दिया। महामुनि नारदजी! तब नारायणने धनुषको खींचकर तेज बाणोंसे प्रह्लादके सभी मर्मस्थलोंमें प्रहार किया और फुर्तीवाले दैत्येश्वरने क्रोधपूर्वक धनुषको चढ़ाकर नरोत्तमके हृदय, दोनों भुजाओं और मुँहको भी (बाणोंसे) बेध दिया॥ ९—१३॥

ततोऽस्यतो दैत्यपतेः कार्मुकं मुष्टिबन्धनात्।
चिच्छेदैकेन बाणेन चन्द्रार्धाकारवर्चसा॥ १४

अपास्यत धनुश्छिन्नं चापमादाय चापरम्।
अधिज्यं लाघवात् कृत्वा ववर्ष निशिताञ्शरान्॥ १५

तानप्यस्य शरान् साध्यश्छित्त्वा बाणैरवारयत्।
कार्मुकं च क्षुरप्रेण चिच्छेद पुरुषोत्तमः॥ १६

छिन्नं छिन्नं धनुर्दैत्यस्त्वन्यदन्यत्समाददे।
समादत्ते तदा साध्यो मुने चिच्छेद लाघवात्॥ १७

उसके बाद नारायणने बाण चला रहे प्रह्लादके धनुषके मुष्टिबन्धको अर्धचन्द्रके आकारवाले एक तेजस्वी बाणसे काट दिया। प्रह्लादने भी कटे धनुषको झट फेंककर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और शीघ्र ही उसकी प्रत्यञ्चा (डोरी) चढ़ाकर तेज बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। पर उसके उन शरोंको भी नारायणने बाणोंसे काटकर निवारित कर दिया और उन पुरुषोत्तमने तीक्ष्ण बाणसे उसके धनुषको भी काट डाला। नारदजी! एक धनुषके छिन्न होनेपर दैत्यराजने बारम्बार दूसरा धनुष ग्रहण किया, किंतु नारायणने लिये हुए उन-उन धनुषोंको भी तुरंत काटकर गिरा दिया॥ १४—१७॥

संछिन्नेष्वथ चापेषु जग्राह दितिजेश्वरः।
परिघं दारुणं दीर्घं सर्वलोहमयं दृढम्॥ १८

परिगृह्याथ परिघं भ्रामयामास दानवः।
भ्राम्यमाणं स चिच्छेद नाराचेन महामुनिः॥ १९

छिन्ने तु परिघे श्रीमान् प्रह्लादो दानवेश्वरः।
मुद्गरं भ्राम्य वेगेन प्रचिक्षेप नराग्रजे॥ २०

तमापतन्तं बलवान् मार्गणैर्दशभिर्मुने।
चिच्छेद दशधा साध्यः स छिन्नो न्यपतद् भुवि॥ २१

फिर धनुषोंके कट जानेपर दैत्यपति प्रह्लादने एक भयंकर, मजबूत और लौह (फौलाद) से बने 'परिघ' नामक अस्त्रको उठा लिया। उसे लेकर वे दानव (प्रह्लाद) चारों ओर घुमाने लगे। उस घुमाये जाते हुए परिघको भी महामुनि नारायणने बाणसे काट दिया। उसके कट जानेपर श्रीमान् दनुजेश्वर प्रह्लादने पुनः एक मुद्गरको वेगसे घुमाकर उसे नारायणके ऊपर फेंका। नारदजी! उस आते हुए मुद्गरको भी बलवान् नारायणने दस बाणोंसे दस भागोंमें काट दिया; वह नष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १८—२१॥

मुद्गरे वितथे जाते प्रासमाविध्य वेगवान्।
प्रचिक्षेप नराग्र्याय तं च चिच्छेद धर्मजः॥ २२
प्रासे छिन्ने ततो दैत्यः शक्तिमादाय चिक्षिपे।
तां च चिच्छेद बलवान् क्षुरप्रेण महातपाः॥ २३
छिन्नेषु तेषु शस्त्रेषु दानवोऽन्यन्महद्धनुः।
समादाय ततो बाणैरवतस्तार नारद॥ २४
ततो नारायणो देवो दैत्यनाथं जगद्गुरुः।
नाराचेन जघानाथ हृदये सुरतापसः॥ २५

प्रह्लादने मुद्गरके विफल हो जानेपर 'प्रास' नामक अस्त्र लेकर बड़े जोरसे नरके बड़े भाई नारायणके ऊपर चला दिया; पर इन्होंने उसे भी काट डाला। प्रासके नष्ट हो जानेपर दैत्यने तेज 'शक्ति' फेंकी, पर बलवान् महातपा नारायणने उसे भी अपने क्षुरप्रके द्वारा काट डाला। नारदजी! उन सभी अस्त्रोंके नष्ट हो जानेपर प्रह्लाद दूसरे विशाल धनुषको लेकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। तब परम तपस्वी जगद्गुरु नारायणदेवने प्रह्लादके हृदयमें नाराचसे प्रहार किया॥ २२—२५॥

संभिन्नहृदयो ब्रह्मन् देवेनाद्भुतकर्मणा।
निपपात रथोपस्थे तमपोवाह सारथिः॥ २६
स संज्ञां सुचिरेणैव प्रतिलभ्य दितीश्वरः।
सुदृढं चापमादाय भूयो योद्धुमुपागतः॥ २७
तमागतं संनिरीक्ष्य प्रत्युवाच नराग्रजः।
गच्छ दैत्येन्द्र योत्स्यामः प्रातस्त्वाह्निकमाचर॥ २८
एवमुक्तो दितीशस्तु साध्येनाद्भुतकर्मणा।
जगाम नैमिषारण्यं क्रियां चक्रे तदाह्निकीम्॥ २९

नारदजी! अद्भुत पराक्रमी नारायणके प्रहारसे प्रह्लादका हृदय बिंध गया, फलतः वे बेहोश होकर रथके पिछले भागमें गिर पड़े। यह देखकर सारथी उन्हें वहाँसे हटाकर दूर ले गया। बहुत देरके बाद जब उन्हें चेतना प्राप्त हुई—होश आया, तब वे पुनः सुदृढ़ धनुष लेकर नर-नारायणसे युद्ध करनेके लिये संग्रामभूमिमें आ गये। उन्हें आया देख नारायणने कहा—दैत्येन्द्र! अब हम कल प्रातः युद्ध करेंगे; तुम भी जाओ, इस समय अपना नित्य कर्म करो। अद्भुत पराक्रमी श्रीनारायणके ऐसा कहनेपर प्रह्लाद नैमिषारण्य चले गये और वहाँ अपने नित्य कर्म सम्पन्न किये॥ २६—२९॥

एवं युध्यति देवे च प्रह्लादो ह्यसुरो मुने।
रात्रौ चिन्तयते युद्धे कथं जेष्यामि दाम्भिकम्॥ ३०
एवं नारायणेनाऽसौ सहायुध्यत नारद।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दैत्यो देवं न चाजयत्॥ ३१
ततो वर्षसहस्रान्ते ह्यजिते पुरुषोत्तमे।
पीतवाससमभ्येत्य दानवो वाक्यमब्रवीत्॥ ३२
किमर्थं देवदेवेश साध्यं नारायणं हरिम्।
विजेतुं नाऽद्य शक्नोमि एतन्मे कारणं वद॥ ३३

नारदजी! इस प्रकार भगवान् नारायण एवं दानवेन्द्र प्रह्लाद दोनोंमें युद्ध चलता रहा। रात्रिमें प्रह्लाद यह विचार किया करते थे कि मैं युद्धमें इन दम्भ करनेवाले ऋषिको कैसे जीतूँगा? नारदजी! इस प्रकार प्रह्लादने भगवान् नारायणके साथ एक हजार दिव्य वर्षोंतक युद्ध किया, परंतु वे उन्हें (नारायणको) जीत न पाये। फिर हजार दिव्य वर्षोंके बीत जानेपर भी पुरुषोत्तम नारायणको न जीत सकनेपर प्रह्लादने वैकुण्ठमें जाकर पीतवस्त्रधारी भगवान् विष्णुसे कहा—देवेश! मैं (सरलतासे) साध्य नारायणको आजतक क्यों न जीत पाया, आप मुझे इसका कारण बतलायें॥ ३०—३३॥

पीतवासा उवाच

दुर्जयोऽसौ महाबाहुस्त्वया प्रह्लाद धर्मजः।
साध्यो विप्रवरो धीमान् मृधे देवासुरैरपि॥ ३४

इसपर पीतवस्त्रधारी भगवान् विष्णु बोले—प्रह्लाद! महाबाहु धर्मपुत्र नारायण तुम्हारे द्वारा दुर्जेय हैं। ये ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ऋषि परम ज्ञानी हैं। ये सभी देवताओं एवं असुरोंसे भी युद्धमें नहीं जीते जा सकते॥ ३४॥

प्रह्लाद उवाच

यद्यसौ दुर्जयो देव मया साध्यो रणाजिरे।
तत्कथं यत्प्रतिज्ञातं तदसत्यं भविष्यति॥ ३५

हीनप्रतिज्ञो देवेश कथं जीवेत मादृशः।
तस्माद्भवाग्रतो विष्णो करिष्ये कायशोधनम्॥ ३६

प्रह्लादने कहा— देव! यदि ये साध्यदेव (नारायण) युद्धभूमिमें मुझसे जीते नहीं जा सकते हैं तो मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्या होगा? वह तो मिथ्या हो जायगी। देवेश! मुझ-जैसा व्यक्ति हीनप्रतिज्ञ होकर कैसे जीवित रह सकेगा? इसलिये हे विष्णु! अब मैं आपके सामने अपने शरीरकी शुद्धि करूँगा॥ ३५-३६॥

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा वचनं देवाग्रे दानवेश्वरः।
शिरःस्नातस्तदा तस्थौ गृणन् ब्रह्म सनातनम्॥ ३७
ततो दैत्यपतिं विष्णुः पीतवासाऽब्रवीद्वचः।
गच्छ जेष्यसि भक्त्या तं न युद्धेन कथंचन॥ ३८

पुलस्त्यजी बोले— भगवान्‌से ऐसा कहकर दानवेश्वर प्रह्लाद सिरसे पैरतक स्नानकर वहीं बैठ गये और 'ब्रह्मगायत्री'का जप करने लगे। उसके बाद पीताम्बरधारी विष्णुने प्रह्लादसे कहा—जाओ, तुम जाओ, तुम उन्हें भक्तिसे जीत सकोगे, युद्धसे कथमपि नहीं॥ ३७-३८॥

प्रह्लाद उवाच

मया जितं देवदेव त्रैलोक्यमपि सुव्रत।
जितोऽयं त्वत्प्रसादेन शक्रः किमुत धर्मजः॥ ३९

असौ यद्यजयो देव त्रैलोक्येनापि सुव्रतः।
न स्थातुं त्वत्प्रसादेन शक्यं किमु करोम्यज॥ ४०

प्रह्लादजी बोले— देवाधिदेव! सुव्रत! आपकी कृपासे मैंने तीनों लोकों तथा इन्द्रको भी जीत लिया है; इन धर्मपुत्रकी बात ही क्या है? हे अज! यदि ये सद्व्रती त्रिलोकीसे भी अजेय हैं तथा आपके प्रसादसे भी मैं उनके सामने नहीं ठहर सकता तो फिर मैं क्या करूँ?॥ ३९-४०॥

पीतवासा उवाच

सोऽहं दानवशार्दूल लोकानां हितकाम्यया।
धर्मं प्रवर्त्तापयितुं तपश्चर्यां समास्थितः॥ ४१

तस्माद्यदिच्छसि जयं तमाराधय दानव।
तं पराजेष्यसे भक्त्या तस्माच्छुश्रूष धर्मजम्॥ ४२

(इसपर) भगवान् विष्णु बोले— दानवश्रेष्ठ! वस्तुतः नारायणरूपमें वहाँ मैं ही हूँ। मैं ही जगत्‌की भलाईकी इच्छासे धर्मप्रवर्तनके लिये उस रूपमें तप कर रहा हूँ। इसलिये प्रह्लाद! यदि तुम विजय चाहते हो तो मेरे उस रूपकी आराधना करो। तुम नारायणको भक्तिद्वारा ही पराजित कर सकोगे। इसलिये धर्मपुत्र नारायणकी आराधना करो—वही अर्थमें वे सुसाध्य हैं॥ ४१-४२॥

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्तः पीतवासेन दानवेन्द्रो महात्मना।
अब्रवीद्वचनं हृष्टः समाहूयाऽन्धकं मुने॥ ४३

पुलस्त्यजी बोले— मुने! भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर प्रह्लाद प्रसन्न हो गये, उन्होंने फिर अन्धकको बुलाकर इस प्रकार कहा॥ ४३॥

प्रह्लाद उवाच

दैत्याश्च दानवाश्चैव परिपाल्यास्त्वयान्धक।
मयोत्सृष्टमिदं राज्यं प्रतीच्छस्व महाभुज॥ ४४
इत्येवमुक्तो जग्राह राज्यं हैरण्यलोचनिः।
प्रह्लादोऽपि तदाऽगच्छत् पुण्यं बदरिकाश्रमम्॥ ४५
दृष्ट्वा नारायणं देवं नरं च दितिजेश्वरः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ववन्दे चरणौ तयोः॥ ४६
तमुवाच महातेजा वाक्यं नारायणोऽव्ययः।
किमर्थं प्रणतोऽसीह मामजित्वा महासुर॥ ४७

प्रह्लादजी बोले— अन्धक! तुम दैत्यों और दानवोंका प्रतिपालन करो। महाबाहो! मैं यह राज्य छोड़ रहा हूँ, इसे तुम ग्रहण करो। इस प्रकार कहनेपर जब हिरण्याक्षके पुत्रने राज्यको स्वीकार कर लिया, तब प्रह्लाद पवित्र बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ उन्होंने भगवान् नारायण तथा नरको देखकर हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। महातेजस्वी भगवान् नारायणने उनसे कहा—महासुर! मुझे बिना जीते ही अब तुम क्यों प्रणाम कर रहे हो?॥ ४४—४७॥

प्रह्लाद उवाच

कस्त्वां जेतुं प्रभो शक्तः कस्त्वत्तः पुरुषोऽधिकः।
त्वं हि नारायणोऽनन्तः पीतवासा जनार्दनः॥ ४८
त्वं देवः पुण्डरीकाक्षस्त्वं विष्णुः शार्ङ्गचापधृक्।
त्वमव्ययो महेशानः शाश्वतः पुरुषोत्तमः॥ ४९
त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति चार्चयन्ति मनीषिणः।
जपन्ति स्नातकास्त्वां च यजन्ति त्वां च याज्ञिकाः॥ ५०
त्वमच्युतो हृषीकेशश्चक्रपाणिर्धराधरः।
महामीनो हयशिरास्त्वमेव वरकच्छपः॥ ५१
हिरण्याक्षरिपुः श्रीमान् भगवानथ सूकरः।
मत्पितुर्नाशनकरो भवानपि नृकेसरी॥ ५२
ब्रह्मा त्रिनेत्रोऽमरराड् हुताशः
प्रेताधिपो नीरपतिः समीरः।
सूर्यो मृगाङ्कोऽचलजङ्गमाद्यो
भवान् विभो नाथ खगेन्द्रकेतो॥ ५३
त्वं पृथ्वी ज्योतिराकाशं जलं भूत्वा सहस्रशः।
त्वया व्याप्तं जगत्सर्वं कस्त्वां जेष्यति माधव॥ ५४
भक्त्या यदि हृषीकेश तोषमेषि जगद्गुरो।
नान्यथा त्वं प्रशक्योऽसि जेतुं सर्वगताव्यय॥ ५५

भगवानुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते दैत्य स्तवेनानेन सुव्रत।
भक्त्या त्वनन्यया चाहं त्वया दैत्य पराजितः॥ ५६
पराजितश्च पुरुषो दैत्य दण्डं प्रयच्छति।
दण्डार्थं ते प्रदास्यामि वरं वृणु यमिच्छसि॥ ५७

प्रह्लाद उवाच

नारायणं वरं याचे यं त्वं मे दातुमर्हसि।
तन्मे पापं लयं यातु शारीरं मानसं तथा॥ ५८
वाचिकं च जगन्नाथ यत्त्वया सह युध्यतः।
नरेण यद्यप्यभवद् वरमेतत्प्रयच्छ मे॥ ५९

नारायण उवाच

एवं भवतु दैत्येन्द्र पापं ते यातु संक्षयम्।
द्वितीयं प्रार्थय वरं तं ददामि तवासुर॥ ६०

प्रह्लाद उवाच

या या जायेत मे बुद्धिः सा सा विष्णो त्वदाश्रिता।
देवार्चने च निरता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा॥ ६१

प्रह्लाद बोले— प्रभो! आपको भला कौन जीत सकता है? आपसे बढ़कर कौन हो सकता है? आप ही अनन्त नारायण पीताम्बरधारी जनार्दन हैं। आप ही कमलनयन शार्ङ्गधनुषधारी विष्णु हैं। आप अव्यय, महेश्वर तथा शाश्वत परम पुरुषोत्तम हैं। योगिजन आपका ही ध्यान करते हैं। विद्वान् पुरुष आपकी ही पूजा करते हैं। वेदज्ञ आपके नामका जप करते हैं तथा याज्ञिकजन आपका यजन करते हैं। आप ही अच्युत, हृषीकेश, चक्रपाणि, धराधर, महामत्स्य, हयग्रीव तथा श्रेष्ठ कच्छप (कूर्म) अवतारी हैं॥ ४८—५१॥

आप हिरण्याक्ष दैत्यका वध करनेवाले ऐश्वर्य-युक्त और भगवान् आदि वाराह हैं। आप ही मेरे पिताको मारनेवाले भगवान् नृसिंह हैं। आप ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण और वायु हैं। हे स्वामिन्! हे खगेन्द्रकेतु (गरुडध्वज)! आप सूर्य, चन्द्र तथा स्थावर और जंगमके आदि हैं। पृथ्वी, अग्नि, आकाश और जल आप ही हैं। सहस्रों रूपोंसे आपने समस्त जगत्को व्याप्त किया है। माधव! आपको कौन जीत सकेगा? जगद्गुरो! हृषीकेश! आप भक्तिसे ही संतुष्ट हो सकते हैं। हे सर्वगत! हे अविनाशिन्! आप दूसरे किसी भी अन्य प्रकारसे नहीं जीते जा सकते॥ ५२—५५॥

श्रीभगवान् बोले— सुव्रत! दैत्य! तुम्हारी इस स्तुतिसे मैं अत्यन्त संतुष्ट हूँ। दैत्य! अनन्य भक्तिसे तुमने मुझे जीत लिया है। प्रह्लाद! पराजित पुरुष विजेताको दण्ड (के रूपमें कुछ) देता है। परंतु मैं तुम्हारे दण्डके बदले तुम्हें वर दूँगा। तुम इच्छित वर माँगो॥ ५६, ५७॥

प्रह्लादजी बोले— हे नारायण! मैं आपसे वर माँग रहा हूँ, आप उसे देनेकी कृपा करें। हे जगन्नाथ! आपके तथा नरके साथ युद्ध करनेमें मेरे शरीर, मन और वाणीसे जो भी पाप (अपकर्म) हुआ हो वह सब नष्ट हो जाय। आप मुझे यही वर दें॥ ५८, ५९॥

नारायणने कहा— दैत्येन्द्र! ऐसा ही होगा। तुम्हारा पाप नष्ट हो जाय। अब प्रह्लाद! तुम दूसरा एक वर और माँग लो। मैं उसे भी तुम्हें दूँगा॥ ६०॥

प्रह्लादजी बोले— हे भगवन्! मेरी जो भी बुद्धि हो, वह आपसे ही सम्बद्ध हो, वह देवपूजामें लगी रहे। मेरी बुद्धि, आपका ही ध्यान करे और आपके चिन्तनमें लगी रहे॥ ६१॥

नारायण उवाच

एवं भविष्यत्यसुर वरमन्यं यमिच्छसि।
तं वृणीष्व महाबाहो प्रदास्याम्यविचारयन्॥ ६२

प्रह्लाद उवाच

सर्वमेव मया लब्धं त्वत्प्रसादादधोक्षज।
त्वत्पादपङ्कजाभ्यां हि ख्यातिरस्तु सदा मम॥ ६३

नारायण उवाच

एवमस्त्वपरं चास्तु नित्यमेवाक्षयोऽव्ययः।
अजरश्चामरश्चापि मत्प्रसादाद् भविष्यसि॥ ६४

गच्छस्व दैत्यशार्दूल स्वमावासं क्रियारतः।
न कर्मबन्धो भवतो मच्चित्तस्य भविष्यति॥ ६५

प्रशासयदमून् दैत्यान् राज्यं पालय शाश्वतम्।
स्वजातिसदृशं दैत्य कुरु धर्ममनुत्तमम्॥ ६६

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्तो लोकनाथेन प्रह्लादो देवमब्रवीत्
कथं राज्यं समादास्ये परित्यक्तं जगद्गुरो॥ ६७
तमुवाच जगत्स्वामी गच्छ त्वं निजमाश्रयम्।
हितोपदेष्टा दैत्यानां दानवानां तथा भव॥ ६८
नारायणेनैवमुक्तः स तदा दैत्यनायकः।
प्रणिपत्य विभुं तुष्टो जगाम नगरं निजम्॥ ६९
दृष्टः सभाजितश्चापि दानवैरन्धकेन च।
निमन्त्रितश्च राज्याय न प्रत्यैच्छत्स नारद॥ ७०
राज्यं परित्यज्य महाऽसुरेन्द्रो
नियोजयन् सत्पथि दानवेन्द्रान्।
ध्यायन् स्मरन् केशवमप्रमेयं
तस्थौ तदा योगविशुद्धदेहः॥ ७१
एवं पुरा नारद दानवेन्द्रो
नारायणेनोत्तमपूरुषेण।
पराजितश्चापि विमुच्य राज्यं
तस्थौ मनो धातरि सन्निवेश्य॥ ७२

नारायणने कहा—प्रह्लाद! ऐसा ही होगा। पर हे महाबाहो! तुम एक और अन्य वर भी, जो तुम चाहो माँगो, मैं बिना विचारे ही—बिना देय-अदेयका विचार किये ही—वह भी तुम्हें दूँगा॥ ६२॥

प्रह्लादने कहा—अधोक्षज! आपके अनुग्रहसे मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया। आपके चरणकमलोंसे मैं सदा लगा रहूँ और ऐसी ही मेरी प्रसिद्धि भी हो अर्थात् मैं आपके भक्तके रूपमें ही चर्चित होऊँ॥ ६३॥

नारायणने कहा—ऐसा ही होगा। इसके अतिरिक्त मेरे प्रसादसे तुम अक्षय, अविनाशी, अजर और अमर होगे। दैत्यश्रेष्ठ! अब तुम अपने घर जाओ और सदा (धर्म) कार्यमें रत रहो। मुझमें मन लगाये रखनेसे तुम्हें कर्मबन्धन नहीं होगा। इन दैत्योंपर शासन करते हुए तुम शाश्वत (सदा बने रहनेवाले) राज्यका पालन करो। दैत्य! अपनी जातिके अनुकूल श्रेष्ठ धर्मोंका अनुष्ठान करो॥ ६४—६६॥

पुलस्त्यजी बोले—लोकनाथके ऐसा कहनेपर प्रह्लादने भगवान्‌से कहा—जगद्गुरो! अब मैं छोड़े हुए राज्यको कैसे ग्रहण करूँ? इसपर भगवान्‌ने उनसे कहा—तुम अपने घर जाओ तथा दैत्यों एवं दानवोंको कल्याणकारी बातोंका उपदेश करो। नारायणके ऐसा कहनेपर वे दैत्यनायक (प्रह्लाद) परमेश्वरको प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर निवास-स्थानको चले गये। नारदजी! अन्धक तथा दानवोंने प्रह्लादको देखा एवं उनका सम्मान किया और उन्हें राज्य स्वीकार करनेके लिये अनुरोधित किया; किंतु उन्होंने राज्य स्वीकार नहीं किया। दैत्येश्वर प्रह्लाद राज्यको छोड़ अपने उपदेशोंसे दानव-श्रेष्ठोंको शुभ मार्गमें नियोजित तथा भगवान् नारायणका ध्यान और स्मरण करते हुए योगके द्वारा शुद्ध शरीर होकर विराजित हुए। नारदजी! इस प्रकार पहले पुरुषोत्तम नारायणद्वारा पराजित दानवेन्द्र प्रह्लाद राज्य छोड़कर भगवान् नारायणके ध्यानमें लीन होकर शान्त एवं सुस्थिर हुए थे॥ ६७—७२॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

अन्धकासुरकी विजिगीषा, देवों और असुरोंके वाहनों एवं युद्धका वर्णन

नारद उवाच

नेत्रहीनः कथं राज्ये प्रह्लादेनान्धको मुने।
अभिषिक्तो जानताऽपि राजधर्मं सनातनम्॥ १

पुलस्त्य उवाच

लब्धचक्षुरसौ भूयो हिरण्याक्षेऽपि जीवति।
ततोऽभिषिक्तो दैत्येन प्रह्लादेन निजे पदे॥ २

नारद उवाच

राज्येऽन्धकोऽभिषिक्तस्तु किमाचरत सुव्रत।
देवादिभिः सह कथं समास्ते तद् वदस्व मे॥ ३

पुलस्त्य उवाच

राज्येऽभिषिक्तो दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः।
तपसाराध्य देवेशं शूलपाणिं त्रिलोचनम्॥ ४

अजेयत्वमवध्यत्वं सुरसिद्धर्षिपन्नगैः।
अदाह्यत्वं हुताशेन अक्लेद्यत्वं जलेन च॥ ५

एवं स वरलब्धस्तु दैत्यो राज्यमपालयत्।
शुक्रं पुरोहितं कृत्वा समध्यास्ते ततोऽन्धकः॥ ६

ततश्चक्रे समुद्योगं देवानामन्धकोऽसुरः।
आक्रम्य वसुधां सर्वां मनुजेन्द्रान् पराजयत्॥ ७
पराजित्य महीपालान् सहायार्थे नियोज्य च।
तैः समं मेरुशिखरं जगामाद्भुतदर्शनम्॥ ८

शक्रोऽपि सुरसैन्यानि समुद्योज्य महागजम्।
समारुह्यामरावत्यां गुप्तिं कृत्वा विनिर्ययौ॥ ९

शक्रस्यानु तथैवान्ये लोकपाला महौजसः।
आरुह्य वाहनं स्वं स्वं सायुधा निर्ययुर्बहिः॥ १०

देवसेनाऽपि च समं शक्रेणाद्भुतकर्मणा।
निर्जगामातिवेगेन गजवाजिरथादिभिः॥ ११

नारदजीने कहा—मुने! प्रह्लादजी सनातन राजधर्मको भलीभाँति जानते थे। ऐसी दशामें उन्होंने नेत्रहीन अन्धकको राजगद्दीपर कैसे बैठाया?॥ १॥

पुलस्त्यजी बोले—हिरण्याक्षके जीवनकालमें ही अन्धकको पुनः दृष्टि प्राप्त हो गयी थी, अतः दैत्यवर्य प्रह्लादने उसे अपने पदपर अभिषिक्त किया था॥ २॥

नारदजीने पूछा—सुव्रत! मुझे यह बतलाइये कि अन्धकने राज्यपर अभिषिक्त होनेपर क्या-क्या किया तथा वह देवताओं आदिके साथ कैसा व्यवहार करता था॥ ३॥

पुलस्त्यजी बोले—हिरण्याक्षके पुत्र दैत्यराज अन्धकने राज्य प्राप्त करके तपस्याद्वारा शूलपाणि भगवान् शंकरकी आराधना की और उनसे देवता, सिद्ध, ऋषि एवं नागोंद्वारा नहीं जीते जाने और नहीं मारे जानेका वर प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार वह अग्निके द्वारा न जलने जलसे न भीगने आदिका भी वरदान प्राप्त कर राज्यका संचालन कर रहा था। उसने शुक्राचार्यको अपना पुरोहित बना लिया था। फिर अन्धकासुरने देवताओंको जीतनेका उपक्रम (आरम्भ) किया और उन्हें जीतकर सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वशमें कर लिया—सभी श्रेष्ठ राजाओंको परास्त कर दिया॥ ४—७॥

उसने सभी राजाओंको पराजित कर उन्हें (सामन्त बनाकर) अपनी सहायतामें नियुक्त कर दिया। फिर उनके साथ वह सुमेरुगिरि पर्वतको देखनेके लिये उसके अद्भुत शिखरपर गया। इधर इन्द्र भी देवसेनाको तैयारकर और अमरावतीमें सुरक्षाकी व्यवस्था कर अपने ऐरावत हाथीपर सवार होकर युद्धके लिये बाहर निकले। इसी प्रकार दूसरे तेजस्वी लोकपालगण भी अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर तथा अपने अस्त्र लेकर इन्द्रके पीछे-पीछे चल पड़े। हाथी, घोड़े, रथ आदिसे युक्त देवसेना भी बड़े अद्भुत पराक्रमी इन्द्रके साथ वेगोंसे निकल पड़ी। सेनाके आगे-आगे बारहों आदित्य और

अग्रतो द्वादशादित्याः पृष्ठतश्च त्रिलोचनाः।
मध्येऽष्टौ वसवो विश्वे साध्याश्विमरुतां गणाः।
यक्षविद्याधराद्याश्च स्वं स्वं वाहनमास्थिताः॥ १२

उनके पृष्ठभागमें ग्यारह रुद्रगण थे। उनके मध्यमें आठों वसु, तेरहों विश्वेदेव, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, यक्ष, विद्याधर आदि अपने-अपने वाहनपर सवार होकर चल रहे थे॥ ८—१२॥

नारद उवाच

रुद्रादीनां वदस्वेह वाहनानि च सर्वशः।
एकैकस्यापि धर्मज्ञ परं कौतूहलं मम॥ १३

नारदजीने पूछा—धर्मज्ञ! रुद्र आदिके वाहनोंका एक-एक कर पूरी तरह वर्णन कीजिये। इस विषयमें मुझे बड़ी उत्सुकता हो रही है॥ १३॥

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्व कथयिष्यामि सर्वेषामपि नारद।
वाहनानि समासेन एकैकस्यानुपूर्वशः॥ १४
रुद्रहस्ततलोत्पन्नो महावीर्यो महाजवः।
श्वेतवर्णो गजपतिर्देवराजस्य वाहनम्॥ १५
रुद्रोरुसंभवो भीमः कृष्णवर्णो मनोजवः।
पौण्ड्रको नाम महिषो धर्मराजस्य नारद॥ १६
रुद्रकर्णमलोद्भूतः श्यामो जलधिसंज्ञकः।
शिशुमारो दिव्यगतिः वाहनं वरुणस्य च॥ १७
रौद्रः शकटचक्राक्षः शैलाकारो नरोत्तमः।
अम्बिकापादसंभूतो वाहनं धनदस्य तु॥ १८

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! सुनिये; मैं एक-एक करके क्रमशः सभी देवताओंके वाहनोंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ। रुद्रके करतलसे उत्पन्न अति पराक्रमवाला, अति तीव्रगतिवाला, श्वेतवर्णका ऐरावत हाथी देवराज (इन्द्र)-का वाहन है। हे नारद! रुद्रके ऊरुसे उत्पन्न भयंकर कृष्णवर्णवाला एवं मनके सदृश गतिमान् पौण्ड्रक नामक महिष धर्मराजका वाहन है। रुद्रके कर्ण-मलसे उत्पन्न श्यामवर्णवाला दिव्यगतिशील जलधि नामक शिशुमार (सूँस) वरुणका वाहन है। अम्बिकाके चरणोंसे उत्पन्न गाड़ीके चक्केके समान भयंकर आँखवाला, पर्वताकार नरोत्तम कुबेरका वाहन है॥ १४—१८॥

एकादशानां रुद्राणां वाहनानि महामुने
गन्धर्वाश्च महावीर्या भुजगेन्द्राश्च दारुणाः।
श्वेतानि सौरभेयाणि वृषाण्युग्रजवानि च॥ १९
रथं चन्द्रमसश्चार्द्धसहस्रं हंसवाहनम्।
हरयो रथवाहाश्च आदित्या मुनिसत्तम॥ २०
कुञ्जरस्थाश्च वसवो यक्षाश्च नरवाहनाः।
किन्नरा भुजगारूढा हयारूढौ तथाश्विनौ॥ २१
सारङ्गाधिष्ठिता ब्रह्मन् मरुतो घोरदर्शनाः।
शुकारूढाश्च कवयो गन्धर्वाश्च पदातिनः॥ २२

हे महामुने! एकादश रुद्रोंके वाहन महापराक्रमशाली गन्धर्वगण, भयंकर सर्पराजगण तथा सुरभिके अंशसे उत्पन्न तीव्रगतिवाले सफेद बैल हैं। मुनिश्रेष्ठ! चन्द्रमाके रथको खींचनेवाले आधे हजार (पाँच सौ) हंस हैं। आदित्योंके रथके वाहन घोड़े हैं। वसुओंके वाहन हाथी, यक्षोंके वाहन नर, किन्नरोंके वाहन सर्प एवं अश्विनीकुमारोंके वाहन घोड़े हैं। ब्रह्मन्! भयंकर दीखनेवाले मरुद्गणोंके वाहन हरिण हैं, भृगुओंके वाहन शुक हैं और गन्धर्वलोग पैदल ही चलते हैं॥ १९—२२॥

आरुह्य वाहनान्येवं स्वानि स्वान्यमरोत्तमाः।
संनह्य निर्ययुर्हृष्टा युद्धाय सुमहौजसः॥ २३

इस प्रकार बड़े तेजस्वी श्रेष्ठ देवगण अपने-अपने वाहनोंपर आरूढ़ एवं सन्नद्ध (तैयार) होकर प्रसन्नतापूर्वक युद्धके लिये निकल पड़े॥ २३॥

नारद उवाच

गदितानि सुरादीनां वाहनानि त्वया मुने।
दैत्यानां वाहनान्येवं यथावद् वक्तुमर्हसि॥ २४

नारदने कहा—मुने! आपने देवादिकोंके वाहनोंका वर्णन किया। इसी प्रकार अब असुरोंके वाहनोंका भी यथावत् वर्णन करें॥ २४॥

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्व दानवादीनां वाहनानि द्विजोत्तम।
कथयिष्यामि तत्त्वेन यथावच्छ्रोतुमर्हसि॥ २५

पुलस्त्यजी बोले—द्विजोत्तम! (अब) दानवोंके वाहनको सुनो। मैं तत्त्वतः उनका ठीक-ठीक वर्णन करता हूँ। अन्धकका अलौकिक रथ कृष्णवर्णके श्रेष्ठ

अन्धकस्य रथो दिव्यो युक्तः परमवाजिभिः।
कृष्णवर्णैः सहस्रारस्त्रिनल्वपरिमाणवान्॥ २६

प्रह्लादस्य रथो दिव्यश्चन्द्रवर्णैर्हयोत्तमैः।
उह्यमानस्तथाऽष्टाभिः श्वेतरुक्ममयः शुभः॥ २७

विरोचनस्य च गजः कुजम्भस्य तुरंगमः।
जम्भस्य तु रथो दिव्यो हयैः काञ्चनसन्निभैः॥ २८

शङ्कुकर्णस्य तुरगो हयग्रीवस्य कुञ्जरः।
रथो मयस्य विख्यातो दुन्दुभेश्च महोरगः।
शम्बरस्य विमानोऽभूदयःशङ्कोर्मृगाधिपः॥ २९

बलवृत्रौ च बलिनौ गदामुसलधारिणौ।
पद्भ्यां दैवतसैन्यानि अभिद्रवितुमुद्यतौ॥ ३०

ततो रणोऽभूत् तुमुलः संकुलोऽतिभयंकरः।
रजसा संवृतो लोको पिङ्गवर्णेन नारद॥ ३१

नाज्ञासीच्च पिता पुत्रं न पुत्रः पितरं तथा।
स्वानेवान्ये निजघ्नुर्वै परानन्ये च सुव्रत॥ ३२

अभिद्रुतो महावेगो रथोपरि रथस्तदा।
गजो मत्तगजेन्द्रं च सादी सादिनमभ्यगात्॥ ३३

पदातिरपि संक्रुद्धः पदातिनमथोल्बणम्।
परस्परं तु प्रत्यघ्नन्नन्योन्यजयकाङ्क्षिणः॥ ३४

ततस्तु संकुले तस्मिन् युद्धे दैवासुरे मुने।
प्रावर्तत नदी घोरा शमयन्ती रणाद्रजः॥ ३५

शोणितोदा रथावर्ता योधसंघट्टवाहिनी।
गजकुम्भमहाकूर्मा शरमीना दुरत्यया॥ ३६

तीक्ष्णाग्रप्रासमकरा महासिग्राहवाहिनी।
अन्त्रशैवालसंकीर्णा पताकाफेनमालिनी॥ ३७

गृध्रकङ्कमहाहंसा श्येनचक्राह्वमण्डिता।
वनवायसकादम्बा गोमायुश्वापदाकुला॥ ३८

पिशाचमुनिसंकीर्णा दुस्तरा प्राकृतैर्जनैः।
रथप्लवैः संतरन्तः शूरास्तां प्रजगाहिरे॥ ३९

आगुल्फादवमज्जन्तः सूदयन्तः परस्परम्।
समुत्तरन्तो वेगेन योधा जयधनेप्सवः॥ ४०

अश्वोंसे परिचालित होता था। वह हजार अरों—पहियेकी नाभि और नेमिके बीचकी लकड़ियोंसे युक्त बारह सौ हाथोंका परिमाणवाला था। प्रह्लादका दिव्य रथ सुन्दर एवं सुवर्ण-रजत-मण्डित था। उसमें चन्द्रवर्णवाले आठ उत्तम घोड़े जुते हुए थे। विरोचनका वाहन हाथी था एवं कुजम्भ घोड़ेपर सवार था। जम्भका दिव्य रथ स्वर्णवर्णके घोड़ोंसे युक्त था॥ २५—२८॥

इसी प्रकार शंकुकर्णका वाहन घोड़ा, हयग्रीवका हाथी और मय दानवका वाहन दिव्य रथ था। दुन्दुभिका वाहन विशाल नाग था। शम्बर विमानपर चढ़ा हुआ था तथा अयःशंकु सिंहपर सवार था। गदा और मुसलधारी बलवान् बल और वृत्र पैदल थे; पर देवताओंकी सेनापर चढ़ाई करनेके लिये उद्यत थे। फिर अति भयङ्कर घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। नारदजी! समस्त लोक पीली धूलसे ढक गया, जिससे पिता पुत्रको और पुत्र पिताको भी परस्पर एक-दूसरेको पहचान नहीं पाते थे। सुव्रत! कुछ लोग अपने ही पक्षके लोगोंको तथा कुछ लोग विरोधी पक्षके लोगोंको मारने लगे॥ २९—३२॥

उस युद्धमें रथके ऊपर रथ और हाथीके ऊपर हाथी टूट पड़े तथा घुड़सवार घुड़सवारोंकी ओर वेगसे आक्रमण करने लगे। इसी प्रकार पादचारी (पैदल) सैनिक क्रुद्ध होकर अन्य बलशाली पैदलोंपर चढ़ बैठे। इस प्रकार एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे सभी परस्पर प्रहार करने लगे। मुने! इसके बाद देवताओं और असुरोंके उस घोर संग्राममें युद्धसे उत्पन्न धूलिको शान्त करती हुई रक्तरूपी जलधारावाली एवं रथरूपी भँवरवाली और योद्धाओंके समूहको बहा ले जानेवाली एवं गजकुम्भरूपी महान् कूर्म तथा शररूपी मीनसे युक्त बड़ी भारी नदी बह चली॥ ३३—३६॥

उस नदीमें तेज धारवाले प्रास (एक प्रकारका अस्त्र) ही मकर थे, बड़ी-बड़ी तलवारें ही ग्राह थीं, उसमें आँतें ही सैवाल, पताका ही फेन, गृध्र एवं कङ्क पक्षी महाशंख, बाज ही चक्रवाक और जंगली कौवे ही मानो कलहंस थे। वह नदी शृगालरूपी हिंस्र एवं पिशाचरूपी मुनियोंसे संकीर्ण थी और साधारण मनुष्योंसे दुस्तर थी। जयरूप धनकी इच्छावाले शूर योद्धा लोग घुटनोंतक डूबते और एक-दूसरेको मारते हुए रथरूपी नौकाओंद्वारा उस नदीको वेगसे पार कर रहे थे॥ ३७—४०॥

ततस्तु रौद्रे सुरदैत्यसादने
महाहवे भीरुभयंकरेऽथ।
रक्षांसि यक्षाश्च सुसंप्रहृष्टाः
पिशाचयूथास्त्वभिरेमिरे च॥ ४१

पिबन्त्यसृग्गाढतरं भटानाम्
आलिङ्ग्य मांसानि च भक्षयन्ति।
वसां विलुम्पन्ति च विस्फुरन्ति
गर्जन्त्यथान्योन्यमथो वयांसि। ४२

मुञ्चन्ति फेत्काररवाञ्छिवाश्च
क्रन्दन्ति योधा भुवि वेदनार्ताः।
शस्त्रप्रतप्ता निपतन्ति चान्ये
युद्धं श्मशानप्रतिमं बभूव॥ ४३

तस्मिञ्छिवाघोररवे प्रवृत्ते
सुरासुराणां सुभयंकरे ह।
युद्धं बभौ प्राणपणोपविद्धं
द्वन्द्वेऽतिशस्त्राक्षगतो दुरोदरः॥ ४४

हिरण्यचक्षुस्तनयो रणेऽन्धको
रथे स्थितो वाजिसहस्रयोजिते।
मत्तेभपृष्ठस्थितमुग्रतेजसं
समेयिवान् देवपतिं शतक्रतुम्॥ ४५

समापतन्तं महिषाधिरूढं
यमं प्रतीच्छद् बलवान् दितीशः।
प्रह्लादनामा तुरगाष्टयुक्तं
रथं समास्थाय समुद्यतास्त्रः॥ ४६

विरोचनश्चापि जलेश्वरं त्वगा-
ज्जम्भस्त्वथागाद् धनदं बलाढ्यम्।
वायुं समभ्येत्य च शम्बरोऽथ
मयो हुताशं युयुधे मुनीन्द्र॥ ४७

अन्ये हयग्रीवमुखा महाबला
दितेस्तनूजा दनुपुङ्गवाश्च।
सुरान् हुताशार्कवसूरगेश्वरान्
द्वन्द्वं समासाद्य महाबलान्विताः॥ ४८

गर्जन्त्यथान्योन्यमुपेत्य युद्धे
चापानि कर्षन्त्यतिवेगिनाश्च।
मुञ्चन्ति नाराचगणान् सहस्रश
आगच्छ हे तिष्ठसि किं ब्रुवन्तः॥ ४९

शरैस्तु तीक्ष्णैरतितापयन्तः
शस्त्रैरमोघैरभिताडयन्तः।

यह युद्ध डरपोकोंके लिये भयावना, देवों एवं दैत्योंका संहार करनेवाला तथा वस्तुतः अत्यन्त भयंकर था। इसमें यक्ष और राक्षस लोग अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे। पिशाचोंका समूह भी प्रसन्न था। ये वीरोंके गाढ़े रुधिरका पान करते थे तथा (उनके शवोंका) आलिंगन कर मांसको भक्षण करते थे। पक्षी चर्बीको नोचते और उछलते थे एवं एक-दूसरेके प्रति गर्जन करते थे। सियारिनें 'फेत्कार' शब्द कर रही थीं, भूमिपर पड़े हुए वेदनासे दुःखी योद्धा कराह रहे थे। कुछ लोग शस्त्रसे आहत होकर गिर रहे थे। युद्धभूमि मरघटके समान हो गयी थी। सियारिनोंके भयंकर शब्दसे युक्त देवासुर-संग्राम ऐसा लगता था, मानो युद्धमें निपुण योद्धा लोग शस्त्ररूपी पाशा लेकर अपने प्राणोंकी बाजी लगाते हुए जुआ खेल रहे हैं॥ ४१-४४॥

हिरण्याक्षका पुत्र अन्धक हजारों घोड़ोंसे युक्त रथपर आरूढ़ होकर मतवाले हाथीकी पीठपर स्थित महातेजस्वी देवराज इन्द्रके साथ जा भिड़ा। इधर आठ घोड़ोंसे युक्त रथपर आरूढ़ अस्त्र उठाये बलवान् दैत्यराज प्रह्लादने महिषपर सवार यमराजका सामना किया। नारदजी! इधर विरोचन वरुणदेवसे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ा तथा जम्भ बलशाली कुबेरकी ओर चला। शम्बर वायुदेवताके सामने जा खड़ा हुआ एवं मय अग्निके साथ युद्ध करने लगा। हयग्रीव आदि अन्यान्य महाबलवान् दैत्य तथा दानव अग्नि, सूर्य, आठ वसुओं तथा शेषनाग आदि देवताओंके साथ द्वन्द्वयुद्ध करने लगे॥ ४५—४८॥

वे एक-दूसरेके साथ युद्ध करते हुए भीषण गर्जन कर रहे थे। वे वेगपूर्वक धनुष चला करके हजारों बाणोंकी झड़ी लगाकर कहने लगे—अरे! आओ, आओ, रुक क्यों गये। तेज बाणोंकी वर्षा करते हुए तथा अमोघ शस्त्रोंसे प्रहार करते हुए

मन्दाकिनीवेगनिभां वहन्तीं
प्रवर्तयन्तो भयदां नदीं च ॥ ५०

त्रैलोक्यमाकांक्षिभिरुग्रवेगैः
सुरासुरैर्नारद संप्रयुद्धे
पिशाचरक्षोगणपुष्टिवर्धनी-
मुत्तर्तुमिच्छद्भिरसृग्नदीं सभौ ॥ ५१

वाद्यन्ति तूर्याणि सुरासुराणां
पश्यन्ति खस्था मुनिसिद्धसंघाः ।
नयन्ति तानप्सरसां गणाग्र्या
हता रणे येऽभिमुखास्तु शूराः ॥ ५२

उन लोगोंने गङ्गाके समान तीव्र वेगसे प्रवाहित होनेवाली, (किंतु) भयंकर नदीको प्रवर्तित कर दिया। नारदजी! उस युद्धमें तीनों लोकोंको चाहनेवाले उग्रवेगशाली देवता एवं असुरगण पिशाचों एवं राक्षसोंकी पुष्टि बढ़ानेवाली शोणित-सरिताको पार करनेकी इच्छा कर रहे थे। उस समय देवता और दानवोंके बाजे बज रहे थे। आकाशमें स्थित मुनियों और सिद्धोंके समूह उस युद्धको देख रहे थे। जो वीर उस युद्धमें सम्मुख मारे गये थे, उन्हें अप्सराएँ सीधे स्वर्गमें लिये चली जा रही थीं ॥ ४९—५२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

अन्धकके साथ देवताओंका युद्ध और अन्धककी विजय

पुलस्त्य उवाच

ततः प्रवृत्ते संग्रामे भीरूणां भयवर्धने।
सहस्राक्षो महाचापमादाय व्यसृजच्छरान् ॥ १
अन्धकोऽपि महावेगं धनुराकृष्य भास्वरम्।
पुरंदराय चिक्षेप शरान् बर्हिणवाससः ॥ २
तावन्योन्यं सुतीक्ष्णाग्रैः शरैः संनतपर्वभिः।
रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराजघ्नतुरुभावपि ॥ ३
ततः क्रुद्धः शतमखः कुलिशं भ्राम्य पाणिना
चिक्षेप दैत्यराजाय तं ददर्श तथान्धकः ॥ ४
आजघान च बाणौघैरस्त्रैः शस्त्रैः स नारद।
तान् भस्मसात्तदा चक्रे नगानिव हुताशनः ॥ ५
ततोऽतिवेगिनं वज्रं दृष्ट्वा बलवतां वरः।
समाप्लुत्य रथात्तस्थौ भुवि बाहुसहायवान् ॥ ६
रथं सारथिना सार्धं साश्वध्वजसकूबरम्।
भस्म कृत्वाथ कुलिशमन्धकं समुपाययौ ॥ ७
तमापतन्तं वेगेन मुष्टिनाहत्य भूतले।
पातयामास बलवाञ्जगर्ज च तदाऽन्धकः ॥ ८

पुलस्त्यजी बोले—तत्पश्चात् भीरुओंके लिये भय बढ़ानेवाला समर आरम्भ हो गया। हजार नेत्रोंवाले इन्द्र अपने विशाल धनुषको लेकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। अन्धक भी अपने दीप्तिमान् धनुषको लेकर बड़े वेगसे मयूरपंख लगे बाणोंको इन्द्रपर छोड़ने लगा। वे दोनों एक-दूसरेको झुके हुए पर्वोंवाले स्वर्णपंखयुक्त तथा महावेगवान् तीक्ष्ण बाणोंसे आहत कर दिये। फिर इन्द्रने क्रुद्ध होकर वज्रको अपने हाथसे घुमाकर उसे अन्धकके ऊपर फेंका। नारदजी! अंधकने उसे आते देखा। उसने बाणों, अस्त्रों और शस्त्रोंसे उसपर प्रहार किया; पर अग्नि जिस प्रकार वनों, पर्वतों (या वृक्षों)-को भस्म कर देती है, उसी प्रकार उस वज्रने उन सभी अस्त्रोंको भस्म कर डाला ॥ १—५ ॥

तब बलवानोंमें श्रेष्ठ अन्धक अति वेगवान् वज्रको आते देखकर रथसे कूदकर बाहुबलका आश्रय लेकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया। वह वज्र, सारथि, अश्व, ध्वजा एवं कूबरके साथ रथको भस्मकर इन्द्रके पास पहुँच गया। उस (वज्र)-को वेगपूर्वक आते देख बलवान् अन्धकने मुष्टिसे मारकर उसे भूमिपर गिरा दिया और गर्जन करने लगा ॥ ६—८ ॥

तं गर्जमानं वीक्ष्याथ वासवः सायकैर्दृढम्।
ववर्ष तान् वारयन् स समभ्यगाच्छतक्रतुम्॥ ९
आजघान तलेनेभं कुम्भमध्ये पदा करे।
जानुना च समाहत्य विषाणं प्रबभञ्ज च॥ १०
वाममुष्ट्या तथा पार्श्वे समाहत्यान्धकस्त्वरन्।
गजेन्द्रं पातयामास प्रहारैर्जर्जरीकृतम्॥ ११
गजेन्द्रात् पतमानाच्च अवप्लुत्य शतक्रतुः।
पाणिना वज्रमादाय प्रविवेशामरावतीम्॥ १२
पराङ्मुखे सहस्राक्षे तद् दैवतबलं महत्।
पातयामास दैत्येन्द्रः पादमुष्टितलादिभिः॥ १३
ततो वैवस्वतो दण्डं परिभ्राम्य द्विजोत्तम।
समभ्यधावत् प्रह्लादं हन्तुकामः सुरोत्तमः॥ १४
तमापतन्तं बाणौघैर्ववर्ष रविनन्दनम्।
हिरण्यकशिपोः पुत्रश्चापमानम्य वेगवान्॥ १५
तां बाणवृष्टिमतुलां दण्डेनाहत्य भास्करिः।
शातयित्वा प्रचिक्षेप दण्डं लोकभयंकरम्॥ १६
स वायुपथमास्थाय धर्मराजकरे स्थितः।
जज्वाल कालाग्निनिभो यद्वद् दग्धुं जगत्त्रयम्॥ १७

जाज्वल्यमानमायान्तं दण्डं दृष्ट्वा दितेः सुताः।
प्राक्रोशन्ति हतः कष्टं प्रह्लादोऽयं यमेन हि॥ १८

तमाक्रन्दितमाकर्ण्य हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः।
प्रोवाच मा भैष्ट मयि स्थिते कोऽयं सुराधमः॥ १९

इत्येवमुक्त्वा वचनं वेगेनाभिससार च।
जग्राह पाणिना दण्डं हसन् सव्येन नारद॥ २०
तमादाय ततो वेगाद् भ्रामयामास चान्धकः।
जगर्ज च महानादं यथा प्रावृषि तोयदः॥ २१
प्रह्लादं रक्षितं दृष्ट्वा दण्डाद् दैत्येश्वरेण हि।
साधुवादं ददुर्हृष्टा दैत्यदानवयूथपाः॥ २२
भ्रामयन्तं महादण्डं दृष्ट्वा भानुसुतो मुने।
दुःसहं दुर्धरं मत्वा अन्तर्धानमगाद् यमः॥ २३
अन्तर्हिते धर्मराजे प्रह्लादोऽपि महामुने।
दारयामास बलवान् देवसैन्यं समन्ततः॥ २४

वरुणः शिशुमारस्थो बद्ध्वा पाशैर्महासुरान्।
गदया दारयामास समभ्यगाद् विरोचनः॥ २५

उसे इस प्रकार गरजते देखकर इन्द्रने उसके ऊपर जोरोंसे बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। अन्धक भी उनको निवारित करते हुए इन्द्रके पास पहुँच गया। उसने अपने हाथसे ऐरावत हाथीके सिरपर एवं अपने पैरसे सूँड़पर प्रहार कर और घुटनोंसे दाँतोंपर प्रहार कर उन्हें तोड़ डाला। फिर अन्धकने बायीं मुट्ठीसे ऐरावतकी कमरपर शीघ्रतापूर्वक चोट मारकर उसे जर्जर कर गिरा दिया। इन्द्र भी हाथीसे नीचे गिरे जा रहे थे। वे झटसे कूदकर एवं हाथमें वज्र लेकर अमरावतीमें प्रविष्ट हो गये॥ ९—१२॥

इन्द्रके रणसे विमुख हो जानेपर अन्धकने उस विशाल देव-सेनाको पैर, मुट्ठी एवं थप्पड़ों आदिसे मारकर गिरा दिया। नारदजी! इसके बाद देवश्रेष्ठ यमराज अपना दण्ड घुमाते हुए प्रह्लादको मारनेकी इच्छासे दौड़ पड़े। यमराजको अपनी ओर आते देख प्रह्लादने भी अपने धनुषको चढ़ाकर फुर्तीसे बाण-समूहोंकी झड़ी लगा दी। यमराजने अपने दण्डके प्रहारसे उस अतुलनीय बाण-वृष्टिको व्यर्थ कर लोकभयकारी दण्ड चला दिया॥ १३—१६॥

धर्मराजके हाथमें स्थित वह दण्ड हवामें ऊपर घूम रहा था। वह ऐसा लगता था मानो तीनों लोकोंको जलानेके लिये कालाग्नि प्रज्वलित हो रही हो। उस प्रज्वलित दण्डको अपनी ओर आते देखकर दैत्यलोग चिल्लाने लगे—हाय! हाय! यमराजने प्रह्लादको मार दिया। उस आक्रन्दनको सुनकर हिरण्याक्षके पुत्र अन्धकने कहा—डरो मत। मेरे रहते ये यमराज क्या वस्तु हैं? नारदजी! ऐसा कहकर वह वेगसे दौड़ पड़ा और हँसते हुए उस दण्डको बायें हाथसे पकड़ लिया॥ १७—२०॥

फिर अन्धक उसे लेकर घुमाने लगा और साथ ही वर्षाकालिक मेघके तुल्य वह महानाद करते हुए गर्जन करने लगा। अन्धकके द्वारा यम-दण्डसे प्रह्लादको सुरक्षित देखकर दैत्यों एवं दानवोंके सेनानायक प्रसन्न होकर उसे धन्यवाद देने लगे। मुने! अपने महादण्डको अन्धकद्वारा घुमाते देख सूर्यतनय यम दैत्यको दुःसह और दुर्धर समझकर अन्तर्धान हो गये। महामुने! धर्मराजके अन्तर्हित होनेपर अब बली प्रह्लाद भी सभी ओरसे देवसेनाको नष्ट करने लगे॥ २१—२४॥

वरुणदेव सूँसपर स्थित थे। वे प्रबल असुरोंको अपने पाशोंसे बाँधकर गदाद्वारा विदीर्ण करने लगे। इसपर विरोचनने उनका सामना किया। उसने वज्रतुल्य

तोमरैर्वज्रसंस्पर्शैः शक्तिभिर्मार्गणैरपि।
जलेशं ताडयामास मुद्गरैः कणपैरपि॥ २६

ततस्तं गदयाभ्येत्य पातयित्वा धरातले।
अभिद्रुत्य बबन्धाथ पाशैर्मत्तगजं बली॥ २७

तान् पाशाञ्शतधा चक्रे वेगाच्च दनुजेश्वरः।
वरुणं च समभ्येत्य मध्ये जग्राह नारद॥ २८

ततो दन्ती स शृङ्गाभ्यां प्रचिक्षेप तदाऽव्ययः।
ममर्द च तथा पद्भ्यां सवाहं सलिलेश्वरम्॥ २९

तं मर्द्यमानं वीक्ष्याथ शशाङ्कः शिशिरांशुमान्।
अभ्येत्य ताडयामास मार्गणैः कायदारणैः॥ ३०

स ताड्यमानः शिशिरांशुबाणै-
रवाप पीडां परमां गजेन्द्रः।
दुद्राव वेगात् पयसामधीशं
मुहुर्मुहुः पादतलैर्ममर्द॥ ३१

स मृद्यमानो वरुणो गजेन्द्रं
पद्भ्यां सुगाढं जगृहे महर्षे।
पादेषु भूमिं करयोः स्पृशंश्च
मूर्द्धानमुल्लाल्य बलान्महात्मा॥ ३२

गृह्याङ्गुलीभिश्च गजस्य पुच्छं
कृत्वेह बन्धं भुजगेश्वरेण।
उत्पाट्य चिक्षेप विरोचनं हि
सकुञ्जरं खे सनियन्तृवाहम्॥ ३३

क्षिप्तो जलेशेन विरोचनस्तु
सकुञ्जरो भूमितले पपात।
साट्टं सयन्त्रार्गलहर्म्यभूमिं
पुरं सुकेशेरिव भास्करेण॥ ३४

ततो जलेशः सगदः सपाश-
समभ्यधावद् दितिजं निहन्तुम्।
ततः समाक्रन्दमनुत्तमं हि
मुक्तं तु दैत्यैर्घनरावतुल्यम्॥ ३५

हा हा हतोऽसौ वरुणेन वीरो
विरोचनो दानवसैन्यपालः।
प्रह्लाद हे जम्भकुजम्भकाद्या
रक्षध्वमभ्येत्य सहान्धकेन॥ ३६

अहो महात्मा बलवाञ्जलेशः
संचूर्णयन् दैत्यभटं सवाहम्।
पाशेन बद्ध्वा गदया निहन्ति
यथा पशुं वाजिमखे महेन्द्रः॥ ३७

तोमर, शक्ति, बाण, मुद्गर और कणपों[1] (भालों) से वरुणदेवपर प्रहार किया। इसपर वरुणने उसके निकट आकर गदासे मारकर उन्हें पृथ्वीपर गिरा दिया। फिर दौड़कर उन्होंने पाशोंसे उसके मतवाले हाथीको बाँध लिया। पर अन्धकने तुरन्त ही उन पाशोंके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। नारदजी! इतना ही नहीं, उसने वरुणके निकट जाकर उनकी कमर भी पकड़ ली॥ २६—२८॥

उस हाथीने भी अपने प्रबल दाँतोंसे वरुणको उठाकर फेंक दिया। साथ ही वह वाहनसहित वरुणको अपने पैरोंसे कुचलने लगा। यह देख शीतकिरण चन्द्रमाने हाथीके पास पहुँचकर अपने तेज नुकीले बाणोंसे उसके शरीरको विदीर्ण कर दिया। चन्द्रमाके बाणोंसे विद्ध होनेपर अन्धकके हाथीको अत्यधिक पीड़ा हुई। वह अपने पैरोंसे वरुणको तेजीसे बार बार कुचलने लगा। नारदजी! वरुणदेवने भी हाथीके दोनों पैरोंको दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया एवं अपने हाथों तथा पैरोंसे भूमिका स्पर्श करते हुए मस्तक उठाकर बलपूर्वक अङ्गुलियोंसे उस हाथीकी पूँछ पकड़ ली और सर्पराज वासुकिसे विरोचनको बाँधकर उसे हाथी और पीलवानके सहित उठाकर आकाशमें फेंक दिया॥ २९—३३॥

वरुणद्वारा फेंका गया विरोचन आकाशसे हाथीसहित पृथ्वीपर इस प्रकार आ गिरा, जैसे सूर्यद्वारा पहले सुकेशी दैत्यका नगर अट्टालिकाओं, यन्त्रों, अर्गलाओं एवं महलोंके सहित पृथ्वीपर गिराया गया था। उसके बाद वरुण गदा और पाश लेकर दैत्यको मारनेके लिये दौड़े। अब दैत्यलोग मेघ गर्जन जैसे जोर जोरसे रोने लगे—हाय हाय! राक्षस-सेनाके रक्षक वीर विरोचन वरुणद्वारा मारे जा रहे हैं। हे प्रह्लाद, हे जम्भ! हे कुजम्भ! तुम सभी अन्धकके साथ आकर (उन्हें) बचाओ। हाय! बलवान् वरुण दैत्यवीर विरोचनको वाहनसहित चूर्ण करते हुए उन्हें पाशमें बाँधकर गदासे इस प्रकार मार रहे हैं जैसे अश्वमेध यज्ञमें इन्द्र पशुको

[1] कणप अस्त्रका वर्णन महाभारत तथा दशकुमारचरितमें आया है।

श्रुत्वाथ शब्दं दितिजैः समीरितं
जम्भप्रधाना दितिजेश्वरास्ततः ।
समभ्यधावंस्त्वरिता जलेश्वरं
यथा पतङ्गा ज्वलितं हुताशनम् ॥ ३८

तानागतान् वै प्रसमीक्ष्य देवः
प्राह्लादिमुत्सृज्य वितत्य पाशम् ।
गदां समुद्भ्राम्य जलेश्वरस्तु
दुद्राव ताञ्जम्भमुखानरातीन् ॥ ३९

जम्भं च पाशेन तथा निहत्य
तारं तलेनाशनिसंनिभेन ।
पादेन वृत्रं तरसा कुजम्भं
निपातयामास बलं च मुष्ट्या ॥ ४०

तेनार्दिता देववरेण दैत्याः
संप्राद्रवन् दिक्षु विमुक्तशस्त्राः ।
ततोऽन्धकः स त्वरितोऽभ्युपेयाद्
रणाय योद्धुं जलनायकेन ॥ ४१

तमापतन्तं गदया जघान
पाशेन बद्ध्वा वरुणो सुरेशम् ।
तं पाशमाक्षिप्य गदां प्रगृह्य
चिक्षेप दैत्यः स जलेश्वराय ॥ ४२

तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य पाशं
गदां च दाक्षायणिनन्दनस्तु ।
विवेश वेगात् पयसां निधानं
ततोऽन्धको देवबलं ममर्द ॥ ४३

ततो हुताशः सुरशत्रुसैन्यं
ददाह रोषात् पवनावधूतः ।
तमभ्ययाद् दानवविश्वकर्मा
मयो महाबाहुरुदग्रवीर्यः ॥ ४४

तमापतन्तं सह शम्बरेण
समीक्ष्य वह्निः पवनेन सार्धम् ।
शक्त्या मयं शम्बरमेत्य कण्ठे
सन्ताड्य जग्राह बलान्महर्षे ॥ ४५

शक्त्या स कायावरणे विदारिते
संभिन्नदेहो न्यपतत् पृथिव्याम् ।
मयः प्रजज्वाल च शम्बरोऽपि
कण्ठावलग्ने ज्वलने प्रदीप्ते ॥ ४६

स दह्यमानो दितिजोऽग्निनाथ
सुविस्वरं घोरतरं रुराव ।
सिंहाभिपन्नो विपिने यथैव
मत्तो गजः क्रन्दति वेदनार्त्तः ॥ ४७

मारते हैं। दैत्योंके रुदनको सुनकर जम्भ आदि प्रमुख दैत्यगण वरुणकी ओर शीघ्रतासे ऐसे दौड़े जैसे पतङ्ग प्रज्वलित अग्निकी ओर दौड़ते हैं ॥ ३४—३८ ॥

उन दैत्योंको आया देख वरुण प्रह्लाद-पुत्र (विरोचन)-को छोड़ करके पाश फैलाकर और गदा घुमाकर उन जम्भप्रभृति शत्रुओंकी ओर दौड़े। उन्होंने जम्भको पाशसे, तार दैत्यको वज्र-तुल्य करतलके प्रहारसे, वृत्रासुरको पैरोंसे, कुजम्भको अपने वेगसे और बल नामक असुरको मुक्केसे मारकर गिरा दिया देवप्रवर! वरुणद्वारा मर्दित दैत्य अपने अस्त्र-शस्त्रोंको छोड़कर दसों दिशाओंमें भागने लगे। उसके बाद अन्धक वरुणदेवके साथ युद्ध करनेके लिये बड़ी तेजीसे उनके पास पहुँचा। अपनी ओर आते देख वरुणने उस दैत्यनायक अन्धकको अपने पाशसे बाँधकर गदासे मारा, किंतु दैत्यने उस पाश और गदाको छीनकर वरुणपर ही फेंक दिया ॥ ३९—४२ ॥

उस पाश और गदाको अपनी ओर आते देखकर दाक्षायणीके पुत्र वरुण शीघ्रतासे समुद्रमें पैठ गये। तब अन्धक देवसेनाका मर्दन करने लगा। उसके बाद पवनद्वारा प्रज्वलित अग्निदेव क्रोधपूर्वक असुरोंकी सेनाको दग्ध करने लगे। तब दानवोंका 'विश्वकर्मा' (शिल्पिराज) प्रचण्ड प्रतापी महाबाहु मय उनके सामने आया। नारदजी! शम्बरके साथ उसे आते देख अग्निदेवने वायुदेवताके साथ शक्तिके प्रहारसे मय और शम्बरके कण्ठमें चोट पहुँचाकर उन दोनोंको ही जोरसे पकड़ लिया। शक्तिसे कवचके फट जानेपर छिन्न-भिन्न शरीरवाला मय पृथ्वीपर गिर पड़ा और शम्बरासुर कण्ठमें प्रदीप्त अग्निके लग जानेसे दग्ध होने लगा। अग्निद्वारा जलते दैत्यने उस समय मुक्त कण्ठसे इस प्रकार रोदन किया, जैसे वनमें सिंहसे आक्रान्त मतवाला हाथी वेदनासे दुःखी होकर करुण चिग्घाड़ करता है ॥ ४३—४७ ॥

तं शब्दमाकर्ण्य च शम्बरस्य
दैत्येश्वरः क्रोधविरक्तदृष्टिः।
आः किं किमेतन्ननु केन युद्धे
जितो मयः शम्बरदानवश्च॥४८

ततोऽब्रुवन् दैत्यभटा दितीशं
प्रदह्यते ह्येष हुताशनेन।
रक्षस्व चाभ्येत्य न शक्यतेऽन्यैः
हुताशनो वारयितुं रणाग्रे॥४९

इत्थं स दैत्यैरभिनोदितस्तु
हिरण्यचक्षुस्तनयो महर्षे।
उद्याम्य वेगात् परिघं हुताशं
समाद्रवत् तिष्ठ तिष्ठ ब्रुवन् हि॥५०

श्रुत्वाऽन्धकस्यापि वचो व्ययात्मा
संक्रुद्धचित्तस्त्वरितो हि दैत्यम्।
उत्पाद्य भूम्यां च विनिक्षिपेच
ततोऽन्धकः पावकमाससाद॥५१

समाजघानाथ हुताशनं हि
वरायुधेनाथ वराङ्गमध्ये।
समाहतोऽग्निः परिमुच्य शम्बरं
तथाऽन्धकं स त्वरितोऽभ्यधावत्॥५२

तमापतन्तं परिघेण भूयः
समाहनन्मूर्ध्नि तदान्धकोऽपि।
स ताडितोऽग्निर्दितिजेश्वरेण
भयात् प्रदुद्राव रणाजिराद्धि॥५३

ततोऽन्धको मारुतचन्द्रभास्करान्
साध्यान् सरुद्राश्विवसून् महोरगान्।
यान् यान् शरेण स्पृशते पराक्रमी
पराङ्मुखांस्तान् कृतवान् रणाजिरात्॥५४

ततो विजित्यामरसैन्यमुग्रं
सेन्द्रं सरुद्रं सयमं ससोमम्।
संपूज्यमानो दनुपुंगवैस्तु
तदाऽन्धको भूमिमुपाजगाम॥५५

आसाद्य भूमिं करदान् नरेन्द्रान्
कृत्वा वशे स्थाप्य चराचरं च।
जगत्समग्रं प्रविवेश धीमान्
पातालमग्र्यं पुरमश्मकाह्वम्॥५६

तत्र स्थितस्यापि महासुरस्य
गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः।
सहाप्सरोभिः परिचारणाय
पातालमभ्येत्य समावसन्त॥५७

शम्बरके उस शब्दको सुनकर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले दैत्येश्वरने कहा—ओ! यह क्या है? युद्धमें मय और शम्बरको किसने जीता है? इसपर दैत्ययोद्धाओंने अन्धकसे कहा—अग्निदेव इनको जला रहे हैं। आप आकर उनकी रक्षा करें। आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी अग्निको नहीं रोक सकता। नारदजी! दैत्योंके ऐसा कहनेपर हिरण्याक्षपुत्र शीघ्रतासे परिघ उठाकर 'ठहरो-ठहरो' कहता हुआ अग्निकी ओर दौड़ पड़ा। अन्धकके वचनको सुनकर अव्ययात्मा अग्निदेवने अत्यन्त क्रोधसे उस दैत्यको शीघ्र ही उठाकर पृथ्वीपर पटक दिया। उसके बाद अन्धक अग्निके पास पहुँचा॥४८—५१॥

उसने श्रेष्ठ अस्त्रके द्वारा अग्निके सिरपर प्रहार किया। इस प्रकार आहत अग्निदेव शम्बरको छोड़कर तत्काल अन्धककी ओर दौड़े। अन्धकने आते हुए अग्निदेवके सिरपर पुनः परिघसे प्रहार किया। अन्धकद्वारा ताड़ित अग्निदेव भयभीत हो रणक्षेत्रसे भाग गये। उसके बाद पराक्रमी अन्धक वायु, चन्द्र, सूर्य, साध्य, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु और महानागोंमें जिन-जिनको बाणसे स्पर्श करता था, वे सभी युद्धभूमिसे पराङ्मुख हो जाते थे। इस प्रकार इन्द्र, रुद्र, यम, सोमसहित देवताओंकी उग्र सेनाको जीतकर अन्धक श्रेष्ठ दानवोंके द्वारा पूजित होकर पृथ्वीपर आ गया। वहाँ वह बुद्धिमान् दैत्य सभी राजाओंको अपना करद (सामन्त) बना करके तथा समस्त चराचर जगत्‌को वशमें कर पातालमें स्थित अपने अश्मक नामक उत्तम नगरमें चला गया। वहाँ उस महासुर अन्धककी सेवा करनेके लिये अप्सराओंके साथ सभी प्रमुख गन्धर्व, विद्याधर एवं सिद्धोंके समूह पातालमें आकर निवास करने लगे॥५२—५७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सुकेशिकी कथा, मगधारण्यमें ऋषियोंसे प्रश्न करना, ऋषियोंका धर्मोपदेश, देशादिके धर्म, भुवनकोश एवं इक्कीस नरकोंका वर्णन

नारद उवाच

यदेतद् भवता प्रोक्तं सुकेशिनगरोऽम्बरात्।
पातितो भुवि सूर्येण तत्कदा कुत्र कुत्र च॥ १

सुकेशीति च कश्चासौ केन दत्तः पुरोऽस्य च।
किमर्थं पातितो भूम्यामाकाशाद् भास्करेण हि॥ २

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्
यथोक्तवान् स्वयम्भूर्मां कथ्यमानां मयाऽनघ॥ ३
आसीन्निशाचरपतिर्विद्युत्केशीति विश्रुतः।
तस्य पुत्रो गुणज्येष्ठः सुकेशिरभवत्ततः॥ ४
तस्य तुष्टस्तथेशानः पुरमाकाशचारिणम्।
प्रादादजेयत्वमपि शत्रुभिश्चाप्यवध्यताम्॥ ५
स चापि शंकरात् प्राप्य वरं गगनगं पुरम्।
रेमे निशाचरैः सार्द्धं सदा धर्मपथि स्थितः॥ ६
स कदाचिद् गतोऽरण्यं मागधं राक्षसेश्वरः।
तत्राश्रमांस्तु ददृशे ऋषीणां भावितात्मनाम्॥ ७
महर्षीन् स तदा दृष्ट्वा प्रणिपत्याभिवाद्य च।
प्रत्युवाच ऋषीन् सर्वान् कृतासनपरिग्रहः॥ ८

सुकेशिरुवाच

प्रष्टुमिच्छामि भवतः संशयोऽयं हृदि स्थितः।
कथयन्तु भवन्तो मे न चैवाज्ञापयाम्यहम्॥ ९

किंस्विच्छ्रेयः परे लोके किमु चेह द्विजोत्तमाः।
केन पूज्यस्तथा सत्सु केनासौ सुखमेधते॥ १०

पुलस्त्य उवाच

इत्थं सुकेशिवचनं निशम्य परमर्षयः।
प्रोचुर्विमृश्य श्रेयोऽर्थमिह लोके परत्र च॥ ११

ऋषय ऊचुः

श्रूयतां कथयिष्यामस्तव राक्षसपुंगव।
यद्धि श्रेयो भवेद् वीर इह चामुत्र चाव्ययम्॥ १२

नारदजीने (पुलस्त्यजीसे) पूछा—आपने जो यह कहा है कि सूर्यने सुकेशीके नगरको आकाशसे पृथ्वीपर गिरा दिया था तो यह घटना कब और कहाँ हुई थी? सुकेशी नामका यह कौन व्यक्ति था? उसे यह नगर किसने दिया था और भगवान् सूर्यने उसे आकाशसे पृथ्वीपर क्यों गिरा दिया?॥ १-२॥

पुलस्त्यजी बोले—निष्पाप नारदजी! यह कथा बहुत पुरानी है। आप इसे सावधानीसे सुनिये। ब्रह्माजीने जैसे यह कथा मुझे सुनायी थी, वैसे ही इसे मैं आपको सुना रहा हूँ। पहले विद्युत्केशी नामसे प्रसिद्ध राक्षसोंका एक राजा था। उसका पुत्र सुकेशी गुणोंमें उससे भी बढ़कर था। उसपर प्रसन्न होकर शिवजीने उसे एक आकाशचारी नगर और शत्रुओंसे अजेय एवं अवध्य होनेका वर भी दिया। वह शंकरसे आकाशचारी श्रेष्ठ नगर पाकर राक्षसोंके साथ सदा धर्मपथपर रहते हुए विचरने लगा। एक समय मगधारण्यमें जाकर उस राक्षसराजने वहाँ ध्यान परायण ऋषियोंके आश्रमोंको देखा। उस समय महर्षियोंको देखकर अभिवादन और प्रणाम किया। फिर एक जगह बैठकर उसने समस्त ऋषियोंसे कहा—॥ ३—८॥

सुकेशि बोला—मैं आप लोगोंको आदेश नहीं दे रहा हूँ; बल्कि मेरे हृदयमें एक संदेह है, उसे मैं आपसे पूछना चाहता हूँ। आप मुझको उसे बतलाइये। द्विजोत्तमो! इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी क्या है? मनुष्य सज्जनोंमें कैसे पूज्य होता है और उसे सुखकी प्राप्ति कैसे होती है?॥ ९-१०॥

पुलस्त्यजी बोले—सुकेशीके इस प्रकारके वचनको सुनकर श्रेष्ठ ऋषियोंने विचारकर उससे इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी बातें कहीं॥ ११॥

ऋषिगण बोले—वीर राक्षस-श्रेष्ठ! इस लोक और परलोकमें जो अक्षय श्रेयस्कर वस्तु है, उसे हम तुमसे कहते हैं, उसे सुनो। निशाचर! इस लोक और परलोकमें

श्रेयो धर्मः परे लोके इह च क्षणदाचर।
तस्मिन् समाश्रितः सत्सु पूज्यस्तेन सुखी भवेत्॥ १३

धर्म ही कल्याणकारी है उसमें स्थित रहकर व्यक्ति सज्जनोंमें आदरणीय एवं सुखी होता है॥ १२-१३॥

सुकेशिरुवाच

किं लक्षणो भवेद् धर्मः किमाचरणसत्क्रियः।
यमाश्रित्य न सीदन्ति देवाद्यास्तु तदुच्यताम्॥ १४

सुकेशि बोला—धर्मका लक्षण (परिचय) क्या है? उसमें कौन-से आचरण एवं सत्कर्म होते हैं, जिनका आश्रय लेकर देवादि कभी दुःखी नहीं होते। आप उसका वर्णन करें॥ १४॥

ऋषय ऊचुः

देवानां परमो धर्मः सदा यज्ञादिकाः क्रियाः।
स्वाध्यायवेदवेत्तृत्वं विष्णुपूजारतिः स्मृता॥ १५
दैत्यानां बाहुशालित्वं मात्सर्यं युद्धसत्क्रिया।
वेदनं नीतिशास्त्राणां हरभक्तिरुदाहृता॥ १६
सिद्धानामुदितो धर्मो योगयुक्तिरनुत्तमा।
स्वाध्यायं ब्रह्मविज्ञानं भक्तिर्द्वाभ्यामपि स्थिरा॥ १७
उत्कृष्टोपासनं ज्ञेयं नृत्यवाद्येषु वेदिता।
सरस्वत्यां स्थिरा भक्तिर्गान्धर्वो धर्म उच्यते॥ १८

ऋषियोंने कहा—सदा यज्ञादि कार्य, स्वाध्याय, वेदज्ञान और विष्णुपूजामें रति—ये देवताओंके शाश्वत परम धर्म हैं। बाहुबल, ईर्ष्याभाव, युद्धकार्य, नीतिशास्त्रका ज्ञान और हर-भक्ति—ये दैत्योंके धर्म कहे गये हैं। श्रेष्ठ योगसाधन, वेदाध्ययन, ब्रह्मविज्ञान तथा विष्णु और शिव—इन दोनोंमें अचल भक्ति—ये सब सिद्धोंके धर्म कहे गये हैं। ऊँची उपासना, नृत्य और वाद्यका ज्ञान तथा सरस्वतीके प्रति निश्चल भक्ति—ये गन्धर्वोंके धर्म कहे जाते हैं॥ १५—१८॥

विद्याधरत्वमतुलं विज्ञानं पौरुषे मतिः।
विद्याधराणां धर्मोऽयं भवान्यां भक्तिरेव च॥ १९
गन्धर्वविद्यावेदित्वं भक्तिर्भानौ तथा स्थिरा।
कौशल्यं सर्वशिल्पानां धर्मः किम्पुरुषः स्मृतः॥ २०
ब्रह्मचर्यममानित्वं योगाभ्यासरतिर्दृढा।
सर्वत्र कामचारित्वं धर्मोऽयं पैतृकः स्मृतः॥ २१
ब्रह्मचर्यं यताशित्वं जप्यं ज्ञानं च राक्षस।
नियमाद्धर्मवेदित्वमार्षो धर्मः प्रचक्ष्यते॥ २२
स्वाध्यायं ब्रह्मचर्यं च दानं यजनमेव च।
अकार्पण्यमनायासं दया हिंसा क्षमा दमः॥ २३
जितेन्द्रियत्वं शौचं च माङ्गल्यं भक्तिरच्युते।
शंकरे भास्करे देव्यां धर्मोऽयं मानवः स्मृतः॥ २४

अद्भुत विद्याका धारण करना, विज्ञान, पुरुषार्थकी बुद्धि और भवानीके प्रति भक्ति—ये विद्याधरोंके धर्म हैं। गन्धर्वविद्याका ज्ञान, सूर्यके प्रति अटल भक्ति और सभी शिल्प-कलाओंमें कुशलता—ये किम्पुरुषोंके धर्म माने जाते हैं। ब्रह्मचर्य, अमानित्व (अभिमानसे बचना) योगाभ्यासमें दृढ़ प्रीति एवं सर्वत्र इच्छानुसार भ्रमण—ये पितरोंके धर्म कहलाते हैं। राक्षस! ब्रह्मचर्य, नियताहार, जप, आत्मज्ञान और नियमानुसार धर्मज्ञान—ये ऋषियोंके धर्म कहे जाते हैं। स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दान, यज्ञ, उदारता, विश्रान्ति, दया, अहिंसा, क्षमा, दम, जितेन्द्रियता, शौच, माङ्गल्य तथा विष्णु, शिव, सूर्य और दुर्गादेवीमें भक्ति—ये मानवोंके (सामान्य) धर्म हैं॥ १९—२४॥

धनाधिपत्यं भोगानि स्वाध्यायं शंकरार्चनम्।
अहंकारमशौण्डीर्यं धर्मोऽयं गुह्यकेष्विति॥ २५
परदारावमर्शित्वं पारक्येऽर्थे च लोलता।
स्वाध्यायं त्र्यम्बके भक्तिर्धर्मोऽयं राक्षसः स्मृतः॥ २६
अविवेकमथाज्ञानं शौचहानिरसत्यता।
पिशाचानामयं धर्मः सदा चामिषगृध्नुता॥ २७
योनयो द्वादशैवैतास्तासु धर्माश्च राक्षस।
ब्रह्मणा कथिताः पुण्या द्वादशैव गतिप्रदाः॥ २८

धनका स्वामित्व, भोग, स्वाध्याय, शिवजीकी पूजा, अहंकार और सौम्यता ये गुह्यकोंके धर्म हैं। परस्त्रीगमन, दूसरेके धनमें लोलुपता, वेदाध्ययन और शिवभक्ति—ये राक्षसोंके धर्म कहे गये हैं। अविवेक, अज्ञान, अपवित्रता, असत्यता एवं सदा मांस-भक्षणकी प्रवृत्ति—ये पिशाचोंके धर्म हैं। राक्षस! ये ही बारह योनियाँ हैं पितामह ब्रह्माने उनके ये बारह गति देनेवाले धर्म कहे हैं॥ २५—२८॥

सुकेशिरुवाच

भवद्भिरुक्ता ये धर्माः शाश्वता द्वादशाव्ययाः।
तत्र ये मानवा धर्मास्तान् भूयो वक्तुमर्हथ॥ २९

ऋषय ऊचुः

शृणुष्व मनुजादीनां धर्मांस्तु क्षणदाचर।
ये वसन्ति महीपृष्ठे नरा द्वीपेषु सप्तसु॥ ३०
योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिरायता।
जलोपरि महीयं हि नौरिवास्ते सरिज्जले॥ ३१
तस्योपरि च देवेशो ब्रह्मा शैलेन्द्रमुत्तमम्।
कर्णिकाकारमत्युच्चं स्थापयामास सत्तम॥ ३२
तस्येमां निर्ममे पुण्यां प्रजां देवश्चतुर्दिशम्।
स्थानानि द्वीपसंज्ञानि कृतवांश्च प्रजापतिः॥ ३३

तत्र मध्ये च कृतवाञ्जम्बूद्वीपमिति श्रुतम्।
तल्लक्षं योजनानां च प्रमाणेन निगद्यते॥ ३४
ततो जलनिधी रौद्रो बाह्यतो द्विगुणः स्थितः।
तस्यापि द्विगुणः प्लक्षो बाह्यतः संप्रतिष्ठितः॥ ३५
ततस्त्विक्षुरसोदश्च बाह्यतो वलयाकृतिः।
द्विगुणः शाल्मलिद्वीपो द्विगुणोऽस्य महोदधेः॥ ३६
सुरोदो द्विगुणस्तस्य तस्माच्च द्विगुणः कुशः।
घृतोदो द्विगुणश्चैव कुशद्वीपात् प्रकीर्तितः॥ ३७

घृतोदाद् द्विगुणः प्रोक्तः क्रौञ्चद्वीपो निशाचर।
ततोऽपि द्विगुणः प्रोक्तः समुद्रो दधिसंज्ञितः॥ ३८
समुद्राद् द्विगुणः शाकः शाकाद् दुग्धाब्धिरुत्तमः।
द्विगुणः संस्थितो यत्र शेषपर्यङ्कगो हरिः।
एते च द्विगुणाः सर्वे परस्परमपि स्थिताः॥ ३९
चत्वारिंशदिमाः कोट्यो लक्षाश्च नवतिः स्मृताः।
योजनानां राक्षसेन्द्र पञ्च चातिसुविस्तृताः।
जम्बूद्वीपात् समारभ्य यावत्क्षीराब्धिरन्ततः॥ ४०
तस्माच्च पुष्करद्वीपः स्वादूदस्तदनन्तरम्।
कोट्यश्चतस्रो लक्षाणां द्विपञ्चाशच्च राक्षस॥ ४१

पुष्करद्वीपमानोऽयं तावदेव तथोदधिः।
लक्षमण्डकटाहेन समन्तादभिपूरितम्॥ ४२

एवं द्वीपास्त्विमे सप्त पृथग्धर्माः पृथक्क्रियाः।
गदिष्यामस्तव वयं शृणुष्व त्वं निशाचर॥ ४३॥

प्लक्षादिषु नरा वीर ये वसन्ति सनातनाः।
शाकान्तेषु न तेष्वस्ति युगावस्था कथंचन॥ ४४

सुकेशिने कहा— आप लोगोंने जो शाश्वत एवं अव्यय बारह धर्म बताये हैं, उनमें मनुष्योंके धर्मोंको एक बार पुनः कहनेकी कृपा करें॥ २९॥

ऋषियोंने कहा— निशाचर! पृथ्वीके सात द्वीपोंमें निवास करनेवाले मनुष्य आदिके धर्मोंको सुनो। यह पृथ्वी पचास करोड़ योजन विस्तारवाली है और यह नदीमें नावके समान जलपर स्थित है। सज्जनश्रेष्ठ! उसके ऊपर देवेश ब्रह्माने कर्णिकाके आकारवाले अत्यन्त ऊँचे सुमेरुगिरिको स्थापित किया है। फिर उसपर ब्रह्माने चारों दिशाओंमें पवित्र प्रजाका निर्माण किया और द्वीप नामवाले अनेक स्थानोंकी भी रचना की है॥ ३०—३३॥

उनके मध्यमें उन्होंने जम्बूद्वीपकी रचना की। इसका प्रमाण एक लाख योजनका कहा जाता है। उसके बाहर दुगुना परिमाणमें लवण-समुद्र है तथा उसके बाद उसका दुगुना प्लक्षद्वीप है। उसके बाहर दुगुने प्रमाणवाला वलयाकार इक्षुरस-सागर है। इस महोदधिका दुगुना शाल्मलिद्वीप है। उसके बाहर उससे दुगुना सुरासागर है तथा उससे दुगुना कुशद्वीप है। कुशद्वीपसे दुगुना घृतसागर है॥ ३४—३७॥

निशाचर! घृतसागरसे दुगुना क्रौञ्चद्वीप कहा गया है तथा उससे दुगुना दधिसमुद्र है। दधिसागरसे दुगुना शाकद्वीप है और शाकद्वीपसे द्विगुण उत्तम क्षीरसागर है, जिसमें शेषशय्यापर सोते श्रीहरि स्थित हैं। ये सभी परस्पर एक दूसरेसे द्विगुण प्रमाणमें स्थित हैं। राक्षसेन्द्र! जम्बूद्वीपसे लेकर क्षीरसागरके अन्ततकका विस्तार चालीस करोड़ नब्बे लाख पाँच योजन है॥ ३८—४०॥

राक्षस! उसके बाद पुष्करद्वीप एवं तदनन्तर स्वादु जलका समुद्र है। पुष्करद्वीपका परिमाण चार करोड़ बावन लाख योजन है। उसके चारों ओर उतने ही परिमाणका समुद्र है। उसके चारों ओर लाख योजनका अण्डकटाह है। इस प्रकार ये सातों द्वीप भिन्न धर्मों और क्रियावाले हैं। निशाचर! हम उनका वर्णन करते हैं, तुम उसे सुनो। वीर! प्लक्षसे शाकद्वीपतकके द्वीपोंमें जो सनातन (नित्य) पुरुष निवास करते हैं, उनमें किसी प्रकारकी युग-व्यवस्था नहीं है।

मोदन्ते देववत्तेषां धर्मो दिव्य उदाहृतः।
कल्पान्ते प्रलयस्तेषां निगद्येत महाभुज॥ ४५

ये जनाः पुष्करद्वीपे वसन्ते रौद्रदर्शने।
पैशाचमाश्रिता धर्मं कर्मान्ते ते विनाशिनः॥ ४६

सुकेशिरुवाच

किमर्थं पुष्करद्वीपो भवद्भिः समुदाहृतः।
दुर्दर्शः शौचरहितो घोरः कर्मान्तनाशकृत्॥ ४७

ऋषय ऊचुः

तस्मिन् निशाचर द्वीपे नरकाः सन्ति दारुणाः।
रौरवाद्यास्ततो रौद्रः पुष्करो घोरदर्शनः॥ ४८

सुकेशिरुवाच

कियन्त्येतानि रौद्राणि नरकाणि तपोधनाः।
कियन्मात्राणि मार्गेण का च तेषु स्वरूपता॥ ४९

ऋषय ऊचुः

शृणुष्व राक्षसश्रेष्ठ प्रमाणं लक्षणं तथा।
सर्वेषां रौरवादीनां संख्या या त्वेकविंशतिः॥ ५०
द्वे सहस्रे योजनानां ज्वलिताङ्गारविस्तृते।
रौरवो नाम नरकः प्रथमः परिकीर्तितः॥ ५१
तप्तताम्रमयी भूमिरधस्ताद्वह्नितापिता।
द्वितीयो द्विगुणस्तस्मान्महारौरव उच्यते॥ ५२
ततोऽपि द्विगुणश्चान्यस्तामिस्रो नरकः स्मृतः।
अन्धतामिस्रको नाम चतुर्थो द्विगुणः परः॥ ५३
ततस्तु कालचक्रेति पञ्चमः परिगीयते।
अप्रतिष्ठं च नरकं घटीयन्त्रं च सप्तमम्॥ ५४
असिपत्रवनं चान्यत्सहस्राणि द्विसप्ततिः।
योजनानां परिख्यातमष्टमं नरकोत्तमम्॥ ५५
नवमं तप्तकुम्भं च दशमं कूटशाल्मलिः।
करपत्रस्तथैवोक्तस्तथाऽन्यः श्वानभोजनः॥ ५६
संदंशो लोहपिण्डश्च करम्भसिकता तथा।
घोरा क्षारनदी चान्या तथान्यः कृमिभोजनः।
तथाऽष्टादशमी प्रोक्ता घोरा वैतरणी नदी॥ ५७
तथा परः शोणितपूयभोजनः
क्षुराग्रधारो निशितश्च चक्रकः।
संशोषणो नाम तथाप्यनन्तः
प्रोक्तास्तवैते नरकाः सुकेशिन्॥ ५८

महाबाहो! वे देवताओंके समान सुखभोग करते हैं। उनका धर्म दिव्य कहा जाता है। कल्पके अन्तमें उनका प्रलयमात्र होना वर्णित है। पुष्करद्वीप देखनेमें भयंकर है। वहाँके निवासी पैशाच-धर्मोंका पालन करते हैं। कर्मके अन्तमें उनका नाश होता है॥ ४१—४६॥

सुकेशिने कहा— आप लोगोंने पुष्करद्वीपको भयंकर, पवित्रता-रहित, घोर एवं कर्मके अन्तमें नाश करनेवाला क्यों बतलाया? कृपाकर यह बात हमें समझायें॥ ४७॥

ऋषियोंने कहा— निशाचर! उस द्वीपमें रौरव आदि भयानक नरक हैं। इसीसे पुष्करद्वीप देखनेमें बड़ा भयंकर है॥ ४८॥

सुकेशिने पूछा— तपस्विगण! वे रौद्र नरक कितने हैं? उनका मार्ग कितना है? उनका स्वरूप कैसा है?॥ ४९॥

ऋषियोंने कहा— राक्षसश्रेष्ठ! उन समस्त रौरव आदि नरकोंका लक्षण और प्रमाण सुनो, जिन (मुख्य नरकों)-की संख्या इक्कीस है। उनमें प्रथम रौरव नरक कहा जाता है, यह दो हजार योजन विस्तृत एवं प्रज्वलित अङ्गारमय है। उससे द्विगुणित महारौरव नामका द्वितीय नरक है। उसकी भूमि जलते हुए ताँबेसे बनी है, जो नीचेसे अग्निद्वारा तापित होती रहती है। उससे द्विगुणित विस्तृत तीसरा तामिस्र नामक नरक कहा जाता है। उससे द्विगुणित अन्धतामिस्र नामक चतुर्थ नरक है। उसके बाद पञ्चम नरकको कालचक्र कहते हैं। अप्रतिष्ठ नामक नरक षष्ठ और घटीयन्त्र सप्तम है॥ ५०—५४॥

नरकोंमें श्रेष्ठ असिपत्रवन नामक आठवाँ नरक बहत्तर हजार योजन विस्तृत कहा जाता है। नवाँ तप्तकुम्भ, दसवाँ कूटशाल्मलि, ग्यारहवाँ करपत्र और बारहवाँ नरक श्वानभोजन है। उसके बाद क्रमशः संदंश, लोहपिण्ड, करम्भसिकता, भयंकर क्षार नदी, कृमिभोजन और अठारहवेंको घोर वैतरणी नदी कहा जाता है। उनके अतिरिक्त शोणित-पूयभोजन, क्षुराग्रधार, निशितचक्रक तथा संशोषण नामक अनन्त नरक हैं। सुकेशिन्! हम लोगोंने तुमसे इन नरकोंका वर्णन कर दिया॥ ५५—५८॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

सुकेशिका नरक देनेवाले कर्मोंके सम्बन्धमें प्रश्न, ऋषियोंका उत्तर और नरकोंका वर्णन

सुकेशिरुवाच

कर्मणा नरकानेतान् केन गच्छन्ति वै कथम्।
एतद् वदन्तु विप्रेन्द्राः परं कौतूहलं मम॥ १

सुकेशिने पूछा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इन नरकोंमें लोग किस कर्मसे और कैसे जाते हैं, यह आप लोग बतलायें। इस विषयको जाननेकी मेरी बड़ी उत्सुकता है॥ १॥

ऋषय ऊचुः

कर्मणा येन येनेह यान्ति शालकटंकट[1]।
स्वकर्मफलभोगार्थं नरकान् मे शृणुष्व तान्॥ २

वेददेवद्विजातीनां यैर्निन्दा सततं कृता।
ये पुराणेतिहासार्थान् नाभिनन्दन्ति पापिनः॥ ३

गुरुनिन्दाकरा ये च मखविघ्नकराश्च ये।
दातुर्निवारका ये च तेषु ते निपतन्ति हि॥ ४

सुहृद्दम्पतिसौदर्यस्वामिभृत्यपितासुतान्।
याज्योपाध्याययोर्यैश्च कृतो भेदोऽधमैर्मिथः॥ ५

कन्यामेकस्य दत्त्वा च ददत्यन्यस्य येऽधमाः।
करपत्रेण पाट्यन्ते ते द्विधा यमकिंकरैः॥ ६

ऋषिगण बोले—सुकेशिन्! मनुष्य अपने जिन-जिन कर्मोंके फल भोग करनेके लिये इन नरकोंमें जाते हैं, उन्हें हमसे सुनो। जिन लोगोंने वेद, देवता एवं द्विजातियोंकी सदा निन्दा की है, जो पुराण एवं इतिहासके अर्थोंमें आदरबुद्धि या श्रद्धा नहीं रखते और जो गुरुओंकी निन्दा करते हैं तथा यज्ञोंमें विघ्न डालते हैं, जो दाताको दान देनेसे रोकते हैं, वे सभी इन (वर्णित हो रहे) नरकोंमें गिरते हैं। जो अधम व्यक्ति मित्र, स्त्री-पुरुष, सहोदर भाई, स्वामी-सेवक, पिता-पुत्र एवं आचार्य तथा यजमानोंमें परस्पर झगड़ा लगाते हैं तथा जो अधम व्यक्ति एकको कन्या देकर पुनः दूसरेको दे देते हैं, वे सभी यमदूतोंद्वारा नरकोंमें आरासे दो भागोंमें चीरे जाते हैं॥ २—६॥

परोपतापजनकाश्चन्दनोशीरहारिणः।
बालव्यजनहर्तारः करम्भसिकताश्रिताः॥ ७

निमन्त्रितोऽन्यतो भुङ्क्ते श्राद्धे दैवे सपैतृके।
स द्विधा कृष्यते मूढस्तीक्ष्णतुण्डैः खगोत्तमैः॥ ८

मर्माणि यस्तु साधूनां तुदन् वाग्भिर्निकृन्तति।
तस्योपरि तुदन्तस्तु तुण्डैस्तिष्ठन्ति पत्त्रिणः॥ ९

यः करोति च पैशुन्यं साधूनामन्यथामतिः।
वज्रतुण्डनखा जिह्वामाकर्षन्तेऽस्य वायसाः॥ १०

(इसी प्रकार) जो दूसरोंको संताप देते, चन्दन और खसकी चोरी करते और बालोंसे बने व्यजनों—चँवरोंको चुराते हैं, वे करम्भसिकता नामक नरकमें जाते हैं। जो देव या पितृश्राद्धमें निमन्त्रित होकर अन्यत्र भोजन करता है, उस मूर्खको नरकमें तीक्ष्ण चोंचवाले बड़े-बड़े नरकपक्षी पकड़कर दोनों ओर खींचते हैं। जो तीखे वचनोंके द्वारा चोट करते हुए साधुओंके हृदयको दुखाता है, उसके ऊपर भयंकर पक्षी अपने चोंचोंसे कठोर प्रहार करते हैं। जो दुष्टबुद्धि मनुष्य साधुओंकी चुगली निन्दा करता है, उसकी जीभको वज्रतुल्य चोंच और नखवाले कौए खींच लेते हैं॥ ७—१०॥

मातापितृगुरूणां च येऽवज्ञां चक्रुरुद्धताः।
मज्जन्ते पूयविण्मूत्रे त्वप्रतिष्ठे ह्यधोमुखाः॥ ११

जो उद्धत लड़के अपने माता-पिता एवं गुरुकी आज्ञाका उल्लङ्घन करते हैं, वे पीब, विष्ठा एवं मूत्रसे पूर्ण अप्रतिष्ठ नामक नरकमें नीचेकी ओर मुँह कर डुबाये जाते हैं।

[1] १-शालकटंकट महाभारत ७। १०९। २२-३१ में अलम्बुषका तथा यहाँ सुकेशीका नामान्तर है। सुकेशि और सुकेशी भी चलते हैं।

देवतातिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च।
अभुक्तवत्सु ये श्नन्ति बालपित्रग्निमातृषु॥ १२
दुष्टासृक्पूयनिर्यासं भुञ्जते त्वधमा इमे।
सूचीमुखाश्च जायन्ते क्षुधार्त्ता गिरिविग्रहाः॥ १३
एकपङ्क्त्युपविष्टानां विषमं भोजयन्ति ये।
विड्भोजनं राक्षसेन्द्र नरकं ते व्रजन्ति च॥ १४
एकसार्थप्रयातं ये पश्यन्तश्चार्थिनं नराः।
असंविभज्य भुञ्जन्ति ते यान्ति श्लेष्मभोजनम्॥ १५
गोब्राह्मणाग्न्यः स्पृष्टा यैरुच्छिष्टैः क्षपाचर।
क्षिप्यन्ते हि करास्तेषां तप्तकुम्भे सुदारुणे॥ १६
सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैश्च कामतः।
तेषां नेत्रगतो वह्निर्धम्यते यमकिंकरैः॥ १७
मित्रजायाथ जननी ज्येष्ठो भ्राता पिता स्वसा।
जामयो गुरवो वृद्धा यैः संस्पृष्टाः पदा नृभिः॥ १८
बद्धाङ्घ्रयस्ते निगडैर्लोहैर्वह्निप्रतापितैः।
क्षिप्यन्ते रौरवे घोरे ह्याजानुपरिदाहिनः॥ १९
पायसं कृशरं मांसं वृथा भुक्तानि यैर्नरैः।
तेषामयोगुडास्तप्ताः क्षिप्यन्ते वदनेऽद्भुताः॥ २०
गुरुदेवद्विजातीनां वेदानां च नराधमैः।
निन्दा निशमिता यैस्तु पापानामिति कुर्वताम्॥ २१
तेषां लोहमयाः कीला वह्निवर्णाः पुनः पुनः।
श्रवणेषु निखन्यन्ते धर्मराजस्य किंकरैः॥ २२
प्रपादेवकुलारामान् विप्रवेश्मसभामठान्।
कूपवापीतडागांश्च भङ्क्त्वा विध्वंसयन्ति ये॥ २३
तेषां विलपतां चर्म देहतः क्रियते पृथक्।
कर्तिकाभिः सुतीक्ष्णाभिः सुरौद्रैर्यमकिंकरैः॥ २४
गोब्राह्मणार्कमग्निं च ये वै मेहन्ति मानवाः।
तेषां गुदेन चान्त्राणि विनिष्कृन्तन्ति वायसाः॥ २५
स्वपोषणपरो यस्तु परित्यजति मानवः।
पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धुवर्गमकिंचनम्।
दुर्भिक्षे संभ्रमे चापि स श्वभोज्ये निपात्यते॥ २६
शरणागतं ये त्यजन्ति ये च बन्धनपालकाः।
पतन्ति यन्त्रपीडे ते ताड्यमानास्तु किंकरैः॥ २७

जो देवता, अतिथि, अन्य प्राणी, सेवक, बाहरसे आये व्यक्ति, बालक, पिता, अग्नि एवं माताओंको बिना भोजन कराये पहले ही खा लेते हैं, वे अधम पुरुष पर्वततुल्य शरीर एवं सूची-सदृश मुखवाले होकर भूखसे व्याकुल रहते हुए दूषित रक्त एवं पीबका सार भक्षण करते हैं। हे राक्षसराज! एक ही पङ्क्तिमें बैठे हुए लोगोंको जो समानरूपसे भोजन नहीं कराते, वे विड्भोजन नामक नरकमें जाते हैं॥ ११—१४॥

जो लोग एक साथ चलनेवाले किसी बहुत तीव्र चाहवालेको देखते हुए भी उसे अन्न नहीं देते—अकेले भोजन करते हैं, वे श्लेष्मभोजन नामक नरकमें जाते हैं। हे राक्षस! जो उच्छिष्टावस्थामें (जूठे रहते हुए) गाय, ब्राह्मण और अग्निको स्पर्श करते हैं, उनके हाथ भयंकर तप्तकुम्भमें डाले जाते हैं। जो उच्छिष्टावस्थामें स्वेच्छासे सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रको देखते हैं, उनके नेत्रोंमें यमदूत अग्नि जलाते हैं। जो मित्रकी पत्नी, माता, जेठ भाई, पिता, बहन, पुत्री गुरु और वृद्धोंको पैरसे छूते हैं, उन मनुष्योंके पैर खूब जलते हुए बेड़ीसे बाँधकर उन्हें रौरव नरकमें डाला जाता है, जहाँ वे घुटनोंतक जलते रहते हैं॥ १५—१९॥

जो बिना विशेष प्रयोजनके खीर, खिचड़ी एवं मांसका भोजन करते हैं, उनके मुँहमें जलता हुआ लोहेका पिण्ड डाला जाता है। जो पापियोंद्वारा की गयी गुरु, देवता, ब्राह्मण और वेदोंकी निन्दाको सुनते हैं, उन नीच मनुष्योंके कानोंमें धर्मराजके किंकर अग्निवर्ण लोहेकी कीलें बार-बार ठोंकते रहते हैं। जो प्याऊ (पौसार), देवमन्दिर, बगीचा, ब्राह्मणगृह, सभा, मठ, कुआँ, बावली एवं तड़ागको तोड़कर नष्ट करते हैं, उन मनुष्योंके विलाप करते रहनेपर भी भयंकर यमकिंकर सुतीक्ष्ण छुरिकाओंद्वारा उनकी चमड़ी उधेड़ते हैं—उनकी देहसे चर्मको काटकर पृथक् करते रहते हैं॥ २०—२४॥

जो गाय, ब्राह्मण, सूर्य और अग्निके सम्मुख मल-मूत्रादिका त्याग करते हैं, उनकी गुदासे कौए उनकी आँतोंको नोच-नोचकर काटते हैं। जो दुर्भिक्ष (अकाल) एवं विप्लवके समय अकिंचन, पुत्र, भृत्य एवं कलत्र (स्त्री) आदि बन्धुवर्गको छोड़कर आत्म-पोषण करता है वह यमदूतोंद्वारा श्वभोजन नामक नरकमें डाला जाता है। जो रक्षाके लिये शरणमें आये व्यक्तिका परित्याग करता है, वह मनुष्य बन्दीगृह-रक्षक यमदूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए यन्त्रपीड नामक नरकमें गिरते हैं। जो लोग

क्लेशयन्ति हि विप्रादीन् ये ह्यकर्मसु पापिनः।
ते पिष्यन्ते शिलापेषे शोष्यन्तेऽपि च शोषकैः॥ २८

न्यासापहारिणः पापा बध्यन्ते निगडैरपि
क्षुत्क्षामाः शुष्कताल्वोष्ठाः पात्यन्ते वृश्चिकाशने॥ २९

पर्वमैथुनिनः पापाः परदाररताश्च ये।
ते वह्नितप्तां कूटाग्रामालिङ्गन्ते च शाल्मलीम्॥ ३०

उपाध्यायमधःकृत्य यैरधीतं द्विजाधमैः।
तेषामध्यापको यश्च स शिलां शिरसा वहेत्॥ ३१

मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणि।
ते पात्यन्ते च विण्मूत्रे दुर्गन्धे पूयपूरिते॥ ३२

श्राद्धातिथ्यमन्योन्यं यैर्भुक्तं भुवि मानवैः।
परस्परं भक्षयन्ते मांसानि स्वानि बालिशाः॥ ३३

वेदवह्निगुरुत्यागी भार्यापित्रोस्तथैव च।
गिरिशृङ्गादधःपातं पात्यन्ते यमकिंकरैः॥ ३४

पुनर्भूपतयो ये च कन्याविध्वंसकाश्च ये।
तद्गर्भश्राद्धभुग् यश्च कृमीन्भक्षेत्पिपीलिकाः॥ ३५

चाण्डालादन्त्यजाद्वापि प्रतिगृह्णाति दक्षिणाम्।
याजको यजमानश्च सो श्मान्तः स्थूलकीटकः॥ ३६

पृष्ठमांसाशिनो मूढास्तथैवोत्कोचजीविनः।
क्षिप्यन्ते वृकभक्षे ते नरके रजनीचर॥ ३७

स्वर्णस्तेयी च ब्रह्मघ्नः सुरापी गुरुतल्पगः।
तथा गोभूमिहर्तारो गोस्त्रीबालहनाश्च ये॥ ३८

एते नरा द्विजा ये च गोषु विक्रयिणस्तथा।
सोमविक्रयिणो ये च वेदविक्रयिणस्तथा॥ ३९

कूटसभ्यास्त्वशौचाश्च नित्यनैमित्तनाशकाः।
कूटसाक्ष्यप्रदा ये च ते महारौरवे स्थिताः॥ ४०

दशवर्षसहस्राणि तावत् तामिस्रके स्थिताः।
तावच्चैवान्धतामिस्रे असिपत्रवने ततः॥ ४१

तावच्चैव घटीयन्त्रे तप्तकुम्भे ततः परम्।
प्रपातो भवते तेषां यैरिदं दुष्कृतं कृतम्॥ ४२

ब्राह्मणोंको कुकर्मोंमें लगाकर उन्हें क्लेश देते हैं, वे पापी मनुष्य शिलाओंपर पीसे जाते हैं और अग्नि सूर्य आदिद्वारा शोषित भी किये जाते हैं॥ २५—२८॥

जो धरोहरको चुरा लेते हैं, उन्हें बेड़ी लगाकर भूखसे पीड़ित एवं सूखे तालु और ओठकी अवस्थामें वृश्चिकाशन नामक नरकमें गिराया जाता है। जो पर्वोंमें मैथुन करते तथा परस्त्री-संग करते हैं, उन पापियोंको वह्नितप्त कीलोंवाले शाल्मलिका (सिमलतासे) आलिङ्गन करना पड़ता है। जो द्विज उपाध्यायको स्वयंको अपेक्षा निम्नासनपर बैठाकर अध्ययन करता है, उन अधम द्विजों एवं उनके अध्यापकोंको सिरपर शिला वहन करनी पड़ती है। जो जलमें मूत्र, कफ एवं मलका त्याग करते हैं, उन्हें दुर्गन्धयुक्त विष्ठा और पीवसे पूर्ण विण्मूत्रनामक नरकमें गिराया जाता है॥ २९—३२॥

जो इस संसारमें श्राद्धके अवसरपर अतिथिके निमित्त तैयार किये गये पदार्थको परस्पर भक्षण कर लेते हैं, उन मूर्खोंको परलोकमें एक-दूसरेका मांस खाना पड़ता है। जो वेद, अग्नि, गुरु, भार्या, पिता एवं माताका त्याग करते हैं, उन्हें यमदूत गिरिशिखरके ऊपरसे नीचे गिराते हैं। जो विधवासे विवाह करते, अविवाहित कन्याको दूषित करते एवं उक्त प्रकारसे उत्पन्न व्यक्तियोंकी सन्तानके यहाँ श्राद्धमें भोजन करते हैं, उन्हें कृमि तथा पिपीलिकाका भक्षण करना पड़ता है। जो ब्राह्मण चाण्डाल और अन्त्यजोंसे दक्षिणा लेते हैं, उन्हें तथा उनके यजमानको पत्थरोंमें रहनेवाला स्थूल कीट बनना पड़ता है॥ ३३—३६॥

राक्षस! जो पीठपीछे शिकायत करते हैं, चुगली करते एवं घूस लेते हैं, उन्हें वृकभक्ष नामक नरकमें डाला जाता है। इसी प्रकार सोना चुरानेवाले, ब्रह्महत्यारे, मद्यपी, गुरुपत्नीगामी, गाय तथा भूमिकी चोरी करनेवाले एवं स्त्री तथा बालकको मारनेवाले मनुष्यों तथा गो, सोम एवं वेदका विक्रय करनेवाले, दम्भी, टेढ़ी भाषामें झूठी गवाही देनेवाले तथा पवित्रताके आचरणको छोड़ देनेवाले और नित्य एवं नैमित्तिक कर्मोंके नाश करनेवाले द्विजोंको महारौरव नामक नरकमें रहना पड़ता है॥ ३७—४०॥

उपर्युक्त प्रकारके पापियोंको दस हजार वर्ष तामिस्र नरकमें तथा उतने ही वर्षोंतक अन्धतामिस्र और असिपत्र वन नामक नरकमें रहनेके बादमें भी—उतने ही वर्षोंतक घटीयन्त्र और तप्तकुम्भमें रहना पड़ता है। जिन भयंकर

ये त्वेते नरका रौद्रा रौरवाद्यास्तवोदिताः।
ते सर्वे क्रमशः प्रोक्ताः कृतघ्ने लोकनिन्दिते॥ ४३

रौरव आदि नरकोंका हमने तुमसे वर्णन किया है ये सभी लोक निन्दित कृतघ्नोंको बारी-बारीसे प्राप्त होते रहते हैं॥ ४१-४३॥

यथा सुराणां प्रवरो जनार्दनो
यथा गिरीणामपि शैशिराद्रिः।
यथायुधानां प्रवरं सुदर्शनं
यथा खगानां विनतातनूजः।
महोरगाणां प्रवरोऽप्यनन्तो
यथा च भूतेषु मही प्रधाना॥ ४४
नदीषु गङ्गा जलजेषु पद्मं
सुरारिमुख्येषु हराङ्घ्रिभक्तः।
क्षेत्रेषु यद्वत्कुरुजाङ्गलं वरं
तीर्थेषु यद्वत् प्रवरं पृथूदकम्॥ ४५
सरस्सु चैवोत्तरमानसं यथा
वनेषु पुण्येषु हि नन्दनं यथा।
लोकेषु यद्वत्सदनं विरिञ्चेः
सत्यं यथा धर्मविधिक्रियासु॥ ४६
यथाश्वमेधः प्रवरः क्रतूनां
पुत्रो यथा स्पर्शवतां वरिष्ठः।
तपोधनानामपि कुम्भयोनिः
श्रुतिर्वरा यद्वदिहागमेषु॥ ४७
मुख्यः पुराणेषु यथैव
मात्स्यः स्वायंभुवोक्तिस्त्वपि संहितासु।
मनुः स्मृतीनां प्रवरो यथैव
तिथीषु दर्शो विषुवेषु दानम्॥ ४८

जैसे देवताओंमें श्रीविष्णु, पर्वतोंमें हिमालय, अस्त्रोंमें सुदर्शन, पक्षियोंमें गरुड़, महान् सर्पोंमें अनन्तनाग तथा भूतोंमें पृथ्वी श्रेष्ठ है; नदियोंमें गङ्गा, जलमें उत्पन्न होनेवालोंमें कमल, देव-शत्रु दैत्योंमें महादेवके चरणोंका भक्त और क्षेत्रोंमें जैसे कुरु-जांगल और तीर्थोंमें पृथूदक है, जलाशयोंमें उत्तर-मानस, पवित्र वनोंमें नन्दनवन, लोकोंमें ब्रह्मलोक, धर्म कार्योंमें सत्य प्रधान है तथा जैसे यज्ञोंमें अश्वमेध, छूनेयोग्य (स्पर्शसुखवाले) पदार्थोंमें पुत्र सुखदायक है; तपस्वियोंमें अगस्त्य, आगम शास्त्रोंमें वेद श्रेष्ठ है; जैसे पुराणोंमें मत्स्यपुराण, संहिताओंमें स्वायम्भुसंहिता, स्मृतियोंमें मनुस्मृति, तिथियोंमें अमावास्या और विषुवों अर्थात् मेष और तुला राशिमें सूर्यके संक्रमण संक्रान्तिके अवसरपर किया गया दान श्रेष्ठ होता है;॥ ४४—४८॥

तेजस्विनां यद्वदिहार्क उक्तो
ऋक्षेषु चन्द्रो जलधिर्ह्रदेषु।
भवान् तथा राक्षससत्तमेषु
पाशेषु नागस्तिमितेषु बन्धः॥ ४९
धान्येषु शालिर्द्विपदेषु विप्रः
चतुष्पदे गौः श्वपदां मृगेन्द्रः।
पुष्पेषु जाती नगरेषु काञ्ची
नारीषु रम्भाश्रमिणां गृहस्थः॥ ५०
कुशस्थली श्रेष्ठतमा पुरेषु
देशेषु सर्वेषु च मध्यदेशः।
फलेषु चूतो मुकुलेष्वशोकः
सर्वौषधीनां प्रवरा च पथ्या॥ ५१
मूलेषु कन्दः प्रवरो यथोक्तो
व्याधिष्वजीर्णं क्षणदाचरेन्द्र।
श्वेतेषु दुग्धं प्रवरं यथैव
कार्पासिकं प्रावरणेषु यद्वत्॥ ५२

जैसे तेजस्वियोंमें सूर्य नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, जलाशयोंमें समुद्र, अच्छे राक्षसोंमें आप और निश्चेष्ट करनेवाले पाशोंमें नागपाश श्रेष्ठ है एवं जैसे धानोंमें शालि, दो पैरवालोंमें ब्राह्मण, चौपायोंमें गाय, जंगली जानवरोंमें सिंह, फूलोंमें जाती (चमेली), नगरोंमें काञ्ची, नारियोंमें रम्भा और आश्रमियोंमें गृहस्थ श्रेष्ठ है; जैसे सप्तपुरियोंमें द्वारका, समस्त देशोंमें मध्यदेश, फलोंमें आम, मुकुलोंमें अशोक और जड़ी-बूटियोंमें हरीतकी सर्वश्रेष्ठ है; हे निशाचर! जैसे मूलोंमें कन्द, रोगोंमें अपच, श्वेत वस्तुओंमें दुग्ध और वस्त्रोंमें रूईके कपड़े श्रेष्ठ हैं॥ ४९—५२॥

कलासु मुख्या गणितज्ञता च
विज्ञानमुख्येषु यथेन्द्रजालम्।
शाकेषु मुख्या त्वपि काकमाची
रसेषु मुख्यं लवणं यथैव॥ ५३
तुङ्गेषु तालो नलिनीषु पम्पा
वनौकसेष्वेव च ऋक्षराजः।
महीरुहेष्वेव यथा वटश्च
यथा हरो ज्ञानवतां वरिष्ठः॥ ५४
यथा सतीनां हिमवत्सुता हि
यथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा।
यथा सुवर्णामपि नीलवर्णो
यथैव सर्वेष्वपि दुःसहेषु।
दुर्गेषु रौद्रेषु निशाचरेश
नृपातनं वैतरणी प्रधाना॥ ५५
पापीयसां तद्वदिह कृतघ्नः
सर्वेषु पापेषु निशाचरेन्द्र।
ब्रह्मघ्नगोघ्नादिषु निष्कृतिर्हि
विद्येत नैवास्य तु दुष्टचारिणः।
न निष्कृतिश्चास्ति कृतघ्नवृत्तेः
सुहृत्कृतं नाशयतोऽब्दकोटिभिः॥ ५६

निशाचर! जैसे कलाओंमें गणितका जानना, विज्ञानोंमें इन्द्रजाल, शाकोंमें मकोय, रसोंमें नमक, ऊँचे पेड़ोंमें ताड़, कमल-सरोवरोंमें पंपासर, वनैले जीवोंमें भालू, वृक्षोंमें वट, ज्ञानियोंमें महादेव वरिष्ठ हैं; जैसे सतियोंमें हिमालयकी पुत्री पार्वती, गौओंमें काली गाय, बैलोंमें नील रंगका बैल, सभी दुःसह कठिन एवं भयंकर नरकोंमें नृपातन वैतरणी प्रधान है उसी प्रकार हे निशाचरेन्द्र! पापियोंमें कृतघ्न प्रधानतम पापी होता है। ब्रह्म-हत्या एवं गोहत्या आदि पापोंकी निष्कृति तो हो जाती है पर दुराचारी पापी एवं मित्र-द्रोही कृतघ्नका करोड़ों वर्षोंमें भी निस्तार नहीं होता॥ ५३—५६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १२॥

सुकेशिके प्रश्नके उत्तरमें ऋषियोंका जम्बू-द्वीपकी स्थिति और उसमें स्थित पर्वत तथा नदियोंका वर्णन

सुकेशिरुवाच

भवद्भिरुदिता घोरा पुष्करद्वीपसंस्थितिः।
जम्बूद्वीपस्य तु संस्थानं कथयन्तु महर्षयः॥ १

सुकेशीने कहा—आदरणीय ऋषियो! आप लोगोंने पुष्करद्वीपके भयंकर अवस्थानका वर्णन किया, अब आप लोग (कृपाकर) जम्बूद्वीपकी स्थितिका वर्णन करें॥ १॥

ऋषय ऊचुः

जम्बूद्वीपस्य संस्थानं कथ्यमानं निशामय।
नवभेदं सुविस्तीर्णं स्वर्गमोक्षफलप्रदम्॥ २
मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतोऽद्भुतः।
पूर्वं उत्तरतश्चापि हिरण्वो राक्षसेश्वर॥ ३
पूर्वदक्षिणतश्चापि किंनरो वर्ष उच्यते।
भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे॥ ४
पश्चिमे केतुमालश्च रम्यकः पश्चिमोत्तरे।
उत्तरे च कुरुर्वर्षः कल्पवृक्षसमावृतः॥ ५

ऋषियोंने कहा—राक्षसेश्वर! (अब) तुम हम लोगोंसे जम्बूद्वीपकी स्थितिका वर्णन सुनो। यह द्वीप अत्यन्त विशाल है और नव भागोंमें विभक्त है। यह स्वर्ग एवं मोक्ष-फलको देनेवाला है। जम्बूद्वीपके बीचमें इलावृतवर्ष, पूर्वमें अद्भुत भद्राश्ववर्ष तथा पूर्वोत्तरमें हिरण्यकवर्ष है। पूर्व-दक्षिणमें किन्नरवर्ष, दक्षिणमें भारतवर्ष तथा दक्षिण-पश्चिममें हरिवर्ष बताया गया है इसके पश्चिममें केतुमालवर्ष, पश्चिमोत्तरमें रम्यकवर्ष और उत्तरमें कल्पवृक्षसे समावृत कुरुवर्ष है॥ २—५॥

पुण्या रम्या नवैवैते वर्षाः शालकटंकट।
इलावृताद्या ये चाष्टौ वर्षमुक्त्वैव भारतम्॥ ६
न तेष्वस्ति युगावस्था जरामृत्युभयं न च।
तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः।
विपर्ययो न तेष्वस्ति नोत्तमाधममध्यमाः॥ ७
यदेतद् भारतं वर्षं नवद्वीपं निशाचर।
सागरान्तरिताः सर्वे अगम्याश्च परस्परम्॥ ८
इन्द्रद्वीपः कसेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथा॥ ९
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।
कुमाराख्यः परिख्यातो द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः॥ १०
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः।
आन्ध्रा दक्षिणतो वीर तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे॥ ११
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तरवासिनः।
इज्यायुद्धवणिज्याद्यैः कर्मभिः कृतपावनाः॥ १२
तेषां संव्यवहारश्च एभिः कर्मभिरिष्यते।
स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यं पापं तथैव च॥ १३
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः॥ १४
तथान्ये शतसाहस्रा भूधरा मध्यवासिनः।
विस्तारोच्छ्रायिणो रम्या विपुलाः शुभसानवः॥ १५
कोलाहलः स वैभ्राजो मन्दरो दर्दुराचलः।
वातंधमो वैद्युतश्च मैनाकः सरसस्तथा॥ १६
तुङ्गप्रस्थो नागगिरिस्तथा गोवर्धनाचलः।
उज्जायनः पुष्पगिरिरर्बुदो रैवतस्तथा॥ १७
ऋष्यमूकः सगोमन्तश्चित्रकूटः कृतस्मरः।
श्रीपर्वतः कोङ्कणश्च शतशोऽन्येऽपि पर्वताः॥ १८
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छा आर्याश्च भागशः।
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा यास्ताः सम्यङ्निशामय॥ १९
सरस्वती पञ्चरूपा कालिन्दी सहिरण्वती।
शतद्रुश्चन्द्रिका नीला वितस्तैरावती कुहूः॥ २०
मधुरा देविका चैव उशीरा धातकी रसा।
गोमती धूतपापा च बाहुदा सदृषद्वती॥ २१
निश्चीरा गण्डकी चित्रा कौशिकी च वधूसरा।
सरयूश्च सलौहित्या हिमवत्पादनिःसृताः॥ २२
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च।
पर्णाशा नन्दिनी चैव पावनी च मही तथा॥ २३

सुकेशि! ये नव पवित्र और रमणीय वर्ष हैं। भारतवर्षके अतिरिक्त इलावृतादि आठ वर्षोंमें युगावस्था तथा जरामृत्युका भय नहीं होता। उन वर्षोंमें बिना प्रयत्नके स्वभावतः बड़ी बड़ी सिद्धियाँ मिलती हैं। उनमें उत्तम, मध्यम, अधम आदिका किसी प्रकारका कोई भेद नहीं है। निशाचर! इस भारतवर्षके भी नव उपद्वीप हैं। ये सभी द्वीप समुद्रोंसे घिरे हैं और परस्पर अगम्य हैं। भारतवर्षके नव उपद्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल और वारुण। नवाँ मुख्य यह कुमारद्वीप भारत सागरसे लगा हुआ दक्षिणसे उत्तरकी ओर फैला है॥ ६—१०॥

वीर! भारतवर्षके पूर्वकी सीमापर किरात, पश्चिममें यवन, दक्षिणमें आन्ध्र तथा उत्तरमें तुरुष्कलोग निवास करते हैं। इसके बीचमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रलोग रहते हैं। यज्ञ, युद्ध एवं वाणिज्य आदि कर्मोंके द्वारा ये सभी पवित्र हो गये हैं। उनका व्यवहार, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति तथा पाप एवं पुण्य इन्हीं (यज्ञादि) कर्मोंद्वारा होते हैं। इस वर्षमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य एवं पारियात्र नामवाले सात मुख्य कुल पर्वत हैं॥ ११—१४॥

इसके मध्यमें अन्य लाखों पर्वत हैं जो अत्यन्त विस्तृत, उत्तुङ्ग (ऊँचे) रम्य एवं सुन्दर शिखरोंसे सुशोभित हैं। यहाँ कोलाहल, वैभ्राज, मन्दारगिरि, दर्दुर, वातंधम, वैद्युत, मैनाक, सरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, गोवर्धन, उज्जायन्त (गिरिनार) पुष्पगिरि, अर्बुद (आबू), रैवत, ऋष्यमूक, गोमन्त (गोवाका पर्वत) चित्रकूट, कृतस्मर, श्रीपर्वत, कोङ्कण तथा अन्य सैकड़ों पर्वत भी विराज रहे हैं॥ १५—१८॥

उनसे संयुक्त आर्यों और म्लेच्छोंके विभागोंके अनुसार जनपद हैं। वहाँके निवासी जिन उत्तम नदियोंके जल पीते हैं उनका वर्णन भलीभाँति सुनो। पाँच रूपकी सरस्वती, यमुना, हिरण्वती, सतलज, चन्द्रिका, नीला, वितस्ता, ऐरावती, कुहू, मधुरा, देविका, उशीरा, धातकी रसा, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, निश्चीरा, गण्डकी, चित्रा, कौशिकी, वधूसरा, सरयू तथा लौहित्या—ये नदियाँ हिमालयकी तलहटीसे निकली हैं॥ १९—२२॥

वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, पर्णाशा, नन्दिनी, पावनी, मही, पारा, चर्मण्वती, लूपी, विदिशा,

पारा चर्मण्वती लूपी विदिशा वेणुमत्यपि।
सिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ॥ २४
शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुरसा कृपा।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटापवाहिका ॥ २५
चित्रोत्पला वै तमसा करमोदा पिशाचिका।
तथान्या पिप्पलश्रोणी विपाशा वञ्जुलावती ॥ २६
सत्सन्तजा शुक्तिमती मञ्जिष्ठा कृत्तिमा वसुः।
ऋक्षपादप्रसूता च तथान्या बालुवाहिनी ॥ २७
शिवा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी सनिषधावती।
वेणा वैतरणी चैव सिनीबाहुः कुमुद्वती ॥ २८
तोया चैव महागौरी दुर्गन्धा वाशिला तथा।
विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥ २९
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणा सरस्वती।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेरिरेव च ॥ ३०
दुग्धोदा नलिनी रेवा वारिसेना कलस्वना।
एतास्त्वपि महानद्यः सह्यपादविनिर्गताः ॥ ३१

कृतमाला ताम्रपर्णी वञ्जुला चोत्पलावती।
सिनी चैव सुदामा च शुक्तिमत्प्रभवास्त्विमाः ॥ ३२
सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः पापप्रशमनास्तथा।
जगतो मातरः सर्वाः सर्वाः सागरयोषितः ॥ ३३
अन्याः सहस्रशश्चात्र क्षुद्रनद्यो हि राक्षस।
सदाकालवहाश्चान्याः प्रावृट्कालवहास्तथा।
उदङ्मध्योद्भवा देशाः पिबन्ति स्वेच्छया शुभाः ॥ ३४
मत्स्याः कुशट्टाः कुणिकुण्डलाश्च।
पाञ्चालकाश्याः सह कोसलाभिः ॥ ३५
वृकाः शबरकौवीराः सभूलिङ्गा जनास्त्विमे।
शकाश्चैव समशका मध्यदेश्या जनास्त्विमे ॥ ३६
वाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः।
अपरान्तास्तथा शूद्राः पह्लवाश्च सखेटकाः ॥ ३७
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः।
शातद्रवा ललित्थाश्च पारावतसमूषकाः ॥ ३८
माठरोदकधाराश्च कैकेया दशमास्तथा।
क्षत्रियाः प्रातिवैश्याश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥ ३९
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा ह्यङ्गलौकिकाः।
चीनाश्चैव तुषाराश्च बहुधा बाह्यतोदराः ॥ ४०
आत्रेयाः सभरद्वाजाः प्रस्थलाश्च दशेरकाः।
लम्पकास्तावका रामाः शूलिकास्तङ्गणैः सह ॥ ४१

वेणुमती, सिप्रा तथा अवन्ती—ये नदियाँ पारियात्र पर्वतसे निकली हुई हैं। महानद, शोण, नर्मदा, सुरसा, कृपा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, अपवाहिका, चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलश्रोणी, विपाशा, वञ्जुलावती, सत्सन्तजा, शुक्तिमती, मञ्जिष्ठा, कृत्तिमा, वसु और बालुवाहिनी—ये नदियाँ तथा दूसरी जो बालुका बहानेवाली हैं, ऋक्षपर्वतकी तलहटीसे निकली हुई हैं ॥ २३—२७ ॥

शिवा, पयोष्णी (पैनगंगा), निर्विन्ध्या (कालीसिंध) तापी, निषधावती, वेणा, वैतरणी, सिनीबाहु, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गन्धा तथा वाशिला—ये पवित्र जलवाली कल्याणकारिणी नदियाँ विन्ध्यपर्वतसे निकली हुई हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या, कावेरी, दुग्धोदा, नलिनी, रेवा (नर्मदा) वारिसेना तथा कलस्वना—ये महानदियाँ सह्यपर्वतके पाद (नीचे) से निकलती हैं ॥ २८—३१ ॥

कृतमाला, ताम्रपर्णी, वञ्जुला, उत्पलावती, सिनी तथा सुदामा—ये नदियाँ शुक्तिमान् पर्वतसे निकली हुई हैं। ये सभी नदियाँ पवित्र, पापोंका प्रशमन करनेवाली जगत्‌की माताएँ तथा सागरकी पत्नियाँ हैं। राक्षस! इनके अतिरिक्त भारतमें अन्य हजारों छोटी नदियाँ भी बहती हैं। इनमें कुछ तो सदैव प्रवाहित होनेवाली हैं उत्तर एवं मध्यके देशोंके निवासी इन पवित्र नदियोंके जलको स्वेच्छया पान करते हैं। मत्स्य, कुशट्ट, कुणि, कुण्डल, पाञ्चाल, काशी, कोसल, वृक, शबर, कौवीर, भूलिङ्ग, शक तथा मशक जातियोंके मनुष्य मध्यदेशमें रहते हैं ॥ ३२—३६ ॥

वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, शूद्र, पह्लव, खेटक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शातद्रव, ललित्थ, पारावत, मूषक, माठर, उदकधार, कैकेय, दशम, क्षत्रिय, प्रातिवैश्य तथा वैश्य एवं शूद्रोंके कुल, काम्बोज, दरद, बर्बर, अङ्गलौकिक, चीन, तुषार, बहुधा, बाह्यतोदर, आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, दशेरक, लम्पक, तावक, राम, शूलिक, तङ्गण, औरस, अलिभद्र, किरातोंकी जातियाँ, तामस, क्रममास,

औरसाश्चालिभद्राश्च किरातानां च जातयः।
तामसाः क्रममासाश्च सुपार्श्वाः पुण्ड्रकास्तथा॥ ४२
कुलूताः कुहुका ऊर्णास्तूणीपादाः सकुक्कुटाः।
माण्डव्या मालवीयाश्च उत्तरापथवासिनः॥ ४३
अङ्गा वङ्गा मुद्गरवास्त्वन्तर्गिरिर्बहिर्गिराः।
तथा प्रवङ्गा वाङ्गेया मांसादा बलदन्तिकाः॥ ४४
ब्रह्मोत्तराः प्राविजया भार्गवाः केशबर्बराः।
प्राग्ज्योतिषाश्च शूद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः॥ ४५
माला मगधगोनन्दाः प्राच्या जनपदास्त्विमे।
पुण्ड्राश्च केरलाश्चैव चौडाः कुल्याश्च राक्षस॥ ४६
जातुषा मूषिकादाश्च कुमारादा महाशकाः।
महाराष्ट्रा माहिषिकाः कालिङ्गाश्चैव सर्वशः॥ ४७
आभीराः सह नैषीका आरण्याः शबराश्च ये।
बलिन्ध्या विन्ध्यमौलेया वैदर्भा दण्डकैः सह॥ ४८
पौरिकाः सौशिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः।
वैषिकाः कुन्दला आन्ध्रा उद्भिदा नलकारकाः।
दाक्षिणात्या जनपदास्त्विमे शालकटङ्कट॥ ४९

सुपार्श्व, पुण्ड्रक, कुलूत, कुहुक, ऊर्ण, तूणीपाद, कुक्कुट, माण्डव्य एवं मालवीय—ये जातियाँ[1] उत्तर भारतमें निवास करती हैं॥ ३७–४३॥

अङ्ग (भागलपुर), वंग एवं मुद्गरव (मुंगेर), अन्तर्गिरि, बहिर्गिर, प्रवङ्ग, वाङ्गेय, मांसाद, बलदन्तिक, ब्रह्मोत्तर, प्राविजय, भार्गव, केशबर्बर, प्राग्ज्योतिष, शूद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, माला, मगध एवं गोनन्द—ये पूर्वके जनपद हैं। हे राक्षस! शालकटंकट! पुण्ड्र, केरल, चौड, कुल्य, जातुष, मूषिकाद, कुमाराद, महाशक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कालिङ्ग (उड़ीसा), आभीर, नैषीक, आरण्य, शबर, बलिन्ध्य, विन्ध्यमौलेय, वैदर्भ, दण्डक, पौरिक, सौशिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, वैषिक, कुन्दल, अन्ध्र, उद्भिद एवं नलकारक—ये दक्षिणके जनपद हैं॥ ४४–४९॥

शूर्पारका कारिवना दुर्गास्तालीकटैः सह।
पुलीयाः ससिनीलाश्च तापसास्तामसास्तथा॥ ५०
कारस्करास्तु रमिनो नासिक्यान्तरनर्मदाः।
भारुकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैरपि॥ ५१
वात्सेयाश्च सुराष्ट्राश्च आवन्त्याश्चार्बुदैः सह।
इत्येते पश्चिमामाशां स्थिता जानपदा जनाः॥ ५२
कारुषाश्चैकलव्याश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजाः किंकवरैः सह॥ ५३
तोशलाः कोशलाश्चैव त्रैपुराश्चैल्लिकास्तथा।
तुरुसास्तुम्बराश्चैव वहनाः नैषधैः सह॥ ५४
अनूपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रास्त्ववन्तयः।
सुकेशे विन्ध्यमूलस्थास्त्विमे जनपदाः स्मृताः॥ ५५
अथो देशान् प्रवक्ष्यामः पर्वताश्रयिणस्तु ये।
निराहारा हंसमार्गाः कुपथास्तङ्गणाः खशाः॥ ५६
कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णाः पुण्याः सहूहुकाः।
त्रिगर्ताश्च किराताश्च तोमराः शिशिराद्रिकाः॥ ५७
इमे तवोक्ता विषयाः सुविस्तराद्
द्वीपे कुमारे रजनीचरेश।
एतेषु देशेषु च देशधर्मान्
संकीर्त्यमानाञ्शृणु तत्त्वतो हि॥ ५८

सुकेशि! शूर्पारक (बम्बईका क्षेत्र), कारिवन, दुर्ग, तालीकट, पुलीय, ससिनील, तापस, तामस, कारस्कर, रमी, नासिक्य, अन्तर, नर्मद, भारुकच्छ, माहेय, सारस्वत, वात्सेय, सुराष्ट्र, आवन्त्य एवं अर्बुद—ये पश्चिम दिशामें स्थित जनपदोंके निवासी हैं। कारूष, एकलव्य, मेकल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज, किंकवर, तोशल, कोशल, त्रैपुर, ऐल्लिक, तुरुस, तुम्बर, वहन, नैषध, अनूप, तुण्डिकेर, वीतिहोत्र एवं अवन्ती—ये सभी जनपद विन्ध्याचलके मूलमें (उपत्यका—तराईमें) स्थित हैं॥ ५०–५५॥

अच्छा, अब हम पर्वताश्रित प्रदेशोंके नामोंका वर्णन करेंगे। उनके नाम इस प्रकार हैं—निराहार, हंसमार्ग, कुपथ, तंगण, खश, कुथप्रावरण, ऊर्ण, पुण्य, हूहुक, त्रिगर्त, किरात, तोमर एवं शिशिराद्रिक। निशाचर! तुमसे कुमारद्वीपके इन देशोंका विस्तारसे हम लोगोंने वर्णन किया। अब हम इन देशोंमें वर्तमान देश-धर्मोंका यथार्थतः वर्णन करेंगे, उसे सुनो॥ ५६–५८॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १३॥

---

१. मनुस्मृति (८। ४१) में भी जाति-जनपदादि धर्म मान्य हैं। इन्हें विस्तारसे समझनेके लिये 'जातिभास्कर' आदि देखना चाहिये।

चौदहवाँ अध्याय

दशाङ्ग-धर्म, आश्रम-धर्म और सदाचार स्वरूपका वर्णन

ऋषय ऊचु

अहिंसा सत्यमस्तेयं दानं क्षान्तिर्दमः शमः।
अकार्पण्यं च शौचं च तपश्च रजनीचर॥ १

दशाङ्गो राक्षसश्रेष्ठ धर्मोऽसौ सार्ववर्णिकः।
ब्राह्मणस्यापि विहिता चातुराश्रम्यकल्पना॥ २

ऋषिगण बोले—राक्षसश्रेष्ठ! अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), दान, क्षमा, दम (इन्द्रिय-निग्रह), शम, अकार्पण्य, शौच एवं तप—धर्मके ये दसों अङ्ग सभी वर्णोंके लिये उपदिष्ट हैं; ब्राह्मणोंके लिये तो चार आश्रमोंका और भी विधान विहित किया गया है॥ १-२॥

सुकेशिरुवाच

विप्राणां चातुराश्रम्यं विस्तरान्मे तपोधनाः।
आचक्षध्वं न मे तृप्तिः शृण्वतः प्रतिपद्यते॥ ३

सुकेशि बोला—तपोधनो! ब्राह्मणोंके लिये विहित चारों आश्रमोंके नियम आदिको आप लोग विस्तारसे कहें। मुझे उसे सुनते हुए तृप्ति नहीं हो रही है—मैं और भी सुनना चाहता हूँ॥ ३॥

ऋषय ऊचु

कृतोपनयनः सम्यग् ब्रह्मचारी गुरौ वसेत्।
तत्र धर्मोऽस्य यस्तं च कथ्यमानं निशामय॥ ४

स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नानं भिक्षाटनं तथा।
गुरोर्निवेद्य तच्चाद्यमनुज्ञातेन सर्वदा॥ ५

गुरोः कर्माणि सोद्योगः सम्यक्प्रीत्युपपादनम्।
तेनाहूतः पठेच्चैव तत्परो नान्यमानसः॥ ६

एकं द्वौ सकलान् वापि वेदान् प्राप्य गुरोर्मुखात्।
अनुज्ञातो वरं दत्त्वा गुरवे दक्षिणां ततः॥ ७

गार्हस्थ्याश्रमकामस्तु गार्हस्थ्याश्रममावसेत्।
वानप्रस्थाश्रमं वाऽपि चतुर्थं स्वेच्छयात्मनः॥ ८

तत्रैव वा गुरोर्गेहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात्।
गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुतं विना॥ ९

शुश्रूषन् निरभिमानो ब्रह्मचर्याश्रमं वसेत्।
एवं जयति मृत्युं स द्विजः शालकटङ्कट॥ १०

ऋषिगण बोले—सुकेशि! ब्रह्मचारी ब्राह्मण भलीभाँति उपनयन-संस्कार कराकर गुरुके गृहपर निवास करे। वहाँके जो कर्तव्य हैं, उन्हें बतलाया जा रहा है, तुम उन्हें सुनो। उनके कर्तव्य हैं—स्वाध्याय, दैनिक हवन, स्नान, भिक्षा माँगना और उसे गुरुको निवेदित करके तथा उनसे आज्ञा प्राप्त कर भोजन करना, गुरुके कार्य-हेतु उद्यत रहना, सम्यक् रूपसे गुरुमें भक्ति रखना, उनके बुलानेपर तत्पर एवं एकाग्रचित्त होकर पढ़ना (—ये ब्राह्मण ब्रह्मचारीके धर्म हैं)। गुरुके मुखसे एक, दो या सभी वेदोंका अध्ययन कर गुरुको धन तथा दक्षिणा दे करके उनसे आज्ञा प्राप्त कर गृहस्थाश्रममें जानेका इच्छुक (शिष्य) गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करे अथवा अपनी इच्छाके अनुसार वानप्रस्थ या संन्यासका अवलम्बन करे॥ ४—८॥

अथवा ब्राह्मण ब्रह्मचारी वहीं गुरुके घरमें ब्रह्मचर्यकी निष्ठा प्राप्त करे अर्थात् जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। गुरुके अभावमें उनके पुत्र एवं पुत्र न हो तो उनके शिष्यके समीप निवास करे। राक्षस सुकेशि! अभिमानरहित तथा शुश्रूषा करते हुए ब्रह्मचर्याश्रममें रहे। इस प्रकार अनुष्ठान करनेवाला द्विज मृत्युको जीत लेता है। हे निशाचर!

उपावृत्तस्ततस्तस्माद् गृहस्थाश्रमकाम्यया।
असमानर्षिकुलजां कन्यामुद्वहेद् निशाचर॥ ११

स्वकर्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथीनपि।
सम्यक् संप्रीणयेद् भक्त्या सदाचाररतो द्विजः॥ १२

सुकेशिरुवाच

सदाचारो निगदितो युष्माभिर्मम सुव्रताः।
लक्षणं श्रोतुमिच्छामि कथयध्वं तमद्य मे॥ १३

ऋषय ऊचुः

सदाचारो निगदितस्तव योऽस्माभिरादरात्।
लक्षणं तस्य वक्ष्यामस्तच्छृणुष्व निशाचर॥ १४

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम्।
न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र च॥ १५

यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये।
भवन्ति यः समुल्लङ्घ्य सदाचारं प्रवर्तते॥ १६

दुराचारो हि पुरुषो नेह नामुत्र नन्दते।
कार्यो यत्नः सदाचारे आचारो हन्त्यलक्षणम्॥ १७

तस्य स्वरूपं वक्ष्यामः सदाचारस्य राक्षस।
शृणुष्वैकमनास्तच्च यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि॥ १८

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखा
पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः।
असौ सदाचारतरुः सुकेशिन्
संसेवितो येन स पुण्यभोक्ता॥ १९

ब्राह्मे मुहूर्ते प्रथमं विबुध्ये-
दनुस्मरेद् देववरान् महर्षीन्।
प्राभातिकं मङ्गलमेव वाच्यं
यदुक्तवान् देवपतिस्त्रिनेत्रः॥ २०

सुकेशिरुवाच

किं तदुक्तं सुप्रभातं शंकरेण महात्मना।
प्रभाते यत् पठन्मर्त्यो मुच्यते पापबन्धनात्॥ २१

ऋषय ऊचुः

श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ सुप्रभातं हरोदितम्।
श्रुत्वा स्मृत्वा पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २२

वहाँकी अवधि समाप्त कर ब्रह्मचारी द्विज गृहस्थाश्रमकी कामनासे अपने गोत्रसे भिन्न गोत्रके ऋषिवाले कुलमें उत्पन्न कन्यासे विवाह करे। सदाचारमें रत द्विज अपने नियत कर्मद्वारा धनोपार्जनकर पितरों, देवों एवं अतिथियोंको अपनी भक्तिसे अच्छी तरह तृप्त करे॥ ९—१२॥

(ब्रह्मचारी ब्राह्मणके नियमोंको सुननेके बाद) **सुकेशिने कहा**— श्रेष्ठ व्रतवाले ऋषियो! आप लोगोंने मुझसे इसके पूर्व सदाचारका वर्णन किया है। सदाचारका लक्षण क्या है? अब मैं उसे सुनना चाहता हूँ। कृपया मुझसे अब इसका वर्णन करें॥ १३॥

ऋषियोंने कहा— राक्षस! हम लोगोंने तुमसे श्रद्धापूर्वक जिस सदाचारका वर्णन किया है, उसका (अब) लक्षण बतलाते हैं, तुम उसे सुनो। गृहस्थको आचारका सदा पालन करना चाहिये। आचारहीन व्यक्तिका इस लोक और परलोकमें कल्याण नहीं होता है। सदाचारका उल्लङ्घन कर लोक-व्यवहार तथा शास्त्र-व्यवहार करनेवाले पुरुषके यज्ञ, दान एवं तप कल्याणकर नहीं होते। दुराचारी पुरुष इस लोक तथा परलोकमें सुख नहीं पाता। अतः आचार पालनमें सदा तत्पर रहना चाहिये। आचार दुर्लक्षणोंको नष्ट कर देता है॥ १४—१७॥

राक्षस! हम उस (पूत) सदाचारका स्वरूप कहते हैं, यदि तुम कल्याण चाहते हो तो एकाग्रचित्त होकर उसे सुनो। सुकेशिन्! सदाचारका मूल धर्म है, धन इसकी शाखा है, काम (मनोरथ) इसका पुष्प है एवं मोक्ष इसका फल है। ऐसे सदाचाररूपी वृक्षका जो सेवन करता है, वह पुण्यभोगी बन जाता है। मनुष्योंको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर सर्वप्रथम श्रेष्ठ देवों एवं महर्षियोंका स्मरण करना चाहिये तथा देवाधिदेव महादेवद्वारा कथित प्रभातकालीन मङ्गलस्तोत्रका पाठ करना चाहिये॥ १८—२०॥

सुकेशिने पूछा— ऋषियो! महादेव शंकरने कौन-सा 'सुप्रभात' कहा है कि जिसका प्रातःकाल पाठ करनेसे मनुष्य पाप-बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ २१॥

ऋषिगण बोले—राक्षसश्रेष्ठ! महादेवजीद्वारा वर्णित 'सुप्रभात' स्तोत्रको सुनो। इसको सुनने, स्मरण करने और पढ़नेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः सह भानुजेन
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २३

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च
मनुः पुलस्त्यः पुलहः सगौतमः।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनो ऋभुश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २४

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च।
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २५

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथापः
स्पर्शश्च वायुर्ज्वलनः सतेजाः।
नभः सशब्दं महता सहैव
यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २६

सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवराश्च सप्त।
भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त
ददन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २७

इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं
पठेत् स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या।
दुःस्वप्ननाशोऽनघ सुप्रभातं
भवेच्च सत्यं भगवत्प्रसादात्॥ २८

ततः समुत्थाय विचिन्तयेत
धर्मं तथार्थं च विहाय शय्याम्।
उत्थाय पश्चाद्धरिरित्युदीर्य
गच्छेत् तदोत्सर्गविधिं हि कर्तुम्॥ २९

न देवगोब्राह्मणवह्निमार्गे
न राजमार्गे न चतुष्पथे च।
कुर्यादथोत्सर्गमपीह गोष्ठे
पूर्वापरां चैव समाश्रितो गाम्॥ ३०

ततस्तु शौचार्थमुपाहरेन्मृदं
गुदे त्रयं पाणितले च सप्त।
तथोभयोः पञ्च चतुस्तथैकां
लिङ्गे तथैकां मृदमाहरेत॥ ३१

नान्तर्जलाद्राक्षस मूषिकस्थला-
च्छौचावशिष्टा शरणात् तथान्या।

(स्तुति इस प्रकार है—) 'ब्रह्मा, विष्णु, शंकर ये देवता तथा सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर ग्रह—ये सभी मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय बनायें। भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अङ्गिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन तथा ऋभु—ये सभी (ऋषि) मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय बनायें। सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि, पिङ्गल, सातों स्वर एवं सातों रसातल—ये सभी मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय बनायें'॥ २२—२५॥

'गन्धगुणवाली पृथ्वी, रसगुणवाला जल, स्पर्शगुणवाली वायु, तेजोगुणवाली अग्नि, शब्दगुणवाला आकाश एवं महत्तत्त्व—ये सभी मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय बनायें। सातों समुद्र, सातों कुलपर्वत, सप्तर्षि, सातों श्रेष्ठ द्वीप और भू आदि सातों लोक—ये सभी प्रभातकालमें मुझे मङ्गल प्रदान करें।' इस प्रकार प्रातःकालमें परम पवित्र सुप्रभात-स्तोत्रको भक्तिपूर्वक पढ़े, स्मरण करे अथवा सुने निष्पाप! ऐसा करनेसे भगवान्‌की कृपासे निश्चय ही उसके दुःस्वप्नका नाश होता है तथा सुन्दर प्रभात होता है। उसके बाद उठकर धर्म तथा अर्थके विषयमें चिन्तन करे और शय्या त्याग करनेके बाद 'हरि'का नाम लेकर उत्सर्ग विधि (शौच आदि) करनेके लिये जाय॥ २६—२९॥

मल-त्याग देवता, गौ, ब्राह्मण और अग्निके मार्ग, राजपथ (सड़क) और चौराहेपर, गोशालामें तथा पूर्व या पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके न करे। मलत्यागके बाद फिर शुद्धिके लिये मिट्टी ग्रहण करे और मलद्वारमें तीन बार, बायें हाथमें सात बार तथा दोनों हाथोंमें दस बार एवं लिङ्गमें एक बार मिट्टी लगाये। राक्षस! सदाचार जाननेवाले मनुष्यको जलके भीतरसे, चूहेकी बिलसे, दूसरोंके शौचसे बची हुई एवं गृहसे मिट्टी नहीं लेनी

वल्मीकमृच्चापि हि शौचनाय
ग्राह्या सदाचारविदा नरेण ॥ ३२
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वापि विद्वान्
प्रक्षाल्य पादौ भुवि संनिविष्टः ।
समाचमेदद्भिरफेनिलाभि-
रादौ परिमृज्य मुखं द्विरद्भिः ॥ ३३
ततः स्पृशेत्खानि शिरः करेण
संध्यामुपासीत ततः क्रमेण ।
केशांस्तु संशोध्य च दन्तधावनं
कृत्वा तथा दर्पणदर्शनं च ॥ ३४
कृत्वा शिरःस्नानमथाङ्गिकं वा
संपूज्य तोयेन पितॄन् सदेवान् ।
होमं च कृत्वालभनं शुभानां
कृत्वा बहिर्निर्गमनं प्रशस्तम् ॥ ३५
दूर्वादधिसर्पिरथोदकुम्भं
धेनुं सवत्सां वृषभं सुवर्णम् ।
मृद्गोमयं स्वस्तिकमक्षतानि
लाजामधु ब्राह्मणकन्यकां च ॥ ३६
श्वेतानि पुष्पाण्यथ शोभनानि
हुताशनं चन्दनमर्कबिम्बम् ।
अश्वत्थवृक्षं च समालभेत
ततस्तु कुर्यान्निजजातिधर्मम् ॥ ३७
देशानुशिष्टं कुलधर्ममग्र्यं
स्वगोत्रधर्मं न हि संत्यजेत ।
तेनार्थसिद्धिं समुपाचरेत
नासत्प्रलापं न च सत्यहीनम् ॥ ३८
न निष्ठुरं नागमशास्त्रहीनं
वाक्यं वदेत्साधुजनेन येन ।
निन्द्यो भवेन्नैव च धर्मभेदी
सङ्गं न चासत्सु नरेषु कुर्यात् ॥ ३९
संध्यासु वर्ज्यं सुरतं दिवा च
सर्वासु योनीषु पराबलासु ।
आगारशून्येषु महीतलेषु
रजस्वलास्वेव जलेषु वीर ॥ ४०
वृथाऽटनं वृथा दानं वृथा च पशुमारणम् ।
न कर्त्तव्यं गृहस्थेन वृथा दारपरिग्रहम् ॥ ४१

वृथाऽटनान्नित्यहानिर्वृथादानाद्धनक्षयः ।
वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति पातकं नरकप्रदम् ॥ ४२

चाहिये। दीमककी बाँबीसे भी शुद्धिके लिये मिट्टी नहीं लेनी चाहिये। विद्वान् पुरुष पैर धोनेके पश्चात् उत्तर या पूर्वमुख बैठकर फेनरहित जलसे पहले मुखको दो बार धोये फिर धोनेके बाद आचमन करे ॥ ३०—३३ ॥

आचमन करनेके बाद अपनी इन्द्रियों तथा सिरको हाथसे स्पर्शकर क्रमशः केश-संशोधन, दन्तधावन एवं दर्पण-दर्शनकर संध्योपासन करे। शिरःस्नान (सिरसे पैरतक स्नान) अथवा अर्धस्नान कर पितरों एवं देवताओंका जलसे पूजन करनेके पश्चात् हवन एवं माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श कर बाहर निकलना प्रशस्त होता है। दूर्वा, दधि, घृत, जलपूर्ण कलश, बछड़ेके साथ गाय, बैल, सुवर्ण, मिट्टी, गोबर, स्वस्तिक चिह्न (卐), अक्षत, लाजा, मधुका स्पर्श करे और ब्राह्मणकी कन्या एवं सूर्यबिम्बका दर्शन करे तथा सुन्दर श्वेतपुष्प, अग्नि, चन्दनका दर्शन कर अश्वत्थ (पीपल) वृक्षका स्पर्श करनेके बाद अपने जाति-धर्म (अपने वर्णके लिये नियतकर्म)-का पालन करे ॥ ३४—३७ ॥

देश-विहित धर्म, श्रेष्ठ कुलधर्म और गोत्रधर्मका त्याग नहीं करना चाहिये, उसीसे अर्थकी सिद्धि करनी चाहिये। असत्प्रलाप, सत्यरहित, निष्ठुर और वेद-आगमशास्त्रसे असंगत वाक्य कभी न कहे, जिससे साधुजनोंद्वारा निन्दित होना पड़े। किसीके धर्मको हानि न पहुँचाये एवं बुरे लोगोंका सङ्ग भी न करे। वीर! सन्ध्या एवं दिनके समय रति नहीं करनी चाहिये। सभी योनियोंकी परस्त्रियोंमें, गृहहीन पृथ्वीपर, रजस्वला स्त्रीमें तथा जलमें सुरतव्यापार वर्जित है। गृहस्थको व्यर्थ भ्रमण, व्यर्थ दान, व्यर्थ पशुवध तथा व्यर्थ दार-परिग्रह नहीं करना चाहिये ॥ ३८—४१ ॥

व्यर्थ घूमनेसे नित्यकर्मकी हानि होती है तथा वृथा दानसे धनकी हानि होती है और वृथा पशुवध करनेवाला नरक प्राप्त करानेवाले पापको प्राप्त होता है। अवैध

संतत्या हानिरश्लाघ्या वर्णसंकरतो भयम्।
भेतव्यं च भवेल्लोके वृथादारपरिग्रहात्॥ ४३

परस्वे परदारे च न कार्या बुद्धिरुत्तमैः
परस्वं नरकायैव परदाराश्च मृत्यवे॥ ४४

नेक्षेत् परस्त्रियं नग्नां न सम्भाषेत तस्करान्।
उदक्यादर्शनं स्पर्शं संभाषं च विवर्जयेत्॥ ४५

नैकासने तथा स्थेयं सोदर्या परजायया।
तथैव स्यान्न मातुश्च तथा स्वदुहितुस्त्वपि॥ ४६

न च स्नायीत वै नग्नो न शयीत कदाचन।
दिग्वाससोऽपि न तथा परिभ्रमणमिष्यते।
भिन्नासनभाजनादीन् दूरतः परिवर्जयेत्॥ ४७

नन्दासु नाभ्यङ्गमुपाचरेत
क्षौरं च रिक्तासु जयासु मांसम्।
पूर्णासु योषित्परिवर्जयेत
भद्रासु सर्वाणि समाचरेत॥ ४८

नाभ्यङ्गमर्के न च भूमिपुत्रे
क्षौरं च शुक्रे रविजे च मांसम्।
बुधेषु योषिन्न समाचरेत
शेषेषु सर्वाणि सदैव कुर्यात्॥ ४९

चित्रासु हस्ते श्रवणे च तैलं
क्षौरं विशाखास्वभिजित्सु वर्ज्यम्।
मूले मृगे भाद्रपदासु मांसं
योषिन्मघाकृत्तिकयोत्तरासु ॥ ५०

सदैव वर्ज्यं शयनमुदक्शिरा-
स्तथा प्रतीच्यां रजनीचरेश।
भुञ्जीत नैवेह च दक्षिणामुखो
न च प्रतीच्यामभिभोजनीयम्॥ ५१

देवालयं चैत्यतरुं चतुष्पथं
विद्याधिकं चापि गुरुं प्रदक्षिणम्।
माल्यान्नपानं वसनानि यत्नतो
नान्यैर्धृतांश्चापि हि धारयेद् बुधः॥ ५२

स्नायाच्छिरःस्नानतया च नित्यं
न कारणं चैव विना निशासु।
ग्रहोपरागे स्वजनापयाते
मुक्त्वा च जन्मर्क्षगते शशाङ्के॥ ५३

स्त्री-संग्रहसे सन्तानकी निन्दनीय हानि, वर्णसांकर्यका भय तथा लोकमें भी भय होता है। उत्तम व्यक्ति परधन तथा परस्त्रीमें बुद्धि न लगाये। परधन नरक देनेवाला और परस्त्री मृत्युका कारण होती है। परस्त्रीको नग्नावस्थामें न देखे, चोरोंसे बातचीत न करे एवं रजस्वला स्त्रीको न तो देखे, न उसका स्पर्श ही करे और न उससे बातचीत ही करे॥ ४३—४५॥

अपनी बहन तथा परस्त्रीके साथ एक आसनपर न बैठे। इसी प्रकार अपनी माता तथा कन्याके साथ भी एक आसनपर न बैठे। नग्न होकर स्नान और शयन न करे। वस्त्रहीन होकर इधर-उधर न घूमे, टूटे आसन और बर्तन आदिको अलग रख दे। नन्दा (प्रतिपद्, षष्ठी और एकादशी) तिथियोंमें तेलसे मालिश न करे, रिक्ता (चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी) तिथियोंमें क्षौर कर्म न करे (न कराये) तथा जया (तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी) तिथियोंमें फलका गूदा नहीं खाना चाहिये। पूर्णा (पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा) तिथियोंमें स्त्रीका सम्पर्क न करे तथा भद्रा (द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी) तिथियोंमें सभी कार्य करे। रविवार एवं मङ्गलवारको तेलकी मालिश, शुक्रवारको क्षौरकर्म नहीं कराना चाहिये (न करना चाहिये)। शनिवारको फलका गूदा न खाये तथा बुधवारको स्त्री वर्ज्य है। शेष दिनोंमें सभी कार्य सदैव कर्तव्य हैं॥ ४६—४९॥

चित्रा, हस्त और श्रवण नक्षत्रोंमें तेल तथा विशाखा और अभिजित् नक्षत्रोंमें क्षौर कार्य नहीं करना-कराना चाहिये। मूल, मृगशिरा, पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपदमें गूदा-भक्षण तथा मघा, कृत्तिका और तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा)-में स्त्री-सहवास न करे। राक्षसराज! उत्तर एवं पश्चिमकी ओर सिर करके शयन नहीं करना चाहिये। दक्षिण एवं पश्चिममुख भोजन नहीं करना चाहिये। देवमन्दिर, चैत्य-वृक्ष, देवताके समान पूज्य पीपल आदिके वृक्ष, चौराहे, अपनेसे अधिक विद्वान् तथा गुरुकी प्रदक्षिणा करे। बुद्धिमान् व्यक्ति यत्नपूर्वक दूसरेके द्वारा व्यवहृत माला, अन्न और वस्त्रका व्यवहार न करे। नित्य सिरके ऊपरसे स्नान करे। ग्रहोपराग (ग्रहणके समय) और स्वजनकी मृत्यु तथा जन्म-नक्षत्रमें चन्द्रमाके रहनेके अतिरिक्त समयमें रात्रिमें बिना विशेष कारण स्नान नहीं करना चाहिये॥ ५०—५३॥

नाभ्यङ्गितं कायमुपस्पृशेच्च
स्नातो न केशान् विधुनीत चापि।
गात्राणि चैवाम्बरपाणिना च
स्नातो विमृज्याद् रजनीचरेश ॥ ५४
वसेच्च देशेषु सुराजकेषु
सुसंहितेष्वेव जनेषु नित्यम्।
अक्रोधना न्यायपरा अमत्सराः
कृषीवला ह्योषधयश्च यत्र ॥ ५५
श्रापस्तु वैद्यो धनिकश्च यत्र
सच्छ्रोत्रियस्तत्र वसेत नित्यम् ॥ ५६
न तेषु देशेषु वसेत बुद्धिमान्
सदा नृपो दण्डरुचिस्त्वशक्तः।
जनोऽपि नित्योत्सवबद्धवैरः
सदा जिगीषुश्च निशाचरेन्द्र ॥ ५७

ऋषय ऊचुः

यच्च वर्ज्यं महाबाहो सदा धर्मस्थितैर्नरैः।
यद् भोज्यं च समुद्दिष्टं कथयिष्यामहे वयम् ॥ ५८

भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसंभृतम्।
अस्नेहा व्रीहयः श्लक्ष्णा विकाराः पयसस्तथा ॥ ५९

तद्वद् द्विदलकादीनि भोज्यानि मनुरब्रवीत् ॥ ६०
मणिरत्नप्रवालानां तद्वन्मुक्ताफलस्य च।
शैलदारुमयानां च तृणमूलौषधान्यपि ॥ ६१
शूर्पधान्याजिनानां च संहतानां च वाससाम्।
वल्कलानामशेषाणामम्बुना शुद्धिरिष्यते ॥ ६२
सस्नेहानामथोष्णेन तिलकल्केन वारिणा।
कार्पासिकानां वस्त्राणां शुद्धिः स्यात्सह भस्मना ॥ ६३
नागदन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते।
पुनः पाकेन भाण्डानां मृण्मयानां च मेध्यता ॥ ६४
शुचि भैक्षं कारुहस्तः पण्यं योषिन्मुखं तथा।
रथ्यागतमविज्ञातं दासवर्गेण यत्कृतम् ॥ ६५
वाक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु।
चेष्टितं बालवृद्धानां बालस्य च मुखं शुचि ॥ ६६

राक्षसेश्वर! तेल मालिश किये हुए किसीके शरीरका स्पर्श नहीं करना चाहिये। स्नानके बाद बालोंको उसी समय कंघीसे न झाड़े। मनुष्यको वहाँ रहना चाहिये जहाँका राजा धर्मात्मा हो एवं जनवर्गमें समता हो, लोग क्रोधी न हों, न्यायी हों, परस्परमें डाह न हो, खेती करनेवाले किसान और ओषधियाँ हों। जहाँ चतुर वैद्य, धनी-मानी दानी, श्रेष्ठ श्रोत्रिय विद्वान् हों वहीं निवास करना चाहिये। जिस देशका राजा प्रजाको मात्र दण्ड ही देना चाहता हो तथा उत्सवोंमें जन-समाजमें नित्य किसी-न-किसी प्रकारका वैर-विद्वेष हो एवं लड़ाई-झगड़ा करनेकी ही लालसा हो, निर्बल मनुष्यको ऐसे स्थानपर नहीं रहना चाहिये ॥ ५४—५७ ॥

ऋषियोंने कहा—महाबाहो! जो पदार्थ धर्मात्मा व्यक्तियोंके लिये सदैव त्याज्य है एवं जो भोज्य है हम उनका वर्णन कर रहे हैं। तैल, घी आदि स्निग्ध पदार्थोंसे पकाया गया अन्न बासी एवं बहुत पहलेका बने रहनेपर भी भोज्य (खानेयोग्य) है तथा सूखे भूने हुए चावल एवं दूधके विकार—दही, घी आदि भी बासी एवं पुराने होनेपर भी भक्ष्य—खानेयोग्य हैं। इसी प्रकार मनुने चने, अरहर, मसूर आदिके भूने (तले) हुए दालको भी अधिक कालतक भोजनके योग्य बतलाये हैं ॥ ५८—६० ॥

(यहाँसे आगे अब द्रव्य-शुद्धि बतलाते हैं।) मणि, रत्न, प्रवाल (मूँगा), मोती, पत्थर और लकड़ीके बने बर्तन, तृण, मूल तथा ओषधियाँ, सूप (दाल), धान्य, मृगचर्म, सिले हुए वस्त्र एवं वृक्षोंके सभी छालोंकी शुद्धि जलसे होती है। तैल-घृत आदिसे मलिन वस्त्रोंकी शुद्धि उष्ण जल तथा तिल-कल्क (खली)-से एवं कपासके वस्त्रोंकी शुद्धि भस्मसे (पत्थर कोयले आदिकी राखसे) होती है। हाथीके दाँत, हड्डी और सींगकी बनी चीजोंकी शुद्धि तराशनेसे (खरादनेसे) होती है। मिट्टीके बर्तन पुनः आगमें जलानेसे शुद्ध होते हैं। भिक्षान्न, कारीगरोंका हाथ, विक्रेय वस्तु, स्त्री-मुख, अज्ञात वस्तु, ग्रामके मध्य मार्ग या चौराहेसे लायी जानेवाली तथा नौकरोंद्वारा निर्मित वस्तुएँ पवित्र मानी गयी हैं। वचनद्वारा प्रशंसित, पुराना, अनेकानेक जनोंसे होती हुई लायी जानेवाली छोटी वस्तुएँ, बालकों और वृद्धोंद्वारा किया गया कर्म तथा शिशुका मुख शुद्ध होता है ॥ ६१—६६ ॥

कर्मान्तागारशालासु स्तनंधयसुताः स्त्रियः।
वाग्विप्रुषो द्विजेन्द्राणां संतप्ताश्चाम्बुबिन्दवः॥ ६७

भूमिर्विशुध्यते खातदाहमार्जनगोक्रमैः।
लेपादुल्लेखनात् सेकाद् वेश्मसंमार्जनार्चनात्॥ ६८

केशकीटावपन्नेऽन्ने गोघ्राते मक्षिकान्विते।
मृदम्बुभस्मक्षाराणि प्रक्षेप्तव्यानि शुद्धये॥ ६९

औदुम्बराणां चाम्लेन क्षारेण त्रपुसीसयोः।
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च॥ ७०
अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च।
अन्येषामपि द्रव्याणां शुद्धिर्गन्धापहारतः॥ ७१

मातुः प्रस्रवणे वत्सः शकुनिः फलपातने।
गर्दभो भारवाहित्वे श्वा मृगग्रहणे शुचिः॥ ७२

रथ्याकर्दमतोयानि नावः पथि तृणानि च।
मारुतेनैव शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च॥ ७३

शृतं द्रोणाढकस्यान्नममेध्याभिप्लुतं भवेत्।
अग्रमुद्धृत्य संत्याज्यं शेषस्य प्रोक्षणं स्मृतम्॥ ७४

उपवासं त्रिरात्रं वा दूषितान्नस्य भोजने।
अज्ञाते ज्ञातपूर्वे च नैव शुद्धिर्विधीयते॥ ७५
उदक्याश्वाननग्नांश्च सूतिकान्त्यावसायिनः।
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः॥ ७६

सस्नेहमस्थि संस्पृश्य सवासाः स्नानमाचरेत्।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य च॥ ७७

कर्मशाला, अन्तर्गृह एवं अग्निशालामें दुधमुँहे बच्चोंको लिये हुई स्त्रियाँ, सम्भाषण करते हुए विद्वान् ब्राह्मणोंके मुखके छींटे तथा उष्ण जलके बिन्दु पवित्र होते हैं। पृथ्वीकी शुद्धि खोदने, जलाने, झाड़ू देने, गौओंके चलने लीपने, खुरचने तथा सींचनेसे होती है और गृहकी शुद्धि झाड़ू देने, जलके छिड़कने तथा पूजा आदिसे होती है। केश, कीट पड़े हुए और मक्खीके बैठ जानेपर तथा गायके द्वारा सूँघे जानेपर अन्नकी शुद्धिके लिये उसपर जल, भस्म, क्षार या मृत्तिका छिड़कनी चाहिये। ताम्रपात्रकी शुद्धि खटाईसे, जस्ते और शीशेकी क्षारके द्वारा, काँसेकी वस्तुएँ भस्म और जलके द्वारा तथा तरल पदार्थ कुछ अंशको बहा देनेसे शुद्ध हो जाते हैं[1]॥ ६७—७०॥

अपवित्र वस्तुसे मिले पदार्थ जल और मिट्टीसे धोने तथा दुर्गन्ध दूर कर देनेसे शुद्ध होते हैं। अन्य (गन्धवाले) पदार्थोंकी शुद्धि भी गन्ध दूर करनेसे होती है। माताके स्तनको प्रस्तुत कराने (पेन्हाने) में बछड़ा, वृक्षसे फल गिरानेमें पक्षी, बोझ ढोनेमें गधा और शिकार पकड़नेमें कुत्ता शुद्ध (माना गया) है। मार्गके कीचड़ और जल, नाव तथा रास्तेकी घास, तृण एवं पके हुए ईंटोंके समूह वायुके द्वारा ही शुद्ध हो जाते हैं। यदि एक द्रोण (ढाई सेरसे अधिक) पके अन्नके अपवित्र वस्तुसे सम्पर्क हो जाय तो उसके ऊपरका अंश निकाल कर फेंक देना एवं शेषपर जल छिड़क देना चाहिये। इससे उसकी शुद्धि हो जाती है। अज्ञातरूपसे दूषित अन्न खा लेनेपर तीन रात्रितक उपवास करनेसे शुद्धि हो जानेका विधान है, किंतु जान-बूझकर दूषित अन्न खानेपर शुद्धि नहीं हो सकती॥ ७१—७५॥

रजस्वला स्त्री, कुत्ता, नग्न (दिगम्बर साधु),[2] प्रसूता स्त्री, चाण्डाल और शववाहकोंका स्पर्श हो जानेपर अपवित्र हुए व्यक्तिको पवित्र होनेके लिये स्नान करना चाहिये। मज्जायुक्त हड्डीके छू जानेपर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये, किंतु सूखी हड्डीका स्पर्श होनेपर आचमन करने, गो-स्पर्श तथा सूर्यदर्शन करनेमात्रसे ही शुद्धि हो जाती है। विष्ठा, रक्त, थूक एवं उबटनका

१-द्रव्यशुद्धिका यह प्रकरण मनुस्मृति ५। ११०-१४६ तथा याज्ञवल्क्यस्मृति १। १८९-१९७ आदिमें भी प्रायः इसी भावका है।
२-पद्मपुराण आदिमें नग्न-धर्मविपाक प्रश्नोत्तर द्रष्टव्य है।

न लङ्घयेत्पुरीषासृक्ष्ठीवनोद्वर्तनानि च।
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रे पादाम्भांसि क्षिपेद् बहिः॥ ७८

पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परवारिणि।
स्नायीत देवखातेषु सरोह्रदसरित्सु च॥ ७९

उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। जूठे पदार्थ, विष्ठा, मूत्र एवं पैर धोनेके जलको घरसे बाहर फेंक देना चाहिये। दूसरेके द्वारा निर्मित बावली आदिमें मिट्टीके पाँच टुकड़ोंके निकाले बिना स्नान नहीं करना चाहिये। (मुख्यतः) देव-निर्मित झीलोंमें, ताल-तलैयों और नदियोंमें स्नान करना चाहिये॥ ७६—७९॥

नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत् कदाचन।
नालपेज्जनविद्विष्टं वीरहीनां तथा स्त्रियम्॥ ८०

देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञवेदादिनिन्दकैः।
कृत्वा तु स्पर्शमालापं शुद्ध्यते कर्मावलोकनात्॥ ८१

बुद्धिमान् पुरुष बाग-बगीचोंमें असमयमें कभी न ठहरे। लोगोंसे द्वेष रखनेवाले व्यक्ति तथा पति-पुत्रसे रहित स्त्रीसे वार्तालाप नहीं करना चाहिये। देवता, पितरों, भले शास्त्रों (पुराण, धर्मशास्त्र, रामायण आदि), यज्ञ एवं वेदादिके निन्दकोंका स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप करनेपर मनुष्य अपवित्र हो जाता है, वह सूर्यदर्शन करनेपर शुद्ध होता है। उसकी शुद्धि भगवान् सूर्यके समक्ष उपस्थान करके अपने किये हुए स्पर्श और वार्तालाप कर्मके त्याग तथा पश्चात्ताप करनेसे होती है। सूतिक, नपुंसक, बिलाव, चूहा, कुत्ते, मुर्गे, पतित, नग्न (विधर्मी) (इनके लक्षण आगे बतलाये जायँगे) समाजसे बहिष्कृत और जो चाण्डाल आदि अधम प्राणी हैं उनके यहाँ भोजन नहीं करना चाहिये॥ ८०—८२॥

अभोज्याः सूतिकाषण्ढमार्जाराखुश्वकुक्कुटाः।
पतितापविद्धनग्नाश्चाण्डालाधमाश्च ये॥ ८२

सुकेशिरुवाच

भवद्भिः कीर्तिताऽभोज्या य एते सूतिकादयः।
अमीषां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो लक्षणानि हि॥ ८३

सुकेशि बोला—ऋषियो! आप लोगोंने जिन सूतिक आदिका अन्न अभक्ष्य कहा है, मैं उनके लक्षण विस्तारसे सुनना चाहता हूँ॥ ८३॥

ऋषय ऊचुः

ब्राह्मणी ब्राह्मणस्यैव याऽवरोधत्वमागता।
तावुभौ सूतिकेत्युक्तौ तयोरन्नं विगर्हितम्॥ ८४

न जुहोत्युचिते काले न स्नाति न ददाति च।
पितृदेवार्चनाद्धीनः स षण्ढः परिगीयते॥ ८५

दम्भार्थं जपते यश्च तप्यते यजते तथा।
न परत्रार्थमुद्युक्तो स मार्जारः प्रकीर्तितः॥ ८६

विभवे सति नैवाश्नाति न ददाति जुहोति च।
तमाहुराखुं तस्यान्नं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुद्ध्यति॥ ८७

ऋषियोंने कहा—सुकेशि! अन्य ब्राह्मणके साथ ब्राह्मणीके व्यभिचरित होनेपर उन दोनोंको ही 'सूतिक' कहा जाता है। उन दोनोंका अन्न निन्दित है। उचित समयपर हवन, स्नान और दान न करनेवाला तथा पितरों एवं देवताओंकी पूजासे रहित व्यक्तिको ही यहाँ 'षण्ढ' या नपुंसक कहा गया है। दम्भके लिये जप, तप और यज्ञ करनेवाले तथा परलोकार्थ उद्योग न करनेवाले व्यक्तिको यहाँ 'मार्जार' या 'बिलाव' कहा गया है। ऐश्वर्य रहते हुए भोग, दान एवं हवन न करनेवालेको 'आखु' (चूहा) कहते हैं। उसका अन्न खानेपर मनुष्य कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होता है॥ ८४—८७॥

यः परेषां हि मर्माणि निकृन्तन्निव भाषते।
नित्यं परगुणद्वेषी स श्वान इति कथ्यते॥ ८८

सभागतानां यः सभ्यः पक्षपातं समाश्रयेत्।
तमाहुः कुक्कुटं देवास्तस्याप्यन्नं विगर्हितम्॥ ८९

स्वधर्मं यः समुत्सृज्य परधर्मं समाश्रयेत्।
अनापदि स विद्वद्भिः पतितः परिकीर्त्यते॥ ९०

देवत्यागी पितृत्यागी गुरुभक्त्यरतस्तथा।
गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धः स कीर्त्यते॥ ९१
येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम्।
ते नग्नाः कीर्तिताः सद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम्॥ ९२

आशार्तानामदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः।
शरणागतं यस्त्यजति स चाण्डालोऽधमो नरः॥ ९३

यो बान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि।
कुण्डाशीयश्च तस्यान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ ९४

यो नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च।
भुक्त्वान्नं तस्य शुद्ध्येत त्रिरात्रोपोषितो नरः॥ ९५
गणकस्य निषादस्य गणिकाभिषजोस्तथा।
कदर्यस्यापि शुद्ध्येत त्रिरात्रोपोषितो नरः॥ ९६

नित्यस्य कर्मणो हानिः केवलं मृतजन्मसु।
न तु नैमित्तिकोच्छेदः कर्तव्यो हि कथंचन॥ ९७

जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलस्य विधीयते।
मृते च सर्वबन्धूनामित्याह भगवान् भृगुः॥ ९८

प्रेताय सलिलं देयं बहिर्दग्ध्वा तु गोत्रजैः।
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे वा सप्तमे वाऽस्थिसंचयम्॥ ९९

ऊर्ध्वं संचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते।
सोदकैस्तु क्रिया कार्या संशुद्धैस्तु सपिण्डजैः॥ १००

दूसरोंका मर्म भेदन करते हुए बातचीत करनेवाले तथा दूसरेके गुणोंसे द्वेष करनेवालेको 'श्वान' या 'कुत्ता' कहा गया है। सभामें आगत व्यक्तियोंमें जो सभ्य व्यक्ति पक्षपात करता है, उसे देवताओंने 'कुक्कुट' (मुर्गा) कहा है; उसका भी अन्न निन्दित है। विपत्तिकालके अतिरिक्त अन्य समयमें अपना धर्म छोड़कर दूसरेका धर्म ग्रहण करनेवालेको विद्वानोंने 'पतित' कहा है। देवत्यागी, पितृत्यागी, गुरुभक्तिसे विमुख तथा गो, ब्राह्मण एवं स्त्रीकी हत्या करनेवालेको 'अपविद्ध' कहा जाता है॥ ८८—९१॥

जिनके कुलमें वेद, शास्त्र एवं व्रत नहीं है, उन्हें सज्जन लोग 'नग्न' कहते हैं। उनका अन्न निन्दित है। आशा रखनेवालोंको न देनेवाला, दाताको मना करनेवाला तथा शरणागतका परित्याग करनेवाला अधम मनुष्य 'चाण्डाल' कहा जाता है। बान्धवों, साधुओं एवं ब्राह्मणोंसे त्यागा गया तथा कुण्ड (पतिके जीवित रहनेपर परपुरुषसे उत्पन्न पुत्र) के यहाँ अन्न खानेवालेको चान्द्रायण व्रत करना चाहिये। नित्य और नैमित्तिक कर्म न करनेवाले व्यक्तिका अन्न खानेपर मनुष्य तीन राततक उपवास करनेसे शुद्ध होता है॥ ९२—९५॥

गणक (ज्योतिषी), निषाद (मल्लाह), वेश्या, वैद्य तथा कृपणका अन्न खानेपर भी मनुष्य तीन दिन उपवास करनेपर शुद्ध होता है। घरमें जन्म या मृत्यु होनेपर नित्यकर्म रुक जाते हैं, किंतु नैमित्तिक कर्म कभी बंद नहीं करना चाहिये। भगवान् भृगुने कहा है कि पुत्र उत्पन्न होनेपर पिताके लिये एवं मरणमें सभी बन्धुओंके लिये वस्त्रके साथ स्नान करना चाहिये। ग्रामके बाहर शवदाह करना चाहिये। शवदाह करनेके बाद सगोत्र लोग प्रेतके उद्देश्यसे जलदान (तिलाञ्जलि) करें तथा पहले दिन या चौथे अथवा तीसरे दिन अस्थि-चयन करें॥ ९६—९९॥

अस्थि-चयनके बाद अङ्ग-स्पर्शका विधान है। शुद्ध होकर सोदकों (चौदह पीढ़ीके अन्तर्गतके लोगों) एवं सपिण्डजों (सात पीढ़ीके अंदरके लोगों) को और्ध्वदैहिक क्रिया (मरनेके बाद की जानेवाली विहित क्रिया) करनी चाहिये। हे वीर! विष, बन्धन, शस्त्र,

विषोद्बन्धनशस्त्राम्बुवह्निपातमृतेषु च।
बाले प्रव्राजि संन्यासे देशान्तरमृते तथा॥ १०१

सद्यः शौचं भवेद्वीर तच्चाप्युक्तं चतुर्विधम्।
गर्भस्रावे तदेवोक्तं पूर्णकालेन चेतरे॥ १०२

ब्राह्मणानामहोरात्रं क्षत्रियाणां दिनत्रयम्।
षड्रात्रं चैव वैश्यानां शूद्राणां द्वादशाह्निकम्॥ १०३

दशद्वादशमासार्द्धमाससंख्यैर्दिनैश्च तैः।
स्वाः स्वाः कर्मक्रियाः कुर्युः सर्वे वर्णा यथाक्रमम्॥ १०४

प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यमेकोद्दिष्टं विधानतः।
सपिण्डीकरणं कार्यं प्रेते आवत्सरान्तरे॥ १०५

ततः पितृत्वमापन्ने दर्शपूर्णादिभिः शुभैः।
प्रीणनं तस्य कर्तव्यं यथा श्रुतिनिदर्शनात्॥ १०६

पितुरर्थं समुद्दिश्य भूमिदानादिकं स्वयम्।
कुर्यात्तेनास्य सुप्रीताः पितरो यान्ति राक्षस॥ १०७

यद् यदिष्टतमं किंचिद् यच्चास्य दयितं गृहे।
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥ १०८

अध्येतव्या त्रयी नित्यं भाव्यं च विदुषा सदा।
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि शक्तितः॥ १०९

यच्चापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति राक्षस।
तत् कर्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजने॥ ११०

एवमाचरतो लोके पुरुषस्य गृहे सतः।
धर्मार्थकामसंप्राप्तिं परत्रेह च शोभनम्॥ १११

एष तूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थाश्रम उत्तमः।
वानप्रस्थाश्रमं धर्मं प्रवक्ष्यामोऽवधार्यताम्॥ ११२

जल, अग्नि और गिरनेसे मृत्युके होनेपर तथा बालक, परिव्राजक, संन्यासीकी एवं किसी व्यक्तिकी दूर देशमें मृत्यु होनेपर तत्काल शुद्धि हो जाती है। वह शुद्धि भी चार प्रकारकी कही गयी है। गर्भस्रावमें भी शीघ्र ही शुद्धि होती है। अन्य अशौच पूरे समयपर ही दूर होते हैं। (वह सद्यः शौच) ब्राह्मणोंका एक अहोरात्रका, क्षत्रियोंका तीन दिनोंका, वैश्योंका छः दिनोंका एवं शूद्रोंका बारह दिनोंका होता है॥ १००—१०३॥

सभी वर्णोंके लोग (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) क्रमशः दस, बारह, पंद्रह दिन एवं एक मासके अन्तरपर अपनी-अपनी क्रियाएँ करें। प्रेतके उद्देश्यसे विधिके अनुसार एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। मरनेके एक वर्ष बीत जानेपर मनुष्यको सपिण्डीकरण श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद प्रेतके पितर हो जानेपर अमावास्या और पूर्णिमा तिथिके दिन वेदविहित विधिसे उनका तर्पण करना चाहिये। राक्षस! पिताके उद्देश्यसे स्वयं भूमिदान आदि करे, जिससे पितृगण इसके ऊपर प्रसन्न हो जायँ॥ १०४—१०७॥

व्यक्तिकी जीवित अवस्थामें घरमें जो-जो पदार्थ उसको अत्यन्त अभिलषित एवं प्रिय रहा हो, उसकी अक्षयताकी कामना करते हुए गुणवान् पात्रको दान देना चाहिये। सदा त्रयी अर्थात् ऋक्, यजुः और सामवेदका अध्ययन करना चाहिये, विद्वान् बनना चाहिये, धर्मपूर्वक धनार्जन एवं यथाशक्ति यज्ञ करना चाहिये। राक्षस! मनुष्यको जिस कार्यके करनेसे कर्ताकी आत्मा निन्दित न हो एवं जो कार्य बड़े लोगोंसे छिपाने योग्य न हो ऐसा कार्य निःशङ्क (आशङ्कारहित) होकर करना चाहिये। इस प्रकारके आचरण करनेवाले पुरुषके गृहस्थ होनेपर भी उसे धर्म, अर्थ एवं कामकी प्राप्ति होती है तथा वह व्यक्ति इस लोक और परलोकमें कल्याणका भागी होता है॥ १०८—१११॥

ऋषियोंने सुकेशिसे कहा— सुकेशि! अबतक हमने संक्षेपसे उत्तम गृहस्थाश्रमका वर्णन किया है। अब हम वानप्रस्थ-आश्रमके धर्मका वर्णन करेंगे, उसे

अपत्यसंततिं दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम्।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनः शुद्धिकारणम्॥ ११३

तत्रारण्योपभोगैश्च तपोभिश्चात्मकर्षणम्।
भूमौ शय्या ब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रिया॥ ११४

होमस्त्रिषवणं स्नानं जटावल्कलधारणम्।
वन्यस्नेहनिषेवित्वं वानप्रस्थविधिस्त्वयम्॥ ११५

सर्वसङ्गपरित्यागो ब्रह्मचर्यममानिता।
जितेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन् वसतिश्चिरम्॥ ११६

अनारम्भस्तथाहारो भैक्षान्नं नातिकोपिता।
आत्मज्ञानावबोधेच्छा तथा चात्मावबोधनम्॥ ११७

चतुर्थे त्वाश्रमे धर्मा अस्माभिस्ते प्रकीर्तिताः।
वर्णधर्माणि चान्यानि निशामय निशाचर॥ ११८

गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थं त्रयाश्रमाः।
क्षत्रियस्यापि कथिता ये चाचारा द्विजस्य हि॥ ११९

वैखानसत्वं गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः।
गार्हस्थ्यमुत्तमं त्वेकं शूद्रस्य क्षणदाचर॥ १२०

स्वानि वर्णाश्रमोक्तानि धर्माणीह न हापयेत्।
यो हापयति तस्यासौ परिकुप्यति भास्करः॥ १२१

कुपितः कुलनाशाय ईश्वरो रोगवृद्धये।
भानुर्वै यतते तस्य नरस्य क्षणदाचर॥ १२२

तस्मात् स्वधर्मं न हि संत्यजेत
न हापयेच्चापि हि नात्मवंशम्।
यः संत्यजेच्चापि निजं हि धर्मं
तस्मै प्रकुप्येत दिवाकरस्तु॥ १२३

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्तो मुनिभिः सुकेशी
प्रणम्य तान् ब्रह्मनिधीन् महर्षीन्।
जगाम चोत्पत्य पुरं स्वकीयं
मुहुर्मुहुर्धर्ममवेक्षमाणः॥ १२४

ध्यानपूर्वक सुनो। बुद्धिमान् व्यक्ति पुत्रकी संतान (पौत्र) और अपने शरीरकी गिरती अवस्था देखकर अपने आत्माकी शुद्धिके लिये वानप्रस्थ-आश्रमको ग्रहण करे। वहाँ अरण्यमें उत्पन्न मूल-फल आदिसे अपना जीवन-यापन करते हुए तपद्वारा शरीर-शोषण करे। इस आश्रममें भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्यका पालन एवं पितर, देवता तथा अतिथियोंकी पूजा करे। हवन, तीनों काल—प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्याकाल—स्नान, जटा और वल्कलका धारण तथा वन्य फलोंसे निकाले रसका सेवन करे। यही वानप्रस्थ-आश्रमकी विधि है॥ ११२—११५॥

[चतुर्थ आश्रम (संन्यास) के धर्म ये हैं—] सभी प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग, ब्रह्मचर्य, अहंकारका अभाव, जितेन्द्रियता, एक स्थानपर अधिक समयतक न रहना, उद्योगका अभाव, भिक्षान्न-भोजन, क्रोधका त्याग, आत्मज्ञानकी इच्छा तथा आत्मज्ञान। निशाचर! हमने तुमसे चतुर्थ-आश्रम (संन्यास)-के इन धर्मोंका वर्णन किया। अब अन्य वर्ण-धर्मोंको सुनो। क्षत्रियोंके लिये भी गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ—इन तीन आश्रमों एवं ब्राह्मणोंके लिये विहित आचारोंका विधान है॥ ११६—११९॥

राक्षस! वैश्यजातिके लिये गार्हस्थ्य एवं वानप्रस्थ—इन दो आश्रमोंका विधान है तथा शूद्रके लिये एकमात्र उत्तम गृहस्थ-आश्रमका ही नियम है। अपने वर्ण और आश्रमके लिये विहित धर्मोंका इस लोकमें त्याग नहीं करना चाहिये। जो इनका त्याग करता है, उसपर सूर्य भगवान् क्रुद्ध होते हैं। निशाचर! भगवान् भास्कर क्रुद्ध होकर उस मनुष्यकी रोगवृद्धि एवं उसके कुलका नाश करनेके लिये प्रयत्न करते हैं। अतः मनुष्य स्वधर्मका न तो त्याग करे और न अपने वंशकी हानि होने दे। जो मनुष्य अपने धर्मका त्याग करता है, उसपर भगवान् सूर्य क्रोध करते हैं॥ १२०—१२३॥

पुलस्त्यजी बोले—मुनियोंके ऐसा कहनेके बाद सुकेशी उन ब्रह्मज्ञानी महर्षियोंको बारम्बार प्रणामकर धर्मका चिन्तन करते हुए उछलकर अपने पुरको चला गया॥ १२४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

दैत्योंका धर्म एवं सदाचारका पालन, सुकेशीके नगरका उत्थान-पतन, वरुणा असीकी महिमा, लोलार्क-प्रसंग

पुलस्त्य उवाच

ततः सुकेशिर्देवर्षे गत्वा स्वपुरमुत्तमम्।
समाहूयाब्रवीत् सर्वान् राक्षसान् धार्मिकं वचः॥ १

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयमः।
दानं दया च क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यममानिता॥ २

शुभा सत्या च मधुरा वाक् नित्यं सत्क्रियारतिः।
सदाचारनिषेवित्वं परलोकप्रदायकाः॥ ३

इत्यूचुर्मुनयो मह्यं धर्ममाद्यं पुरातनम्।
सोऽहमाज्ञापये सर्वान् क्रियतामविकल्पतः॥ ४

पुलस्त्य उवाच

ततः सुकेशिवचनात् सर्व एव निशाचराः।
त्रयोदशाङ्गं ते धर्मं चक्रुर्मुदितमानसाः॥ ५
ततः प्रवृद्धिं सुतरामगच्छन्त निशाचराः।
पुत्रपौत्रार्थसंयुक्ताः सदाचारसमन्विताः॥ ६
तज्ज्योतिस्तेजसस्तेषां राक्षसानां महात्मनाम्।
गन्तुं नाशक्नुवन् सूर्यो नक्षत्राणि न चन्द्रमाः॥ ७
ततस्त्रिभुवने ब्रह्मन् निशाचरपुरोऽभवत्।
दिवा चन्द्रस्य सदृशः क्षणदायां च सूर्यवत्॥ ८
न ज्ञायते गतिर्व्योम्नि भास्करस्य ततोऽम्बरे।
शशाङ्कमिति तेजस्त्वादमन्यन्त पुरोत्तमम्॥ ९

स्वं विकासं विमुञ्चन्ति निशामिति व्यचिन्तयन्।
कमलाकरेषु कमला मित्रमित्यवगम्य हि।
रात्रौ विकसिता ब्रह्मन् विभूतिं दातुमीप्सवः॥ १०

कौशिका रात्रिसमयं बुद्ध्वा निरगमन् किल।
तान् वायसास्तदा ज्ञात्वा दिवा निघ्नन्ति कौशिकान्॥ ११

स्नातकास्त्वापगास्वेव स्नानजप्यपरायणाः।
आकण्ठमग्नास्तिष्ठन्ति रात्रौ ज्ञात्वाऽथ वासरम्॥ १२

पुलस्त्यजी बोले— देवर्षे! उसके बाद अपने उत्तम नगरमें आकर सुकेशीने सभी राक्षसोंको बुलाकर उनसे धर्मकी बात बतलायी। (सुकेशिने कहा—) अहिंसा, सत्य, चोरीका सर्वथा त्याग, पवित्रता, इन्द्रियसंयम, दान, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, अहंकारका न करना, प्रिय, सत्य और मधुर वाणी बोलना, सदा सत्कार्योंमें अनुराग रखना एवं सदाचारका पालन करना—ये सब धर्म परलोकमें सुख देनेवाले हैं। मुनियोंने इस प्रकारके आदिकालके पुरातन धर्मको मुझे बतलाया है। मैं तुम लोगोंको आज्ञा देता हूँ कि तुम लोग बिना किसी हिचकके इन सभी धर्मोंका आचरण करो॥ १—४॥

पुलस्त्यजीने कहा— उसके बाद सुकेशीके वचनसे सभी राक्षस प्रसन्न-चित्त होकर (अहिंसा आदि) तेरह अङ्गवाले धर्मका आचरण करने लगे। इससे राक्षसोंकी सभी प्रकारकी अच्छी उन्नति हुई। वे पुत्र-पौत्र तथा अर्थ-धर्म-सदाचार आदिसे सम्पन्न हो गये। उन महान् राक्षसोंके तेजके सामने सूर्य, नक्षत्र और चन्द्रमाकी गति और कान्ति क्षीण-सी दीखने लगी। ब्रह्मन्! उसके बाद निशाचरोंकी नगरी तीनों लोकोंमें दिनमें चन्द्रमाके समान और रातमें सूर्यके समान चमकने लगी॥ ५—८॥

(फलतः) अब आकाशमें सूर्यकी गतिका (चलनेका) पता नहीं लगता था। लोग उस श्रेष्ठ नगरको नगरके तेजके कारण आकाशमें चन्द्रमा समझने लग गये। ब्रह्मन्! सरोवरके कमल दिनको रात्रि समझकर विकसित नहीं होते थे। पर वे रात्रिमें सुकेशीके पुरको सूर्य समझकर विभूति प्रदान करनेकी इच्छासे विकसित होने लगे। इसी प्रकार उल्लू भी दिनको रात समझकर बाहर निकल आये और कौए दिनमें आये जानकर उन उल्लुओंको मारने लगे। स्नान करनेवाले लोग भी रात्रिको दिन समझकर गलेतक खुले बदन डूबकर स्नान करने लगे एवं जप करते हुए जलमें खड़े रहे॥ ९—१२॥

न व्ययुज्यन्त चक्राह्वा तदा वै पुरदर्शने।
मन्यमानास्तु दिवसमिदमुच्चैर्बुवन्ति च॥ १३

नूनं कान्तविहीनेन केनचिच्चक्रपत्त्रिणा।
उत्सृष्टं जीवितं शून्ये फूत्कृत्य सरितस्तटे॥ १४

ततोऽनुकृपयाविष्टो विवस्वांस्तीव्ररश्मिभिः।
संतापयञ्जगत् सर्वं नास्तमेति कथंचन॥ १५

अन्ये वदन्ति चक्राह्वो नूनं कश्चिन् मृतो भवेत्।
तत्कान्तया तपस्तप्तं भर्तृशोकार्त्तया बत॥ १६

आराधितस्तु भगवांस्तपसा वै दिवाकरः।
तेनासौ शशिनिर्जेता नास्तमेति रविर्ध्रुवम्॥ १७

यज्विनो होमशालासु सह ऋत्विग्भिरध्वरे।
प्रावर्त्तयन्त कर्माणि रात्रावपि महामुने॥ १८

महाभागवताः पूजां विष्णोः कुर्वन्ति भक्तितः।
रवौ शशिनि चैवान्ये ब्रह्मणोऽन्ये हरस्य च॥ १९

कामिनश्चाप्यमन्यन्त साधु चन्द्रमसा कृतम्।
यदियं रजनी रम्या कृता सततकौमुदी॥ २०

अन्ये त्वब्रुवँल्लोकगुरुरस्माभिश्चक्रभृद् वशी।
निर्व्याजेन महागन्धैरर्चितः कुसुमैः शुभैः॥ २१

सह लक्ष्म्या महायोगी नभस्यादिचतुर्ष्वपि।
अशून्यशयना नाम द्वितीया सर्वकामदा॥ २२

तेनासौ भगवान् प्रीतः प्रादाच्छयनमुत्तमम्।
अशून्यं च महाभोगैरनस्तमितशेखरम्॥ २३

अन्येऽब्रुवन् ध्रुवं देव्या रोहिण्या शशिनः क्षयम्।
दृष्ट्वा तप्तं तपो घोरं रुद्राराधनकाम्यया॥ २४

पुण्यायामक्षयाष्टम्यां वेदोक्तविधिना स्वयम्।
तुष्टेन शंभुना दत्तं वरं चास्यै यदृच्छया॥ २५

अन्येऽब्रुवन् चन्द्रमसा ध्रुवमाराधितो हरिः।
व्रतेनेह त्वखण्डेन तेनाखण्डः शशी दिवि॥ २६

अन्ये त्वब्रुवञ्शशाङ्केन ध्रुवं रक्षा कृतात्मनः।
पदद्वयं समभ्यर्च्य विष्णोरमिततेजसः॥ २७

उस समय सुकेशीके नगरके (सूर्यवत्) दर्शन होनेसे चकवा-चकई रात्रिको ही दिन मानकर परस्पर अलग नहीं होते थे। वे उच्चस्वरसे कहते—निश्चय ही किसी पत्नीसे विहीन चक्रवाक पक्षीने एकान्तमें नदीतटपर फूत्कार करके जीवन त्याग दिया है। इसीसे दयार्द्र सूर्य अपनी तेज किरणोंसे जगत्‌को तपाते हुए किसी प्रकार अस्त नहीं हो रहे हैं। दूसरे कहते हैं—'निश्चय ही कोई चक्रवाक मर गया है और पतिके शोकमें उसकी दुःखिनी कान्ताने भारी तप किया है। इसीलिये निश्चय ही उसकी तपस्यासे प्रसन्न हुए एवं चन्द्रमाको जीत लेनेवाले भगवान् सूर्य अस्त नहीं हो रहे हैं'॥ १३—१७॥

महामुने! उन दिनों यज्ञशालाओंमें ऋत्विजोंके साथ यजमान लोग रात्रिमें भी यज्ञकर्म करनेमें लगे रहते थे। विष्णुके भक्तलोग भक्तिपूर्वक सदा विष्णुकी पूजा करते रहते एवं दूसरे लोग सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा और शिवकी आराधनामें लगे रहते थे। कामी लोग यह मानने लगे कि चन्द्रमाने रात्रिको निरन्तरके लिये अपनी ज्योत्स्नामयी बना दिया, अच्छा हुआ॥ १८—२०॥

दूसरे लोग कहने लगे कि हम लोगोंने श्रावण आदि चार महीनोंमें शुद्धभावसे अति सुगन्धित पवित्र पुष्पोंद्वारा महालक्ष्मीके साथ सुदर्शनचक्रको धारण करनेवाले भगवान् विष्णुकी पूजा की है। इसी अवधिमें सर्वकामदा अशून्यशयना द्वितीया तिथि होती है। उसीसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने अशून्य तथा महाभोगोंसे परिपूर्ण उत्तम शयन प्रदान किया है। दूसरे कहते कि देवी रोहिणीने चन्द्रमाका क्षय देखकर निश्चय ही रुद्रकी आराधना करनेकी अभिलाषासे परम पवित्र अक्षय अष्टमी तिथिमें वेदोक्त विधिसे कठिन तपस्या की है, जिससे सन्तुष्ट होकर भगवान् शंकरने उसे अपनी इच्छासे वर दिया है॥ २१—२५॥

दूसरे लोग कहते—चन्द्रमाने निश्चय ही अखण्ड-व्रतका आचरण करके भगवान् हरिको आराधित किया है। उससे आकाशमें चन्द्रमा अखण्डरूपसे प्रकाशित हो रहा है। दूसरोंने कहा—चन्द्रमाने अत्यधिक तेजवाले श्रीविष्णुके चरणयुगलकी विधिवत् पूजा करके अपनी रक्षा की है, उससे तेजस्वी चन्द्रमा सूर्यपर विजय प्राप्त

तेनासौ दीप्तिमाञ्छुभ्रः परिभूय दिवाकरम्।
अस्माकमानन्दकरो दिवा तपति सूर्यवत्॥ २८

लक्ष्यते कारणैरन्यैर्बहुभिः सत्यमेव हि।
शशाङ्कनिर्जितः सूर्यो न विभाति यथा पुरा॥ २९
यथामी कमलाः श्लक्ष्णा रणद्भृङ्गगणावृताः।
विकचाः प्रतिभासन्ते जातः सूर्योदयो ध्रुवम्॥ ३०

यथा चामी विभासन्ति विकचाः कुमुदाकराः।
अतो विज्ञायते चन्द्र उदितश्च प्रतापवान्॥ ३१

एवं संभाषतां तत्र सूर्यो वाक्यानि नारद।
अमन्यत किमेतद्धि लोको वक्ति शुभाशुभम्॥ ३२

एवं संचिन्त्य भगवान् दध्यौ ध्यानं दिवाकरः।
आसमन्ताज्जगद् ग्रस्तं त्रैलोक्यं रजनीचरैः॥ ३३
ततस्तु भगवाञ्ज्ञात्वा तेजसोऽप्यसहिष्णुताम्।
निशाचरस्य वृद्धिं तामचिन्तयत योगवित्॥ ३४

ततोऽज्ञासीच्च तान् सर्वान् सदाचाररताञ्शुचीन्।
देवब्राह्मणपूजासु संसक्तान् धर्मसंयुतान्॥ ३५

ततस्तु रक्षःक्षयकृत् तिमिरद्विपकेसरी।
महांशुनखरः सूर्यस्तद्विघातमचिन्तयत्॥ ३६

ज्ञातवांश्च ततश्छिद्रं राक्षसानां दिवस्पतिः।
स्वधर्मविच्युतिर्नाम सर्वधर्मविघातकृत्॥ ३७
ततः क्रोधाभिभूतेन भानुना रिपुभेदिभिः।
भानुभी राक्षसपुरं तद् दृष्टं च यथेच्छया॥ ३८
स भानुना तदा दृष्टः क्रोधाध्मातेन चक्षुषा।
निपपाताम्बराद् भ्रष्टः क्षीणपुण्य इव ग्रहः॥ ३९
पतमानं समालोक्य पुरं शालकटङ्कटः।
नमो भवाय शर्वाय इदमुच्चैरुदीरयत्॥ ४०
तमाक्रन्दितमाकर्ण्य चारणा गगनेचराः।
हा हेति चुक्रुशुः सर्वे हरभक्तः पतत्यसौ॥ ४१

तच्चारणवचः शर्वः श्रुतवान् सर्वगोऽव्ययः।
श्रुत्वा संचिन्तयामास केनासौ पात्यते भुवि॥ ४२

कारके हमें आनन्द देते हुए दिनमें सूर्यकी भाँति दीप्तिमान् हो रहे हैं। अन्य अनेक प्रकारके कारणोंसे सचमुच यह लक्षित हो रहा है कि चन्द्रमाके द्वारा पराजित हुए सूर्य पूर्ववत् दीप्तिवाले नहीं दीख रहे हैं॥ २८—२९॥

इधर ये सुन्दर कमल खिले हैं और उनपर भौंरे गुंजार कर रहे हैं। भ्रमर-समूहसे आवृत ये सुन्दर कमल विकसित दिखलायी पड़ रहे हैं, अतः निश्चय ही सूर्योदय हुआ है। और इधर ये कुमुदवृन्द खिले हुए हैं; अतः लगता है कि प्रतापवान् चन्द्रमा उदित हुआ है। नारदजी! इस प्रकार वार्ता करनेवालोंके वाक्योंको सुनकर सूर्य सोचने लगे कि ये लोग इस प्रकार शुभाशुभ वचन क्यों बोल रहे हैं? भगवान् दिवाकर ऐसा विचारकर ध्यानमग्न हो गये और उन्होंने देखा कि समस्त त्रैलोक्य चारों ओरसे राक्षसोंद्वारा ग्रस्त हो गया है॥ ३०—३३॥

तब योगी भगवान् भास्कर राक्षसोंकी वृद्धि तथा तेजकी असहनीयताको जानकर स्वयं चिन्तन करने लगे। उन्हें यह ज्ञात हुआ कि सभी राक्षस सदाचार-परायण, पवित्र, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें अनुरक्त तथा धार्मिक हैं। उसके बाद राक्षसोंको नष्ट करनेवाले तथा अन्धकाररूपी हाथीके लिये तेज किरणरूपी नखवाले सिंहके समान सूर्य उनके विनाशके विषयमें चिन्तन करने लगे। अन्तमें सूर्यको राक्षसोंके अपने धर्मसे गिरनेका मूल कारण मालूम हुआ, जो समस्त धर्मोंका विनाशक है॥ ३४—३७॥

तब क्रोधसे अभिभूत सूर्यने शत्रुओंके भेदन करनेवाली अपनी किरणोंद्वारा भलीभाँति उस राक्षसको देखा। उस समय सूर्यद्वारा क्रोधभरी दृष्टिसे देखे जानेके कारण वह नगर नष्ट हुए पुण्यवाले ग्रहके समान आकाशसे नीचे गिर पड़ा। अपने नगरको गिरते देखकर शालकटंकट (सुकेशी)-ने ऊँचे स्वरसे चीखनेके स्वरमें '**नमो भवाय शर्वाय**' यह कहा। उसकी उस चीखको सुनकर गगनमें विचरण करनेवाले सभी चारण चिल्लाने लगे—हाय हाय! हाय हाय! यह शिव-भक्त तो नीचे गिर रहा है॥ ३८—४१॥

सर्वत्र व्याप्त और अविनाशी नित्य शंकरने चारणोंके उस वचनको सुना और फिर सोचने लगे—यह नगर किसके द्वारा पृथ्वीपर गिराया जा रहा है। उन्होंने यह जान

ज्ञातमात्रं देवपतिना सहस्रकिरणेन तत्।
पातितं राक्षसपुरं ततः क्रुद्धस्त्रिलोचनः॥ ४३
क्रुद्धस्तु भगवन्तं तं भानुमन्तमपश्यत।
दृष्टमात्रस्त्रिनेत्रेण निपपात ततोऽम्बरात्॥ ४४
गगनात् स परिभ्रष्टः पथि वायुनिषेविते।
यदृच्छया निपतितो यन्त्रमुक्तो यथोपलः॥ ४५
ततो वायुपथान्मुक्तः किंशुकोज्ज्वलविग्रहः।
निपपातान्तरिक्षात् स वृतः किन्नरचारणैः॥ ४६

चारणैर्वेष्टितो भानुः प्रविभात्यम्बरात् पतन्।
अर्द्धपक्वं यथा तालात् फलं कपिभिरावृतम्॥ ४७

ततस्तु ऋषयोऽभ्येत्य प्रत्यूचुर्भानुमालिनम्।
निपतस्व हरिक्षेत्रे यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि॥ ४८

ततोऽब्रवीत् पतन्नेव विवस्वांस्तांस्तपोधनान्।
किं तत् क्षेत्रं हरेः पुण्यं वदध्वं शीघ्रमेव मे॥ ४९
तमूचुर्मुनयः सूर्यं शृणु क्षेत्रं महाफलम्।
साम्प्रतं वासुदेवस्य भावि तच्छंकरस्य च॥ ५०

योगशायिनमारभ्य यावत् केशवदर्शनम्।
एतत् क्षेत्रं हरेः पुण्यं नाम्ना वाराणसी पुरी॥ ५१

तच्छ्रुत्वा भगवान् भानुर्भवनेत्राग्नितापितः।
वरणायास्तथैवास्यास्त्वन्तरे निपपात ह॥ ५२

ततः प्रदह्यति तनौ निमज्यास्यां लुलद् रविः।
वरणायां समभ्येत्य न्यमज्जत यथेच्छया॥ ५३
भूयोऽसिं वरणां भूयो भूयोऽपि वरणामसिम्।
लुलंस्त्रिनेत्रवह्न्यार्त्तो भ्रमतेऽलातचक्रवत्॥ ५४
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् ऋषयो यक्षराक्षसाः।
नागा विद्याधराश्चापि पक्षिणोऽप्सरसस्तथा॥ ५५
यावन्तो भास्कररथे भूतप्रेतादयः स्थिताः।
तावन्तो ब्रह्मसदनं गत्वा वेदयितुं मुने॥ ५६

लिया कि देवोंके पति सहस्रकिरणमाली सूर्यद्वारा राक्षसोंका यह पुर गिराया गया है। इससे त्रिलोचन शंकर क्रुद्ध हो गये और उन्होंने भगवान् सूर्यको देखा। त्रिनेत्रधारी शंकरके देखते ही वे सूर्य आकाशसे नीचे आ गिरे। आकाशसे नीचे वायुमण्डलमार्गमें से इस प्रकार गिरे जैसे यन्त्रके द्वारा कोई पत्थर फेंका गया हो॥ ४३—४५॥

फिर पलाश-पुष्पके समान आभावाले सूर्य वायुमण्डलसे अलग होकर किंनरों एवं चारणोंसे भरे अन्तरिक्षसे नीचे गिर गये। उस समय आकाशसे नीचे गिरते हुए सूर्य चारणोंसे घिरे हुए ऐसे लग रहे थे, जैसे तालवृक्षसे गिरनेवाला अधपका तालफल कपियोंसे घिरा हो। तब मुनियोंने किरणमाली भगवान् सूर्यदेवके समीप आकर उनसे कहा कि यदि तुम कल्याण चाहते हो तो विष्णुके क्षेत्रमें गिरो। गिरते हुए ही सूर्यने (ऐसा सुनकर) उन तपस्वियोंसे पूछा—विष्णुभगवान्‌का वह पवित्र क्षेत्र कौन-सा है? आप लोग उसे मुझे शीघ्र बतलायें॥ ४६—४९॥

इसपर मुनियोंने सूर्यसे बतलाया—सूर्यदेव! आप महाफल देनेवाले उस क्षेत्रका विवरण सुनिये। इस समय यह क्षेत्र वासुदेवका क्षेत्र है, किंतु भविष्यमें वह शंकरका क्षेत्र होगा। योगशायीसे प्रारम्भ कर केशवदर्शनतकका क्षेत्र हरिका पवित्र क्षेत्र है, इसका नाम वाराणसीपुरी है। उसे सुनकर शिवजीकी नेत्राग्निसे संतप्त होते हुए भगवान् सूर्य वरुणा और असी[1] इन दोनों नदियोंके बीचमें गिरे। उसके बाद शरीरके जलते रहनेसे व्याकुल हुए सूर्य असी नदीमें स्नान करनेके बाद वरुणा नदीमें इच्छानुकूल स्नान किये॥ ५०—५३॥

इस प्रकार शंकरके तीसरे नेत्रकी अग्निसे दग्ध होकर वे बारंबार असि और वरुणा नदियोंकी ओर अलातचक्र (लुकाठीके मण्डल)-के समान चक्कर काटने लगे। मुने! इस बीच ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, विद्याधर, पक्षी, अप्सराएँ और भास्करके रथमें जितने भूत-प्रेत आदि थे, वे सभी इसे ज्ञापित करनेके लिये ब्रह्मलोकमें गये

१. अब भी वरुणा और असी नदियाँ वाराणसीको अपने अन्तरालमें किये हुए हैं। असी बरसातमें जलभरित होती है, पर वरुणा सदा जलपूर्ण रहती है।

ततो ब्रह्मा सुरपतिः सुरैः सार्धं समभ्यगात्।
रम्यं महेश्वरावासं मन्दरं रविकारणात्॥ ५७

गत्वा दृष्ट्वा च देवेशं शंकरं शूलपाणिनम्।
प्रसाद्य भास्करार्थाय वाराणस्यामुपानयत्॥ ५८

ततो दिवाकरं भूयः पाणिनादाय शंकरः।
कृत्वा नामास्य लोलेति रथमारोपयत् पुनः॥ ५९

आरोपिते दिनकरे ब्रह्माऽभ्येत्य सुकेशिनम्।
सबान्धवं सनगरं पुनरारोपयद् दिवि॥ ६०

समारोप्य सुकेशिं च परिष्वज्य च शंकरम्।
प्रणम्य केशवं देवं वैराजं स्वगृहं गतः॥ ६१

एवं पुरा नारद भास्करेण
पुरं सुकेशेर्भुवि सन्निपातितम्।
दिवाकरो भूमितले भवेन
क्षिप्तस्तु दृष्ट्या न च संप्रदग्धः॥ ६२

आरोपितो भूमितलाद् भवेन
भूयोऽपि भानुः प्रतिभासनाय।
स्वयंभुवा चापि निशाचरेन्द्र-
स्त्वारोपितः खे सपुरः सबन्धुः॥ ६३

तब सुरपति इन्द्र, ब्रह्मा देवताओंके साथ सूर्यकी शान्तिके लिये महेश्वरके आवास-स्थान मन्दर पर्वतपर गये। वहाँ जाकर तथा देवेश शूलपाणि भगवान् शिवका दर्शन करनेके बाद भगवान् ब्रह्माजी भास्करके लिये उन्हें (शिवजीको) प्रसन्न कर उन्हें (सूर्यको) वाराणसीमें लाये॥ ५७—५८॥

फिर भगवान् शंकरने सूर्य भगवान्‌को हाथमें लेकर उनका नाम 'लोल' रख दिया और उन्हें पुनः उनके रथपर स्थापित कर दिया। दिनकरके अपने रथमें आरूढ़ हो जानेपर ब्रह्मा सुकेशीके पास गये एवं उसे भी पुनः बान्धवों और नगरसहित आकाशमें पूर्ववत् स्थापित कर दिया। सुकेशीको पुनः आकाशमें स्थापित करनेके बाद ब्रह्माजी शंकरका आलिङ्गन एवं केशवदेवको प्रणाम कर अपने वैराज नामक लोकमें चले गये। नारदजी! प्राचीन समयमें इस प्रकार सूर्यने सुकेशीके नगरको पृथ्वीपर गिराया एवं महादेवने भगवान् सूर्यको अपने तृतीय नेत्रकी अग्निसे दग्ध न कर केवल भूमितलपर गिरा ही दिया था। फिर शंकरने सूर्यको प्रतिभासित होनेके लिये भूमितलसे आकाशमें स्थित किया और ब्रह्माने निशाचरराजको उसके पुर और बन्धुओंके साथ आकाशमें फिर संस्थापित कर दिया॥ ५९—६३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १५॥

देवताओंका शयन, तिथियों और उनके अशून्यशयन आदि व्रतों एवं शिव-पूजनका वर्णन

नारद उवाच

यानेताम् भगवान् प्राह कामिभिः शशिनं प्रति।
आराधनाय देवाभ्यां हरीशाभ्यां वदस्व तान्॥ १

नारदजीने कहा—पुलस्त्यजी! आपने चन्द्रमाके प्रति कामियोंद्वारा वर्णित श्रीहरि और शंकरकी आराधनाके लिये जिन व्रतोंका उल्लेख किया है उनका वर्णन करें॥ १॥

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्व कामिभिः प्रोक्तान् व्रतान् पुण्यान् कलिप्रिय।
आराधनाय शर्वस्य केशवस्य च धीमतः॥ २

पुलस्त्यजी बोले—लोक-कल्याणके लिये कलहको भी इष्ट माननेवाले कलि (कलह)-प्रिय नारदजी! आप महादेव और बुद्धिमान् श्रीहरिकी आराधनाके लिये कामियोंद्वारा कहे गये पवित्र व्रतोंका वर्णन सुनें। जब

यदा त्वाषाढी संयाति व्रजते चोत्तरायणम्।
तदा स्वपिति देवेशो भोगिभोगे श्रियः पतिः॥ ३

प्रतिसुप्ते विभौ तस्मिन् देवगन्धर्वगुह्यकाः।
देवानां मातरश्चापि प्रसुप्ताश्चाप्यनुक्रमात्॥ ४

नारद उवाच

कथयस्व सुरादीनां शयने विधिमुत्तमम्।
सर्वमनुक्रमेणैव पुरस्कृत्य जनार्दनम्॥ ५

पुलस्त्य उवाच

मिथुनाभिगते सूर्ये शुक्लपक्षे तपोधन।
एकादश्यां जगत्स्वामी शयनं परिकल्पयेत्॥ ६

शेषाहिभोगपर्यङ्कं कृत्वा सम्पूज्य केशवम्।
कृत्वोपवीतकं चैव सम्यक्सम्पूज्य वै द्विजान्॥ ७

अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च द्वादश्यां प्रयतः शुचिः।
लब्ध्वा पीताम्बरधरः स्वस्तिनिद्रां समानयेत्॥ ८

त्रयोदश्यां ततः कामः स्वपते शयने शुभे।
कदम्बानां सुगन्धानां कुसुमैः परिकल्पिते॥ ९

चतुर्दश्यां ततो यक्षाः स्वपन्ति सुखशीतले।
सौवर्णपङ्कजकृते सुखास्तीर्णोपधानके॥ १०

पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्मसंस्तरे।
वैयाघ्रे च जटाभारे समुद्ग्रन्थ्यान्यचर्मणा॥ ११

ततो दिवाकरो राशिं संप्रयाति च कर्कटम्।
ततोऽमराणां रजनी भवति दक्षिणायनम्॥ १२

ब्रह्मा प्रतिपदि तथा नीलोत्पलमयेऽनघ।
तल्पे स्वपिति लोकानां दर्शयन् मार्गमुत्तमम्॥ १३
विश्वकर्मा द्वितीयायां तृतीयायां गिरेः सुता।
विनायकश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यामपि धर्मराट्॥ १४
षष्ठ्यां स्कन्दः प्रस्वपिति सप्तम्यां भगवान् रविः।
कात्यायनी तथाष्टम्यां नवम्यां कमलालया॥ १५
दशम्यां भुजगेन्द्राश्च स्वपन्ते वायुभोजनाः।
एकादश्यां तु कृष्णायां साध्या ब्रह्मन् स्वपन्ति च॥ १६

एष क्रमस्ते गदितो नभादौ स्वपने मुने।
स्वपत्सु तत्र देवेषु प्रावृट्कालः समाययौ॥ १७

आषाढ़की पूर्णिमा बीत जाती है एवं उत्तरायण चलता रहता है, तब लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु भोगिभोग (शेषशय्या) पर सो जाते हैं। उन विष्णुके सो जानेपर देवता, गन्धर्व, गुह्यक एवं देवमाताएँ भी क्रमशः सो जाती हैं॥ २—४॥

नारदने कहा — जनार्दनसे लेकर अनुक्रमसे देवता आदिके शयनकी सब उत्तम विधि मुझे बतलाइये॥ ५॥

पुलस्त्यजी बोले—तपोधन नारदजी! आषाढ़के शुक्लपक्षमें सूर्यके मिथुन राशिमें चले जानेपर एकादशी तिथिके दिन जगदीश्वर विष्णुकी शय्याकी परिकल्पना करनी चाहिये। उस शय्यापर शेषनागके शरीर और फणकी रचना कर यज्ञोपवीतयुक्त श्रीकेशव (की प्रतिमा) की पूजा कर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे संयम एवं पवित्रतापूर्वक रहते हुए स्वयं भी पीताम्बर धारण कर द्वादशी तिथिमें सुखपूर्वक उन्हें सुलाना चाहिये॥ ६—८॥

इसके बाद त्रयोदशी तिथिमें सुगन्धित कदम्बके पुष्पोंसे बनी पवित्र शय्यापर कामदेव शयन करते हैं। फिर चतुर्दशीको सुशीतल स्वर्णपङ्कजसे निर्मित सुखदायकरूपमें बिछाये गये एवं तकियेवाली शय्यापर यक्षलोग शयन करते हैं। पूर्णमासी तिथिको चर्मवस्त्र धारणकर उमानाथ शंकर एक-दूसरे चर्मद्वारा जटाभार बाँधकर व्याघ्र-चर्मकी शय्यापर सोते हैं। उसके बाद जब सूर्य कर्कराशिमें गमन करते हैं तब देवताओंके लिये रात्रिस्वरूप दक्षिणायनका आरम्भ हो जाता है॥ ९—१२॥

निष्पाप नारदजी! लोगोंको उत्तम मार्ग दिखलाते हुए ब्रह्माजी (श्रावण कृष्ण) प्रतिपदाको नीले कमलकी शय्यापर सो जाते हैं। विश्वकर्मा द्वितीयाको, पार्वतीजी तृतीयाको, गणेशजी चतुर्थीको, धर्मराज पञ्चमीको कार्तिकेयजी षष्ठीको, सूर्य भगवान् सप्तमीको, दुर्गादेवी अष्टमीको, लक्ष्मीजी नवमीको, वायु पीनेवाले श्रेष्ठ सर्प दशमीको और साध्यगण कृष्णपक्षकी एकादशीको सो जाते हैं॥ १३—१६॥

मुने! इस प्रकार हमने तुम्हें श्रावण आदिके महीनोंमें देवताओंके सोनेका क्रम बतलाया। देवोंके सो जानेपर वर्षाकालका आगमन हो जाता है। ऋषिश्रेष्ठ!

कङ्कुः समं बलाकाभिरारोहन्ति नभोत्तमान्।
वायसाश्चापि कुर्वन्ति नीडानि ऋषिपुंगव।
वायसाश्च स्वपन्त्येते ऋतौ गर्भभरालसाः ॥ १८
यस्यां तिथ्यां प्रस्वपिति विश्वकर्मा प्रजापतिः।
द्वितीया सा शुभा पुण्या अशून्यशयनोदिता ॥ १९
तस्यां तिथावर्च्य हरिं श्रीवत्साङ्कं चतुर्भुजम्।
पर्यङ्कस्थं समं लक्ष्म्या गन्धपुष्पादिभिर्मुने ॥ २०
ततो देवाय शय्यायां फलानि प्रक्षिपेत् क्रमात्।
सुरभीणि निवेद्येत्थं विज्ञाप्यो मधुसूदनः ॥ २१
यथा हि लक्ष्म्या न वियुज्यसे त्वं
त्रिविक्रमानन्त जगन्निवास।
तथा त्वशून्यं शयनं सदैव
अस्माकमेवेह तव प्रसादात् ॥ २२
यथा त्वशून्यं तव देव तल्पं
समं हि लक्ष्म्या वरदाच्युतेश।
सत्येन तेनामितवीर्य विष्णो
गार्हस्थ्यनाशो मम नास्तु देव ॥ २३
इत्युच्चार्य प्रणम्येशं प्रसाद्य च पुनः पुनः।
नक्तं भुञ्जीत देवर्षे तैलक्षारविवर्जितम् ॥ २४
द्वितीयेऽह्नि द्विजाग्र्याय फलान् दद्याद् विचक्षणः।
लक्ष्मीधरः प्रीयतां मे इत्युच्चार्य निवेदयेत् ॥ २५
अनेन तु विधानेन चातुर्मास्यव्रतं चरेत्।
यावद् वृश्चिकराशिस्थः प्रतिभाति दिवाकरः ॥ २६
ततो विबुध्यन्ति सुराः क्रमशः क्रमशो मुने।
तुलास्थेऽर्के हरिः कामः शिवः पश्चाद्विबुध्यते ॥ २७
तत्र दानं द्वितीयायां मूर्तिर्लक्ष्मीधरस्य तु।
सशय्यास्तरणोपेता यथा विभवमात्मनः ॥ २८
एष व्रतस्तु प्रथमः प्रोक्तस्तव महामुने।
यस्मिंश्चीर्णे वियोगस्तु न भवेदिह कस्यचित् ॥ २९
नभस्ये मासि च तथा या स्यात्कृष्णाष्टमी शुभा।
युक्ता मृगशिरेणैव सा तु कालाष्टमी स्मृता ॥ ३०
तस्यां सर्वेषु लिङ्गेषु तिथौ स्वपिति शंकरः।
वसते संनिधाने तु तत्र पूजाऽक्षया स्मृता ॥ ३१

(तब) बलाकाओं (बगुलोंके झुंडों) के साथ कङ्कु पक्षी ऊँचे पर्वतोंपर चढ़ जाते हैं तथा कौए घोंसले बनाने लगते हैं। इस ऋतुमें मादा कौएँ गर्भभारके कारण आलस्यसे सोती हैं। प्रजापति विश्वकर्मा जिस द्वितीया तिथिमें सोते हैं, वह कल्याणकारिणी पवित्र तिथि अशून्यशयना द्वितीया तिथि कही जाती है। मुने! उस तिथिमें लक्ष्मीके साथ पर्यङ्कस्थ श्रीवत्सनामक चिह्न धारण करनेवाले चतुर्भुज विष्णुभगवान्‌की गन्ध, पुष्पादिके द्वारा पूजाके हेतु शय्यापर क्रमशः फल तथा सुगन्ध-द्रव्य निवेदित कर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे कि — ॥ १७—२१ ॥

हे त्रिविक्रम! हे अनन्त! हे जगन्निवास! जिस प्रकार आप लक्ष्मीसे कभी अलग नहीं होते, उसी प्रकार आपकी कृपासे हमारी शय्या भी कभी शून्य न हो। हे देव! हे वरद! हे अच्युत! हे ईश! हे अमितवीर्यशाली विष्णो! आपकी शय्या लक्ष्मीसे शून्य नहीं होती, उसी सत्यके प्रभावसे हमारी भी गृहस्थीके नाशका अवसर न आये —पत्नीका वियोग न हो। देवर्षे! इस प्रकार स्तुति करनेके बाद भगवान् विष्णुको प्रणामद्वारा बार-बार प्रसन्नकर रात्रिमें तैल एवं नमकसे रहित भोजन करे। दूसरे दिन बुद्धिमान् व्यक्ति, भगवान् लक्ष्मीधर मेरे ऊपर प्रसन्न हों —यह वाक्य उच्चारण कर श्रेष्ठ ब्राह्मणको फलोंका दान दे ॥ २२—२५ ॥

जबतक सूर्य वृश्चिकराशिपर रहते हैं, तबतक इसी विधिसे चातुर्मास्य-व्रतका पालन किया जाना चाहिये। मुने! उसके बाद क्रमशः देवता जागते हैं। सूर्यके तुलाराशिमें स्थित होनेपर विष्णु जाग जाते हैं। उसके बाद काम और शिव जागते हैं। उसके पश्चात् द्वितीयाके दिन अपने विभवके अनुसार बिछौनेवाली शय्याके साथ लक्ष्मीधरकी मूर्तिका दान करे। महामुने! इस प्रकार मैंने आपको यह प्रथम व्रत बतलाया, जिसका आचरण करनेपर इस संसारमें किसीको वियोग नहीं होता ॥ २६—२९ ॥

इसी प्रकार भाद्रपद मासमें मृगशिरा नक्षत्रसे युक्त जो पवित्र कृष्णाष्टमी होती है उसे कालाष्टमी माना गया है। उस तिथिमें भगवान् शंकर समस्त लिङ्गोंमें सोते एवं उनके संनिधानमें निवास करते हैं। इस अवसरपर की गयी शंकरजीकी पूजा अक्षय मानी गयी है

तत्र स्नायीत वै विद्वान् गोमूत्रेण जलेन च।
स्नातः संपूजयेत् पुष्पैर्धत्तूरस्य त्रिलोचनम्॥ ३२

धूपं केसरनिर्यासं नैवेद्यं मधुसर्पिषी।
प्रीयतां मे विरूपाक्षस्त्वित्युच्चार्य च दक्षिणाम्।
विप्राय दद्यान्नैवेद्यं सहिरण्यं द्विजोत्तम॥ ३३

तद्वदाश्वयुजे मासि उपवासी जितेन्द्रियः।
नवम्यां गोमयस्नानं कुर्यात्पूजां तु पङ्कजैः।
धूपयेत् सर्जनिर्यासं नैवेद्यं मधुमोदकं॥ ३४

कृतोपवासस्त्वष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत्।
प्रीयतां मे हिरण्याक्षो दक्षिणा सतिला स्मृता॥ ३५

कार्तिके पयसा स्नानं करवीरेण चार्चनम्।
धूपं श्रीवासनिर्यासं नैवेद्यं मधुपायसम्॥ ३६

सनैवेद्यं च रजतं दातव्यं दानमग्रजे।
प्रीयतां भगवान् स्थाणुरिति वाच्यमनिष्ठुरम्॥ ३७

कृत्वोपवासमष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत्।
मासि मार्गशिरे स्नानं दध्नार्चा भद्रया स्मृता॥ ३८

धूपं श्रीवृक्षनिर्यासं नैवेद्यं मधुनोदनम्।
सनैवेद्या रक्तशालिर्दक्षिणा परिकीर्तिता।
नमोऽस्तु प्रीयतां शर्वस्त्विति वाच्यं च पण्डितैः॥ ३९

पौषे स्नानं च हविषा पूजा स्यात्तगरैः शुभैः।
धूपो मधुकनिर्यासो नैवेद्यं मधु शष्कुली॥ ४०

समुद्गा दक्षिणा प्रोक्ता प्रीणनाय जगद्गुरोः।
वाच्यं नमस्ते देवेश त्र्यम्बकेति प्रकीर्तयेत्॥ ४१

माघे कुशोदकस्नानं मृगमदेन चार्चनम्।
धूपः कदम्बनिर्यासो नैवेद्यं सतिलोदनम्॥ ४२

पयोभक्तं सनैवेद्यं सरुक्मं प्रतिपादयेत्।
प्रीयतां मे महादेव उमापतिरितीरयेत्॥ ४३

उस तिथिमें विद्वान् मनुष्यको चाहिये कि गोमूत्र और जलसे स्नान करे। स्नानके बाद धतूरके पुष्पोंसे शंकरकी पूजा करे। द्विजोत्तम! केसरके गोंदका धूप तथा मधु एवं घृतका नैवेद्य अर्पित करनेके बाद 'विरूपाक्ष (त्रिनेत्र) मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कहकर ब्राह्मणको दक्षिणा तथा सुवर्णके साथ नैवेद्य प्रदान करे॥ ३०—३३॥

इसी प्रकार आश्विन मासमें नवमी तिथिको इन्द्रियोंको वशमें करके उपवास रहकर गोबरसे स्नान करनेके पश्चात् कमलोंसे पूजन करे तथा सर्ज वृक्षके निर्यास (गोंद)-का धूप एवं मधु और मोदकका नैवेद्य अर्पित करे। अष्टमीको उपवास करके नवमीको स्नान करनेके बाद 'हिरण्याक्ष मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—यह कहते हुए तिलके साथ दक्षिणा प्रदान करे। कार्तिकमें दुग्धस्नान तथा कनेरके पुष्पसे पूजा करे और सरल वृक्षकी गोंदका धूप तथा मधु एवं खीर नैवेद्य अर्पितकर विनयपूर्वक 'भगवान् शिव मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—यह उच्चारण करते हुए ब्राह्मणको नैवेद्यके साथ रजतका दान करे॥ ३४—३७॥

मार्गशीर्ष (अगहन) मासमें अष्टमी तिथिको उपवास करके नवमी तिथिमें दधिसे स्नान करना चाहिये। इस समय 'भद्रा' औषधिके द्वारा पूजाका विधान है। पण्डित व्यक्ति श्रीवृक्षके गोंदका धूप एवं मधु और ओदनका नैवेद्य देकर 'शर्व (शिवजी)-को नमस्कार है, वे मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—यह कहते हुए रक्तशालि (लाल चावल)-की दक्षिणा प्रदान करे—ऐसा कहा गया है। पौष मासमें घृतका स्नान तथा सुन्दर तगर-पुष्पोंद्वारा पूजा करनी चाहिये। फिर महुएके वृक्षकी गोंदका धूप देकर मधु एवं पूड़ीका नैवेद्य अर्पित करे और 'हे देवेश त्र्यम्बक! आपको नमस्कार है'—यह कहते हुए शंकरजीकी प्रसन्नताके लिये मूँगसहित दक्षिणा प्रदान करे॥ ३८—४१॥

माघमासमें कुशके जलसे स्नान करे और मृगमद (कस्तूरीसे) अर्चन करे। उसके बाद कदम्ब-वृक्षके गोंदका धूप देकर तिल एवं ओदन (भात)-का नैवेद्य अर्पित करनेके पश्चात् 'महादेव उमापति मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—यह कहते हुए सुवर्णके साथ दूध एवं भातकी दक्षिणा

एवमेव समुद्दिष्टं षड्भिर्मासैस्तु पारणम्।
पारणान्ते त्रिनेत्रस्य स्नपनं कारयेत्क्रमात्॥ ४४

गोरोचनायाः सहिता गुडेन
देवं समालभ्य च पूजयेत।
प्रियस्व दीनोऽस्मि भवन्तमीश
मच्छोकनाशं प्रकुरुष्व योग्यम्॥ ४५

ततस्तु फाल्गुने मासि कृष्णाष्टम्यां यतव्रत।
उपवासं समुदितं कर्तव्यं द्विजसत्तम॥ ४६
द्वितीयेऽह्नि ततः स्नानं पञ्चगव्येन कारयेत्।
पूजयेत्कुन्दकुसुमैर्धूपयेच्चन्दनं त्वपि॥ ४७
नैवेद्यं सघृतं दद्यात् ताम्रपात्रे गुडोदनम्।
दक्षिणां च द्विजातिभ्यो नैवेद्यसहितां मुने।
वासोयुगं प्रीणयेच्च रुद्रमुच्चार्य नामतः॥ ४८
चैत्रे चोदुम्बरफलैः स्नानं मन्दारकार्चनम्।
गुग्गुलं महिषाख्यं च घृताक्तं धूपयेद् बुधः॥ ४९
समोदकं तथा सर्पिः प्रीणनं विनिवेदयेत्।
दक्षिणा च सनैवेद्यं मृगाजिनमुदाहृतम्॥ ५०
नाट्येश्वर नमस्तेऽस्तु इदमुच्चार्य नारद।
प्रीणनं देवनाथाय कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः॥ ५१
वैशाखे स्नानमुदितं सुगन्धकुसुमाम्भसा।
पूजनं शंकरस्योक्तं चूतमञ्जरिभिर्विभो॥ ५२

धूपं सर्जाज्ययुक्तं च नैवेद्यं सफलं घृतम्।
नामजप्यमपीशस्य कालघ्नेति विपश्चिता॥ ५३

जलकुम्भान् सनैवेद्यान् ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
सोपवीतान् सहान्नाद्यांस्तच्चित्तैस्तत्परायणैः॥ ५४

ज्येष्ठे स्नानं चामलकैः पूजार्ककुसुमैस्तथा।
धूपयेत्तत्त्रिनेत्रं च आयत्यां पुष्टिकारकम्॥ ५५

सक्तूंश्च सघृतान् देवे दध्नाक्तान् विनिवेदयेत्।
उपानद्युगलं छत्रं दानं दद्याच्च भक्तिमान्॥ ५६

नमस्ते भगनेत्रघ्न पूष्णो दशननाशन।
इदमुच्चारयेद्भक्त्या प्रीणनाय जगत्पतेः॥ ५७

प्रदान करनी चाहिये। इस प्रकार छः मासके बाद (प्रथम) पारणकी विधि कही गयी है। पारणके अन्तमें त्रिनेत्रधारी महादेवका क्रमसे स्नान-कार्य सम्पन्न कराये। गोरोचनके सहित गुडद्वारा महादेवकी प्रतिमाका अनुलेपन कर उसकी पूजा करे तथा इस प्रकार प्रार्थना करे कि—'हे ईश! मैं दीन हूँ तथा आपकी शरणमें हूँ; आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तथा मेरे दुःख-शोकका नाश करें'॥ ४२—४५॥

व्रतधारी द्विजश्रेष्ठ! इसके बाद फाल्गुन मासकी कृष्णाष्टमीको उपवास करना चाहिये। दूसरे दिन नवमीको पञ्चगव्यसे भगवान् शिवको स्नान कराये तथा कुन्दद्वारा अर्चनकर चन्दनका धूप और ताम्रपात्रमें घृतसहित गुड तथा ओदनका नैवेद्य प्रदान करे। उसके बाद 'रुद्र' शब्दका उच्चारण कर ब्राह्मणोंको नैवेद्यके साथ दक्षिणा तथा दो वस्त्र प्रदान कर महादेवको प्रसन्न करे। चैत्र मासमें गूलरके फलके जलसे स्नान कराये और मदारके फूलोंसे पूजा करे। उसके बाद बुद्धिमान् व्यक्ति घृतमिश्रित 'महिष' नामक गुग्गुलसे धूप देकर मोदकके साथ घृत उनकी प्रसन्नताके लिये अर्पित करे एवं 'नाट्येश्वर (भगवान्)! आपको नमस्कार है'—यह कहते हुए नैवेद्यसहित दक्षिणारूपमें मृगचर्म प्रदान करे। इस प्रकार पूर्ण श्रद्धायुक्त होकर महादेवजीको प्रसन्न करे॥ ४६—५१॥

नारदजी! वैशाख मासमें सुगन्धित पुष्पोंके जलसे स्नान तथा आमकी मञ्जरियोंसे शंकरके पूजनका विधान है। इस समय घी मिले सर्ज-वृक्षके गोंदका धूप तथा फलसहित घृतका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्तिको इस समय श्रीशिवके 'कालघ्न' नामका जप करना चाहिये और तल्लीनतापूर्वक ब्राह्मणको नैवेद्य, उपवीत (जनेऊ) एवं अन्न आदिके साथ पानीसे भरा घड़ा दक्षिणा देनी चाहिये। ज्येष्ठ मासमें आँवलेके जलसे स्नान कराये तथा मन्दारके पुष्पोंसे उनकी पूजा करे। उसके बाद त्रिनेत्रधारी पुष्टि-कर्ता श्रीशिवको धूपदानमें धूप दिखलाये। फिर घी तथा दही मिला सत्तूका नैवेद्य अर्पित करे। जगत्पतिके प्रीत्यर्थ 'हे पूषाके दाँत तोड़नेवाले, भगनेत्रघ्न शिव! आपको नमस्कार है'—यह कहकर भक्तिपूर्वक छत्र एवं उपानद्युगल (एक जोड़ा जूता) दक्षिणामें प्रदान करना चाहिये॥ ५२—५७॥

आषाढे स्नानमुदितं श्रीफलैरर्चनं तथा।
धत्तूरकुसुमैः शुक्लैर्धूपयेत् सिल्हकं तथा॥ ५८

नैवेद्याः सघृताः पूपा दक्षिणा सघृता यवाः।
नमस्ते दक्षयज्ञघ्न इदमुच्चैरुदीरयेत्॥ ५९

श्रावणे मृगभोज्येन स्नानं कृत्वाऽर्चयेद्धरम्।
श्रीवृक्षपत्रैः सफलैर्धूपं दद्यात् सधागुरुम्॥ ६०

नैवेद्यं सघृतं दद्याद् दधि पूपान् समोदकान्।
दध्योदनं सकृसरं माषधानाः सशष्कुलीः॥ ६१

दक्षिणां श्वेतवृषभं धेनुं च कपिलां शुभाम्
कनकं रक्तवसनं प्रदद्याद् ब्राह्मणाय हि।
गङ्गाधरेति जप्तव्यं नाम शंभोश्च पण्डितैः॥ ६२

आषाढ़ मासमें बिल्वके जलसे भगवान् शिवको स्नान कराये तथा धतूरके उजले पुष्पोंसे उनकी पूजा करे, सिल्हक (शिलारस वृक्षका गोंद)-का धूप दे और घृतके सहित मालपूएका नैवेद्य अर्पित करे एवं—हे दक्षके यज्ञका विनाश करनेवाले शंकर! आपको नमस्कार है—यह ऊँचे स्वरसे उच्चारण करे श्रावण मासमें मृगभोज्य (जटामासी)-के जलसे स्नान कराकर फलयुक्त बिल्वपत्रोंसे महादेवकी पूजा करे तथा अगुरुका धूप दे। उसके बाद घृतयुक्त पूप, मोदक, दधि, दध्योदन, उड़दकी दाल, भुना हुआ जौ एवं कचौड़ीका नैवेद्य अर्पित करनेके बाद बुद्धिमान् व्यक्ति ब्राह्मणको श्वेत बैल, शुभा कपिला (काली) गौ, स्वर्ण एवं रक्तवस्त्रकी दक्षिणा दे पण्डितोंको चाहिये कि शिवजीके 'गङ्गाधर' इस नामका जप करें॥ ५८—६२॥

अमीभिः षड्भिरपरैर्मासैः पारणमुत्तमम्।
एवं संवत्सरं पूर्णं सम्पूज्य वृषभध्वजम्।
अक्षयाँल्लभते कामान् महेश्वरवचो यथा॥ ६३

इदमुक्तं व्रतं पुण्यं सर्वाक्षयकरं शुभम्।
स्वयं रुद्रेण देवर्षे तत्तथा न तदन्यथा॥ ६४

इन दूसरे छः महीनोंके अनन्तर द्वितीय पारण होता है। इस प्रकार एक वर्षतक वृषभध्वज (शिवजी) का पूजन कर महेश्वरके वचनानुसार मनुष्य अक्षय कामनाओंको प्राप्त करता है। स्वयं भगवान् शंकरने यह कल्याणकारी पवित्र एवं सभी पुण्योंको अक्षय करनेवाला व्रत बतलाया था यह जैसा कहा गया है वैसा ही है यह कभी व्यर्थ नहीं जाता॥ ६३-६४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १६॥

देवाङ्गोंसे तरुओंकी उत्पत्ति, अखण्डव्रत-विधान, विष्णु-पूजा, विष्णुपञ्जरस्तोत्र और महिषका प्रसङ्ग

पुलस्त्य उवाच

मासि चाश्वयुजे ब्रह्मन् यदा पद्मं जगत्पतेः।
नाभ्या निर्याति हि तदा देवेष्वेतान्यथोऽभवन्॥ १

कंदर्पस्य कराग्रे तु कदम्बश्चारुदर्शनः।
तेन तस्य परा प्रीतिः कदम्बेन विवर्द्धते॥ २

यक्षाणामधिपस्यापि मणिभद्रस्य नारद।
वटवृक्षः समभवत् तस्मिंस्तस्य रतिः सदा॥ ३

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! आश्विन मासमें जब जगत्पति (विष्णु) की नाभिसे कमल निकला, तब अन्य देवताओंसे भी ये वस्तुएँ उत्पन्न हुईं कामदेवके करतलके अग्रभागमें सुन्दर कदम्ब वृक्ष उत्पन्न हुआ। इसीलिये कदम्बसे उसे बड़ी प्रीति रहती है। नारदजी यक्षोंके राजा मणिभद्रसे वटवृक्ष उत्पन्न हुआ, अतः उन्हें उसके प्रति विशेष प्रेम है

महेश्वरस्य हृदये धत्तूरविटपः शुभः।
संजातः स च शर्वस्य रतिकृत् तस्य नित्यशः॥ ४

भगवान् शंकरके हृदयपर सुन्दर धतूर-वृक्ष उत्पन्न हुआ, अतः वह शिवजीको सदा प्यारा है। १—४॥

ब्रह्मणो मध्यतो देहाज्जातो मरकतप्रभः।
खदिरः कण्टकी श्रेयानभवद्विश्वकर्मणः॥ ५

गिरिजायाः करतले कुन्दगुल्मस्त्वजायत।
गणाधिपस्य कुम्भस्थो राजते सिन्धुवारकः॥ ६

यमस्य दक्षिणे पार्श्वे पालाशो दक्षिणोत्तरे।
कृष्णोदुम्बरको रुद्राज्जातः क्षोभकरो वृषः॥ ७

स्कन्दस्य बन्धुजीवस्तु रवेरश्वत्थ एव च।
कात्यायन्याः शमी जाता बिल्वो लक्ष्म्याः करेऽभवत्॥ ८

ब्रह्माजीके शरीरके बीचसे मरकतमणिके समान खैरवृक्षकी उत्पत्ति हुई और विश्वकर्माके शरीरसे सुन्दर कटैया उत्पन्न हुआ। गिरिनन्दिनी पार्वतीके करतलपर कुन्द लता उत्पन्न हुई और गणपतिके कुम्भ-देशसे सेंदुवारवृक्ष उत्पन्न हुआ। यमराजकी दाहिनी बगलसे पलाश तथा बायीं बगलसे गूलरका वृक्ष उत्पन्न हुआ। रुद्रसे उद्विग्न करनेवाला वृष (ओषधि-विशेष) की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार स्कन्दसे बन्धुजीव, सूर्यसे पीपल, कात्यायनी दुर्गासे शमी और लक्ष्मीजीके हाथसे बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ॥ ५—८॥

नागानां पतये ब्रह्मञ्छरस्तम्बो व्यजायत।
वासुकेर्विस्तृते पुच्छे पृष्ठे दूर्वा सितासिता॥ ९

साध्यानां हृदये जातो वृक्षो हरितचन्दनः।
एवं जातेषु सर्वेषु तेन तत्र रतिर्भवेत्॥ १०

नारदजी! इसी प्रकार शेषनागसे सरपत, वासुकिनागके पुच्छ और पीठपर श्वेत एवं कृष्ण दूर्वा उत्पन्न हुई। साध्योंके हृदयमें हरिचन्दनवृक्ष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उत्पन्न होनेसे उन सभी वृक्षोंमें उन-उन देवताओंका प्रेम होता है।

तत्र रम्ये शुभे काले या शुक्लैकादशी भवेत्।
तस्यां सम्पूजयेद् विष्णुं तेन खण्डोऽस्य पूर्यते॥ ११

पुष्पैः पत्रैः फलैर्वापि गन्धवर्णरसान्वितैः।
ओषधीभिश्च मुख्याभिर्यावत्स्याच्छरदागमः॥ १२

उस रमणीय सुन्दर समयमें शुक्लपक्षकी जो एकादशी तिथि होती है, उसमें भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। इससे पूजाकी न्यूनता दूर हो जाती है। शरत्कालकी उपस्थितितक गन्ध, वर्ण और रसयुक्त पत्र, पुष्प एवं फलों तथा मुख्य ओषधियोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये॥ ९—१२॥

घृतं तिला व्रीहियवा हिरण्यकनकादि यत्।
मणिमुक्ताप्रवालानि वस्त्राणि विविधानि च॥ १३
रसानि स्वादुकट्वम्लकषायलवणानि च।
तिक्तानि च निवेद्यानि तान्यखण्डानि यानि हि॥ १४
तत्पूजायां प्रदातव्यं केशवाय महात्मने।
यदा संवत्सरं पूर्णमखण्डं भवते गृहे॥ १५
कृतोपवासो देवर्षे द्वितीयेऽहनि संयतः।
स्नानेन तेन स्नायीत येनाखण्डं हि वत्सरम्॥ १६

घी, तिल, चावल, जौ, चाँदी, सोना, मणि, मुक्ता, मूँगा तथा नाना प्रकारके वस्त्र, स्वादु, कटु, अम्ल, कषाय, लवण और तिक्त रस आदि वस्तुओंको अखण्डितरूपसे महात्मा केशवको पूजाके लिये अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार पूजा करते हुए वर्षको बितानेपर घरमें पूर्ण समृद्धि होती है। देवर्षे! जितेन्द्रिय होकर दूसरे दिन उपवास करके जिससे वर्ष अखण्डित रहे इसलिये इस प्रकार स्नान करे—॥ १३—१६॥

सिद्धार्थकैस्तिलैर्वापि तेनैवोद्वर्तनं स्मृतम्।
हविषा पद्मनाभस्य स्नानमेव समाचरेत्।
होमे तदेव गदितं दाने शक्तिर्निजा द्विज॥ १७

सफेद सरसों या तिलके द्वारा उबटन तैयार करना चाहिये ऐसा कहा गया है। उससे या घीसे भगवान् विष्णुको स्नान कराना चाहिये। नारदजी! होममें भी घीका ही विधान है और दानमें भी यथाशक्ति उसीकी विधि है

पूजयेताथ कुसुमैः पादादारभ्य केशवम्।
धूपयेद् विविधं धूपं येन स्याद् वत्सरं परम्॥ १८

हिरण्यरत्नवासोभिः पूजयेत जगद्गुरुम्।
रागखाण्डवचोष्याणि हविष्याणि निवेदयेत्॥ १९

ततः संपूज्य देवेशं पद्मनाभं जगद्गुरुम्।
विज्ञापयेन्मुनिश्रेष्ठ मन्त्रेणानेन सुव्रत॥ २०

नमोऽस्तु ते पद्मनाभ पद्माधव महाद्युते।
धर्मार्थकाममोक्षाणि त्वखण्डानि भवन्तु मे॥ २१

विकासिपद्मपत्राक्ष यथाऽखण्डोऽसि सर्वतः।
तेन सत्येन धर्माद्या अखण्डाः सन्तु केशव॥ २२

एवं संवत्सरं पूर्णं सोपवासो जितेन्द्रियः।
अखण्डं पारयेद् ब्रह्मन् व्रतं वै सर्ववस्तुषु॥ २३

अस्मिंश्चीर्णे व्रते व्यक्तं परितुष्यन्ति देवताः।
धर्मार्थकाममोक्षाद्यास्त्वक्षयाः सम्भवन्ति हि॥ २४

एतानि ते मयोक्तानि व्रतान्युक्तानि कामिभिः।
प्रवक्ष्याम्यधुना स्तोत्रं पञ्जरं शुभम्॥ २५

नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम्।
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः॥ २६

गदां कौमोदकीं गृह्य पद्मनाभामितद्युते।
याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः॥ २७

हलमादाय सौनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम।
प्रतीच्यां रक्ष मे विष्णो भवन्तं शरणं गतः॥ २८

मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम्।
उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः॥ २९

शार्ङ्गमादाय च धनुरस्त्रं नारायणं हरे।
नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरणं गतः॥ ३०

फिर पुष्पोंद्वारा चरणसे आरम्भकर (सिरतक) सभी अङ्गोंमें केशवकी पूजा करे एवं नाना प्रकारके धूपोंसे उन्हें सुवासित करे, जिससे संवत्सर पूर्ण हो। सुवर्ण, रत्नों और वस्त्रोंद्वारा (उन) जगद्गुरुका पूजन करे तथा राग, खाँड, चोष्य एवं हविष्योंका नैवेद्य अर्पित करे। सुव्रत नारदजी! देवेश जगद्गुरु विष्णुकी पूजा करनेके बाद इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—॥ १७—२०॥

हे महाकान्तिवाले पद्मनाभ लक्ष्मीपते! आपको प्रणाम है। (आपकी कृपाके प्रसादसे) हमारे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अखण्ड हों। विकसित कमलपत्रके समान नेत्रवाले! आप जिस प्रकार चारों ओरसे अखण्ड हैं, उसी सत्यके प्रभावसे मेरे भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पुरुषार्थ) अखण्डित रहें। ब्रह्मन्! इस प्रकार वर्षभर उपवास और जितेन्द्रिय रहते हुए सभी वस्तुओंके द्वारा व्रतको अखण्डरूपसे पूरा करे। इस व्रतके करनेपर देवता निश्चितरूपसे प्रसन्न होते हैं एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सभी पूर्ण होते हैं॥ २१—२४॥

नारद! यहाँतक मैंने तुमसे सकाम व्रतोंका वर्णन किया है। अब मैं कल्याणकारी विष्णुपञ्जर[1] स्तोत्रको कहूँगा। (वह इस प्रकार है—) गोविन्द! आपको नमस्कार है। आप सुदर्शनचक्र लेकर मेरी पूर्व दिशामें रक्षा करें। विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। अमितद्युते पद्मनाभ! आप कौमोदकी गदा धारणकर मेरी दक्षिण दिशामें रक्षा करें। विष्णो! मैं आपके शरण हूँ। पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। आप सौनन्द नामक हल लेकर मेरी पश्चिम दिशामें रक्षा करें। विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ॥ २५—२८॥

पुण्डरीकाक्ष! आप 'शातन' नामके विनाशकारी मुसलको लेकर मेरी उत्तर दिशामें रक्षा करें। जगन्नाथ! मैं आपकी शरणमें हूँ। हरे! शार्ङ्गधनुष एवं नारायणास्त्र लेकर मेरी ईशानकोणमें रक्षा करें। रक्षोघ्न! आपको नमस्कार है, मैं आपके शरण हूँ।

१ यह विष्णुपञ्जरस्तोत्र बहुत प्रसिद्ध है तथा स्वल्पान्तरसे अग्निपुराण अ० १३, ब्रह्मवैवर्त ३।११ विष्णुधर्मोत्तर १।११५ आदिमें प्राप्त होता है। वामनपुराणमें तो यह दो बार आया है। एक यहाँ तथा आगे ७४वें अध्यायमें।

पाञ्चजन्यं महाशङ्खमन्तर्बोध्यं च पङ्कजम्।
प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां यज्ञसूकर॥ ३१

चर्म सूर्यशतं गृह्य खड्गं चन्द्रमसं तथा।
नैर्ऋत्यां मां च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेसरिन्॥ ३२
वैजयन्तीं प्रगृह्य त्वं श्रीवत्सं कण्ठभूषणम्।
वायव्यां रक्ष मां देव अश्वशीर्ष नमोऽस्तु ते॥ ३३

वैनतेयं समारुह्य अन्तरिक्षे जनार्दन।
मां त्वं रक्षाजित सदा नमस्ते त्वपराजित॥ ३४

विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले।
अकूपार नमस्तुभ्यं महामोह नमोऽस्तु ते॥ ३५

करशीर्षाङ्घ्रिपर्वेषु तथाऽष्टबाहुपञ्जरम्।
कृत्वा रक्षस्व मां देव नमस्ते पुरुषोत्तम॥ ३६
एतदुक्तं भगवता वैष्णवं पञ्जरं महत्।
पुरा रक्षार्थमीशेन कात्यायन्या द्विजोत्तम॥ ३७

नाशयामास सा यत्र दानवं महिषासुरम्।
नमरं रक्तबीजं च तथान्यान् सुरकण्टकान्॥ ३८

नारद उवाच

काऽसौ कात्यायनी नाम या जघ्ने महिषासुरम्।
नमरं रक्तबीजं च तथाऽन्यान् सुरकण्टकान्॥ ३९
कश्चासौ महिषो नाम कुले जातश्च कस्य सः।
कश्चासौ रक्तबीजाख्यो नमरः कस्य चात्मजः।
एतद्विस्तरतस्तात यथावद् वक्तुमर्हसि॥ ४०

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां संप्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्।
सर्वदा वरदा दुर्गा येयं कात्यायनी मुने॥ ४१

पुराऽसुरवरौ रौद्रौ जगत्क्षोभकरावुभौ।
रम्भश्चैव करम्भश्च द्वावास्तां सुमहाबलौ॥ ४२

तावपुत्रौ च देवर्षे पुत्रार्थं तेपतुस्तपः।
बहून् वर्षगणान् दैत्यौ स्थितौ पञ्चनदे जले॥ ४३

तत्रैको जलमध्यस्थो द्वितीयोऽप्यग्निपञ्चमी।
करम्भश्चैव रम्भश्च यक्षं मालवटं प्रति॥ ४४

यज्ञवाराह विष्णो! आप पाञ्चजन्य नामक विशाल शङ्ख तथा अन्तर्बोध्य पङ्कजको लेकर मेरी अग्निकोणमें रक्षा करें। दिव्यमूर्ति नृसिंह, सूर्यशत नामकी ढाल तथा चन्द्रहास नामकी तलवार लेकर मेरी नैर्ऋत्यकोणमें रक्षा करें॥ २९—३२॥

आप वैजयन्ती नामकी माला तथा श्रीवत्स नामका कण्ठभूषण धारणकर मेरी वायव्यकोणमें रक्षा करें, देव हयग्रीव! आपको नमस्कार है। जनार्दन! वैनतेय (गरुड़)-पर आरूढ़ होकर आप मेरी अन्तरिक्षमें रक्षा करें। अजित! अपराजित! आपको सदा नमस्कार है। महाकच्छप! आप विशालाक्षपर चढ़कर मेरी रसातलमें रक्षा करें। महामोह! आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम! आप आठ हाथोंसे पञ्जर बनाकर हाथ, सिर एवं सन्धि-स्थलों (जोड़ों) आदिमें मेरी रक्षा करें। देव! आपको नमस्कार है॥ ३३—३६॥

द्विजोत्तम! प्राचीन कालमें भगवान् शंकरने कात्यायनी (दुर्गा)-की रक्षाके लिये इस महान् विष्णुपञ्जर-स्तोत्रको उस स्थानपर कहा था, जहाँ उन्होंने महिषासुर, नमर, रक्तबीज एवं अन्यान्य देव-शत्रुओंका नाश किया था॥ ३७-३८॥

नारदजीने पूछा—ऋषे! महिषासुर, नमर, रक्तबीज तथा अन्यान्य सुर-कण्टकोंका वध करनेवाली ये भगवती कात्यायनी कौन हैं? तात! यह महिष कौन है? तथा वह किसके कुलमें उत्पन्न हुआ था? यह रक्तबीज कौन है? तथा नमर किसका पुत्र है? आप इसका यथार्थ रूपसे विस्तारपूर्वक वर्णन करें॥ ३९-४०॥

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! सुनिये, मैं उस पापनाशक कथाको कहता हूँ। मुने! सब कुछ देनेवाली वरदायिनी भगवती दुर्गा ही ये कात्यायनी हैं। प्राचीन-कालमें संसारमें उथल-पुथल मचानेवाले रम्भ और करम्भ नामके दो भयंकर और महाबलवान् असुर-श्रेष्ठ थे। देवर्षे! वे दोनों पुत्रहीन थे। इन दोनों दैत्योंने पुत्रके लिये पञ्चनदके जलमें रहकर बहुत वर्षोंतक तप किया। मालवट यक्षके प्रति एकाग्र होकर करम्भ और रम्भ—इन दोनोंमेंसे एक जलमें स्थित होकर और दूसरा पञ्चाग्निके मध्य बैठकर तप कर रहा था॥ ४१—४४॥

एकं निमग्नं सलिले ग्राहरूपेण वासवः।
चरणाभ्यां समादाय निजघान यथेच्छया॥ ४५
ततो भ्रातरि नष्टे च रम्भः कोपपरिप्लुतः।
वह्नौ स्वशीर्षं संक्षिप्य होतुमैच्छन् महाबलः॥ ४६
ततः प्रगृह्य केशेषु खड्गं च रविसप्रभम्।
छेत्तुकामो निजं शीर्षं वह्निना प्रतिषेधितः॥ ४७
उक्तश्च मा दैत्यवर नाशयात्मानमात्मना।
दुस्तरा परवध्याऽपि स्ववध्याऽप्यतिदुस्तरा॥ ४८
यच्च प्रार्थयसे वीर तद्ददामि यथेप्सितम्।
मा म्रियस्व मृतस्येह नष्टा भवति वै कथा॥ ४९
ततोऽब्रवीद् वचो रम्भो वरं चेन्मे ददासि हि।
त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्मे त्वत्तेजसाऽधिकः॥ ५०
अजेयो दैवतैः सर्वैः पुंभिर्दैत्यैश्च पावक।
महाबलो वायुरिव कामरूपी कृतास्त्रवित्॥ ५१
तं प्रोवाच कविर्ब्रह्मन् बाढमेवं भविष्यति।
यस्यां चित्तं समालम्बि करिष्यसि ततः सुतः॥ ५२
इत्येवमुक्तो देवेन वह्निना दानवो ययौ।
द्रष्टुं मालवटं यक्षं यक्षैश्च परिवारितम्॥ ५३
तेषां पद्मनिधिस्तत्र वसते नान्यचेतनः।
गजाश्च महिषाश्चाश्वा गावोऽजाविपरिप्लुताः॥ ५४
तान् दृष्ट्वैव तदा चक्रे भावं दानवपार्थिवः।
महिष्यां रूपयुक्तायां त्रिहायण्यां तपोधन॥ ५५
सा समागाच्च दैत्येन्द्रं कामयन्ती तरस्विनी।
स चापि गमनं चक्रे भवितव्यप्रचोदितः॥ ५६
तस्यां समभवद् गर्भस्तां प्रगृह्याथ दानवः।
पातालं प्रविवेशाथ ततः स्वभवनं गतः॥ ५७
दृष्टश्च दानवैः सर्वैः परित्यक्तश्च बन्धुभिः।
अकार्यकारकेत्येवं भूयो मालवटं गतः॥ ५८

इन्द्रने ग्राहका रूप धारणकर इनमेंसे एकको जलमें निमग्न होनेपर पैर पकड़कर इच्छानुसार दूर ले जाकर मार डाला। उसके बाद भाईके नष्ट हो जानेपर क्रोधयुक्त महाबलशाली रम्भने अपने सिरको काटकर अग्निमें हवन करना चाहा। वह अपना केश पकड़कर हाथमें सूर्यके समान चमकनेवाली तलवार लेकर अपना सिर काटना ही चाहता था कि अग्निने उसे रोक दिया और कहा—दैत्यवर! तुम स्वयं अपना नाश मत करो। दूसरेका वध तो पाप होता ही है, आत्महत्या भी भयानक पाप है॥ ४५—४८॥

वीर! तुम जो माँगोगे, तुम्हारी इच्छाके अनुसार वह मैं तुम्हें दूँगा। तुम मरो मत, इस संसारमें मृत व्यक्तिकी कथा नष्ट हो जाती है। इसपर रम्भने कहा—यदि आप वर देते हैं तो यह वर दीजिये कि मुझे आपसे भी अधिक तेजस्वी त्रैलोक्यविजयी पुत्र उत्पन्न हो। अग्निदेव! समस्त देवताओं तथा मानवों और दैत्योंसे भी वह अजेय हो। वह वायुके समान महाबलवान् तथा कामरूपी एवं सर्वास्त्रवेत्ता हो। नारदजी! इसपर अग्निने उससे कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा। जिस स्त्रीमें तुम्हारा चित्त लग जायगा उसीसे तुम पुत्र उत्पन्न करोगे॥ ४९—५२॥

अग्निदेवके ऐसा कहनेपर रम्भ यक्षोंसे घिरा हुआ मालवट यक्षका दर्शन करने गया। वहाँ उन यक्षोंकी एक पद्म नामकी निधि अनन्य-चित्त होकर निवास करती थी। वहाँ बहुत-से बकरे, भेंड़े, घोड़े, भैंसे तथा हाथी और गाय-बैल थे। तपोधन! दानवराजने उन्हें देखकर तीन वर्षोंवाली रूपवती एक महिषीमें प्रेम प्रकट किया (अर्थात् आसक्त हुआ)। कामपरायण होकर वह महिषी शीघ्र दैत्येन्द्रके समीप आ गयी तब भवितव्यतासे प्रेरित उसने (रम्भने) भी उस महिषीके साथ संगत किया॥ ५३—५६॥

उसे गर्भ रह गया। उसके बाद उस महिषीको लेकर दानव पातालमें प्रविष्ट हुआ और अपने घर चला गया। उसके दानव-बन्धुओंने उसे देख एवं 'अकार्यकारक' जानकर उसका परित्याग कर दिया। फिर वह पुनः मालवटके निकट गया। वह सुन्दरी महिषी भी उसी

साऽपि तेनैव पतिना महिषी चारुदर्शना।
समं जगाम तत् पुण्यं यक्षमण्डलमुत्तमम्॥ ५९
ततस्तु वसतस्तस्य श्यामा सा सुषुवे मुने।
अजीजनत् सुतं शुभ्रं महिषं कामरूपिणम्॥ ६०
एतामृतुमतीं जातां महिषोऽन्यो ददर्श ह।
सा चाभ्यगाद् दितिवरं रक्षन्ती शीलमात्मनः॥ ६१
समुन्नामितनासं च महिषं वीक्ष्य दानवः।
खड्गं निष्कृष्य तरसा महिषं समुपाद्रवत्॥ ६२
तेनापि दैत्यस्तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां हृदि ताडितः।
निर्भिन्नहृदयो भूमौ निपपात ममार च॥ ६३
मृते भर्तरि सा श्यामा यक्षाणां शरणं गता।
रक्षिता गुह्यकैः साध्वी निवार्य महिषं ततः॥ ६४
ततो निवारितो यक्षैर्हयारिर्मदनातुरः।
निपपात सरो दिव्यं ततो दैत्योऽभवन्मृतः॥ ६५
नमरो नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः।
यक्षानाश्रित्य तस्थौ च कालयन् श्वापदान् मुने॥ ६६
स च दैत्येश्वरो यक्षैर्मालवटपुरस्सरैः।
चितामारोपितः सा च श्यामा तं चारुहत् पतिम्॥ ६७
ततोऽग्निमध्यादुत्तस्थौ पुरुषो रौद्रदर्शनः।
व्यद्रावयत् स तान् यक्षान् खड्गपाणिर्भयंकरः॥ ६८
ततो हतास्तु महिषाः सर्व एव महात्मना।
ऋते संरक्षितारं हि महिषं रम्भनन्दनम्॥ ६९
स नामतः स्मृतो दैत्यो रक्तबीजो महामुने।
योऽजयत् सर्वतो देवान् सेन्द्ररुद्रार्कमारुतान्॥ ७०
एवं प्रभावा दनुपुंगवास्ते
तेजोऽधिकस्तत्र बभौ हयारिः।
राज्येऽभिषिक्तश्च महाऽसुरेन्द्रै-
र्विनिर्जितैः शम्बरतारकाद्यैः॥ ७१
अशक्नुवद्भिः सहितैश्च देवैः
सलोकपालैः सहुताशभास्करैः।
स्थानानि त्यक्तानि शशीन्द्रभास्करै-
र्धर्मश्च दूरे प्रतियोजितश्च॥ ७२

पतिके साथ उस पवित्र और उत्तम यक्षमण्डलमें गयी। मुने! उसके वहाँ निवास करते समय उस महिषीने सन्तान उत्पन्न की। उसने एक शुभ्र तथा इच्छाके अनुकूल रूप धारण करनेवाले महिष-पुत्रको जन्म दिया॥ ५७—६०॥

उसके पुनः ऋतुमती होनेपर एक दूसरे महिषने उसे देखा। वह अपने शीलकी रक्षा करती हुई दैत्यश्रेष्ठके निकट गयी। नाकको ऊपर उठाये उस महिषको देखकर दानवने खड्ग निकालकर महिषपर वेगसे आक्रमण किया। उस महिषने भी तीक्ष्ण शृङ्गोंसे दैत्यके हृदयमें प्रहार किया। वह दैत्य हृदय फट जानेसे भूमिपर गिर पड़ा और मर गया। पतिके मर जानेपर वह महिषी यक्षोंकी शरणमें गयी। उसके बाद गुह्यकोंने महिषको हटाकर साध्वी महिषीकी रक्षा की॥ ६१—६४॥

यक्षोंद्वारा हटाया गया कामातुर हयारि (महिष) एक दिव्य सरोवरमें गिर पड़ा। उसके बाद वह मरकर एक दैत्य हो गया। मुने! वन्य पशुओंको मारते हुए यक्षोंके आश्रयमें रहनेवाला महान् बली तथा पराक्रमी वह दैत्य 'नमर' नामसे विख्यात हुआ। फिर मालवट आदि यक्षोंने उस हयारि दैत्येश्वरको चितापर रखा। वह श्यामा भी पतिके साथ चितापर चढ़ गयी। तब अग्निके मध्यसे हाथमें खड्ग लिये विकराल रूपवाला भयंकर पुरुष प्रकट हुआ। उसने सभी यक्षोंको भगा दिया॥ ६५—६८॥

और फिर उस बलवान् दैत्यने रम्भनन्दन महिषको छोड़कर सारे महिषोंको मार डाला। महामुने! वह दैत्य रक्तबीज नामसे विख्यात हुआ। उसने इन्द्र, रुद्र, सूर्य एवं मारुत आदिके साथ देवोंको जीत लिया। यद्यपि वे सभी दैत्य इस प्रकारके प्रभावसे युक्त थे, फिर भी उनमें महिष अधिक तेजस्वी था। उसके द्वारा विजित शम्बर, तारक आदि महान् असुरोंने उसका राज्याभिषेक किया। लोकपालोंसहित अग्नि, सूर्य आदि देवोंके द्वारा एक साथ मिलकर जब वह जीता नहीं गया तब चन्द्र, इन्द्र एवं सूर्यने अपना-अपना स्थान छोड़ दिया तथा धर्मको भी दूर हटा दिया गया॥ ६९—७२॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

महिषासुरका अतिचार, देवोंकी तेजोराशिसे भगवती कात्यायनीका प्रादुर्भाव, विन्ध्यप्रसंग, दुर्गाकी अवस्थिति

पुलस्त्य उवाच

ततस्तु देवा महिषेण निर्जिताः
स्थानानि संत्यज्य सवाहनायुधाः।
जग्मुः पुरस्कृत्य पितामहं ते
द्रष्टुं तदा चक्रधरं श्रियः पतिम्॥ १

गत्वा त्वपश्यंश्च मिथः सुरोत्तमौ
स्थितौ खगेन्द्रासनशङ्करौ हि।
दृष्ट्वा प्रणम्यैव च सिद्धिसाधकौ
न्यवेदयंस्तन्महिषादिचेष्टितम्॥ २

प्रभोऽश्विसूर्येन्द्वनिलाग्निवेधसां
जलेशशक्रादिषु चाधिकारान्।
आक्रम्य नाकात्तु निराकृता वयं
कृतावनिस्था महिषासुरेण॥ ३

एतद् भवन्तौ शरणागतानां
श्रुत्वा वचो ब्रूत हितं सुराणाम्।
न चेद् व्रजामोऽद्य रसातलं हि
संकाल्यमाना युधि दानवेन॥ ४

पुलस्त्यजी बोले— इसके बाद महिषद्वारा पराजित देवता अपने-अपने स्थानको छोड़कर पितामहको आगे कर चक्रधारी लक्ष्मीपति विष्णुके दर्शनार्थ अपने वाहनों और आयुधोंको लेकर विष्णुलोक चले गये। वहाँ जाकर उन लोगोंने गरुडवाहन विष्णु एवं शङ्कर—इन दोनों देवश्रेष्ठोंको एक साथ बैठे देखा। उन दोनों सिद्धि-साधकोंको देखनेके बाद उन लोगोंने उन्हें प्रणामकर उनसे महिषासुरकी दुश्चेष्टा बतलायी। वे बोले—प्रभो! महिषासुरने अश्विनीकुमार, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र आदि सभी देवताओंके अधिकारोंको छीनकर स्वर्गसे निकाल दिया है और अब हमलोग भूलोकमें रहनेको विवश हो गये हैं। हम शरणमें आये देवताओंकी यह बात सुनकर आप दोनों हमारे हितकी बात बतलायें; अन्यथा दानवद्वारा युद्धमें मारे जा रहे हमलोग अब रसातलमें चले जायँगे॥ १-४॥

इत्थं मुरारिः सह शङ्करेण
श्रुत्वा वचो विप्लुतचेतसस्तान्।
दृष्ट्वाथ चक्रे सहसैव कोपं
कालाग्निकल्पो हरिरव्ययात्मा॥ ५

ततोऽनुकोपान्मधुसूदनस्य
सशङ्करस्यापि पितामहस्य।
तथैव शक्रादिषु दैवतेषु
महर्द्धि तेजो वदनाद् विनिःसृतम्॥ ६

तच्चैकतां पर्वतकूटसन्निभं
जगाम तेजः प्रवराश्रमे मुने।
कात्यायनस्याप्रतिमस्य तेन
महर्षिणा तेज उपाकृतं च॥ ७

तेनर्षिसृष्टेन च तेजसा वृतं
ज्वलत्प्रकाशार्कसहस्रतुल्यम्।
तस्माच्च जाता तरलायताक्षी
कात्यायनी योगविशुद्धदेहा॥ ८

शिवजीके साथ ही विष्णुभगवान्‌ने (भी) उनके इस प्रकारके वचनको सुना तथा दुःखसे व्याकुल चित्तवाले उन देवताओंको देखा तो उनका क्रोध कालाग्निके समान प्रज्वलित हो गया। उसके बाद मधु नामक राक्षसको मारनेवाले विष्णु, शङ्कर, पितामह (ब्रह्मा) तथा इन्द्र आदि देवताओंके क्रोध करनेपर उन सबके मुखसे महान् तेज प्रकट हुआ। मुने! फिर वह तेजोराशि कात्यायन ऋषिके अनुपम आश्रममें पर्वतशृङ्गके समान एकत्र हो गयी। उन महर्षिने भी उस तेजकी और अभिवृद्धि की। उन महर्षिद्वारा उत्पन्न किये गये तेजसे आवृत वह तेज हजारों सूर्योंके समान प्रदीप्त हो गया। उसके योगसे विशुद्ध शरीरवाली एवं चञ्चल तथा विशाल नेत्रोंवाली कात्यायनी देवी प्रकट हो गयीं॥ ५—८॥

माहेश्वराद् वक्त्रमथो बभूव
नेत्रत्रयं पावकतेजसा च।
याम्येन केशा हरितेजसा च
भुजास्तथाष्टादश संप्रजज्ञिरे॥ ९
सौम्येन युग्मं स्तनयोः सुसंहतं
मध्यं तथैन्द्रेण च तेजसाऽभवत्।
ऊरू च जङ्घे च नितम्बसंयुते
जाते जलेशस्य तु तेजसा हि॥ १०
पादौ च लोकप्रपितामहस्य
पद्माभिकोशप्रतिमौ बभूवतुः।
दिवाकराणामपि तेजसाऽङ्गुलीः
कराङ्गुलीश्च वसुतेजसैव॥ ११
प्रजापतीनां दशनाश्च तेजसा
याक्षेण नासा श्रवणौ च मारुतात्।
साध्येन च भ्रूयुगलं सुकान्तिमत्
कंदर्पचापासनसन्निभं बभौ॥ १२

महादेवजीके तेजसे कात्यायनीका मुख बन गया और अग्निके तेजसे उनके तीन नेत्र प्रकट हो गये। इसी प्रकार यमके तेजसे केश तथा हरिके तेजसे उनकी अठारह भुजाएँ, चन्द्रमाके तेजसे उनके सटे हुए स्तनयुगल, इन्द्रके तेजसे मध्यभाग तथा वरुणके तेजसे ऊरु, जङ्घाएँ एवं नितम्बोंकी उत्पत्ति हुई। लोकपितामह ब्रह्माके तेजसे कमलकोशके समान उनके दोनों चरण, आदित्योंके तेजसे पैरोंकी अङ्गुलियाँ एवं वसुओंके तेजसे उनके हाथोंकी अङ्गुलियाँ उत्पन्न हुईं। प्रजापतियोंके तेजसे उनके दाँत, यक्षोंके तेजसे नाक, वायुके तेजसे दोनों कान, साध्यके तेजसे कामदेवके धनुषके समान उनकी दोनों भौंहें प्रकट हुईं—॥ ९—१२॥

तथर्षितेजोत्तममुत्तमं मह-
न्नाम्ना पृथिव्यामभवत् प्रसिद्धम्।
कात्यायनीत्येव सदा बभौ सा
नाम्ना च तेनैव जगत्प्रसिद्धा॥ १३
ददौ त्रिशूलं वरदस्त्रिशूली
चक्रं मुरारिर्वरुणश्च शङ्खम्।
शक्तिं हुताशः श्वसनश्च चापं
तूणौ तथाक्षय्यशरौ विवस्वान्॥ १४
वज्रं तथेन्द्रः सह घण्टया च
यमोऽथ दण्डं धनदो गदां च।
ब्रह्माऽक्षमालां सकमण्डलुं च
कालोऽसिमुग्रं सह चर्मणा च॥ १५
हारं च सोमः सह चामरेण
मालां समुद्रो हिमवान् मृगेन्द्रम्।
चूडामणिं कुण्डलमर्द्धचन्द्रं
प्रादात् कुठारं वसु शिल्पकर्त्ता॥ १६
गन्धर्वराजो रजतानुलिप्तं
पानस्य पूर्णं सदृशं च भाजनम्।
भुजंगहारं भुजगेश्वरोऽपि
अम्लानपुष्पामृतवः स्रजं च॥ १७

इस प्रकार महर्षियोंका उत्तमोत्तम तथा महान् तेज पृथ्वीपर 'कात्यायनी' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ, तब वे उसी नामसे विश्वमें प्रसिद्ध हुईं। वरदानी शङ्करजीने उन्हें त्रिशूल, मुरके मारनेवाले श्रीकृष्णने चक्र, वरुणने शङ्ख, अग्निने शक्ति, वायुने धनुष तथा सूर्यने अक्षय बाणोंवाले दो तूणीर (तरकस) प्रदान किये। इन्द्रने घण्टासहित वज्र, यमने दण्ड, कुबेरने गदा, ब्रह्माने कमण्डलुके साथ रुद्राक्षकी माला तथा कालने उन्हें ढालसहित प्रचण्ड खड्ग प्रदान किया। चन्द्रमाने चँवरके साथ हार, समुद्रने माला, हिमालयने सिंह, विश्वकर्माने चूडामणि, कुण्डल, अर्धचन्द्र, कुठार तथा पर्याप्त ऐश्वर्य[1] प्रदान किया॥ १३—१६॥

गन्धर्वराजने उनके अनुरूप रजतका पूर्ण पान (मद्य) पात्र, नागराजने भुजङ्गहार तथा ऋतुओंने कभी न कुम्हिलानेवाले पुष्पोंकी माला प्रदान की। उसके बाद

१. सभी पुराणों तथा सप्तशतीकी व्याख्याओंमें विश्वकर्माद्वारा ही आभूषण बनाने—देनेकी चर्चा है। कुछ प्रतियोंके अर्थमें वसुद्वारा देनेकी बात छप गयी है, जो गलत है।

तदाऽतितुष्टा सुरसत्तमानां
अट्टाट्टहासं मुमुचे त्रिनेत्रा।
तां तुष्टुवुर्देववराः सहेन्द्राः
सविष्णुरुद्रेन्दुनिलाग्निभास्कराः ॥ १८
नमोऽस्तु देव्यै सुरपूजितायै
या संस्थिता योगविशुद्धदेहा।
निद्रास्वरूपेण महीं वितत्य
तृष्णा त्रपा क्षुद् भयदाऽथ कान्तिः ॥ १९
श्रद्धा स्मृतिः पुष्टिरथो क्षमा च
छाया च शक्तिः कमलालया च।
वृत्तिर्दया भ्रान्तिरथेह माया
नमोऽस्तु देव्यै भवरूपिकायै ॥ २०

ततः स्तुता देववरैर्मृगेन्द्र-
मारुह्य देवी प्रगताऽवनीध्रम्।
विन्ध्यं महापर्वतमुच्चशृङ्गं
चकार यं निम्नतरं त्वगस्त्यः ॥ २१

नारद उवाच

किमर्थमद्रिं भगवानगस्त्य-
स्तं निम्नशृङ्गं कृतवान् महर्षिः।
कस्मै कृते केन च कारणेन
एतद् वदस्वामलसत्त्ववृत्ते ॥ २२

पुलस्त्य उवाच

पुरा हि विन्ध्येन दिवाकरस्य
गतिर्निरुद्धा गगनेचरस्य।
रविस्ततः कुम्भभवं समेत्य
होमावसाने वचनं बभाषे ॥ २३
समागतोऽहं द्विज दूरतस्त्वां
कुरुष्व मामुद्धरणं मुनीन्द्र।
ददस्व दानं मम यन्मनीषितं
चरामि येन त्रिदिवेषु निर्वृतः ॥ २४
इत्थं दिवाकरवचो गुणसंप्रयोगि
श्रुत्वा तदा कलशजो वचनं बभाषे।
दानं ददामि तव यन्मनसस्त्वभीष्टं
नार्थी प्रयाति विमुखो मम कश्चिदेव ॥ २५
श्रुत्वा वचोऽमृतमयं कलशोद्भवस्य
प्राह प्रभुः करतले विनिधाय मूर्ध्नि।
एषोऽद्य मे गिरिवरः प्ररुणद्धि मार्गं
विन्ध्यस्य निम्नकरणे भगवन् यतस्व ॥ २६

श्रेष्ठ देवताओंके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होकर त्रिनेत्रा (कात्यायनी)-ने उच्च अट्टहास किया। इन्द्र, विष्णु, रुद्र, चन्द्रमा, वायु, अग्नि तथा सूर्य आदि श्रेष्ठ देव उनकी स्तुति करने लगे—योगसे विशुद्ध देहवाली देवोंसे पूजित देवीको नमस्कार है। वे निद्रारूपसे पृथ्वीमें व्याप्त हैं, वे ही तृष्णा, त्रपा, क्षुधा, भयदा, कान्ति, श्रद्धा, स्मृति, पुष्टि, क्षमा, छाया, शक्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, दया, भ्रान्ति तथा माया हैं। ऐसी कल्याणमयी देवीको नमस्कार है ॥ १७—२० ॥

फिर देववरोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर वे देवी सिंहपर आरूढ़ होकर विन्ध्य नामके उस ऊँचे शृङ्गवाले महान् पर्वतपर गयीं, जिसे अगस्त्य मुनिने अति निम्न कर दिया था ॥ २१ ॥

नारदजीने पूछा— शुद्धात्मन् (पुलस्त्यजी)! आप यह बतलायें कि भगवान् अगस्त्यमहर्षिने उस पर्वतको किसके लिये एवं किस कारणसे निम्न शृङ्गवाला कर दिया ? ॥ २२ ॥

पुलस्त्यजीने कहा— प्राचीनकालमें विन्ध्य-पर्वतने (अपने ऊँचे शिखरोंसे) आकाशचारी सूर्यकी गतिको अवरुद्ध कर दिया था। तब सूर्यने महर्षि अगस्त्यके पास जाकर होमके अन्तमें यह वचन कहा—द्विज! मैं बहुत दूरसे आपके पास आया हूँ। मुनिश्रेष्ठ! आप मेरा उद्धार करें। मुझे अभीष्ट प्रदान करें, जिससे मैं निश्चिन्त होकर आकाशमें विचरण कर सकूँ। इस प्रकार सूर्यके नम्र वचनोंको सुनकर अगस्त्यजी बोले—मैं आपकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगा। मेरे पाससे कोई भी याचक विमुख होकर नहीं जाता। अगस्त्यजीकी अमृतमयी वाणी सुन करके सिरपर दोनों हाथ जोड़कर सूर्यने कहा—भगवन्! यह पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य आज मेरा मार्ग रोक रहा है, अतः आप इसे नीचा करनेका प्रयत्न करें ॥ २३—२६ ॥

इति रविवचनादथाह कुम्भजन्मा
कृतमिति विद्धि मया हि नीचशृङ्गम्।
तव किरणजितो भविष्यते महीध्रो
मम चरणसमाश्रितस्य का व्यथा ते॥ २७
इत्येवमुक्त्वा कलशोद्भवस्तु
सूर्यं हि संस्तूय विनम्य भक्त्या।
जगाम संत्यज्य हि दण्डकं हि
विन्ध्याचलं वृद्धवपुर्महर्षिः॥ २८
गत्वा वचः प्राह मुनिर्महीध्रं
यास्ये महातीर्थवरं सुपुण्यम्।
वृद्धोऽस्म्यशक्तश्च तवाधिरोढुं
तस्माद् भवान् नीचतरोऽस्तु सद्यः॥ २९
इत्येवमुक्तो मुनिसत्तमेन
स नीचशृङ्गस्त्वभवन्महीध्रः।
समाक्रमच्चापि महर्षिमुख्यः
प्रोल्लङ्घ्य विन्ध्यं त्विदमाह शैलम्॥ ३०

सूर्यकी बात सुनकर अगस्त्यजीने कहा—सूर्यदेव! विन्ध्यको आप मेरे द्वारा नीचा किया हुआ ही समझें। यह पर्वत आपकी किरणोंसे पराजित हो जायगा। मेरे चरणोंके आश्रय लेनेपर आपको अब व्यथा कैसी? वृद्ध शरीरवाले महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कहकर विनम्रतापूर्वक भक्तिसे सूर्यकी स्तुति करनेके बाद दण्डकको छोड़कर विन्ध्यपर्वतके निकट चले गये। वहाँ जाकर मुनिने पर्वतसे कहा—पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य! मैं अत्यन्त पवित्र महातीर्थको जा रहा हूँ। मैं वृद्ध होनेसे तुम्हारे ऊपर चढ़नेमें असमर्थ हूँ, अतः तुम तत्काल नीचा हो जाओ। मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यके ऐसा कहनेपर विन्ध्य पर्वत निम्न शिखरवाला हो गया। तब महर्षिश्रेष्ठ (अगस्त्यजी) ने विन्ध्यपर्वतपर चढ़कर विन्ध्यको पार कर लिया और तब उससे यह कहा॥ २७—३०॥

यावन्न भूयो निजयामजामि
महाश्रमं धौतवपुः सुतीर्थात्।
त्वया न तावत्त्विह वर्धितव्यं
नो चेद् विशप्स्येऽहमवज्ञया ते॥ ३१
इत्येवमुक्त्वा भगवाञ्जगाम
दिशं स याम्यां सहसान्तरिक्षम्।
आक्रम्य तस्थौ स हि तां तदाशां
काले व्रजाम्यत्र यदा मुनीन्द्रः॥ ३२
तत्राश्रमं रम्यतरं हि कृत्वा
संशुद्धजाम्बूनदतोरणान्तम्।
तत्राथ निक्षिप्य विदर्भपुत्रीं
स्वमाश्रमं सौम्यमुपाजगाम॥ ३३
ऋतावृतौ पर्वकालेषु नित्यं
तमम्बरे ह्याश्रममावसत् सः।
शेषं च कालं स हि दण्डकस्थ-
स्तपश्चचारामितकान्तिमान् मुनिः॥ ३४

मैं जबतक पवित्र तीर्थसे स्नान कर पुनः अपने महान् आश्रममें न लौटूँ, तबतक तुम्हें नहीं बढ़ना चाहिये; अन्यथा अवज्ञा करनेके कारण मैं तुम्हें घोर शाप दे दूँगा। 'मैं उचित समयपर फिर आऊँगा'—ऐसा कहकर भगवान् अगस्त्य सहसा दक्षिण दिशाको ओर चले गये तथा वहीं रह गये। मुनिने वहाँ विशुद्ध स्वर्णिम तोरणोंवाले अति रमणीय आश्रमकी रचना की एवं उसमें विदर्भपुत्री लोपामुद्राको रखकर स्वयं अपने आश्रमको चले गये। अत्यन्त प्रकाशमान मुनि (शरद्‌से वसन्ततक) विभिन्न ऋतुओंमें पर्व (चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा तिथियों तथा रवि-संक्रान्ति, सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण) के समय नित्य आकाशमें और शेष समय दण्डकवनमें अपने आश्रममें निवासकर तप करने लगे॥ ३१—३४॥

विन्ध्योऽपि दृष्ट्वा गगने महाश्रमं
वृद्धिं न यात्येव भयान्महर्षेः।
नासौ निवृत्तेति मतिं विधाय
स संस्थितो नीचतराग्रशृङ्गः॥ ३५

विन्ध्यपर्वत भी आकाशमें महान् आश्रमको देखकर महर्षिके भयसे नहीं बढ़ा। वे नहीं लौटे हैं—ऐसा समझकर वह अपना शिखर नीचा किये हुए अब भी वैसे ही स्थित है। हे महर्षे! इस प्रकार अगस्त्यने महान्

एवं त्वगस्त्येन महाचलेन्द्रः
स नीचशृङ्गो हि कृतो महर्षे।
तस्योर्ध्वशृङ्गे मुनिसंस्तुता सा
दुर्गा स्थिता दानवनाशनार्थम्॥ ३६
देवाश्च सिद्धाश्च महोरगाश्च
विद्याधरा भूतगणाश्च सर्वे।
सर्वाप्सरोभिः प्रतिरामयन्तः
कात्यायनीं तस्थुरपेतशोकाः॥ ३७

पर्वतराज विन्ध्यको नीचा कर दिया। उसीके शिखरके ऊपर मुनियोंद्वारा संस्तुता दुर्गादेवी दानवोंके विनाशके लिये स्थित हुईं और देवता, सिद्ध, महानाग, अप्सराओंके सहित विद्याधर एवं समस्त भूतगण इनके बदले कात्यायनीदेवीको प्रसन्न करते हुए निःशोक होकर उनके निकट रहने लगे॥ ३५—३७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १८॥

चण्ड-मुण्डद्वारा महिषासुरसे भगवती कात्यायनीके सौन्दर्यका वर्णन, महिषासुरका संदेश और युद्धोपक्रम

पुलस्त्य उवाच

ततस्तु तां तत्र तदा वसन्तीं
कात्यायनीं शैलवरस्य शृङ्गे।
अपश्यतां दानवसत्तमौ द्वौ
चण्डश्च मुण्डश्च तपस्विनीं ताम्॥ १
दृष्ट्वैव शैलादवतीर्य शीघ्र-
माजग्मतुः स्वभवनं सुरारी।
दृष्टोचतुस्तौ महिषासुरस्य
दूताविदं चण्डमुण्डौ दितीशम्॥ २
स्वस्थो भवान् किं त्वसुरेन्द्र साम्प्रत-
मागच्छ पश्याम च तत्र विन्ध्यम्।
तत्रास्ति देवी सुमहानुभावा
कन्या सुरूपा सुरसुन्दरीणाम्॥ ३
जितास्तया तोयधराऽलकैर्हि
जितः शशाङ्को वदनेन तन्व्या।
नेत्रैस्त्रिभिस्त्रीणि हुताशनानि
जितानि कण्ठेन जितस्तु शङ्खः॥ ४

पुलस्त्यजीने **कहा**—उसके बाद उस श्रेष्ठ पर्वतशिखरपर निवास करनेवाली उन तपस्विनी कात्यायनी (दुर्गा)-को चण्ड और मुण्ड नामके दो श्रेष्ठ दानवोंने देखा और देखते ही पर्वतसे उतरकर वे दोनों असुर अपने घर चले गये। फिर उन दोनों दूतोंने दैत्यराज महिषासुरके निकट जाकर कहा—'असुरेन्द्र! आप इस समय स्वस्थ तो हैं? आइये, हमलोग विन्ध्यपर्वतपर चलकर देखें; वहाँ सुर-सुन्दरियोंमें अत्यन्त सुन्दर, श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त एक कन्या है। उस तन्वी (सूक्ष्म देहवाली)-ने केशपाशके द्वारा मेघोंको, मुखके द्वारा चन्द्रमाको, तीन नेत्रोंद्वारा तीनों (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय) अग्नियोंको और कण्ठके द्वारा शङ्खको जीत लिया है (उसकी शोभा और तेजसे ये फीके पड़ गये हैं)'॥ १—४॥

स्तनौ सुवृत्तावथ मग्नचूचुकौ
स्थितौ विजित्यैव गजस्य कुम्भौ।
त्वां सर्वजेतारमिति प्रतर्क्य
कुचौ स्मरेणैव कृतौ सुदुर्गौ॥ ५

'उसके मग्न चूचुकवाले वृत्त (सुडौल गोले)-स्तन हाथीके गण्डस्थलोंको मात कर रहे हैं। मालूम होता है कि कामदेवने अपनेको सर्वविजयी समझकर आपको परास्त करनेके लिये उसके दो कुचरूपी दो

पीनाः सशस्त्राः परिघोपमाश्च
भुजास्तथाऽष्टादश भान्ति तस्याः।
पराक्रमं वै भवतो विदित्वा
कामेन यन्त्रा इव ते कृतास्तु॥ ६
मध्यं च तस्यास्त्रिवलीतरङ्गं
विभाति दैत्येन्द्र सुरोमराजि।
भयातुरारोहणकातरस्य
कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्॥ ७
सा रोमराजी सुतरां हि तस्या
विराजते पीनकुचावलग्ना।
आरोहणे त्वद्भयकातरस्य
स्वेदप्रवाहोऽसुर मन्मथस्य॥ ८

नाभिर्गभीरा सुतरां विभाति
प्रदक्षिणाऽस्याः परिवर्तमाना।
तस्यैव लावण्यगृहस्य मुद्रा
कंदर्पराज्ञा स्वयमेव दत्ता॥ ९
विभाति रम्यं जघनं मृगाक्ष्याः
समंततो मेखलयाऽवजुष्टम्।
मन्याम तं कामनराधिपस्य
प्राकारगुप्तं नगरं सुदुर्गम्॥ १०
वृत्तावरोमौ च मृदू कुमार्याः
शोभेत ऊरू समनुत्तमौ हि।
आवासमार्गौ मकरध्वजेन
जनस्य देशाविव संनिविष्टौ॥ ११
तज्जानुयुग्मं महिषासुरेन्द्र
अर्द्धोन्नतं भाति तथैव तस्याः।
सृष्ट्वा विधाता हि निरूपणाय
श्रान्तस्तथा हस्ततले ददौ हि॥ १२

जङ्घे सुवृत्तेऽपि च रोमहीने
शोभेत दैत्येश्वर ते तदीये।
आक्रम्य लोकानिव निर्मिताया
रूपार्जितस्यैव कृताध्वरी हि॥ १३

पादौ च तस्याः कमलोदराभौ
प्रयत्नतस्तौ हि कृतौ विधात्रा।
आज्ञापि ताभ्यां नखरत्नमाला
नक्षत्रमाला गगने यथैव॥ १४

दुर्गोंकी रचना की है। शस्त्रसहित उसकी मोटी परिघके समान अठारह भुजाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं, मानो आपका पराक्रम जानकर कामदेवने यन्त्रके समान उसका निर्माण किया है। दैत्येन्द्र! त्रिवलीसे तरङ्गायमान उसकी कमर इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो वह भयार्त तथा अधीर कामदेवका आरोहण करनेके लिये सोपान हो। असुर! उसके पीन कुचोंतककी वह रोमावलि इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो आरोहण करनेमें आपके भयसे कातर कामदेवका स्वेद-प्रवाह हो॥ ५—८॥

'उसकी गम्भीर दक्षिणावर्त नाभि ऐसी लगती है, मानो कंदर्पने स्वयं ही उस सौन्दर्यगृहके ऊपर मुहर लगा दी है। मेखलासे चारों ओर आवेष्टित उस मृगनयनीका जघन बहुत सुन्दर सुशोभित हो रहा है। उसे हम राजा कामका प्राकारसे (चहारदीवारियोंसे) गुप्त (सुरक्षित) दुर्गम नगर मानते हैं। उस कुमारीके वृत्ताकार रोमरहित, कोमल तथा उत्तम ऊरु इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानो कामदेवने मनुष्योंके निवासके लिये दो देशोंका संनिवेश किया है। महिषासुरेन्द्र! उसके अर्द्धोन्नत जानुयुगल इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, मानो उसकी रचना करनेके बाद थके विधाताने निरूपण करनेके लिये अपना करतल ही स्थापित कर दिया हो'॥ ९—१२॥

'दैत्येश्वर! उसकी सुवृत्त तथा रोमहीन दोनों जंघाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं, मानो (दिव्य) निर्मित की गयी नायिकाके रूपके द्वारा सभी लोग पराजित कर दिये गये हैं। विधाताने प्रयत्नपूर्वक उसके कमलोदरके समान कान्तिवाले दोनों पैरोंका निर्माण किया है। उन्होंने कात्यायनीके उन चरणोंके नखरूपी रत्नशृङ्खलाको इस प्रकार प्रकाशित किया है, मानो वह आकाशमें नक्षत्रोंकी माला हो।

एवंस्वरूपा दनुनाथ कन्या
महोग्रशस्त्राणि च धारयन्ती।
दृष्ट्वा यथेष्टं न च विद्म का सा
सुताऽथवा कस्यचिदेव बाला॥ १५

तद्भूतले रत्नमनुत्तमं स्थितं
स्वर्गं परित्यज्य महाऽसुरेन्द्र।
गत्वाथ विन्ध्यं स्वयमेव पश्य
कुरुष्व यत् तेऽभिमतं क्षमं च॥ १६

श्रुत्वैव ताभ्यां महिषासुरस्तु
देव्याः प्रवृत्तिं कमनीयरूपाम्।
चक्रे मतिं नात्र विचारमस्ति
इत्येवमुक्त्वा महिषोऽपि नास्ति॥ १७

प्रागेव पुंसस्तु शुभाशुभानि
स्थाने विधात्रा प्रतिपादितानि।
यस्मिन् यथा यानि यतोऽथ विप्र
स नीयते वा व्रजति स्वयं वा॥ १८

ततोनु मुण्डं नमरं सचण्डं
बिडालनेत्रं सपिशङ्गबाष्कलम्।
उग्रायुधं चिक्षुररक्तबीजौ
समादिदेशाथ महासुरेन्द्रः॥ १९

आहत्य भेरी रणकर्कशास्ते
स्वर्गं परित्यज्य महीधरं तु।
आगम्य मूले शिबिरं निवेश्य
तस्थुश्च सज्जा दनुनन्दनास्ते॥ २०

ततस्तु दैत्यो महिषासुरेण
सम्प्रेषितो दानवयूथपालः।
मयस्य पुत्रो रिपुसैन्यमर्दी
स दुन्दुभिर्दुन्दुभिनिःस्वनस्तु॥ २१

अभ्येत्य देवीं गगनस्थितोऽपि
स दुन्दुभिर्वाक्यमुवाच विप्र।
कुमारि दूतोऽस्मि महासुरस्य
रम्भात्मजस्याप्रतिमस्य युद्धे॥ २२

कात्यायनी दुन्दुभिमभ्युवाच
एह्येहि दैत्येन्द्र भयं विमुच्य।
वाक्यं च यद्रम्भसुतो बभाषे
वदस्व तत्सत्यमपेतमोहः॥ २३

दैत्येश्वर! वह कन्या बड़े और भयानक शस्त्रोंको धारण किये हुए है। उसे भलीभाँति देखकर भी हम यह न जान सके कि वह कौन है तथा किसकी पुत्री या क्या है। महासुरेन्द्र! वह स्वर्गका परित्याग कर भूतलमें स्थित श्रेष्ठरत्न है। आप स्वयं विन्ध्यपर्वतपर जाकर उसे देखें और फिर जो आपकी इच्छा एवं सामर्थ्य हो वह करें'॥ १३—१६॥

उन दोनों दूतोंसे कात्यायनीके आकर्षक सौन्दर्यकी बात सुनकर महिषने 'इस विषयमें कुछ भी विचारना नहीं है'—यह कहकर जानेका निश्चय किया। इस प्रकार मानो महिषका अन्त ही आ गया। मनुष्यके शुभाशुभको ब्रह्माने पहलेसे ही निर्धारित कर रखा है। जिस व्यक्तिको जहाँपर या जहाँसे जिस प्रकार जो कुछ भी शुभाशुभ परिणाम होनेवाला होता है, वह वहाँ ले जाया जाता है या स्वयं चला जाता है। फिर महिषने मुण्ड, नमर, चण्ड, बिडालनेत्र, पिशङ्गके साथ बाष्कल, उग्रायुध, चिक्षुर और रक्तबीजको आज्ञा दी। वे सभी दानव रणकर्कश भेरियाँ बजाकर स्वर्गको छोड़कर उस पर्वतके निकट आ गये और उसके मूलमें सेनाके दलोंका पड़ाव डालकर युद्धके लिये तैयार हो गये॥ १७—२०॥

तत्पश्चात् महिषासुरने देवीके पास धौंसेकी ध्वनिकी भाँति उच्च और गम्भीर ध्वनिमें बोलनेवाले तथा शत्रुओंकी सेनाओंके समूहोंका मर्दन करनेवाले दानवोंके सेनापति मयपुत्र दुन्दुभिको भेजा। ब्राह्मणदेवता नारदजी! दुन्दुभिने देवीके पास पहुँचकर आकाशमें स्थित होकर उनसे यह वाक्य कहा—हे कुमारि! मैं महान् असुर रम्भके पुत्र महिषका दूत हूँ। वह युद्धमें अद्वितीय वीर है। इसपर कात्यायनीने दुन्दुभिसे कहा—दैत्येन्द्र! तुम निडर होकर इधर आओ और रम्भपुत्रने जो वचन कहा है, उसे स्वस्थ होकर ठीक-ठीक कहो

तथोक्तवाक्ये दितिजः शिवाया-
स्त्यक्त्वाम्बरं भूमितले निषण्णः।
सुखोपविष्टः परमासने च
रम्भात्मजेनोक्तमुवाच वाक्यम्॥ २४

दुर्गाके इस प्रकार कहनेपर वह दैत्य आकाशसे उतरकर पृथ्वीपर आया और सुन्दर आसनपर सुखपूर्वक बैठकर महिषके वचनोंको इस प्रकार कहने लगा॥ २१—२४॥

दुन्दुभिरुवाच

एवं समाज्ञापयते सुरारि-
स्त्वां देवि दैत्यो महिषासुरस्तु।
यथामरा हीनबलाः पृथिव्यां
भ्रमन्ति युद्धे विजिता मया ते॥ २५
स्वर्गं मही वायुपथाश्च वश्याः
पातालमन्ये च महेश्वराद्याः।
इन्द्रोऽस्मि रुद्रोऽस्मि दिवाकरोऽस्मि
सर्वेषु लोकेष्वधिपोऽस्मि बाले॥ २६
न सोऽस्ति नाके न महीतले वा
रसातले देवभटोऽसुरो वा।
यो मां हि संग्राममुपेयिवांस्तु
भूतो न यक्षो न जिजीविषुर्यः॥ २७
यान्येव रत्नानि महीतले वा
स्वर्गेऽपि पातालतलेऽथ मुग्धे।
सर्वाणि मामद्य समागतानि
वीर्यार्जितानीह विशालनेत्रे॥ २८
स्त्रीरत्नमग्र्यं भवती च कन्या
प्राप्तोऽस्मि शैलं तव कारणेन।
तस्माद् भजस्वेह जगत्पतिं मां
पतिस्तवार्होऽस्मि विभुः प्रभुश्च॥ २९

दुन्दुभि बोला—देवि! असुर महिषने तुम्हें यह अवगत कराया है कि मेरे द्वारा युद्धमें पराजित हुए निर्बल देवतालोग पृथ्वीपर भ्रमण कर रहे हैं। हे बाले! स्वर्ग, पृथ्वी, वायुमार्ग, पाताल और शङ्कर आदि देवगण सभी मेरे वशमें हैं। मैं ही इन्द्र, रुद्र एवं सूर्य हूँ तथा सभी लोकोंका स्वामी हूँ। स्वर्ग, पृथ्वी या रसातलमें जीवित रहनेकी इच्छावाला ऐसा कोई देव, असुर, भूत या यक्ष योद्धा नहीं हुआ, जो युद्धमें मेरे सामने आ सकता हो। (और भी सुनो) पृथ्वी, स्वर्ग या पातालमें जितने भी रत्न हैं, उन सबको मैंने अपने पराक्रमसे जीत लिया है और अब वे मेरे पास आ गये हैं। अतः अबोध बालिके! तुम कन्या हो और स्त्रीरत्नोंमें श्रेष्ठ हो। मैं तुम्हारे लिये इस पर्वतपर आया हूँ। इसलिये मुझ जगत्पतिको तुम स्वीकार करो। मैं तुम्हारे योग्य सर्वथा समर्थ पति हूँ॥ २५—२९॥

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ता दितिजेन दुर्गा
कात्यायनी प्राह मयस्य पुत्रम्।
सत्यं प्रभुर्दानवराट् पृथिव्यां
सत्यं च युद्धे विजितामराश्च॥ ३०
किं त्वस्ति दैत्येश कुलेऽस्मदीये
धर्मो हि शुल्काख्य इति प्रसिद्धः।
तं चेत् प्रदद्यान्महिषो ममाद्य
भजामि सत्येन पतिं हयारिम्॥ ३१
श्रुत्वाऽथ वाक्यं मयजोऽब्रवीच्च
शुल्कं वदस्वाम्बुजपत्रनेत्रे।
दद्यात्स्वमूर्धानमपि त्वदर्थे
किं नाम शुल्कं यदिहैव लभ्यम्॥ ३२

पुलस्त्यजीने कहा—उस दैत्यके ऐसा कहनेपर दुर्गाजीने दुन्दुभिसे कहा—(असुरदूत!) यह सत्य है कि दानवराट् महिष पृथ्वीमें समर्थ है एवं यह भी सत्य है कि उसने युद्धमें देवताओंको जीत लिया है; किंतु दैत्येश! हमारे कुलमें (विवाहके विषयमें) शुल्क नामकी एक प्रथा प्रचलित है। यदि महिष आज मुझे वह प्रदान करे तो सत्यरूपमें (सचमुच) मैं उस (महिष)-को पतिरूपमें स्वीकार कर लूँगी। इस वाक्यको सुनकर दुन्दुभिने कहा—(अच्छा) कमलपत्राक्षि! तुम वह शुल्क बतलाओ। महिष तो तुम्हारे लिये अपना सिर भी प्रदान कर सकता है, शुल्ककी तो बात ही क्या, जो यहीं ही मिल सकता है॥ ३०—३२॥

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ता दनुनायकेन
कात्यायनी सस्वनमुन्नदित्वा।
विहस्य चैतद्वचनं बभाषे
हिताय सर्वस्य चराचरस्य॥ ३३

पुलस्त्यजी बोले— दैत्यनायक दुन्दुभिके ऐसा कहनेपर दुर्गाजीने उच्च स्वरसे गर्जन कर और हँसकर समस्त चराचरके कल्याणार्थ यह वचन कहा॥ ३३॥

श्रीदेव्युवाच

कुलेऽस्मदीये शृणु दैत्य शुल्कं
कृतं हि यत्पूर्वतरैः प्रसह्य।
यो जेष्यतेऽस्मत्कुलजां रणाग्रे
तस्याः स भर्त्ताऽपि भविष्यतीति॥ ३४

श्रीदेवीजीने कहा— दैत्य! पूर्वजोंने हमारे कुलमें जो शुल्क निर्धारित किया है, उसे सुनो। (वह यह है कि) हमारे कुलमें उत्पन्न कन्याको जो बलसे युद्धमें जीतेगा, वही उसका पति होगा॥ ३४॥

पुलस्त्य उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या दुन्दुभिर्दानवेश्वरः।
गत्वा निवेदयामास महिषाय यथातथम्॥ ३५

स चाभ्यगान्महातेजाः सर्वदैत्यपुरःसरः।
आगत्य विन्ध्यशिखरं योद्धुकामः सरस्वतीम्॥ ३६

ततः सेनापतिर्दैत्यश्चिक्षुरो नाम नारद।
सेनाग्रगामिनं चक्रे नमरं नाम दानवम्॥ ३७

स चापि तेनाधिकृतश्चतुरङ्गं समूर्जितम्।
बलैकदेशमादाय दुर्गां दुद्राव वेगितः॥ ३८

पुलस्त्यजीने कहा— देवीकी यह बात सुनकर दुन्दुभिने जाकर महिषासुरसे इस बातको ज्यों-का-त्यों निवेदित कर दिया। उस महातेजस्वी दैत्यने सभी दैत्योंके साथ (युद्धमें देवीको पराजितकर उसका पति बननेके लिये) प्रयाण किया एवं सरस्वती (देवी)-से युद्ध करनेकी इच्छासे विन्ध्याचल पर्वतपर पहुँच गया। नारदजी! उसके पश्चात् सेनापति चिक्षुर नामक दैत्यने नमर नामके दैत्यको सेनाके आगे चलनेका निर्देश दिया। और वह भी महान् बली असुर उससे निर्देश पाकर बलशाली चतुरंगिणी सेनाकी एक लड़ाकू टुकड़ीको लेकर वेगपूर्वक दुर्गाजीपर धावा बोल दिया॥ ३५–३८॥

तमापतन्तं वीक्ष्याथ देवा ब्रह्मपुरोगमाः।
ऊचुर्वाक्यं महादेवीं वर्म ह्याबन्ध चाम्बिके। ३९
अथोवाच सुरान् दुर्गा नाहं बध्नामि देवताः।
कवचं कोऽत्र संतिष्ठेत् ममाग्रे दानवाधमः॥ ४०
यदा न देव्या कवचं कृतं शस्त्रनिबर्हणम्।
तदा रक्षार्थमस्यास्तु विष्णुपञ्जरमुक्तवान्॥ ४१
सा तेन रक्षिता ब्रह्मन् दुर्गा दानवसत्तमम्।
अवध्यं दैवतैः सर्वैर्महिषं प्रत्यपीडयत्॥ ४२
एवं पुरा देववरेण शम्भुना
तद्वैष्णवं पञ्जरमायताक्ष्याः।
प्रोक्तं तया चापि हि पादघातै-
र्निषूदितोऽसौ महिषासुरेन्द्रः॥ ४३
एवंप्रभावो द्विज विष्णुपञ्जरः
सर्वासु रक्षास्वधिको हि गीतः।
कस्तस्य कुर्याद् युधि दर्पहानिं
यस्य स्थितश्चेतसि चक्रपाणिः॥ ४४

उसे आते देखकर ब्रह्मा आदि देवताओंने महादेवीसे कहा—अम्बिके! आप कवच बाँध लें। उसके बाद देवीने देवताओंसे कहा— देवगण! मैं कवच नहीं बाँधूँगी। मेरे सामने ऐसा कौन अधम दानव है जो यहाँ युद्धमें ठहर सके? जब देवीने शस्त्र-निवारक कवच न पहना तो उनकी रक्षाके लिये देवताओंने (पूर्वोक्त) विष्णुपञ्जरस्तोत्र पढ़ा। ब्रह्मन्! उससे रक्षित होकर दुर्गाने समस्त देवताओंके द्वारा अवध्य दानव-श्रेष्ठ महिषासुरको खूब पीड़ित किया। इस प्रकार पहले देवश्रेष्ठ शम्भुने बड़े नेत्रोंवाली (कात्यायनी)-से उस वैष्णव पञ्जरको कहा था, उसीके प्रभावसे उन्होंने (देवीने) भी पैरोंसे मारकर उस महिषासुरका कचूमर निकाल दिया। द्विज! इस प्रकारके प्रभावसे युक्त विष्णुपञ्जर समस्त रक्षाकारी (स्तोत्रों)-में श्रेष्ठ कहा गया है। वस्तुतः जिसके चित्तमें चक्रपाणि स्थित हों, युद्धमें उसके अभिमानको कौन नष्ट कर सकता है॥ ३९–४४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १९॥

भगवती कात्यायनीका दैत्योंके साथ युद्ध; महिषासुर वध एवं देवीका शिवजीके पादमूलमें लीन हो जाना

नारद उवाच

कथं कात्यायनी देवी सानुगं महिषासुरम्।
सवाहनं हतवती तथा विस्तरतो वद॥ १
एतच्च संशयं ब्रह्मन् हृदि मे परिवर्तते।
विद्यमानेषु शस्त्रेषु यत्पद्भ्यां तममर्दयत्॥ २

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्।
वृत्तां देवयुगस्यादौ पुण्यां पापभयापहाम्॥ ३

एवं स नमरः क्रुद्धः समापतत वेगवान्।
सगजाश्वरथो ब्रह्मन् दृष्टो देव्या यथेच्छया॥ ४

ततो बाणगणैर्दैत्यः समानम्याथ कार्मुकम्।
ववर्ष शैलं धाराघैर्यौरिवाम्बुदवृष्टिभिः॥ ५

शरवर्षेण तेनाथ विलोक्याद्रिं समावृतम्।
क्रुद्धा भगवती वेगादाचकर्ष धनुर्वरम्॥ ६
तद्धनुर्दानवे सैन्ये दुर्गया नामितं बलात्।
सुवर्णपृष्ठं विबभौ विद्युदम्बुधरेष्विव॥ ७

बाणैः सुररिपूनन्यान् खड्गेनान्यान् शुभव्रत।
गदया मुसलेनान्यांश्चर्मणाऽन्यानपातयत्॥ ८

एकोऽप्यसौ बहून् देव्याः केसरी कालसंनिभः।
विधुन्वन् केसरसटां निषूदयति दानवान्॥ ९

कुलिशाभिहता दैत्याः शक्त्या निर्भिन्नवक्षसः।
लाङ्गलैर्दारितग्रीवा विनिकृत्ताः परश्वधैः॥ १०

दण्डनिर्भिन्नशिरसश्चक्रविच्छिन्नबन्धनाः।
चेलुः पेतुश्च मम्लुश्च तत्यजुश्चापरे रणम्॥ ११

नारदजीने पूछा— (पुलस्त्यजी!) दुर्गादेवीने सेना एवं वाहनोंके सहित महिषासुरको किस प्रकार मार डाला, इसे आप विस्तारसे कहें। मेरे मनमें यह शंका घर कर गयी है कि शस्त्रोंके विद्यमान होते हुए भी देवीने पैरोंसे उसे क्यों मारा?॥ १-२॥

[फिर नारदजीके प्रश्नको सुनकर] **पुलस्त्यजीने कहा**— नारदजी! देवयुगके आदिमें घटित तथा पाप एवं भयको दूर करनेवाली इस प्राचीन एवं पवित्र कथाको आप सावधान होकर सुनिये। एक बार इसी प्रकार (अर्थात्) पूर्ववर्णित रीतिसे क्रुद्ध होकर नमरने भी हाथी, घोड़े और रथोंके साथ वेगपूर्वक देवीके ऊपर आक्रमण कर दिया था। फिर देवीने भी उसे भलीभाँति देखा। इसके बाद दैत्यने अपने धनुषको झुकाकर (चढ़ाकर) विन्ध्य पर्वतके ऊपर इस प्रकारसे बाण-वर्षा की जैसे आकाशसे बादल (उसपर) धारा-प्रवाह (मूसलाधार) जलवृष्टि करता हो। उसके बाद उस दैत्यकी बाण-वर्षासे पर्वतको सर्वथा ढका देखकर देवीको बड़ा क्रोध हुआ और तब उन्होंने वेगपूर्वक श्रेष्ठ विशाल धनुषको चढ़ा लिया॥ ३—६॥

श्रीदुर्गाजीद्वारा चढ़ाया गया सोनेकी पीठवाला वह धनुष दानवी-सेनामें इस प्रकार चमक उठा, जैसे बादलोंमें बिजली चमकती है। शुभ व्रतवाले श्रीनारदजी! श्रीदुर्गाजीने कुछ दैत्योंको बाणोंसे, कुछको तलवारसे, कुछको गदासे, कुछको मुसलसे और कुछ दैत्योंको ढाल चलाकर ही मार डाला। कालके समान देवीके सिंहने (भी) अपनी गर्दनके बालोंको झाड़ते हुए अकेला ही अनेकों दैत्योंका संहार कर डाला। देवीने कुछ दैत्योंको वज्रसे आहत कर दिया, कुछ दैत्योंके वक्षःस्थलको शक्तिसे फाड़ डाला, कुछके गर्दनको हलसे विदीर्ण कर कुछको फरसेसे काट डाला, कुछके सिरको दण्डसे फोड़ दिया तथा कुछ दैत्योंके शरीरके संधि-स्थानोंको चक्रसे छिन्न-भिन्न कर दिया। कुछ पहले ही चले गये, कुछ गिर गये, कुछ मूर्च्छित हो गये और कुछ युद्धभूमि छोड़कर भाग गये॥ ७-११॥

ते वध्यमाना रौद्रया दुर्गया दैत्यदानवाः।
कालरात्रिं मन्यमाना दुद्रुवुर्भयपीडिताः॥ १२

सैन्याग्रं भग्नमालोक्य दुर्गामग्रे तथा स्थिताम्।
दृष्ट्वा जगाम नमरो मत्तकुञ्जरसंस्थितः॥ १३

समागम्य च वेगेन देव्याः शक्तिं मुमोच ह।
त्रिशूलमपि सिंहाय प्राहिणोद् दानवो रणे॥ १४

तावापतन्तौ देव्या तु हुंकारेणाथ भस्मसात्।
कृतावथ गजेन्द्रेण गृहीतो मध्यतो हरिः॥ १५

अथोत्पत्य च वेगेन तलेनाहत्य दानवम्।
गतासुः कुञ्जरस्कन्धात् क्षिप्य देव्यै निवेदितः॥ १६

गृहीत्वा दानवं मध्ये ब्रह्मन् कात्यायनी रुषा।
सव्येन पाणिना भ्राम्य वादयत् पटहं यथा॥ १७

ततोऽट्टहासं मुमुचे तादृशे वाद्यतां गते।
हास्यात् समुद्भवंस्तस्या भूता नानाविधाऽद्भुताः॥ १८

केचिद् व्याघ्रमुखा रौद्रा वृकाकारास्तथा परे।
हयास्या महिषास्याश्च वराहवदनाः परे॥ १९

आखुकुक्कुटवक्त्राश्च गोऽजाविकमुखास्तथा।
नानावक्त्राक्षिचरणा नानायुधधरास्तथा। २०

गायन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये रमन्त्यन्ये तु संघशः।
वादयन्त्यपरे तत्र स्तुवन्त्यन्ये तथाम्बिकाम्॥ २१

सा तैर्भूतगणैर्देवी सार्द्धं तद्दानवं बलम्।
शातयामास चाक्रम्य यथा सस्यं महाशनिः॥ २२

सेनाग्रे निहते तस्मिन् तथा सेनाग्रगामिनि।
चिक्षुरः सैन्यपालस्तु योधयामास देवताः॥ २३

कार्मुकं दृढमाकर्णमाकृष्य रथिनां वरः।
ववर्ष शरजालानि यथा मेघो वसुंधराम्॥ २४

भयंकर रूपवाली दुर्गाद्वारा मारे जा रहे दैत्य एवं दानव भयसे व्याकुल हो गये तथा वे उन्हें कालरात्रिके समान मानते हुए डरसे भाग चले। सेनाके अग्र (प्रधान) भागको नष्ट तथा अपने सम्मुख दुर्गाको स्थित देखकर नमर मतवाले हाथीपर चढ़कर आगे आया। उस दानवने युद्धमें देवीके ऊपर शक्तिसे कसकर प्रहार किया एवं सिंहके ऊपर त्रिशूल चलाया। (किंतु) देवीने उन दोनों अस्त्रोंको आते देख हुंकारसे ही उन्हें भस्म कर डाला। इधर नमरके हाथीने (सूँड़से) सिंहकी कमर पकड़ ली॥ १२—१५॥

इसपर सिंहने तेजीसे उछलकर नमर दानवको पंजेसे मारकर उसके प्राण ले लिये और हाथीके कंधेसे उसे नीचे गिराकर देवीके आगे रख दिया। नारदजी! देवी कात्यायनी क्रोधसे उस दैत्यको मध्यमें पकड़कर तथा बायें हाथसे घुमाकर ढोलके समान बजाने लगीं और उसे अपना बाजा बनाकर उन्होंने जोरसे अट्टहास किया। उनके हँसनेसे अनेक प्रकारके अद्भुत भूत उत्पन्न हो गये। कोई-कोई (भूत) व्याघ्रके समान भयंकर मुखवाले थे, किसीकी आकृति भेड़ियेके समान थी, किसीका मुख घोड़ेके तुल्य और किसीका मुख भैंसे-जैसा एवं किसीका सूकरके समान मुँह था॥ १६—१९॥

उनके मुँह चूहे, मुर्गे (कुक्कुट), गाय, बकरा और भेड़के मुखोंके समान थे। कई नाना प्रकारके मुख, आँख एवं चरणोंवाले थे तथा वे नाना प्रकारके आयुध धारण किये हुए थे। उनमें कुछ तो समूह बनाकर गाने लगे, कुछ हँसने लगे और कुछ रमण करने लगे तथा कुछ बाजा बजाने लगे एवं कुछ देवीकी स्तुति करने लगे। देवीने उन भूतगणोंके साथ उस दानव-सेनापर आक्रमण कर उसे इस प्रकार तहस-नहस कर दिया, जैसे भारी वज्रके समान ओलोंके गिरनेसे खेतीका संहार हो जाता है। इस प्रकार सेनाके अग्रभाग तथा सेनापतिके मारे जानेपर अब सेनापति चिक्षुर देवताओंसे भिड़ गया युद्ध करने लगा॥ २०—२३॥

रथियोंमें श्रेष्ठ उस दैत्यने अपने मजबूत धनुषको अपने कानोंतक चढ़ाकर उससे बाणोंकी इस प्रकार वर्षा की जैसे मेघ पृथ्वीपर (घनघोर) जल बरसाते हैं। परंतु

तान् दुर्गा स्वशरैश्छित्त्वा शरसंघान् सुपर्वभिः।
सौवर्णपुङ्खानपरान् शराञ्जग्राह षोडश॥ २५

ततश्चतुर्भिश्चतुरस्तुरङ्गानपि भामिनी।
हत्वा सारथिमेकेन ध्वजमेकेन चिच्छिदे॥ २६

ततस्तु सशरं चापं चिच्छेदैकेषुणाऽम्बिका।
छिन्ने धनुषि खड्गं च चर्म चादत्तवान् बली॥ २७
तं खड्गं चर्मणा सार्धं दैत्यस्याधुन्वतो बलात्।
शरैश्चतुर्भिश्चिच्छेद ततः शूलं समाददे॥ २८

समुद्भ्राम्य महच्छूलं संप्राद्रवदथाम्बिकाम्।
क्रोष्टुको मुदितोऽरण्ये मृगराजवधूं यथा॥ २९

तस्याभिपततः पादौ करौ शीर्षं च पञ्चभिः।
शरैश्चिच्छेद संक्रुद्धा न्यपतन्निहतोऽसुरः॥ ३०

तस्मिन् सेनापतौ क्षुण्णे तदोग्रास्यो महासुरः।
समाद्रवत वेगेन करालास्यश्च दानवः॥ ३१
बाष्कलश्चोद्धतश्चैव उदग्राख्योग्रकार्मुकः।
दुर्धरो दुर्मुखश्चैव बिडालनयनोऽपरः॥ ३२
एतेऽन्ये च महात्मानो दानवा बलिनां वराः।
कात्यायनीमाद्रवन्त नानाशस्त्रास्त्रपाणयः॥ ३३
तान् दृष्ट्वा लीलया दुर्गा वीणां जग्राह पाणिना।
वादयामास हसती तथा डमरुकं वरम्॥ ३४
यथा यथा वादयते देवी वाद्यानि तानि तु।
तथा तथा भूतगणा नृत्यन्ति च हसन्ति च॥ ३५
ततोऽसुराः शस्त्रधराः समभ्येत्य सरस्वतीम्।
अभ्यघ्नंस्तांश्च जग्राह केशेषु परमेश्वरी॥ ३६
प्रगृह्य केशेषु महासुरांस्तान्
उत्पत्य सिंहात्तु नगस्य सानुम्।
ननर्त वीणां परिवादयन्ती
पपौ च पानं जगतो जनित्री॥ ३७
ततस्तु देव्या बलिनो महासुरा
दोर्दण्डनिर्धूतविशीर्णदर्पाः।
विस्रस्तवस्त्रा व्यसवश्च जाता-
स्ततस्तु तान् वीक्ष्य महासुरेन्द्रान्॥ ३८
देव्या महौजा महिषासुरस्तु
व्यद्रावयद् भूतगणान् खुराग्रैः।
तुण्डेन पुच्छेन तथोरसाऽन्यान्
निःश्वासवातेन च भूतसंघान्॥ ३९

दुर्गाने भी सुन्दर पर्वों (गाँठों) वाले अपने बाणोंसे उन बाणोंको काट डाला और फिर सुवर्णसे निर्मित पंखवाले सोलह बाणोंको अपने हाथोंमें ले लिया। उन्होंने क्रुद्ध होकर चार बाणोंसे उसके चार घोड़ोंको और एकसे सारथीको मारकर एक बाणसे उसकी ध्वजाके दो टुकड़े कर दिये। फिर अम्बिकाने एक बाणसे उसके बाणसहित धनुषको काट डाला। धनुष कट जानेपर बलवान् चिक्षुरने ढाल और तलवार उठा ली॥ २५—२७॥

वह ढाल और तलवारको जोर लगाकर घुमा ही रहा था कि देवीने चार बाणोंसे उन्हें काट डाला। इसपर उस दैत्यने शूल ले लिया। महान् शूलको घुमाकर वह अम्बिकाकी ओर इस प्रकार दौड़ा, जैसे वनमें सियार आनन्दमग्न होकर सिंहिनीकी ओर दौड़े। पर देवीने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाँच बाणोंसे उस असुरके दोनों हाथों, दोनों पैरों एवं मस्तकको काट डाला, जिससे वह असुर मरकर गिर पड़ा। उस सेनापतिके मरनेपर उग्रास्य नामका महान् असुर तथा करालास्य नामका दानव—ये दोनों तेजीसे उनकी ओर दौड़े॥ २८—३१॥

बाष्कल, उद्धत, उदग्र, उग्रकार्मुक, दुर्धर, दुर्मुख तथा बिडालाक्ष—ये तथा अन्य अनेक अत्यन्त बली एवं श्रेष्ठ दैत्य शस्त्र और अस्त्र लेकर दुर्गाकी ओर दौड़ पड़े। देवी दुर्गाने उन्हें देखा और वे लीलापूर्वक हाथोंमें वीणा एवं श्रेष्ठ डमरू लेकर हँसती हुई उन्हें बजाने लगीं। देवी उन बाजोंको ज्यों-ज्यों बजाती जाती थीं, त्यों-त्यों सभी भूत भी नाचते और हँसते थे॥ ३२—३५॥

अब असुर शस्त्र लेकर महासरस्वतीरूपा दुर्गाके पास जाकर उनपर प्रहार करने लगे। पर परमेश्वरीने (तुरंत) उनके बालोंको जोरके साथ पकड़ लिया। उन महासुरोंका केश पकड़कर और फिर सिंहसे उछलकर पर्वत-शृङ्गपर जाकर जगज्जननी दुर्गा वीणा-वादन करती हुई मधुपान करने लगीं। तभी देवीने अपने बाहुदण्डोंसे सभी असुरोंको मारकर उनके घमण्डको चूर कर दिया। उनके वस्त्र शरीरसे खिसक पड़े और वे प्राणरहित हो गये। यह देखकर महायशी महिषासुर अपने खुरके अग्रभागसे, तुण्डसे, पुच्छसे, वक्षःस्थलसे तथा निःश्वास-वायुसे देवीके भूतगणोंको भगाने लगा॥ ३६—३९॥

नादेन चैवाशनिसंनिभेन
विषाणकोट्या त्वपरान् प्रमथ्य।
दुद्राव सिंहं युधि हन्तुकामः
ततोऽम्बिका क्रोधवशं जगाम॥ ४०

ततः स कोपादथ तीक्ष्णशृङ्गः
क्षिप्रं गिरीन् भूमिमशीर्णयच्च।
संक्षोभयंस्तोयनिधीन् घनांश्च
विध्वंसयन् प्राद्रवताथ दुर्गाम्॥ ४१

सा चाथ पाशेन बबन्ध दुष्टं
स चाप्यभूत् क्लिन्नकटः करीन्द्रः।
करं प्रचिच्छेद च हस्तिनोऽग्रं
स चापि भूयो महिषोऽभिजातः॥ ४२

ततोऽस्य शूलं व्यसृजन्मृडानी
स शीर्णमूलो न्यपतत् पृथिव्याम्।
शक्तिं प्रचिक्षेप हुताशदत्तां
सा कुण्ठिताग्रा न्यपतन्महर्षे॥ ४३

और अपने बिजलीकी कड़कके समान नाद एवं सींगोंकी नोकसे शेष भूतोंको व्याकुल कर रणक्षेत्रमें सिंहको मारने दौड़ा। इससे अम्बिकाको बड़ा क्रोध हुआ। फिर वह क्रुद्ध महिष अपने नुकीले सींगोंसे जल्दी-जल्दी पर्वतों एवं पृथ्वीको विदीर्ण करने लगा। वह समुद्रको क्षुब्ध करते तथा मेघोंको तितर-बितर करते हुए दुर्गाकी ओर दौड़ा। इसपर उन देवीने उस दुष्टको पाशसे बाँध दिया, पर वह झटसे मदसे भींगे कपोलोंवाला गजराज बन गया। (तब) देवीने उस गजके शुण्डका अगला भाग काट डाला। अब उसने पुनः भैंसेका रूप धारण कर लिया। महर्षि नारदजी! उसके बाद देवीने उसके ऊपर शूल फेंका जो टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने अग्निसे प्राप्त हुई शक्ति फेंकी, किंतु वह भी टूटकर गिर पड़ी॥ ४०—४३॥

चक्रं हरेर्दानवचक्रहन्तुः
क्षिप्तं त्वचक्रत्वमुपागतं हि।
गदां समाविध्य धनेश्वरस्य
क्षिप्ता तु भग्ना न्यपतत् पृथिव्याम्॥ ४४

जलेशपाशोऽपि महासुरेण
विषाणतुण्डाग्रखुरप्रणुन्नः।
निरस्य तत्कोपितया च मुक्तो
दण्डस्तु याम्यो बहुखण्डतां गतः॥ ४५

वज्रं सुरेन्द्रस्य च विग्रहेऽस्य
मुक्तं सुसूक्ष्मत्वमुपाजगाम।
संत्यज्य सिंहं महिषासुरस्य
दुर्गाऽधिरूढा सहसैव पृष्ठम्॥ ४६

पृष्ठस्थितायां महिषासुरोऽपि
पोप्लूयते वीर्यमदान्मृडान्याम्।
सा चापि पद्भ्यां मृदुकोमलाभ्यां
ममर्द तं क्लिन्नमिवाजिनं हि॥ ४७

दानवसमूहको मारनेवाला विष्णुप्रदत्त चक्र भी फेंके जानेपर व्यर्थ हो गया। देवीने कुबेरद्वारा दी गयी गदा भी घुमाकर फेंकी, पर वह भी भग्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। महिषने वरुणके पाशको भी अपने सींग, थूथना एवं खुरके प्रहारसे विफल कर दिया। फिर कुपित होकर देवीने यमदण्डको छोड़ा, पर उसे भी उसने तोड़कर कई खण्ड-खण्ड कर डाला। उसके शरीरपर देवीद्वारा छोड़ा गया इन्द्रका वज्र भी छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बिखर गया। अब दुर्गाजी सिंहको छोड़कर सहसा महिषासुरकी पीठपर ही चढ़ गयीं। देवीके पीठपर चढ़ जानेपर भी महिषासुर अपने बलके मदसे उछलता रहा। देवी भी अपने मृदुल तथा कोमल चरणोंसे भींगे मृगचर्मके समान उसकी पीठको मर्दन करती गयीं॥ ४४—४७॥

स मृद्यमानो धरणीधराभो
देव्या बली हीनबलो बभूव।

अन्तमें देवीद्वारा कुचला जाता हुआ पर्वताकार

ततोऽस्य शूलेन बिभेद कण्ठं
तस्मात् पुमान् खड्गधरो विनिर्गतः॥ ४८
निष्क्रान्तमात्रं हृदये पदा तं
आहत्य संगृह्य कचेषु कोपात्।
शिरः प्रचिच्छेद वरासिनाऽस्य
हाहाकृतं दैत्यबलं तदाऽभूत्॥ ४९
सचण्डमुण्डाः समयाः सताराः
सहासिलोम्ना भयकातराक्षाः।
संताड्यमानाः प्रमथैर्भवान्याः
पातालमेवाविविशुर्भयार्ताः ॥ ५०
देव्या जयं देवगणा विलोक्य
स्तुवन्ति देवीं स्तुतिभिर्महर्षे।
नारायणीं सर्वजगत्प्रतिष्ठां
कात्यायनीं घोरमुखीं सुरूपाम्॥ ५१
संस्तूयमाना सुरसिद्धसंघै
र्निषण्णभूता हरपादमूले।
भूयो भविष्याम्यमरार्थमेव
मुक्त्वा सुरांस्तान् प्रविवेश दुर्गा ॥५२

बलवान् महिष बलशून्य हो गया। तब देवीने अपने शूलसे उसकी गर्दन काट दी। उसके कटे कण्ठसे तुरंत तलवार लिये एक पुरुष निकल पड़ा। उसके निकलते ही देवीने उसके हृदयपर चरणसे आघात किया और क्रोधसे उसके बालोंको समेटकर पकड़ लिया तथा अपनी श्रेष्ठ तलवारसे उसका भी सिर काट डाला। उस समय दैत्योंकी सेनामें हाहाकार मच गया। चण्ड, मुण्ड, मय, तार और असिलोमा आदि दैत्य भवानीके प्रमथगणोंद्वारा प्रताडित एवं भयसे उद्विग्न होकर पातालमें प्रविष्ट हो गये। महर्षि नारदजी! इधर देवीकी विजयको देखकर देवतागण स्तुतियोंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्की आधारभूता, क्रोधमुखी, सुरूपा, नारायणी कात्यायनीदेवीकी स्तुति करने लगे। देवताओं और सिद्धोंद्वारा स्तुति की जाती हुई दुर्गाने 'मैं आप देवताओंके श्रेयके लिये पुनः आविर्भूत होऊँगी'—ऐसा कहकर शिवजीके पादमूलमें लीन हो गयीं॥ ४८—५२॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

देवीके पुनराविर्भाव सम्बन्धी प्रश्नोत्तर; कुरुक्षेत्रस्थ पृथूदकतीर्थका प्रसङ्ग; संवरण-तपतीका विवाह

नारद उवाच

पुलस्त्य कथ्यतां तावद् देव्या भूयः समुद्भवः।
महत्कौतूहलं मेऽद्य विस्तराद् ब्रह्मवित्तम॥ १

नारदजीने कहा—ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पुलस्त्यजी! अब आप देवीकी उत्पत्तिके विषयमें मुझसे पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। उसे सुननेकी मेरी बड़ी अभिलाषा है॥ १॥

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि भूयोऽस्याः सम्भवं मुने।
शुम्भासुरवधार्थाय लोकानां हितकाम्यया॥ २

या सा हिमवतः पुत्री भवेनोढा तपोधना।
उमा नाम्ना च तस्याः सा कोशाज्जाता तु कौशिकी॥ ३

पुलस्त्यजी बोले—मुनिजी! सुनिये; मैं पुनः लोककल्याणकी इच्छासे शुम्भ नामक असुरके वधके लिये देवीकी जो पुनः उत्पत्ति हुई, उसका वर्णन करता हूँ। भगवान् शङ्करने हिमवान्की जिस तपस्विनी कन्या उमासे विवाह किया था, उन्हींके शरीर-कोश (गर्भ)-से उत्पन्न होनेके कारण वे देवी कौशिकी कहलायीं।

सम्भूय विन्ध्यं गत्वा च भूयो भूतगणैर्वृता।
शुम्भं चैव निशुम्भं च वधिष्यति वरायुधैः॥ ४

नारद उवाच

ब्रह्मंस्त्वया समाख्याता मृता दक्षात्मजा सती।
सा जाता हिमवत्पुत्रीत्येवं मे वक्तुमर्हसि॥ ५

यथा च पार्वतीकोशात् समुद्भूता हि कौशिकी।
यथा हतवती शुम्भं निशुम्भं च महासुरम्। ६

कस्य चेमौ सुतौ वीरौ ख्यातौ शुम्भनिशुम्भकौ।
एतद् विस्तरतः सर्वं यथावद् वक्तुमर्हसि॥ ७

पुलस्त्य उवाच

एतत्ते कथयिष्यामि पार्वत्याः सम्भवं मुने।
शृणुष्वावहितो भूत्वा स्कन्दोत्पत्तिं च शाश्वतीम्॥ ८

रुद्रः सत्यां प्रणष्टायां ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
निराश्रयत्वमापन्नस्तपस्तप्तुं व्यवस्थितः॥ ९

स ह्यासीद् देवसेनानीर्दैत्यदर्पविनाशनः।
शिवरूपत्वमास्थाय सैनापत्यं समुत्सृजत्॥ १०

ततो निराकृता देवाः सेनानाथेन शम्भुना।
दानवेन्द्रेण विक्रम्य महिषेण पराजिताः॥ ११
ततो जग्मुः सुरेशानं द्रष्टुं चक्रगदाधरम्।
श्वेतद्वीपे महाहंसं प्रपन्नाः शरणं हरिम्॥ १२

तानागतान् सुरान् दृष्ट्वा ततः शक्रपुरोगमान्।
विहस्य मेघगम्भीरं प्रोवाच पुरुषोत्तमः॥ १३

किं जितास्त्वसुरेन्द्रेण महिषेण दुरात्मना।
येन सर्वे समेत्यैवं मम पार्श्वमुपागताः॥ १४

तद् युष्माकं हितार्थाय यद् वदामि सुरोत्तमाः।
तत्कुरुध्वं जयो येन समाश्रित्य भवेद्धि वः॥ १५

उत्पन्न होनेपर भूतगणोंसे आवृत हो वे विन्ध्यपर्वतपर गयीं और उन्होंने (अपने) श्रेष्ठ आयुधोंसे शुम्भ तथा निशुम्भ नामके दानवोंका वध किया॥ २-४॥

नारदजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने पहले यह बात कही थी कि दक्षकी पुत्री सती ही मरकर फिर हिमवान्की पुत्री हुई थीं। (अब) इसे आप विस्तारसे सुनाइये। पार्वतीके शरीर-कोशसे जिस प्रकार वे कौशिकी प्रकट हुईं और फिर उन्होंने शुम्भ तथा निशुम्भ नामके बड़े असुरोंका जैसे वध किया था, इन सभी बातोंको विस्तारसे कहिये। ये शुम्भ और निशुम्भ नामसे विख्यात वीर किसके पुत्र थे, इसका ठीक-ठीक विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ ५—७॥

पुलस्त्यजी बोले—मुने! (अच्छा,) अब मैं फिर आपसे पार्वतीकी उत्पत्तिके विषयमें वर्णन कर रहा हूँ, आप ध्यान देकर (सम्बद्ध) स्कन्दके जन्मकी शाश्वत (नित्य, सदा विराजनेवाली) कथा सुनें। सतीके देह त्याग कर देनेपर रुद्र भगवान् निराश्रय विधुर हो गये एवं ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए तपस्या करने लगे। वे शङ्करजी (पहले) दैत्योंके दर्पको चूर्ण करनेवाले देवताओंके सेनानी थे, परंतु अब उन्होंने (रुद्र रूपका त्याग कर) शिव स्वरूप धारण कर लिया तथा तपमें लगकर सेनापति (स्वामी) पदका भी परित्याग कर दिया। फिर तो देवताओंके ऊपर उनके सेनापति शिवसे विरहित हो जानेके कारण दानवश्रेष्ठ महिषने बलपूर्वक आक्रमण कर उन्हें परास्त कर दिया॥ ८—११॥

(जब देवसमुदाय पराजित हो गया) तब पराजित हुए देवतालोग शरण-प्राप्तिकी खोजमें देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुके दर्शनार्थ श्वेतद्वीप गये। उस समय भगवान् विष्णु इन्द्र आदि देवताओंको आये हुए देखकर हँसे और मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—मालूम होता है कि आपलोग असुरोंके स्वामी दुरात्मा महिषसे हार गये हैं, जिसके कारण इस प्रकार एक साथ मिलकर मेरे पास आये हैं? श्रेष्ठ देवताओ! अब आपलोगोंकी भलाईके लिये मैं जो बात कहता हूँ, उसे आप सब सुनिये और उसे (यथावत्) आचरण कीजिये, इसके सहारे आपकी निश्चय विजय होगी॥ १२—१५॥

य एते पितरो दिव्यास्त्वग्निष्वात्तेति विश्रुताः ।
अमीषां मानसी कन्या मेना नाम्नाऽस्ति देवताः ॥ १६

तामाराध्य महातिथ्यां श्रद्धया परयाऽमराः ।
प्रार्थयध्वं सतीं मेनां प्रालेयाद्रेरिहार्थतः ॥ १७

तस्यां सा रूपसंयुक्ता भविष्यति तपस्विनी ।
दक्षकोपाद् यया मुक्तं मलवज्जीवितं प्रियम् ॥ १८

सा शङ्करात् स्वतेजोंऽशं जनयिष्यति यं सुतम् ।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं सपदानुगम् ॥ १९
तस्माद् गच्छत पुण्यं तत् कुरुक्षेत्रं महाफलम् ।
तत्र पृथूदके तीर्थे पूज्यन्तां पितरोऽव्ययाः ॥ २०

महातिथ्यां महापुण्ये यदि शत्रुपराभवम् ।
जिहासतात्मनः सर्वं इत्थं वै क्रियतामिति ॥ २१

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्ता वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पप्रच्छुः परमेश्वरम् ॥ २२

देवा ऊचुः

कोऽयं कुरुक्षेत्र इति यत्र पुण्यं पृथूदकम् ।
उद्भवं तस्य तीर्थस्य भगवान् प्रब्रवीतु नः ॥ २३

केयं प्रोक्ता महापुण्या तिथीनामुत्तमा तिथिः ।
यस्यां हि पितरो दिव्याः पूज्याऽस्माभिः प्रयत्नतः ॥ २४

ततः सुराणां वचनान्मुरारिः कैटभार्दनः ।
कुरुक्षेत्रोद्भवं पुण्यं प्रोक्तवांस्तां तिथीमपि ॥ २५

श्रीभगवानुवाच

सोमवंशोद्भवो राजा ऋक्षो नाम महाबलः ।
कृतस्यादौ समभवदृक्षात् संवरणोऽभवत् ॥ २६
स च पित्रा निजे राज्ये बाल एवाभिषेचितः ।
बाल्येऽपि धर्मनिरतो मद्भक्तश्च सदाऽभवत् ॥ २७
पुरोहितस्तु तस्यासीद् वसिष्ठो वरुणात्मजः ।
स चास्याध्यापयामास साङ्गान् वेदानुदारधीः ॥ २८
ततो जगाम चारण्यं त्वनध्याये नृपात्मजः ।
सर्वकर्मसु निक्षिप्य वसिष्ठं तपसां निधिम् ॥ २९

देवगण! जो ये 'अग्निष्वात्त' नामसे प्रसिद्ध दिव्य पितर हैं, उनकी मेना नामकी एक मानसी कन्या है। देववृन्द! आपलोग अत्यन्त श्रद्धासे अमावास्याको सती मेनाकी (यथाविधि) आराधना करें तथा उनसे हिमालयकी पत्नी बननेके लिये प्रार्थना करें। उन्हीं मेनासे (एक) तपस्विनी रूपवती कन्या उत्पन्न होगी, जिसने दक्षके ऊपर कोपकर अपने प्रिय जीवनका मलके समान परित्याग कर दिया था। वे शिवजीके तेजके अंशरूप जिस पुत्रको उत्पन्न करेंगी वह दैत्योंमें श्रेष्ठ महिषको उसकी सेनासहित मार डालेगा ॥ १६—१९ ॥

अतः आपलोग महान् फल देनेवाले, पवित्र कुरुक्षेत्रमें जायँ एवं वहाँ 'पृथूदक' नामके तीर्थमें नित्य ही अग्निष्वात्त नामके पितरोंकी पूजा करें। यदि आपलोग अपने शत्रुको पराजय चाहते हैं तो सभी कुछ छोड़कर अमावास्याको उस परम पवित्र तीर्थमें इसी (निर्दिष्ट) कार्यको सम्पन्न करें ॥ २०-२१ ॥

पुलस्त्यजी बोले—भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि देवताओंने हाथ जोड़कर उन परमात्मासे पूछा— ॥ २२ ॥

देवताओंने पूछा—भगवन्! यह कुरुक्षेत्र तीर्थ कौन है, जहाँ पृथूदक तीर्थ है? आप हमलोगोंको उस तीर्थकी उत्पत्तिके विषयमें बतायें। और, वह पवित्र उत्तम तिथि कौन-सी है जिसमें हम सब दिव्य पितरोंकी पूजा प्रयत्नपूर्वक कर सकें। तब भगवान् विष्णुने देवताओंकी प्रार्थना सुनकर उनसे कुरुक्षेत्रकी पवित्र उत्पत्ति तथा उस उत्तम तिथिका भी वर्णन किया (जिसमें पूजा करनेकी बात कही थी) ॥ २३—२५ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—सत्ययुगके प्रारम्भमें सोमवंशमें ऋक्षनामके एक महाबलवान् राजा उत्पन्न हुए। उन ऋक्षसे संवरणकी उत्पत्ति हुई। पिताने उसे बचपनमें ही राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। वह बाल्यकालमें भी सदा धर्मनिष्ठ एवं मेरा भक्त था। वरुणके पुत्र वसिष्ठ उसके पुरोहित थे। उन्होंने उसे अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंको पढ़ाया। एक दिनकी बात है कि अनध्याय (छुट्टी) रहनेपर वह राजपुत्र (संवरण) तपोनिधि वसिष्ठको सभी कार्य सौंपकर वनमें चला गया ॥ २६—२९ ॥

ततो मृगयाव्याक्षेपाद् एकाकी विजनं वनम्।
वैभ्राजं स जगामाथ अथोन्मादनमभ्ययात्॥ ३०

ततस्तु कौतुकाविष्टः सर्वर्तुकुसुमे वने।
अवितृप्तः सुगन्धस्य समन्ताद् व्यचरद् वनम्॥ ३१

स वनान्तं च ददृशे फुल्लकोकनदावृतम्।
कह्लारपद्मकुमुदैः कमलेन्दीवरैरपि॥ ३२

तत्र क्रीडन्ति सततमप्सरोऽमरकन्यकाः।
तासां मध्ये ददर्शाथ कन्यां संवरणोऽधिकाम्॥ ३३
दर्शनादेव स नृपः कामबाणप्रपीडितः।
जातः सा च तमीक्ष्यैव कामबाणातुराऽभवत्॥ ३४

उभौ तौ पीडितौ मोहं जग्मतुः काममार्गणैः।
राजा चलासनो भूम्यां निपपात तुरंगमात्॥ ३५

तमभ्येत्य महात्मानो गन्धर्वाः कामरूपिणः।
सिषिचुर्वारिणाऽभ्येत्य लब्धसंज्ञोऽभवत् क्षणात्॥ ३६

सा चाप्सरोभिरुत्पाट्य नीता पितृकुलं निजम्।
ताभिराश्वासिता चापि मधुरैर्वचनाम्बुभिः॥ ३७
स चाप्यारुह्य तुरगं प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम्।
गतस्तु मेरुशिखरं कामचारी यथाऽमरः॥ ३८

यदाप्रभृति सा दृष्टा आर्क्षिणा तपती गिरौ।
तदाप्रभृति नाश्नाति दिवा स्वपिति नो निशि॥ ३९

ततः सर्वविदव्यग्रो विदित्वा वरुणात्मजः।
तपतीतापितं वीरं पार्थिवं तपसां निधिः॥ ४०

समुत्पत्य महायोगी गगनं रविमण्डलम्।
विवेश देवं तिग्मांशुं ददर्श स्यन्दने स्थितम्॥ ४१
तं दृष्ट्वा भास्करं देवं प्रणमद् द्विजसत्तमः।
प्रतिप्रणामितश्चासौ भास्करेणाविशद् रथे॥ ४२

ज्वलज्जटाकलापोऽसौ दिवाकरसमीपगः।
शोभते वारुणिः श्रीमान् द्वितीय इव भास्करः॥ ४३

फिर शिकारके लिये व्याक्षिप्त (व्यग्र) वह अकेला ही वैभ्राज नामक निर्जन वनमें पहुँचा। उसके बाद वह उन्मादसे ग्रस्त हो गया। उस वनमें सभी ऋतुओंमें फूल फूलते रहते थे, सुगन्धि भी रहती थी, फिर भी उससे संतृप्त न होनेके कारण वह कुतूहलवश वनमें चारों ओर विचरण करने लगा। वहाँ उसने फूले हुए श्वेत, लाल, पीले कमल, कुमुद एवं नीले कमलोंसे भरे उस वनको देखा। अप्सराएँ एवं देवकन्याएँ वहाँ सदा मनोरञ्जन (मनबहलाव) किया करती थीं। संवरणने उनके बीच एक अत्यन्त सुन्दरी कन्याको देखा॥ ३०—३३॥

उसे देखते ही वह राजा कामदेवके बाणसे पीडित (कामसे आविष्ट) हो गया और इसी प्रकार वह कन्या भी उसे देखकर कामबाणसे अधीर (मोहित) हो गयी। कामके बाणोंसे विवश होकर वे दोनों अचेत से हो गये। राजा घोड़ेकी पीठपर रखे हुए आसनसे खिसककर पृथ्वीपर गिर पड़ा और इच्छाके अनुसार अपना रूप बना लेनेवाले महात्मा गन्धर्वलोग उसके पास आकर उसे जलसे सींचने लगे। (फिर) वह दूसरे ही क्षण चेतनामें आ गया। तब अप्सराओंने उसे मधुर वचनरूपी जलसे भी आश्वस्त किया और उसे उठाकर उसके पिताके घर ले गयीं॥ ३४—३७॥

फिर वह राजा (अपने) घोड़ेपर चढ़कर (अपने) श्रेष्ठ पैठण नगर इस प्रकार चला गया, जैसे कोई इच्छाके अनुसार चलनेवाला देवता (सरलतासे) मेरुशृङ्गपर चला जाय। ऋक्षके पुत्र संवरणने पर्वतपर देवकन्या तपतीको जबसे अपनी आँखोंसे देखा था, तबसे वह दिनमें न तो भोजन करता था और न रात्रिमें सोता ही था। फिर सब कुछ जाननेवाले एवं शान्त तथा तपस्याके निधिस्वरूप वरुणके पुत्र महायोगी वसिष्ठ उस वीर राजपुत्रको तपतीके कारण संतापमें पड़े देखकर आकाशमें ऊपर जाकर (मध्य आकाशमें स्थित) सूर्यमण्डलमें प्रवेश किया तथा वहाँ रथपर बैठे हुए तेज किरणवाले सूर्यदेवका उसने दर्शन किया॥ ३८—४१॥

द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठने सूर्यदेवको देखकर प्रणाम किया। फिर वे सूर्यके द्वारा प्रत्यभिवादन (प्रणामके बदले प्रणाम) किये जानेपर उनके समीप जाकर रथमें बैठ गये। सूर्यदेवके पास रथपर बैठे हुए अग्नि-शिखाके समान चमचमाती जटावाले वरुणके पुत्र वसिष्ठ दूसरे

ततः सम्पूजितोऽर्घाद्यैर्भास्करेण तपोधनः।
पृष्टश्चागमने हेतुं प्रत्युवाच दिवाकरम्॥ ४४

समायातोऽस्मि देवेश याचितुं त्वां महाद्युते।
सुतां संवरणस्यार्थे तस्य त्वं दातुमर्हसि॥ ४५

ततो वसिष्ठाय दिवाकरेण
निवेदिता सा तपती तनूजा।
गृहागताय द्विजपुंगवाय
राज्ञोऽर्थतः संवरणस्य देवाः॥ ४६

सावित्रिमादाय ततो वसिष्ठः
स्वमाश्रमं पुण्यमुपाजगाम।
सा चापि संस्मृत्य नृपात्मजं तं
कृताञ्जलिर्वारुणिमाह देवी॥ ४७

तपत्युवाच

ब्रह्मन् मया खेदमुपेत्य यो हि
सहाप्सरोभिः परिचारिकाभिः।
दृष्टो ह्यरण्येऽमरगर्भतुल्यो
नृपात्मजो लक्षणतोऽभिजाने॥ ४८

पादौ शुभौ चक्रगदासिचिह्नौ
जङ्घे तथोरू करिहस्ततुल्यौ।
कटिस्तथा सिंहकटिर्यथैव
क्षामं च मध्यं त्रिवलीनिबद्धम्॥ ४९

ग्रीवास्य शङ्खाकृतिमादधाति
भुजौ च पीनौ कठिनौ सुदीर्घौ।
हस्तौ तथा पद्मदलोद्भवाङ्कौ
छत्राकृतिस्तस्य शिरो विभाति॥ ५०

नीलाश्च केशाः कुटिलाश्च तस्य
कर्णौ समांसौ सुसमा च नासा।
दीर्घाश्च तस्याङ्गुलयः सुपर्वाः
पद्भ्यां कराभ्यां दशनाश्च शुभ्राः॥ ५१

समुन्नतः षड्भिरुदारवीर्य-
स्त्रिभिर्गभीरस्त्रिषु च प्रलम्बः।
रक्तस्तथा पञ्चसु राजपुत्रः
कृष्णश्चतुर्भिस्त्रिभिरानतोऽपि॥ ५२

द्वाभ्यां च शुक्लः सुरभिश्चतुर्भिः
दृश्यन्ति पद्मानि दशैव चास्य।
वृतः स भर्ता भगवन् हि पूर्वं
तं राजपुत्रं भुवि संविचिन्त्य॥ ५३

सूर्यके समान सुशोभित होने लगे। फिर भगवान् सूर्यने उन तपस्वी (अतिथि)-का अर्घ्य आदिसे (सत्कार) किया। उसके बाद उनसे उनके आनेका कारण पूछा। तब तपोधन वसिष्ठजीने सूर्यसे कहा—अति तेजस्वी देवेश! मैं राजपुत्र संवरणके लिये आपसे कन्याकी याचना करने आया हूँ, उसे आप (कृपया) प्रदान करें॥ ४२—४५॥

[भगवान् विष्णु कहते हैं—] देवगण! उसके बाद सूर्यदेव घरपर आये और ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठको राजा संवरणके लिये (अपनी) तपती नामकी उस कन्याको समर्पित कर दिया। फिर सूर्यपुत्रीको साथ लेकर वसिष्ठ अपने पवित्र आश्रममें आ गये। वह कन्या उस राजपुत्रका स्मरण कर और हाथ जोड़कर ऋषि वसिष्ठसे बोली॥ ४६-४७॥

तपतीने कहा—वसिष्ठजी! मैंने वनमें चिन्तामें विभोर होकर अपनी सेविकाओं तथा अप्सराओंके साथ देवपुत्रके समान (सौम्य सुन्दर) जिस व्यक्तिको देखा था, उसे मैं लक्षणोंसे राजकुमार समझ रही हूँ; क्योंकि उसके दोनों शुभ चरणोंमें चक्र, गदा और खड्गके चिह्न हैं। उसकी जाँघें तथा ऊरु दोनों हाथीकी सूँड़के समान हैं। उसकी कटि सिंहकी कटिके समान है तथा त्रिवलीयुक्त—तीन बलोंवाला उसका उदरभाग बहुत पतला है। उसकी गर्दन शङ्खके समान है, दोनों भुजाएँ मोटी, कठोर और लम्बी हैं, दोनों करतल कमल-चिह्नसे अङ्कित हैं तथा उसका मस्तक छत्रके समान सुशोभित है। उसके बाल काले तथा घुँघराले हैं, दोनों कर्ण मांसल हैं, नासिका सुडौल है, उसके हाथों एवं पैरोंकी अँगुलियाँ सुन्दर पर्वयुक्त (पोरवाली) और लम्बी हैं और उसके दाँत श्वेत हैं॥ ४८—५१॥

[तपतीने आगे कहा—] उस महापराक्रमी राजपुत्रके ललाट, कंधे, कपोल (गाल), ग्रीवा, कमर तथा जाँघे—ये छः अङ्ग ऊँचे (सुडौल) हैं, नाभि, मध्य तथा हँसुली—ये तीन अङ्ग गम्भीर हैं और उसकी दोनों भुजाएँ तथा अण्डकोष—ये तीन अङ्ग लम्बे हैं। दोनों नेत्र, अधर, दोनों हाथ, दोनों पैर तथा नख—ये पाँचों लाल वर्णवाले हैं। केश, पक्ष्म (बरौनी) और कनीनिका (आँखकी पुतली)—ये चार अङ्ग कृष्ण हैं, दोनों भौंहें, आँखके दोनों कोर तथा दोनों कान झुके हुए हैं, दाँत तथा नेत्र दो अङ्ग श्वेत वर्णके हैं, केश, मुख तथा

ददस्व मां नाथ तपस्विनेऽस्मै
गुणोपपन्नाय समीहिताय।
नेहान्यकामां प्रवदन्ति सन्तो
दातुं तथान्यस्य विभो क्षमस्व॥ ५४

देवदेव उवाच

इत्येवमुक्तः सवितुश्च पुत्र्या
ऋषिस्तदा ध्यानपरो बभूव।
ज्ञात्वा स तत्रार्कसुतां सकामां
मुदा युतो वाक्यमिदं जगाद॥ ५५
स एव पुत्रि नृपतेस्तनूजो
दृष्टः पुरा कामयसे यमद्य।
स एव चायाति ममाश्रमं वै
ऋक्षात्मजः संवरणो हि नाम्ना॥ ५६
अथाजगाम स नृपस्य पुत्र-
स्तमाश्रमं ब्राह्मणपुंगवस्य।
दृष्ट्वा वसिष्ठं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
स्थितस्त्वपश्यत् तपतीं नरेन्द्रः॥ ५७
दृष्ट्वा च तां पद्मविशालनेत्रां
तां पूर्वदृष्टामिति चिन्तयित्वा।
पप्रच्छ केयं ललना द्विजेन्द्र
स वारुणिः प्राह नराधिपेन्द्रम्॥ ५८
इयं विवस्वद्दुहिता नरेन्द्र
नाम्ना प्रसिद्धा तपती पृथिव्याम्।
मया तवार्थाय दिवाकरोऽर्थितः
प्रादान्मया त्वाश्रममानिनिन्ये॥ ५९
तस्मात् समुत्तिष्ठ नरेन्द्र देव्याः
पाणिं तपत्या विधिवद् गृहाण।
इत्येवमुक्तो नृपतिः प्रहृष्टो
जग्राह पाणिं विधिवत् तपत्याः॥ ६०
सा तं पतिं प्राप्य मनोऽभिरामं
सूर्यात्मजा शक्रसमप्रभावम्।
रराम तन्वी भवनोत्तमेषु
यथा महेन्द्रं दिवि दैत्यकन्या॥ ६१

दोनों कपोल—ये चार अङ्ग सुगन्धवाले हैं। उनके नेत्र, मुख-विवर, मुखमण्डल, जिह्वा, ओष्ठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर—ये दस अङ्ग कमलके समान हैं भगवन्! मैंने खूब सोच-विचारकर पृथ्वीपर उस राजपुत्रको पहले ही पतिरूपसे वरण कर लिया है। प्रभो! मुझे क्षमा करें। आप गुणोंसे युक्त (मेरी) इच्छाके अनुकूल तथा वाञ्छित उस तपस्वीको मुझे दे दें; क्योंकि सन्तोंका यह कहना है कि अन्यकी कामना करनेवाली कन्याको किसी औरको नहीं देना चाहिये॥ ५२—५४॥

(देवदेव भगवान् विष्णु बोले)—फिर सूर्यपुत्री तपतीके ऐसा कहनेपर वसिष्ठजी ध्यानमें मग्न हो गये और तपतीको उस कुमारमें आसक्त समझकर प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने यह बात कही—पुत्रि! जिस राजपुत्रका तुमने पहले दर्शन किया था और जिसकी कामना तुम आज कर रही हो, वह ऋक्षका पुत्र (राजा) संवरण ही है। वह आज मेरे आश्रममें आ रहा है। उसके पश्चात् वह राजकुमार भी ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीके आश्रममें आया। उस राजाने वसिष्ठको देखकर सिर झुकाकर प्रणाम किया; बैठनेपर तपतीको भी देखा। खिले कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली उस तपतीको देखकर उसने सोचा कि इसे मैंने पहले भी देखा है। (तब) उसने पूछा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! यह सुन्दर स्त्री कौन है? इसपर वसिष्ठजीने राजश्रेष्ठ संवरणसे कहा—॥ ५५—५८॥

नरेन्द्र! पृथ्वीमें तपती नामसे प्रसिद्ध यह सूर्यकी पुत्री है। मैंने तुम्हारे ही लिये सूर्यसे इसकी याचना की थी और उन्होंने तुम्हारे लिये इसे मुझे सौंपा था। मैं तुम्हारे लिये ही इसे आश्रममें लाया हूँ, अतः नरेन्द्र! उठो एवं विधिवत् इस सूर्यपुत्री तपतीका पाणिग्रहण करो।' [वसिष्ठजीके]—ऐसा कहनेपर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तपतीका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। सूर्यकी तनया तपती भी इन्द्रके तुल्य प्रभावशाली उस सुन्दर पतिको पाकर [अत्यन्त] प्रसन्न हुई। वह उत्तम महलोंमें उसके साथ इस प्रकार विहार करने लगी, जैसे इन्द्रको पाकर स्वर्गमें शची विहार करती है॥ ५९—६१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २१॥

कुरुकी कथा, कुरुक्षेत्रका निर्माण प्रसङ्ग और पृथूदक तीर्थका माहात्म्य

देवदेव उवाच

तस्यां सपत्न्यां नरसत्तमेन
जातः सुतः पार्थिवलक्षणस्तु ।
स जातकर्मादिभिरेव संस्कृतो
विवर्द्धताज्येन हुतो यथाऽग्निः ॥ १
कृतोऽस्य चूडाकरणश्च देवा
विप्रेण मित्रावरुणात्मजेन ।
नवाब्दिकस्य व्रतबन्धनं च
वेदे च शास्त्रे विधिपारगोऽभूत् ॥ २
ततश्चतुःषड्भिरपीह वर्षैः
सर्वज्ञतामभ्यगमत् ततोऽसौ
ख्यातः पृथिव्यां पुरुषोत्तमोऽसौ
नाम्ना कुरुः संवरणस्य पुत्रः ॥ ३
ततो नरपतिर्दृष्ट्वा धार्मिकं तनयं शुभम् ।
दारक्रियार्थमकरोद् यत्नं शुभकुले ततः ॥ ४
सौदामिनीं सुदाम्नस्तु सुतां रूपाधिकां नृपः ।
कुरोरर्थाय वृतवान् स प्रादात् कुरवेऽपि ताम् ॥ ५

स तां नृपसुतां लब्ध्वा धर्मार्थावविरोधयन् ।
रेमे तन्व्या सह तया पौलोम्या मघवानिव ॥ ६

ततो नरपतिः पुत्रं राज्यभारक्षमं बली ।
विदित्वा यौवराज्याय विधानेनाभ्यषेचयत् ॥ ७

ततो राज्येऽभिषिक्तस्तु कुरुः पित्रा निजे पदे ।
पालयामास स महीं पुत्रवच्च स्वयं प्रजाः ॥ ८
स एव क्षेत्रपालोऽभूत् पशुपालः स एव हि ।
स सर्वपालकश्चासीत् प्रजापालो महाबलः ॥ ९

ततोऽस्य बुद्धिरुत्पन्ना कीर्तिर्लोके गरीयसी ।
यावत्कीर्तिः सुसंस्था हि तावद्वासः सुरैः सह ॥ १०

देवोंके भी देव भगवान् विष्णुने कहा—उस तपतीके गर्भसे मनुष्योंमें श्रेष्ठ संवरणके द्वारा राजलक्षणोंवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह जातकर्म आदि संस्कारोंसे संस्कृत होकर इस प्रकार बढ़ने लगा जैसे घीकी आहुति डालनेसे अग्नि बढ़ती है। देवगण! मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठजीने उसका (यथासमय) चौल-संस्कार कराया। नवें वर्षमें उसका उपनयन-संस्कार हुआ। फिर वह (क्रम क्रमसे अध्ययन कर) वेद तथा शास्त्रोंका पारगामी विद्वान् हो गया एवं चौबीस वर्षोंमें तो फिर वह सर्वज्ञ-सा हो गया। पुरुषश्रेष्ठ संवरणका वह पुत्र इस भूभागपर 'कुरु' नामसे प्रसिद्ध हुआ। तब राजा (उस) कल्याणकारी अपने धार्मिक पुत्रको (उपयुक्त अवस्थामें आये हुए) देखकर किसी उत्तम कुलमें उसके विवाहका यत्न करने लगे ॥ १—४ ॥

राजाने कुरुके लिये सुन्दर स्वरूपवाली सुदामाकी पुत्री सौदामिनीको चुना और सुदामा राजाने भी उसे कुरुको विधिवत् प्रदान कर दिया। उस राजकुमारीको पाकर वह (कुरु) धर्म और अर्थका (यथावत्) पालन करते हुए उस तन्वङ्गी अर्थात् कृशाङ्गीके साथ गार्हस्थ्य धर्ममें वैसे ही रहने लगे, जैसे पौलोमी (शची)-के साथ इन्द्र दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करते (हुए रहते) हैं। उसके बाद बलवान् राजाने राज्य-भारके वहन करनेमें—राज्यकार्य संचालनमें—उसे समर्थ जानकर विधिपूर्वक युवराज-पदपर अभिषिक्त कर दिया। तब पिताके द्वारा अपने राज्यपदपर अभिषिक्त होकर कुरु औरस पुत्रकी भाँति अपनी प्रजाका और पृथ्वीका पालन करने लगे ॥ ५—८ ॥

(प्रजा और पृथ्वीके पालनमें लगे) वे राजकुमार कुरु 'क्षेत्रपाल' तथा 'पशुपाल' भी हुए। महाबली वे सर्वपालक एवं प्रजापालक भी हुए। फिर उन्होंने सोचा कि संसारमें यश ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है (उसे प्राप्त करना चाहिये), क्योंकि जबतक संसारमें कीर्ति भलीभाँति स्थित रहती है, तबतक मनुष्य देवताओंके साथ निवास करता है।

स त्वेवं नृपतिश्रेष्ठो याथातथ्यमवेक्ष्य च।
विचचार महीं सर्वां कीर्त्यर्थं तु नराधिपः॥ ११
ततो द्वैतवनं नाम पुण्यं लोकेश्वरो बली।
तदासाद्य सुसंतुष्टो विवेशाभ्यन्तरं ततः॥ १२

इस प्रकार यथार्थताका विचार कर वे राजा यशः प्राप्तिके लिये समस्त पृथ्वीपर विचरण करने लगे। इसी सिलसिलेमें वे बलशाली राजा पवित्र द्वैतवन पहुँचे एवं पूर्ण सुसंतुष्ट होकर उसके भीतर प्रविष्ट हो गये॥ ९—१२॥

तत्र देवीं ददर्शाथ पुण्यां पापविमोचनीम्।
प्लक्षजां ब्रह्मणः पुत्रीं हरिजिह्वां सरस्वतीम्॥ १३
सुदर्शनस्य जननीं ह्रदं कृत्वा सुविस्तरम्।
स्थितां भगवतीं कूले तीर्थकोटिभिराप्लुताम्॥ १४
तस्यास्तज्जलमीक्ष्यैव स्नात्वा प्रीतोऽभवन्नृपः।
समाजगाम च पुनर्ब्रह्मणो वेदिमुत्तराम्॥ १५
समन्तपञ्चकं नाम धर्मस्थानमनुत्तमम्।
आसमन्ताद् योजनानि पञ्च पञ्च च सर्वतः॥ १६

[प्रविष्ट होनेके बाद राजाने] वहाँपर पापनाशिनी उस पवित्र सरस्वती नदीको देखा, जो पर्कटि (पाकड़) वृक्षसे उत्पन्न ब्रह्माकी पुत्री है। वह हरिजिह्वा, ब्रह्मपुत्री और सुदर्शन-जननी नामसे भी प्रसिद्ध है। वह सुविस्तृत ह्रद (बड़ा ताल या झील) में स्थित है। उसके तटपर करोड़ों तीर्थ हैं। उसके जलको देखते ही राजाको उसमें स्नान करनेकी इच्छा हुई। उन्होंने स्नान किया और बड़े प्रसन्न हुए। फिर वे उत्तर दिशामें स्थित ब्रह्माकी समन्तपञ्चक वेदीपर गये। वह समन्तपञ्चक नामक धर्मस्थान चारों ओर पाँच-पाँच योजनतक फैला हुआ है॥ १३—१६॥

देवा ऊचुः

कियन्त्यो वेदयः सन्ति ब्रह्मणः पुरुषोत्तम।
येनोत्तरतया वेदिर्गदिता सर्वपञ्चका[1]॥ १७

देवताओंने पूछा—पुरुषोत्तम! ब्रह्माकी कितनी वेदियाँ हैं? क्योंकि आपने इस सर्वपञ्चक वेदीको उत्तर वेदी (अन्य दिशा-सापेक्ष शब्द 'उत्तर'से विशिष्ट) कहा है॥ १७॥

देवदेव उवाच

वेदयो लोकनाथस्य पञ्च धर्मस्य सेतवः।
यासु यष्टं सुरेशेन लोकनाथेन शम्भुना॥ १८
प्रयागो मध्यमा वेदिः पूर्वा वेदिर्गयाशिरः।
विरजा दक्षिणा वेदिरनन्तफलदायिनी॥ १९
प्रतीची पुष्करा वेदिस्त्रिभिः कुण्डैरलंकृता।
समन्तपञ्चका चोक्ता वेदिरेवोत्तराऽव्यया॥ २०
तममन्यत राजर्षिरिदं क्षेत्रं महाफलम्।
करिष्यामि कृषिष्यामि सर्वान् कामान् यथेप्सितान्॥ २१

[भगवान् विष्णु बोले]—लोकोंके स्वामी ब्रह्माकी पाँच वेदियाँ धर्म-सेतुके सदृश हैं, जिनपर देवाधिदेव विश्वेश्वर श्रीशम्भुने यज्ञ किया था। प्रयाग मध्यवेदी है, गया पूर्ववेदी और अनन्त फलदायिनी जगन्नाथपुरी दक्षिणवेदी है। (इसी प्रकार) तीन कुण्डोंसे अलंकृत पुष्करक्षेत्र पश्चिम वेदी है और अव्यय समन्तपञ्चक उत्तर वेदी है। राजर्षि कुरुने सोचा कि इस (समन्तपञ्चक) क्षेत्रको महाफलदायी करूँगा (बनाऊँगा) और यहीं समस्त मनोरथों (कामनाओं)-की खेती करूँगा॥ १८—२१॥

इति संचिन्त्य मनसा त्यक्त्वा स्यन्दनमुत्तमम्।
चक्रे कीर्त्यर्थमतुलं संस्थानं पार्थिवर्षभः॥ २२

अपने मनमें इस प्रकार विचारकर वे राजाओंमें शिरोमणि कुरु रथसे उतर पड़े एवं उन्होंने अपनी कीर्तिके लिये अनुपम स्थानका निर्माण किया। उन

१-समन्तपञ्चक और सर्वपञ्चक समानार्थी शब्द हैं; क्योंकि 'सम' और 'सर्व' दोनों सर्ववाची शब्द हैं, अतः दोनों शब्दोंका अर्थ एक ही है। इसमें पाठभेदसे भ्रम नहीं होना चाहिये।

कृत्वा सीरं स सौवर्णं गृह्य रुद्रवृषं प्रभुः।
पौण्ड्रकं याम्यमहिषं स्वयं कर्षितुमुद्यतः॥ २३

तं कर्षन्तं नरवरं समभ्येत्य शतक्रतुः।
प्रोवाच राजन् किमिदं भवान् कर्तुमिहोद्यतः॥ २४

राजाऽब्रवीत् सुरवरं तपः सत्यं क्षमां दयाम्।
कृषामि शौचं दानं च योगं च ब्रह्मचारिताम्॥ २५

तस्योवाच हरिर्देवः कस्माद्बीजो नरेश्वर।
लब्धोऽष्टाङ्गेति सहसा अवहस्य गतस्ततः॥ २६

गतेऽपि शक्रे राजर्षिरहन्यहनि सीरधृक्।
कृषतेऽन्यान् समन्ताच्च सप्तक्रोशान् महीपतिः॥ २७

ततोऽहमब्रुवं गत्वा कुरो किमिदमित्यथ।
तदाऽष्टाङ्गं महाधर्मं समाख्यातं नृपेण हि॥ २८

ततो मयाऽस्य गदितं नृप बीजं क्व तिष्ठति।
स चाह मम देहस्थं बीजं तमहमब्रुवम्।
देह्यहं वापयिष्यामि सीरं कृषतु वै भवान्॥ २९

ततो नृपतिना बाहुर्दक्षिणः प्रसृतः कृतः।
प्रसृतं तं भुजं दृष्ट्वा मया चक्रेण वेगतः॥ ३०

सहस्रधा ततश्छिन्न्वा दत्तो युष्माकमेव हि।
ततः सव्यो भुजो राज्ञा दत्तश्छिन्नोऽप्यसौ मया॥ ३१

तथैवोरुयुगं प्रादान्मया छिन्नौ च तावुभौ।
ततः स मे शिरः प्रादात् तेन प्रीतोऽस्मि तस्य च।
वरदोऽस्मीत्यथेत्युक्ते कुरुर्वरमयाचत॥ ३२

कुरुरुवाच

यावदेतन्मया कृष्टं धर्मक्षेत्रं तदस्तु च।
स्नातानां च मृतानां च महापुण्यफलं त्विह॥ ३३

उपवासं च दानं च स्नानं जप्यं च माधव।
होमयज्ञादिकं चान्यच्छुभं वाप्यशुभं विभो॥ ३४

त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश शङ्खचक्रगदाधर।
अक्षयं प्रवरे क्षेत्रे भवत्वत्र महाफलम्॥ ३५

तथा भवान् सुरैः सार्धं समं देवेन शूलिना।
वस त्वं पुण्डरीकाक्ष मन्नामव्यञ्जकेऽच्युत।
इत्येवमुक्तस्तेनाहं राज्ञा बाढमुवाच तम्॥ ३६

राजाने सुवर्णमय हल बनवाकर उसमें शङ्करके बैल एवं यमराजके पौण्ड्रक नामक भैंसेको नाँधकर स्वयं जोतनेके लिये तैयार हुए। इसपर इन्द्रने उनके पास जाकर कहा—राजन्! आप यहाँ यह क्या करनेके लिये उद्यत हुए हैं? राजा बोले—मैं यहाँ तप, सत्य, क्षमा, दया, शौच, दान, योग और ब्रह्मचर्य—इन अष्टाङ्गोंकी खेती कर रहा हूँ॥ २२—२५॥

इसपर इन्द्र उनसे बोले—नरेश्वर! आपने (कृषिके लिये साधनभूत) हल और बीज कहाँसे प्राप्त किये हैं? यह कहते हुए उपहास कर इन्द्र वहाँसे शीघ्र ही चले गये। इन्द्रके चले जानेपर भी राजा प्रतिदिन हल लेकर चारों ओर सात कोसोंतक पृथ्वी जोतते रहे। तब मैंने (विष्णुने) उनसे जाकर कहा—कुरु! तुम यह क्या कर रहे हो? (इसपर) राजाने कहा—मैं (पूर्वोक्त) अष्टाङ्ग महाधर्मोंकी खेती कर रहा हूँ। फिर मैंने उनसे पूछा—राजन्! बीज कहाँ है? राजाने कहा—बीज मेरे शरीरमें है। मैंने उनसे कहा—उसे मुझे दे दो। मैं (उसे) बोऊँगा, तुम हल चलाओ। तब राजाने अपना दाहिना हाथ फैला दिया। फैलाये हुए हाथको देखकर मैंने चक्रसे शीघ्र ही उसके हजारों टुकड़े कर डाले और उन टुकड़ोंको तुम देवताओंको दे दिया। उसके बाद राजाने वाम बाहु दिया और उसे भी मैंने काट दिया। इसी प्रकार उसने दोनों ऊरुओंको दिया। उन दोनोंको भी मैंने काट दिया। तब उसने अपना मस्तक दिया, जिससे मैं उसके ऊपर प्रसन्न हो गया और कहा—तुम्हें मैं वर दूँगा। मेरे ऐसा कहनेपर कुरुने (मुझसे) वर माँगा—॥ २६—३२॥

कुरुने कहा—जितने स्थानको मैंने जोता है वह धर्मक्षेत्र हो जाय और यहाँ स्नान करनेवालों एवं मरनेवालोंको महापुण्यकी प्राप्ति हो। माधव, विभो! शङ्खचक्रगदाधारी हृषीकेश! यहाँ किये गये उपवास, स्नान, दान, जप, हवन, यज्ञ आदि तथा अन्य शुभ या अशुभ कर्म भी इस श्रेष्ठ क्षेत्रमें आपकी कृपासे अक्षय एवं महान् फल देनेवाले हों तथा हे पुण्डरीकाक्ष! हे अच्युत! मेरे नामके व्यञ्जक (प्रकाशक) इस कुरुक्षेत्रमें आप सभी देवताओं एवं शिवजीके साथ निवास करें। राजाके ऐसा कहनेपर मैंने उनसे कहा—बहुत

तथा च त्वं दिव्यवपुर्भव भूयो महीपते।
तथाऽन्तकाले मामेव लयमेष्यसि सुव्रत॥ ३७
कीर्तिश्च शाश्वती तुभ्यं भविष्यति न संशयः।
तत्रैव याजका यज्ञान् यजिष्यन्ति सहस्रशः॥ ३८
तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं ददौ स पुरुषोत्तमः।
यक्षं च चन्द्रनामानं वासुकिं चापि पन्नगम्॥ ३९
विद्याधरं शङ्कुकर्णं सुकेशिं राक्षसेश्वरम्।
अजावनं च नृपतिं महादेवं च पावकम्॥ ४०
एतानि सर्वतोऽभ्येत्य रक्षन्ति कुरुजाङ्गलम्।
अमीषां बलिनोऽन्ये च भृत्याश्चैवानुयायिनः॥ ४१
अष्टौ सहस्राणि धनुर्धराणां
ये वारयन्तीह सुदुष्कृतान् वै।
स्नातुं न यच्छन्ति महोग्ररूपा-
स्त्वन्यस्य भूताः सचराचराणाम्॥ ४२
तस्यैव मध्ये बहुपुण्य उक्तः
पृथूदकः पापहरः शिवश्च।
पुण्या नदी प्राङ्मुखतां प्रयाता
यत्रौघयुक्तस्य शुभा जलाढ्या॥ ४३
पूर्वं प्रजेयं प्रपितामहेन
सृष्टा समं भूतगणैः समस्तैः।
मही जलं वह्निसमीरमेव
खं त्वेवमादौ विबभौ पृथूदकः॥ ४४
तथा च सर्वाणि महार्णवानि
तीर्थानि नद्यः स्रवणाः सरांसि।
संनिर्मितानीह महाभुजेन
तच्चैक्यमागात् सलिलं महीषु॥ ४५

देवदेव उवाच

सरस्वतीदृषद्वत्योरन्तरे कुरुजाङ्गले।
मुनिप्रवरमासीनं पुराणं लोमहर्षणम्।
अपृच्छन्त द्विजवराः प्रभावं सरसस्तदा॥ ४६
प्रमाणं सरसो ब्रूहि तीर्थानां च विशेषतः।
देवतानां च माहात्म्यमुत्पत्तिं वामनस्य च॥ ४७
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां रोमहर्षसमन्वितः।
प्रणिपत्य पुराणर्षिरिदं वचनमब्रवीत्॥ ४८

अच्छा, ऐसा ही होगा राजन्! तुम पुनः दिव्य शरीरवाले हो जाओ तथा हे सुव्रत! (दृढ़तासे व्रतका सुष्ठु पालन करनेवाले) अन्तकालमें तुम मुझमें ही लीन हो जाओगे॥ ३३-३७॥

[भगवान् विष्णुने आगे कहा—] निःसंदेह तुम्हारी कीर्ति सदा रहनेवाली होगी। यहाँपर यज्ञ करनेवाले व्यक्ति (यजमान) यज्ञ करेंगे। फिर, उस क्षेत्रकी रक्षा करनेके लिये उन पुरुषोत्तम भगवान्‌ने राजाको चन्द्रनामक यक्ष, वासुकि नामक सर्प, शङ्कुकर्ण नामक विद्याधर सुकेशी नामक राक्षसेश्वर, अजावन नामक राजा और महादेव नामक अग्निको दे दिया। ये सभी तथा इनके अन्य बली भृत्य एवं अनुयायी यहाँ आकर कुरुजाङ्गलकी सब ओरसे रक्षा करते हैं॥ ३८—४१॥

आठ हजार धनुषधारी, जो पापियोंको यहाँसे हटाते रहते हैं, वे उग्र रूप धारणकर चराचरके दूसरे भूतगण (पापियों) को स्नान नहीं करने देते। उसी (कुरुजाङ्गल) के मध्य पाप दूर करनेवाला एवं अति पवित्र कल्याणकारी पृथूदक (पोहोआ) नामक तीर्थ है जहाँ शुभ जलसे पूर्ण एक पवित्र नदी पूर्वकी ओर बहती है। इसे प्रपितामह ब्रह्माने सृष्टिके आदिमें पृथ्वी जल, अग्नि, पवन और आकाशादि समस्त भूतोंके साथ ही रचा था, महाबाहु ब्रह्माने पृथ्वीपर जिन महासमुद्रों तीर्थों नदियों झरनों एवं सरोवरोंकी रचना की उन सभीके जल उसमें एकत्र प्राप्त हैं॥ ४२—४५॥

[यहाँसे कुरुक्षेत्र और उसके सरोवरका माहात्म्य कहते हैं—]

देवदेव भगवान् विष्णु बोले—पहले समयमें ब्राह्मणोंने सरस्वती और दृषद्वती (घग्गर) के बीचमें स्थित कुरुक्षेत्रमें आसीन मुनिप्रवर वृद्ध लोमहर्षणसे वहाँ स्थित सरोवरकी महिमा पूछी और इस सरोवरके विस्तार, विशेषतः तीर्थों और देवताओंके माहात्म्य एवं वामनके प्रादुर्भावकी कथा कहनेकी प्रार्थना की। उनके इस वचनको सुनकर रोमाञ्चित होते हुए पौराणिक ऋषि लोमहर्षण उन्हें प्रणाम कर (फिर) इस प्रकार बोले—॥ ४६—४८॥

लोमहर्षण उवाच

ब्रह्माणमग्र्यं कमलासनस्थं
विष्णुं तथा लक्ष्मिसमन्वितं च।
रुद्रं च देवं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
तीर्थं महद् ब्रह्मसरः प्रवक्ष्ये॥ ४९

रन्तुकादौजसं यावत् पावनाच्च चतुर्मुखम्।
सरः संनिहितं प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु॥ ५०

कलिद्वापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना।
सरःप्रमाणं यत्प्रोक्तं तच्छृणुध्वं द्विजोत्तमा॥ ५१

विश्वेश्वरादस्थिपुरं तथा कन्या जरद्गवी।
यावदोघवती प्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः॥ ५२

मया श्रुतं प्रमाणं यत् पठ्यमानं तु वामने।
तच्छृणुध्वं द्विजश्रेष्ठाः पुण्यं वृद्धिकरं महत्॥ ५३

विश्वेश्वराद् देववरी नृपावनात् सरस्वती।
सरः संनिहितं ज्ञेयं समन्तादर्धयोजनम्॥ ५४

एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः।
सेवन्ते मुक्तिकामार्थं स्वर्गार्थं चापरे स्थिताः॥ ५५

ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टिकामेन योगिना।
विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम्॥ ५६

रुद्रेण च सरोमध्यं प्रविष्टेन महात्मना।
सेव्य तीर्थं महातेजाः स्थाणुत्वं प्राप्तवान् हरः॥ ५७

आद्यैषा ब्रह्मणो वेदिस्ततो रामह्रदः स्मृतः।
कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्॥ ५८

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
यदन्तरं रामह्रदाच्चतुर्मुखम्।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते॥ ५९

लोमहर्षणजी बोले—सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले कमलासन ब्रह्मा, लक्ष्मीके सहित विष्णु और महादेव रुद्रको सिर झुकाकर प्रणाम करके मैं महान् ब्रह्मसर तीर्थका वर्णन करता हूँ। ब्रह्माने पहले कहा था कि यह 'संनिहित' सरोवर 'रन्तुक' नामक स्थानसे लेकर 'औजस' नामक स्थानतक तथा 'पावन' से 'चतुर्मुख' तक फैला हुआ है, ब्राह्मणश्रेष्ठो! किंतु अब कलि और द्वापरके मध्यमें महात्मा व्यासने सरोवरका जो (वर्तमान) प्रमाण बतलाया है उसे आपलोग सुनें। 'विश्वेश्वर' स्थानसे 'अस्थिपुर' तक और 'वृद्ध-कन्या' से लेकर 'ओघवती' नदीतक यह सरोवर स्थित है॥ ४९—५२॥

ब्राह्मणश्रेष्ठो! मैंने वामनपुराणमें वर्णित जो प्रमाण सुना है, आप उस पवित्र एवं कल्याणकारी प्रमाणको सुनें। विश्वेश्वर स्थानसे देववरातक एवं नृपावनसे सरस्वतीतक चतुर्दिक् आधे योजन (दो कोसों) में फैले इस संनिहित सरको समझना चाहिये। मोक्षकी इच्छासे आये हुए देवता एवं ऋषिगण इसका आश्रय लेकर सदा इसका सेवन करते हैं तथा अन्य लोग स्वर्गके निमित्त यहाँ रहते हैं। योगीश्वर ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छासे एवं भगवान् श्रीविष्णुने जगत्के पालनकी कामनासे इसका आश्रय लिया था॥ ५३—५६॥

(इसी प्रकार) सरोवरके मध्यमें पैठकर महात्मा रुद्रने भी इस तीर्थका सेवन किया, जिससे महातेजस्वी (उन) हरको स्थाणुत्व (स्थिरत्व) प्राप्त हुआ। आदिमें यह 'ब्रह्मवेदी' कहा गया था, किंतु आगे चलकर इसका नाम 'रामह्रद' हुआ। इसके बाद राजर्षि कुरुद्वारा जोते जानेसे इसका नाम 'कुरुक्षेत्र' पड़ा। तरन्तुक एवं अरन्तुक नामके स्थानोंका मध्य तथा रामह्रद एवं चतुर्मुखका मध्यभाग समन्तपञ्चक है, जो कुरुक्षेत्र कहा जाता है। इसे पितामहकी उत्तरवेदी भी कहते हैं॥ ५७—५९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

वामनचरितका उपक्रम, बलिका दैत्यराज्याधिपति होना और उनकी अतुल राज्य-लक्ष्मीका वर्णन

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि वामनमाहात्म्यमुत्पत्तिं च विशेषतः।
यथा बलिर्नियमितो दत्तं राज्यं शतक्रतोः॥ १

ऋषियोंने कहा—(कृपया आप) वामनके माहात्म्य और विशेषकर उनकी उत्पत्तिका वर्णन (विस्तारसे) करें तथा यह भी बतलायें कि बलिको किस प्रकार बाँधकर इन्द्रको राज्य दिया गया॥ १॥

लोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं मुनयः प्रीता वामनस्य महात्मनः।
उत्पत्तिं च प्रभावं च निवासं कुरुजाङ्गले॥ २

तदेव वंशं दैत्यानां शृणुध्वं द्विजसत्तमाः।
यस्य वंशे समभवद् बलिर्वैरोचनिः पुरा॥ ३

दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुः पुरा।
तस्य पुत्रो महातेजाः प्रह्लादो नाम दानवः॥ ४

तस्माद् विरोचनो जज्ञे बलिर्जज्ञे विरोचनात्।
हते हिरण्यकशिपौ देवानुत्साद्य सर्वतः॥ ५

राज्यं कृतं च तेनेष्टं त्रैलोक्ये सचराचरे।
कृतयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यतां गते॥ ६

लोमहर्षणने कहा—मुनियो! आपलोग प्रसन्नतापूर्वक महात्मा वामनकी उत्पत्ति, उनका प्रभाव और कुरुजाङ्गल स्थानमें उनके निवासका वर्णन सुनें! द्विजश्रेष्ठो! आपलोग दैत्योंके उस वंशके सम्बन्धमें भी सुनें, जिस वंशमें प्राचीनकालमें विरोचनके पुत्र बलि उत्पन्न हुए थे। पहले समयमें दैत्योंका आदिपुरुष हिरण्यकशिपु था। उसका प्रह्लाद नामक पुत्र अत्यन्त तेजस्वी दानव था। उससे विरोचन उत्पन्न हुआ और विरोचनसे बलि। हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर बलिने सभी स्थानोंसे देवताओंको खदेड़ दिया और वह चराचरसहित तीनों लोकोंका राज्य स्वच्छन्दतासे करने लगा। (विरोधमें) देवताओंके (बहुत) प्रयत्न करते रहनेपर भी तीनों लोक दैत्योंके अधीन हो ही गये (एवं त्रैलोक्यपर देवताओंका अधिकार नहीं रह गया)॥ २—६॥

जये तथा बलवतोर्मयशम्बरयोस्तथा।
शुद्धासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि॥ ७

संप्रवृत्ते दैत्यपथे अयनस्थे दिवाकरे।
प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि॥ ८

दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते।
देवेषु मखशोभां च स्वर्गस्थां दर्शयत्सु च॥ ९

प्रकृतिस्थे ततो लोके वर्तमाने च सत्पथे।
अभावे सर्वपापानां धर्मभावे सदोत्थिते॥ १०

बलशाली मय और शम्बरकी विजय-वैजयन्ती फहराने लग गयी। धर्मकार्य सर्वत्र होने लग गये। फलतः दिशाएँ शुद्ध हो गयीं। सूर्य दैत्योंके मार्ग (दक्षिण अयन)-में चले गये। (दैत्योंके शासनमें) प्रह्लाद, शम्बर, मय तथा अनुह्लाद—ये सभी दैत्य सभी दिशाओंकी रक्षा करने लगे। आकाश भी दैत्योंसे रक्षित हो गया। देवगण स्वर्गमें होनेवाले यज्ञोंकी शोभा देखने लगे। सारा संसार प्रकृतिमें स्थित और (व्यवस्थित) हो गया तथा सभी सन्मार्गपर चलने लगे। सर्वत्र पापोंका अभाव और धर्म-भावका उत्कर्ष हो गया॥ ७—१०॥

लोमहर्षण उवाच

ब्रह्माणमग्र्यं कमलासनस्थं
विष्णुं तथा लक्ष्मिसमन्वितं च।
रुद्रं च देवं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
तीर्थं महद् ब्रह्मसरः प्रवक्ष्ये॥ ४९

रन्तुकादौजसं यावत् पावनाच्च चतुर्मुखम्।
सरः संनिहितं प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु॥ ५०

कलिद्वापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना।
सरःप्रमाणं यत्प्रोक्तं तच्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः॥ ५१

विश्वेश्वरादस्थिपुरं तथा कन्या जरद्गवी
यावदोघवती प्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः॥ ५२

मया श्रुतं प्रमाणं यत् पठ्यमानं तु वामने।
तच्छृणुध्वं द्विजश्रेष्ठाः पुण्यं वृद्धिकरं महत्॥ ५३

विश्वेश्वराद् देववरो नृपावनात् सरस्वती।
सरः संनिहितं ज्ञेयं समन्तादर्धयोजनम्॥ ५४

एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः।
सेवन्ते मुक्तिकामार्थं स्वर्गार्थं चापरे स्थिताः॥ ५५

ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टिकामेन योगिना।
विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम्॥ ५६

रुद्रेण च सरोमध्यं प्रविष्टेन महात्मना।
सेव्य तीर्थं महातेजाः स्थाणुत्वं प्राप्तवान् हरः॥ ५७

आद्यैषा ब्रह्मणो वेदिस्ततो रामह्रदः स्मृतः
कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्॥ ५८

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
यदन्तरं रामह्रदाच्चतुर्मुखम्
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते॥ ५९

लोमहर्षणजी बोले—सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले कमलासन ब्रह्मा, लक्ष्मीके सहित विष्णु और महादेव रुद्रको सिर झुकाकर प्रणाम करके मैं महान् ब्रह्मसर तीर्थका वर्णन करता हूँ। ब्रह्माने पहले कहा था कि वह 'संनिहित' सरोवर 'रन्तुक' नामक स्थानसे लेकर 'औजस' नामक स्थानतक तथा 'पावन'से 'चतुर्मुख' तक फैला हुआ है। ब्राह्मणश्रेष्ठो! किंतु अब कलि और द्वापरके मध्यमें महात्मा व्यासने सरोवरका जो (वर्तमान) प्रमाण बतलाया है उसे आपलोग सुनें। 'विश्वेश्वर' स्थानसे 'अस्थिपुर' तक और 'वृद्धा कन्या'से लेकर 'ओघवती' नदीतक यह सरोवर स्थित है॥ ४९—५२॥

ब्राह्मणश्रेष्ठो! मैंने वामनपुराणमें वर्णित जो प्रमाण सुना है, आप उस पवित्र एवं कल्याणकारी प्रमाणको सुनें। विश्वेश्वर स्थानसे देववरतक एवं नृपावनसे सरस्वतीतक चतुर्दिक् आधे योजन (दो कोसों)-में फैले इस संनिहित सरको समझना चाहिये। मोक्षकी इच्छासे आये हुए देवता एवं ऋषिगण इसका आश्रय लेकर सदा इसका सेवन करते हैं तथा अन्य लोग स्वर्गके निमित्त यहाँ रहते हैं। योगीश्वर ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छासे एवं भगवान् श्रीविष्णुने जगत्‌के पालनकी कामनासे इसका आश्रय लिया था॥ ५३—५६॥

(इसी प्रकार) सरोवरके मध्यमें पैठकर महात्मा रुद्रने भी इस तीर्थका सेवन किया, जिससे महातेजस्वी (उन) हरको स्थाणुत्व (स्थिरत्व) प्राप्त हुआ। आदिमें यह 'ब्रह्मवेदी' कहा गया था, किंतु आगे चलकर इसका नाम 'रामह्रद' हुआ। उसके बाद राजर्षि कुरुद्वारा जोते जानेसे इसका नाम 'कुरुक्षेत्र' पड़ा। तरन्तुक एवं अरन्तुक नामके स्थानोंका मध्य तथा रामह्रद एवं चतुर्मुखका मध्यभाग समन्तपञ्चक है, जो कुरुक्षेत्र कहा जाता है। इसे पितामहकी उत्तरवेदी भी कहते हैं॥ ५७—५९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

वामनचरितका उपक्रम, बलिका दैत्यराज्याधिपति होना और उनकी अतुल राज्य-लक्ष्मीका वर्णन

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि वामनमाहात्म्यमुत्पत्तिं च विशेषतः।
यथा बलिर्नियमितो दत्तं राज्यं शतक्रतोः॥ १

ऋषियोंने कहा—(कृपया आप) वामनके माहात्म्य और विशेषकर उनकी उत्पत्तिका वर्णन (विस्तारसे) करें तथा यह भी बतलायें कि बलिको किस प्रकार बाँधकर इन्द्रको राज्य दिया गया॥ १॥

लोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं मुनयः प्रीता वामनस्य महात्मनः।
उत्पत्तिं च प्रभावं च निवासं कुरुजाङ्गले॥ २

तदेव वंशं दैत्यानां शृणुध्वं द्विजसत्तमाः।
यस्य वंशे समभवद् बलिर्वैरोचनिः पुरा॥ ३

दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुः पुरा।
तस्य पुत्रो महातेजाः प्रह्लादो नाम दानवः॥ ४

तस्माद् विरोचनो जज्ञे बलिर्जज्ञे विरोचनात्।
हते हिरण्यकशिपौ देवानुत्साद्य सर्वतः॥ ५

राज्यं कृतं च तेनेष्टं त्रैलोक्ये सचराचरे।
कृतयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यतां गते॥ ६

लोमहर्षणने कहा—मुनियो! आपलोग प्रसन्नता-पूर्वक महात्मा वामनकी उत्पत्ति, उनका प्रभाव और कुरुजाङ्गल स्थानमें उनके निवासका वर्णन सुनें! द्विजश्रेष्ठो! आपलोग दैत्योंके उस वंशके सम्बन्धमें भी सुनें, जिस वंशमें प्राचीनकालमें विरोचनके पुत्र बलि उत्पन्न हुए थे। पहले समयमें दैत्योंका आदिपुरुष हिरण्यकशिपु था। उसका प्रह्लाद नामक पुत्र अत्यन्त तेजस्वी दानव था। उससे विरोचन उत्पन्न हुआ और विरोचनसे बलि। हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर बलिने सभी स्थानोंसे देवताओंको खदेड़ दिया और वह चराचरसहित तीनों लोकोंका राज्य स्वच्छन्दतासे करने लगा। (विरोधमें) देवताओंके (बहुत) प्रयत्न करते रहनेपर भी तीनों लोक दैत्योंके अधीन हो ही गये (एवं त्रैलोक्यपर देवताओंका अधिकार नहीं रह गया)॥ २—६॥

जये तथा बलवतोर्मयशम्बरयोस्तथा।
शुद्धासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि॥ ७

संप्रवृत्ते दैत्यपथे अयनस्थे दिवाकरे।
प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि॥ ८

दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते।
देवेषु मखशोभां च स्वर्गस्थां दर्शयत्सु च॥ ९

प्रकृतिस्थे ततो लोके वर्तमाने च सत्पथे।
अभावे सर्वपापानां धर्मभावे सदोत्थिते॥ १०

बलशाली मय और शम्बरकी विजय-वैजयन्ती फहराने लग गयी। धर्मकार्य सर्वत्र होने लग गये; फलतः दिशाएँ शुद्ध हो गयीं। सूर्य दैत्योंके मार्ग (दक्षिण अयन)-में चले गये। (दैत्योंके शासनमें) प्रह्लाद, शम्बर, मय तथा अनुह्लाद—ये सभी दैत्य सभी दिशाओंकी रक्षा करने लगे; आकाश भी दैत्योंसे रक्षित हो गया। देवगण स्वर्गमें होनेवाले यज्ञोंकी शोभा देखने लगे। सारा संसार प्रकृतिमें स्थित और (व्यवस्थित) हो गया तथा सभी सन्मार्गपर चलने लगे। सर्वत्र पापोंका अभाव और धर्म-भावका उत्कर्ष हो गया॥ ७—१०॥

चतुष्पादे स्थिते धर्मे ह्यधर्मे पादविग्रहे।
प्रजापालनयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु।
स्वधर्मसंप्रयुक्तेषु तथाश्रमनिवासिषु॥ ११

अभिषिक्तो सुरैः सर्वैर्दैत्यराज्ये बलिस्तदा।
हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च॥ १२

अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मान्तरप्रभा।
पद्मोद्यतकरा देवी वरदा सुप्रवेशिनी॥ १३

फिर तो धर्म चारों चरणोंसे प्रतिष्ठित हो गया और अधर्म एक ही चरणपर स्थित रह गया। सभी राजा (भलीभाँति) प्रजापालन करते हुए सुशोभित होने लगे और सभी आश्रमोंके लोग अपने-अपने धर्मका पालन करने लगे। ऐसे समयमें असुरोंने बलिको दैत्यराज्यके पदपर अभिषिक्त कर दिया। असुरोंका समुदाय हर्षित होकर निनाद (जय-जयकार) करने लगा। इसके बाद कमलके भीतरी गोफाके समान कान्तिवाली वरदायिनी और सुन्दर सुवेशवाली श्रीलक्ष्मीदेवी हाथमें कमल लिये हुए बलिके समीप आयीं॥ ११—१३॥

श्रीरुवाच

बले बलवतां श्रेष्ठ दैत्यराज महाद्युते।
प्रीतास्मि तव भद्रं ते देवराजपराजये॥ १४

यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराज्यं पराजितम्।
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता॥ १५

नाश्चर्यं दानवव्याघ्र हिरण्यकशिपोः कुले।
प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मेदमीदृशम्॥ १६

विशेषितस्त्वया राजन् दैत्येन्द्रः प्रपितामहः।
येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम्॥ १७

लक्ष्मीने कहा—बलवानोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी दैत्यराज बलि! देवराजके पराजय हो जानेपर मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मङ्गल हो; क्योंकि तुमने संग्राममें पराक्रम दिखाकर देवोंके राज्यको जीत लिया है। इसलिये तुम्हारे श्रेष्ठ बलको देखकर मैं स्वयं आयी हूँ। दानव! असुरोंके स्वामी! हिरण्यकशिपुके कुलमें उत्पन्न हुए तुम्हारा यह कर्म ऐसा है—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। राजन्! आप दैत्यश्रेष्ठ अपने प्रपितामह हिरण्यकशिपुसे भी विशिष्ट (प्रभावशाली) हैं; क्योंकि आप पूरे तीनों लोकोंमें समृद्ध इस राज्यका भोग कर रहे हैं॥ १४—१७॥

एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यनृपं बलिम्।
प्रविष्टा वरदा सेव्या सर्वदेवमनोरमा॥ १८

तुष्टाश्च देव्यः प्रवराः ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च।
प्रभा धृतिः क्षमा भूतिर्ऋद्धिर्दिव्या महामतिः॥ १९

श्रुतिः स्मृतिरिडा कीर्तिः शान्तिः पुष्टिस्तथा क्रिया।
सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्तगीतविशारदाः॥ २०

प्रपद्यन्ते स्म दैत्येन्द्रं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
प्राप्तमैश्वर्यमतुलं बलिना ब्रह्मवादिना॥ २१

दैत्यराज बलिसे ऐसा कहनेके बाद सर्वदेवस्वरूपिणी एवं मनोहर रूपवाली सबकी सेव्य एवं (सबको) वर देनेवाली श्रीलक्ष्मी देवी राजा बलिमें प्रविष्ट हो गयीं। तब सभी श्रेष्ठ देवियाँ—ह्री, कीर्ति, द्युति, प्रभा, धृति, क्षमा, भूति, ऋद्धि, दिव्या, महामति, श्रुति, स्मृति, इडा, कीर्ति, शान्ति, पुष्टि, क्रिया और नृत्तगीतमें निपुण दिव्य अप्सराएँ भी प्रसन्न होकर दैत्येन्द्र (बलि)-का सेवन करने लगीं। इस प्रकार ब्रह्मवादी बलिने चर-अचरवाले त्रिलोकोंका अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया॥ १८—२१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

वामन-चरितके उपक्रममें देवताओंका कश्यपजीके साथ ब्रह्मलोकमें जाना

ऋषय ऊचुः

देवानां ब्रूहि नः कर्म यद्वृत्तास्ते पराजिताः।
कथं देवाधिदेवोऽसौ विष्णुर्वामनतां गतः॥ १

लोमहर्षण उवाच

बलिसंस्थं च त्रैलोक्यं दृष्ट्वा देवः पुरंदरः।
मेरुप्रस्थं ययौ शक्रः स्वमातुर्निलयं शुभम्॥ २

समीपं प्राप्य मातुश्च कथयामास तां गिरम्।
आदित्याश्च यथा युद्धे दानवेन पराजिताः॥ ३

अदितिरुवाच

यद्येवं पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे।
बलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्चैव मरुद्गणैः॥ ४

सहस्रशिरसा शक्यः केवलं हन्तुमाहवे।
तेनैकेन सहस्राक्ष न स ह्यन्येन शक्यते॥ ५

तद्वत् पृच्छामि पितरं कश्यपं ब्रह्मवादिनम्।
पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः॥ ६
ततोऽदित्या सह सुराः संप्राप्ताः कश्यपान्तिकम्।
तत्रापश्यन्त मारीचं मुनिं दीप्ततपोनिधिम्॥ ७
आद्यं देवगुरुं दिव्यं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसा।
तेजसा भास्कराकारं स्थितमग्निशिखोपमम्॥ ८
न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनाम्बरम्।
वल्कलाजिनसंवीतं प्रदीप्तमिव तेजसा॥ ९
हुताशमिव दीप्यन्तमाज्यगन्धपुरस्कृतम्।
स्वाध्यायवन्तं पितरं वपुष्मन्तमिवानलम्॥ १०
ब्रह्मवादिसत्यवादिसुरासुरगुरुं प्रभुम्।
ब्राह्मण्याऽप्रतिमे लक्ष्म्या कश्यपं दीप्ततेजसम्॥ ११

यः स्रष्टा सर्वलोकानां प्रजानां पतिरुत्तमः।
आत्मभावविशेषेण तृतीयो यः प्रजापतिः॥ १२

ऋषियोंने कहा—आप हमें यह बतलायें कि देवताओंने कौन-सा कर्म किया, जिससे प्रभावित होकर वे (दैत्य) पराजित हुए तथा देवाधिदेव भगवान् विष्णु कैसे वामन (बौना) बने॥ १॥

लोमहर्षणने कहा (उत्तर दिया)—इन्द्रदेवने जब तीनों लोकोंको बलिके अधिकारमें देखा तब वे मेरु (पर्वत)-पर स्थित (रहनेवाली) अपनी कल्याणमयी माताके घर गये। माताके समीप जाकर उन्होंने उनसे (मातासे) यह बात कही—जिससे देवगण युद्धमें दानव बलिसे पराजित हुए थे॥ २-३॥

माता अदितिने कहा—पुत्र! यदि ऐसी बात है तो तुमलोग सम्पूर्ण मरुद्गणोंके साथ मिलकर भी संग्राममें विरोचनके पुत्र बलिको नहीं मार सकते सहस्राक्ष! युद्धमें केवल हजारों सिरवाले (सहस्रशीर्षा) भगवान् विष्णु ही (उसे) मार सकते हैं। उनके सिवा किसी दूसरेसे वह नहीं मारा जा सकता। अतः इस विषयमें उस महान् आत्मा (महाबलवान्) बलि नामके दैत्यको पराजयके लिये मैं तुम्हारे पिता ब्रह्मवादी कश्यपसे (उपाय) पूछूँगी॥ ४—६॥

इस प्रकार माता अदितिके कहनेपर सभी देवता उनके साथ कश्यपजीके पास पहुँच गये। वहाँ (जाकर उन लोगोंने) तपस्याके धनी, मरीचिके पुत्र, आद्य एवं दिव्य पुरुष, देवताओंके गुरु, ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान और अपने तेजसे सूर्यके समान तेजस्वी, अग्निशिखाकी भाँति दीप्त, संन्यासीके रूपमें, तपोयुक्त वल्कल तथा मृगचर्म धारण किये हुए (आहुतिके) घीकी गन्धसे आप्यायित (वासित) अग्निके समान जलते हुए, स्वाध्यायमें लगे हुए मानो शरीरधारी अग्नि ही हों एवं ब्रह्मवादी, सत्यवादी देवों तथा दानवोंके गुरु, अनुपम ब्रह्मतेजसे पूर्ण एवं शोभासे दीप्त कश्यपजीको देखा॥ ७—११॥

वे (देवताओंके पिता श्रीकश्यपजी) सभी लोकोंके रचनेवाले श्रेष्ठ प्रजापति एवं आत्मभाव अर्थात् अध्यात्मतत्त्वकी विज्ञताकी विशिष्टताके कारण ऐसे लग

अथ प्रणम्य ते वीराः सहादित्या सुरर्षभाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माणमिव मानसाः ॥ १३

अजेयो युधि शक्रेण बलिर्दैत्यो बलाधिकः ।
तस्माद् विधत्त नः श्रेयो देवानां पुष्टिवर्धनम् ॥ १४

श्रुत्वा तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपः प्रभुः ।
अकरोद् गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत् ॥ १५

कश्यप उवाच

शक्र गच्छाम सदनं ब्रह्मणः परमाद्भुतम् ।
तथा पराजयं सर्वे ब्रह्मणः ख्यातुमुद्यताः ॥ १६

सहादित्या ततो देवा याताः काश्यपमाश्रमम् ।
प्रस्थिता ब्रह्मसदनं महर्षिगणसेवितम् ॥ १७

ते मुहूर्तेन संप्राप्ता ब्रह्मलोकं सुवर्चसः ।
दिव्यैः कामगमैर्यानैर्यथार्हैस्ते महाबलाः ॥ १८

ब्रह्माणं द्रष्टुमिच्छन्तस्तपोराशिनमव्ययम् ।
अध्यगच्छन्त विस्तीर्णां ब्रह्मणः परमां सभाम् ॥ १९

षट्पदोद्गीतमधुरां सामगैः समुदीरिताम् ।
श्रेयस्करीममित्रघ्नीं दृष्ट्वा संजहृषुस्तदा ॥ २०

ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रोक्ताः क्रमपदाक्षराः ।
शुश्रुवुर्विबुधव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु ॥ २१

यज्ञविद्यावेदविदः पदक्रमविदस्तथा ।
स्वरेण परमर्षीणां सा बभूव प्रणादिता ॥ २२

यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः ।
छन्दसां चैव चार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः ॥ २३

लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः स्वरमीरितम् ।
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रा नियताः शंसितव्रताः ॥ २४

जपहोमपरा मुख्या ददृशुः कश्यपात्मजाः ।
तस्यां सभायामास्ते स ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २५

सुरासुरगुरुः श्रीमान् विद्यया वेदमयया ।
उपासन्त च तत्रैव प्रजानां पतयः प्रभुम् ॥ २६

रहे थे जैसे तीसरे प्रजापति ही हों। फिर अदितिके साथ समस्त देववीर उन्हें प्रणाम कर उनसे हाथ जोड़कर ऐसे बोले जैसे ब्रह्मासे उनके मानस-पुत्र बोलते हैं—बलशाली दैत्यराज बलि युद्धमें इन्द्रसे अपराजेय हो गया है। अतः हम देवोंके सामर्थ्यकी पुष्टि-वृद्धिके लिये आप कल्याणकारी उपाय करें। उन पुत्रोंकी बातें सुनकर लोकोंको रचनेवाले सामर्थ्यशाली कश्यपने ब्रह्मलोकमें जानेका विचार किया ॥ १३—१५ ॥

(फिर) **कश्यपने कहा**— इन्द्र! हम सभी अपनी पराजयकी बात ब्रह्माजीसे कहनेके लिये तैयार होकर उनके परम अद्भुत लोकको चलें। कश्यपके इस प्रकार कहनेपर अदितिके साथ कश्यपके आश्रममें आये हुए सभी देवताओंने महर्षिगणोंसे सेवित ब्रह्मसदनकी ओर प्रस्थान किया। यथायोग्य इच्छाके अनुसार चलनेवाले दिव्य यानोंसे महाबली एवं तेजस्वी वे सभी देवता क्षणमात्रमें ही ब्रह्मलोकमें पहुँच गये और तब वे लोग तपोराशि अव्यय ब्रह्माको देखनेकी इच्छा करते हुए ब्रह्माकी विशाल परम श्रेष्ठ सभामें पहुँचे ॥ १६—१९ ॥

वे (देवतालोग) भ्रमरोंकी गुञ्जारसे गुञ्जित, सामगानसे मुखरित, कल्याणकी विधायिका और शत्रुओंका विनाश करनेवाली उस सभाको देखकर प्रसन्न हो गये। (उस स्थानपर) उन श्रेष्ठ देवगणोंने विस्तृत (विशाल) अनेक कर्मानुष्ठानोंके समय श्रेष्ठ ऋग्वेदियोंके द्वारा 'क्रमपदादि' (वेद पढ़नेकी विशिष्ट शैलियोंसे) उच्चरित ऋचाओं (वेदमन्त्रों)-को सुना। वह सभा यज्ञविद्याके ज्ञाता एवं 'पदक्रम' प्रभृति वेदपाठके ज्ञानवाले परमर्षियोंके उच्चारणकी ध्वनिसे प्रतिध्वनित हो रही थी। देवोंने वहाँ यज्ञके संस्तवोंके ज्ञाताओं, शिक्षाविदों और वेदमन्त्रोंके अर्थ जाननेवालों, समस्त विद्याओंमें पारङ्गत द्विजों एवं श्रेष्ठ लोकायतिकोंके (चार्वाकके मतानुयायियों) द्वारा उच्चरित स्वरको भी सुना। कश्यपके पुत्रोंने वहाँ सर्वत्र नियमपूर्वक तीर्थ-व्रतको धारण करनेवाले जप-होम करनेमें लगे हुए श्रेष्ठ विप्रोंको देखा। उसी सभामें लोक-पितामह ब्रह्मा विराजमान थे ॥ २०—२५ ॥

(उस) सभामें वेदमायी विद्यासे सम्पन्न, सुरों एवं असुरोंके गुरु (श्रीमान् ब्रह्माजी) भी उपस्थित थे। प्रजापतिगण उन (प्रभुता-सम्पन्न) प्रभुकी उपासना कर

दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमाः।
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा॥ २७
विद्यास्तथान्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च॥ २८
प्रकृतिश्च विकारश्च यच्चान्यत् कारणं महत्।
साङ्गोपाङ्गाश्च चत्वारो वेदा लोकपतिस्तथा॥ २९
नयाश्च क्रतवश्चैव सङ्कल्पः प्राण एव च।
एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपासते॥ ३०
अर्थो धर्मश्च कामश्च क्रोधो हर्षश्च नित्यशः।
शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्त्तोऽथ बुधस्तथा॥ ३१
शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः।
मरुतो विश्वकर्मा च वसवश्च द्विजोत्तमाः॥ ३२
दिवाकरश्च सोमश्च दिवा रात्रिस्तथैव च।
अर्द्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् च संस्थिताः॥ ३३

तां प्रविश्य सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामिकाम्।
कश्यपस्त्रिदशैः सार्द्धं पुत्रैर्धर्मभृतां वरः॥ ३४

सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम्।
ब्राह्म्या श्रिया सेव्यमानामचिन्त्यां विगतक्लमाम्॥ ३५

ब्रह्माणं प्रेक्ष्य ते सर्वे परमासनमास्थितम्।
शिरोभिः प्रणता देवं देवा ब्रह्मर्षिभिः सह॥ ३६

ततः प्रणम्य चरणौ नियताः परमात्मनः।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः॥ ३७

दृष्ट्वा तु तान् सुरान् सर्वान् कश्यपेन सहागतान्।
आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः॥ ३८

रहे थे। द्विजोत्तमो! दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम और नारद एवं सभी विद्याएँ, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध एवं प्रकृति, विकृति, अन्यान्य महत् कारण, अङ्गों एवं उपाङ्गोंके साथ चारों वेद और लोकपति, नीति, यज्ञ, संकल्प, प्राण—ये तथा अन्यान्य देव, ऋषि, भूत, इत्यादि ब्रह्माकी उपासना कर रहे थे। द्विजश्रेष्ठो! अर्थ, धर्म, काम, क्रोध, हर्ष, शुक्र, बृहस्पति, संवर्त, बुध, शनैश्चर और राहु आदि सभी ग्रह भी वहाँ यथास्थान बैठे थे। मरुद्गण, विश्वकर्मा, वसु, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात्रि, पक्ष, मास तथा छः ऋतुएँ भी वहाँ उपस्थित थीं॥ २६—३३॥

धार्मिकोंमें श्रेष्ठ कश्यपने अपने पुत्र देवताओंके साथ ब्रह्माकी उस सर्वमनोरथमयी, सर्वतेजोमयी, दिव्य एवं ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित तथा ब्रह्म-विचारमयी सरस्वती एवं लक्ष्मीसे सेवित अचिन्त्य तथा खिन्नतासे रहित सभामें प्रवेश किया। तब उनके साथमें गये सभी देवताओंने श्रेष्ठ आसनपर विराजमान ब्रह्माजीको देखा और उन्हें ब्रह्मर्षियोंके साथ झुककर सिरसे प्रणाम किया। नियमका पालन करनेवाले वे सभी परमात्माके चरणोंमें प्रणाम करके सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर निर्मल एवं शान्त हो गये। (फिर) महान् तेजस्वी देवेश्वर ब्रह्माने कश्यपके साथ आये हुए उन सभी देवताओंको देखकर कहा—॥ ३४—३८॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २४॥

वामन-चरितके सन्दर्भमें ब्रह्माका उपदेश तथा तदनुसार देवोंका श्वेतद्वीपमें तपस्या करना

ब्रह्मोवाच

यदर्थमिह संप्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि।
चिन्तयाम्यहमप्यग्रे तदर्थं च महाबलाः॥ १
भविष्यति च वः सर्वं काङ्क्षितं यत् सुरोत्तमाः।
बलेर्दानवमुख्यस्य योऽस्य जेता भविष्यति॥ २

ब्रह्माने कहा—महाबलशाली देवगण! आपलोग जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, उसके विषयमें मैं पहलेसे ही सोच रहा हूँ। सुरश्रेष्ठ! आपलोगोंको जो अभिलषित है, वह पूर्ण होकर रहेगा। दानवोंमें प्रधान बलिको पराजित करनेवाले एवं विश्वको रचनेवाले

न केवलं सुरादीनां गतिर्मम स विश्वकृत्।
त्रैलोक्यस्यापि नेता च देवानामपि स प्रभुः॥ ३
यः प्रभुः सर्वलोकानां विश्वेशश्च सनातनः।
पूर्वजोऽयं सदाप्याहुरादिदेवं सनातनम्॥ ४

(परमात्मा) न केवल (आप सब) देवोंके, प्रत्युत हमारे भी सहारे हैं। वे तीनों लोकोंके स्वामी तथा देवोंके भी शासक हैं। इन्हें ही सनातन आदिदेव भी कहते हैं॥ १—४॥

तं देवापि महात्मानं न विदुः कोऽप्यसाविति।
देवानस्मान् श्रुतिं विश्वं स वेत्ति पुरुषोत्तमः॥ ५

तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्ये परमां गतिम्।
यत्र योगे समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम्॥ ६

क्षीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि विश्वकृत्।
अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः॥ ७

भवन्तस्तत्र वै गत्वा तपसा शंसितव्रताः।
अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरत दुश्चरम्॥ ८

उन महान् आत्मा (सनातन आदिदेव)-को देवता आदि कोई भी वास्तवरूपमें नहीं जानते कि वे कौन हैं, परंतु वे पुरुषोत्तम (समस्त) देवोंको, मुझे तथा श्रुति (वेद) एवं समस्त विश्वको जानते हैं (संसारके समस्त क्रिया-कलाप उनकी जानकारीमें ही होते हैं, वे सर्वज्ञ हैं)। उन्हींके कृपा-प्रसादसे (आपलोगोंको) मैं अत्यन्त श्रेष्ठ उपाय बतलाता हूँ (आपलोग सुनें।) आप सभी उत्तर दिशामें क्षीरसागरके उत्तरी तटपर स्थित उस स्थानपर जाइये जिसे विचारशील विद्वान् लोग (अमृत) नामसे उच्चारित करते हैं। विश्वकी रचना करनेवाले (परमात्मा) वहाँ योगधारणामें स्थित होकर कठिन तपस्या कर रहे हैं। आप सभी लोग उस अमृत नामक स्थानपर जायँ और आलस्यरहित होकर आपलोग भी लक्ष्यकी सिद्धिके लिये वहाँ कठिन तपस्या प्रारम्भ कर दें॥ ५—८॥

ततः श्रोष्यथ संघुष्टां स्निग्धगम्भीरनिःस्वनाम्
उष्णान्ते तोयदस्येव तोयपूर्णस्य निःस्वनम्॥ ९

रक्तां पुष्टाक्षरां रम्यामभयां सर्वदा शिवाम्।
वाणीं परमसंस्कारां वदतां ब्रह्मवादिनाम्॥ १०

दिव्यां सत्यकरीं सत्यां सर्वकल्मषनाशिनीम्।
सर्वदेवाधिदेवस्य ततोऽसौ भावितात्मनः॥ ११

तस्य व्रतसमाप्त्यां तु योगव्रतविसर्जने।
अमोघं तस्य देवस्य विश्वतेजो महात्मनः॥ १२

कस्य किं वो वरं देवा ददामि वरदः स्थितः।
स्वागतं वः सुरश्रेष्ठा मत्समीपमुपागताः॥ १३

(जब आपलोग वहाँ जाकर कठिन तपस्या करने लगेंगे) तब ग्रीष्मके अन्तमें देवाधिदेवकी शब्दरूपिणी, स्निग्ध-गम्भीर ध्वनिवाली, प्रेमसे भरी हुई शुद्ध और स्पष्ट अक्षरोंसे युक्त मनोहर एवं निर्भयताकी सूचना देनेवाली, सर्वदा मङ्गलमयी, उच्च स्वरसे अध्ययन करनेवाले ब्रह्मवादियोंकी वाणीके समान स्पष्ट, उत्तम संस्कारसे युक्त, दिव्य, सत्य-स्वरूपिणी, सत्यताकी ओर उन्मुख होनेके लिये प्रेरणा देनेवाली और पापोंको नष्ट करनेवाली जलसे पूर्ण मेघके गर्जनके समान गम्भीर वाणीको सुनेंगे। उसके बाद भावितात्माके (आत्मज्ञानसे परिपूर्ण महात्मा कश्यपके योगव्रतके अवसरपर) व्रतकी समाप्ति हो जानेके बाद अमोघ तेजसे सम्पन्न वे देव आपसे कहेंगे—सुरश्रेष्ठो! आपलोग मेरे पास आये, आपलोगोंका स्वागत है। मैं (आपलोगोंको) वरदान देनेके लिये आप सबके समक्ष स्थित हूँ, कहो, किसे कौन-सा वर दूँ॥ ९—१३॥

ततोऽदितिः कश्यपश्च गृह्णीयातां वरं तदा।
प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै देवाय धीमते॥ १४

भगवानेव नः पुत्रो भवत्विति प्रसीद नः।
उक्तश्च परया वाचा तथाऽस्त्विति स वक्ष्यति॥ १५

देवा ब्रुवन्ति ते सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च।
तथास्त्विति सुराः सर्वे प्रणम्य शिरसा प्रभुम्।
श्वेतद्वीपं समुद्दिश्य गताः सौम्यदिशं प्रति॥ १६

तेऽचिरेणैव संप्राप्ताः क्षीरोदं सरितां पतिम्।
यथोद्दिष्टं भगवता ब्रह्मणा सत्यवादिना॥ १७

और, जब भगवान् इस प्रकार वरदान देनेके लिये उपस्थित होंगे तथा अदिति एवं कश्यप उन प्रज्ञावान् प्रभुके चरणोंमें झुककर सिरसे प्रणाम और वरकी याचना करेंगे कि 'भगवान् ही हमारे पुत्र बनें इसके लिये आप हमपर ऊपर प्रसन्न हों' तब वे श्रेष्ठवाणीके द्वारा 'ऐसा ही हो'—यह कहेंगे। (इस प्रकार संकेत है) निर्देश पाकर कश्यप, अदिति एवं सभी देवताओंने 'ऐसा ही हो'—यह कहकर प्रभु (ब्रह्मा) को सिरसे प्रणाम किया और श्वेतद्वीपकी ओर लक्ष्य करके उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया। वे अत्यन्त शीघ्रतासे सत्यप्रतिज्ञ भगवान् ब्रह्माके द्वारा निर्दिष्ट की गयी व्यवस्थाके अनुसार क्षीरसागरके तटपर पहुँच गये॥ १४—१७॥

ते क्रान्ताः सागरान् सर्वान् पर्वतांश्च सकाननान्।
नदीश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां ते सुरोत्तमाः॥ १८

अपश्यन्त तमो घोरं सर्वसत्त्वविवर्जितम्।
अभास्करममर्यादं तमसा सर्वतो वृतम्॥ १९

अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन महात्मना।
दीक्षिताः कामदं दिव्यं व्रतं वर्षसहस्रकम्॥ २०

प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते।
नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय भूतये॥ २१

ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थाने वीरासनेन च।
क्रमेण च सुराः सर्वे तप उग्रं समास्थिताः॥ २२

कश्यपस्तत्र भगवान् प्रसादार्थं महात्मनः।
उदीरयत वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम्॥ २३

उन देववरोंने पृथ्वीके सभी समुद्रों, वनसे भरे हुए पर्वतों एवं भाँति-भाँतिकी दिव्य नदियोंको पार किया। उसके बाद (उसके आगे) उन लोगोंने ऐसे स्थानको देखा जहाँ न कोई प्राणी था, न सूर्यका प्रकाश ही था; प्रत्युत चारों ओर घनघोर अन्धकार था, जिसमें सीमा मालूम ही नहीं होती थी। इस प्रकारके उस 'अमृत' नामक स्थानपर पहुँचकर महात्मा कश्यपने प्रज्ञा-सम्पन्न योगी, देवेश्वर, कल्याणकी मूर्ति, सहस्रचक्षु नारायणदेवकी प्रसन्नताकी प्राप्तिके उद्देश्यसे (देवताओंको) साहस्रवार्षिक (हजारों वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले) दिव्य (देव-सम्बन्धी) इच्छा पूर्ण करनेवाले कामद व्रतकी दीक्षा दी। फिर वे सभी देवता क्रमशः अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके और मौन धारणकर उचित स्थानपर वीरासनसे बैठकर कठोर तपस्या करने लगे। वहाँ भगवान् कश्यपने महात्मा विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये वेदमें कहे हुए स्तवका (सूक्त या स्तोत्रका) स्पष्ट वाणीमें पाठ किया, जिसे 'परमस्तव' कहते हैं॥ १८—२३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

कश्यपद्वारा भगवान् वामनकी स्तुति

कश्यप उवाच

नमोऽस्तु ते देवदेव एकशृङ्ग वृषार्च्चे सिन्धुवृष वृषाकपे सुरवृष अनादिसम्भव रुद्र कपिल विष्वक्सेन सर्वभूतपते ध्रुव धर्माधर्म वैकुण्ठ वृषावर्त्त अनादिमध्यनिधन धनंजय शुचिश्रवः पृश्नितेजः निजजय अमृतेशय सनातन त्रिधाम तुषित महातत्त्व लोकनाथ पद्मनाभ विरिञ्चे बहुरूप अक्षय अक्षर हव्यभुज खण्डपरशो शक्र मुञ्जकेश हंस महादक्षिण हृषीकेश सूक्ष्म महानियमधर विरज लोकप्रतिष्ठ अरूप अग्रज धर्मज धर्मनाभ गभस्तिनाभ शतक्रतुनाभ चन्द्ररथ सूर्यतेजः समुद्रवासः अजः सहस्रशिरः सहस्रपाद अधोमुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रबाहो सहस्रमूर्ते सहस्रास्य सहस्रसम्भव सहस्रसत्त्वं त्वामाहुः। पुष्पहास चरम त्वमेव वौषट् वषट्कारं त्वामाहुरग्र्यं मखेषु प्राशितारं सहस्रधारं च भूश्च भुवश्च स्वश्च त्वमेव वेदवेद्य ब्रह्मशय ब्राह्मणप्रिय त्वमेव द्यौरसि मातरिश्वाऽसि धर्मोऽसि होता पोता मन्ता नेता होमहेतुस्त्वमेव अग्र्य विश्वधाम्ना त्वमेव दिग्भिः सुभाण्ड इज्योऽसि सुमेधोऽसि समिधस्त्वमेव मतिर्गतिर्दाता त्वमसि। मोक्षोऽसि योगोऽसि। सृजसि। धाता परमयज्ञोऽसि सोमोऽसि दीक्षितोऽसि दक्षिणाऽसि विश्वमसि। स्थविर हिरण्यनाभ नारायण त्रिनयन आदित्यवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष पुरुषोत्तम आदिदेव सुविक्रम प्रभाकर शम्भो स्वयम्भो भूतादिः महाभूतोऽसि विश्वभूत विश्वं त्वमेव विश्वगोप्ताऽसि पवित्रमसि

कश्यपने कहा—हे देवदेव, एकशृङ्ग, वृषार्चि, सिन्धुवृष, वृषाकपि, सुरवृष, अनादिसम्भव, रुद्र, कपिल, विष्वक्सेन, सर्वभूतपति (सम्पूर्ण प्राणियोंके स्वामी), ध्रुव, धर्माधर्म, वैकुण्ठ, वृषावर्त, अनादिमध्यनिधन धनञ्जय, शुचिश्रव, पृश्नितेज, निजजय, अमृतेशय, सनातन, त्रिधाम, तुषित, महातत्त्व, लोकनाथ, पद्मनाभ, विरिञ्चि, बहुरूप, अक्षय, अक्षर, हव्यभुज, खण्डपरशु, शक्र, मुञ्जकेश, हंस, महादक्षिण, हृषीकेश, सूक्ष्म, महानियमधर, विरज, लोकप्रतिष्ठ, अरूप, अग्रज, धर्मज, धर्मनाभ, गभस्तिनाभ, शतक्रतुनाभ, चन्द्ररथ, सूर्यतेज, समुद्रवास, अज, सहस्रशिर, सहस्रपाद, अधोमुख, महापुरुष, पुरुषोत्तम, सहस्रबाहु, सहस्रमूर्ति, सहस्रास्य, सहस्रसम्भव। मेरा आपके चरणोंमें नमस्कार है (आपके भक्तजन) आपको सहस्रसत्त्व कहते हैं (खिले हुए पुष्पके समान मधुर मुसकानवाले) पुष्पहास, चरम (सर्वोत्तम)! लोग आपको ही वौषट् एवं वषट्कार कहते हैं। आप ही अग्र्य, (सर्वश्रेष्ठ) यज्ञोंमें प्राशिता (भोक्ता) हैं; सहस्रधार, भूः, भुवः एवं स्व हैं। आप ही वेदवेद्य (वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य), ब्रह्मशय, ब्राह्मणप्रिय (अग्निके प्रेमी), द्यौ (आकाशके समान सर्वव्यापी), मातरिश्वा (वायुके समान गतिमान्), धर्म, होता, पोता (विष्णु), मन्ता, नेता एवं होमके हेतु हैं। आप ही विश्वतेजके द्वारा अग्र्य (सर्वश्रेष्ठ) हैं और दिशाओंके द्वारा सुभाण्ड (विस्तृत पात्ररूप) हैं अर्थात् दिशाएँ आपमें समाविष्ट हैं। आप (यजन करनेयोग्य) इज्य, सुमेध, समिधा, मति, गति एवं दाता हैं। आप ही मोक्ष, योग, स्रष्टा (सृष्टि करनेवाले), धाता (धारण और पोषण करनेवाले), परमयज्ञ, सोम, दीक्षित, दक्षिणा एवं विश्व हैं। आप ही स्थविर, हिरण्यनाभ नारायण, त्रिनयन, आदित्यवर्ण, आदित्यतेज, महापुरुष पुरुषोत्तम, आदिदेव, सुविक्रम, प्रभाकर, शम्भु, स्वयम्भु, भूतादि, महाभूत, विश्वभूत एवं विश्व हैं। आप ही

विश्वभव ऊर्ध्वकर्म अमृत दिवस्पते वाचस्पते घृतार्चे अनन्तकर्म वंश प्राग्वंश विश्वपास्त्वमेव। वरार्थिनां वरदोऽसि त्वम्। चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तुभ्यं होत्रात्मने नमः ॥ १

संसारकी रक्षा करनेवाले पवित्र, विश्वभव—विश्वकी सृष्टि करनेवाले, ऊर्ध्वकर्म (उत्तमकर्मा), अमृत (कभी भी मृत्युको न प्राप्त होनेवाले) दिवस्पति, वाचस्पति, घृतार्चि, अनन्तकर्म, वंश, प्राग्वंश, विश्वपा (विश्वका पालन करनेवाले) तथा वरद- वर चाहनेवालोंके लिये वरदानी हैं।

चार (आश्रावय), चार (अस्तु श्रौषट्) दो (यज) तथा पाँच (ये यजामहे) और पुनः दो (वषट्) अक्षरों इस प्रकार ४+४+२+५+२=१७ अक्षरोंसे—जिसके लिये अग्निहोत्र किया जाता है उन आप होत्रात्माको नमस्कार है ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

भगवान् नारायणसे देवों और कश्यपकी प्रार्थना, अदितिकी तपस्या और प्रभुसे प्रार्थना

लोमहर्षण उवाच

नारायणस्तु भगवाञ्छ्रुत्वैवं परमं स्तवम्।
ब्रह्मज्ञेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम्॥ १

उवाच वचनं सम्यक् तुष्टः पुष्टपदाक्षरम्।
श्रीमान् प्रीतमना देवो यद्वदेत् प्रभुरीश्वरः ॥ २

वरं वृणुध्वं भद्रं वो वरदोऽस्मि सुरोत्तमाः।

कश्यप उवाच

प्रीतोऽसि नः सुरश्रेष्ठ सर्वेषामेव निश्चयः ॥ ३

वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दिवर्धनः।
अदित्या अपि च श्रीमान् भगवानस्तु वै सुतः ॥ ४

अदितिर्देवमाता च एतमेवार्थमुत्तमम्।
पुत्रार्थं वरदं प्राह भगवन्तं वरार्थिनी ॥ ५

लोमहर्षणने कहा— इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी द्विजश्रेष्ठ कश्यपने विष्णुकी उत्तम स्तुति की। उसे सुनकर प्रसन्न होकर सामर्थ्यशाली एवं ऐश्वर्यसम्पन्न नारायणने अत्यन्त संतुष्ट होकर प्रसन्न मनसे सुसंस्कृत शब्दों एवं अक्षरोंवाला समयानुकूल उचित वचन कहा—श्रेष्ठ देवताओ! वर माँगो। तुम सबका कल्याण हो; मैं तुम लोगोंको (इच्छित) वर दूँगा।

कश्यपने कहा—सुरश्रेष्ठ! यदि आप हम सबपर प्रसन्न हैं तो हम सभीका यह निश्चय है कि श्रीमान् भगवान् आप स्वयं इन्द्रके छोटे भाईके रूपमें अदितिके कुटुम्बियोंके आनन्द बढ़ानेवाले पुत्र बनें। वरकी याचना करनेवाली देवमाता अदितिने भी वरदानी भगवान्से पुत्रकी प्राप्तिके लिये अपने इस उत्तम अभिप्रायको प्रकट किया—कहा ॥ १—५ ॥

देवा ऊचुः

निःश्रेयसार्थं सर्वेषां दैवतानां महेश्वर।
त्राता भर्ता च दाता च शरणं भव नः सदा॥ ६

ततस्तानब्रवीद्विष्णुर्देवान् कश्यपमेव च।
सर्वेषामेव युष्माकं ये भविष्यन्ति शत्रवः।
मुहूर्त्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः॥ ७

हत्वाऽसुरगणान् सर्वान् यज्ञभागाग्रभोजिनः।
हव्यादांश्च सुरान् सर्वान् कव्यादांश्च पितॄनपि॥ ८

करिष्ये विबुधश्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा।
यथायातेन मार्गेण निवर्तध्वं सुरोत्तमाः॥ ९

लोमहर्षण उवाच

एवमुक्ते तु देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
ततः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म तं प्रभुम्॥ १०
विश्वेदेवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च।
नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रंहसा॥ ११
प्रयाताः प्राग्दिशं सर्वे विपुलं कश्यपाश्रमम्।
ते कश्यपाश्रमं गत्वा कुरुक्षेत्रवनं महत्॥ १२
प्रसाद्य ह्यदितिं तत्र तपसे तां न्ययोजयन्।
सा चचार तपो घोरं वर्षाणामयुतं तदा॥ १३
तस्या नाम्ना वनं दिव्यं सर्वकामप्रदं शुभम्।
आराधनाय कृष्णस्य वाग्जिता वायुभोजना॥ १४

दैत्यैर्निराकृतान् दृष्ट्वा तनयानृषिसत्तमाः।
वृथापुत्राऽहमिति सा निर्वेदात् प्रणयाद्धरिम्।
तुष्टाव वाग्भिरग्र्याभिः परमार्थावबोधिनी॥ १५

शरण्यं शरणं विष्णुं प्रणता भक्तवत्सलम्।
देवदैत्यमयं चादिमध्यमान्तस्वरूपिणम्॥ १६

[अदितिके अभिप्रायको जानकर] देवताओंने कहा— महेश्वर! सभी देवताओंके परम कल्याणके लिये आप हम सबकी सदा रक्षा करनेवाले, पालन-पोषण करनेवाले, दान देनेवाले एवं आश्रय बनें। इसके बाद भगवान् विष्णुने उन देवताओंसे तथा कश्यपसे कहा कि आप सभीके जितने भी शत्रु होंगे वे सभी मेरे सम्मुख क्षणमात्र भी नहीं टिक सकेंगे। देवश्रेष्ठो! परमेष्ठी (ब्रह्मा)-के द्वारा विधान किये गये कर्मोंके द्वारा मैं समस्त असुरोंको मारकर देवताओंको यज्ञभागके सर्वप्रथम भाग ग्रहण करनेवाले अधिकारी एवं हव्यभोक्ता और पितरोंको कव्यभोक्ता बनाऊँगा। सुरोत्तमो! अब आपलोग जिस मार्गसे आये हैं, फिर उसी मार्गसे वापस लौट जायँ॥ ६—९॥

लोमहर्षणने कहा— प्रभावशाली भगवान् विष्णुने जब ऐसा कहा तब महात्मा देवगण, कश्यप एवं अदितिने प्रसन्नचित्तसे उन प्रभुका पूजन किया एवं देवेश्वरको नमस्कार करनेके बाद पूर्व दिशामें स्थित कश्यपके विस्तृत आश्रमकी ओर शीघ्रतासे चल पड़े। जब देवगण कुरुक्षेत्र-वनमें स्थित महान् आश्रममें पहुँचे तब लोगोंने अदितिको प्रसन्नकर उसे तपस्या करनेके लिये प्रेरित किया। (फिर) उसने दस हजार वर्षोंतक वहाँ कठिन तपस्या की॥ १०—१३॥

श्रेष्ठ ऋषियो! (जिस वनमें अदितिने तप किया) उस दिव्य वनका नाम उसके नामपर अदितिवन पड़ा। वह समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला एवं मङ्गलकारी है। ऋषिश्रेष्ठो! परम अर्थको जाननेवाली (तत्त्वज्ञा) अदितिने अपने पुत्रोंको दैत्योंके द्वारा अपमानित देखा; उसने सोचा कि तब मेरा पुत्रका जनना ही व्यर्थ है इसलिये अपनी वाणीको संयतकर, हवा पीकर नम्रतापूर्वक शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले भक्तजनप्रिय, देवताओं और दैत्योंके मूर्तिस्वरूप, आदि-मध्य और अन्तके रूपमें रहनेवाले भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये उनकी सत्य एवं मधुर वाणियोंसे उत्तम स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया॥ १४—१६॥

अदितिरुवाच

नमः कृत्यार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने।
नमः परमकल्याण कल्याणायादिवेधसे॥ १७

नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये।
नमः पङ्कजसंभूतिसंभवायात्मयोनये॥ १८

श्रियः कान्ताय दान्ताय दान्तदृश्याय चक्रिणे।
नमः पद्मासिहस्ताय नमः कनकरेतसे॥ १९

तथात्मज्ञानयज्ञाय योगिचिन्त्याय योगिने।
निर्गुणाय विशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे॥ २०

जगच्च तिष्ठते यत्र जगतो यो न दृश्यते।
नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शार्ङ्गिणे॥ २१

यं न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नराः।
अपश्यद्भिर्जगद्यश्च दृश्यते हृदि संस्थितः॥ २२

बहिर्ज्योतिरलक्ष्यो यो लक्ष्यते ज्योतिषः परः।
यस्मिन्नेव यतश्चैव यस्यैतदखिलं जगत्॥ २३

तस्मै समस्तजगतामममराय नमो नमः।
आद्यः प्रजापतिः सोऽपि पितॄणां परमं पतिः।
पतिः सुराणां यस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे॥ २४

यः प्रवृत्तैर्निवृत्तैश्च कर्मभिस्तु विरज्यते।
स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते॥ २५

अदिति बोलीं—कृत्यासे उत्पन्न दुःखका नाश करनेवाले प्रभुको नमस्कार है। कमलकी मालाको धारण करनेवाले पुष्करमाली भगवान्‌को नमस्कार है। परम मङ्गलकारी, कल्याणस्वरूप आदिविधाता प्रभो! आपको नमस्कार है। कमलनयन! आपको नमस्कार है। पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। ब्रह्माकी उत्पत्तिके स्थान, आत्मजन्मा! आपको नमस्कार है प्रभो! आप लक्ष्मीपति, इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, संयमियोंके द्वारा दर्शन पाने योग्य, हाथमें सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले एवं खड्ग (तलवार) धारण करते हैं आपको नमस्कार है स्वामिन्! आत्मज्ञानके द्वारा यज्ञ करनेवाले, योगियोंके द्वारा ध्यान करने योग्य, योगकी साधना करनेवाले योगी, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे रहित किंतु (दयादि) विशिष्ट गुणोंसे युक्त ब्रह्मरूपी श्रीहरि भगवान्‌को नमस्कार है॥ १७—२०॥

जिन आप परमेश्वरमें सारा संसार स्थित है, किंतु जो संसारसे दृश्य नहीं हैं, ऐसे स्थूल तथा अतिसूक्ष्म आप शार्ङ्गधारी देवको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्‌की अपेक्षा करनेवाले प्राणी जिन आपके दर्शनसे वञ्चित रहते हैं आपका वे दर्शन नहीं कर पाते, परंतु जिन्होंने जगत्‌की अपेक्षा नहीं की, उन्हें आप उनके हृदयमें स्थित दीखते हैं आपकी ज्योति बाहर है एवं अलक्ष्य है सर्वोत्तम ज्योति है; यह सारा जगत् आपमें स्थित है आपसे उत्पन्न होता है और आपका ही है, जगत्‌के देवता उन आपको नमस्कार है। जो आप सबके आदिमें प्रजापति रहे हैं एवं पितरोंके श्रेष्ठ स्वामी हैं, देवताओंके स्वामी हैं, उन आप श्रीकृष्णको बार-बार नमस्कार है॥ २१—२४॥

जो प्रवृत्त एवं निवृत्त कर्मोंसे विरक्त तथा स्वर्ग और मोक्षके फलके देनेवाले हैं, उन गदा धारण करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है जो

यस्तु संचिन्त्यमानोऽपि सर्वं पापं व्यपोहति।
नमस्तस्मै विशुद्धाय परस्मै हरिमेधसे॥ २६

ये पश्यन्त्यखिलाधारमीशानमजमव्ययम्।
न पुनर्जन्ममरणं प्राप्नुवन्ति नमामि तम्॥ २७

यो यज्ञो यज्ञपरमैरिज्यते यज्ञसंस्थितः।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम्॥ २८

गीयते सर्ववेदेषु वेदविद्भिर्विदां गतिः।
यस्तस्मै वेदवेद्याय नित्याय विष्णवे नमः॥ २९

यतो विश्वं समुद्भूतं यस्मिन् प्रलयमेष्यति।
विश्वोद्भवप्रतिष्ठाय नमस्तस्मै महात्मने॥ ३०

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं व्याप्तं येन चराचरम्।
मायाजालसमुन्नद्धं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३१

योऽत्र तोयस्वरूपस्थो बिभर्त्यखिलमीश्वरः।
विश्वं विश्वपतिं विष्णुं तं नमामि प्रजापतिम्॥ ३२

मूर्तं तमोऽसुरमयं तद्विधो विनिहन्ति यः।
रात्रिजं सूर्यरूपी च तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३३

यस्याक्षिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम्।
पश्यतः कर्म सततं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३४

यस्मिन् सर्वेश्वरे सर्वं सत्यमेतन्मयोदितम्।
नानृतं तमजं विष्णुं नमामि प्रभवाव्ययम्॥ ३५

यद्येतत्सत्यमुक्तं मे भूयश्चातो जनार्दन।
सत्येन तेन सकलाः पूर्यन्तां मे मनोरथाः॥ ३६

स्मरण करनेवालेके सारे पाप नष्ट कर देते हैं उन विशुद्ध हरिमेधको मेरा नमस्कार है जो प्राणी अविनाशी भगवान्‌को अखिलाधार ईशान एवं अजके रूपमें देखते हैं वे कभी भी जन्म-मरणको नहीं प्राप्त होते। प्रभो! मैं आपको प्रणाम करती हूँ आपकी आराधना यज्ञोंद्वारा होती है, आप यज्ञकी मूर्ति हैं, यज्ञमें आपकी स्थिति है, यज्ञपुरुष! आप ईश्वर, प्रभु विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ॥ २५ २८॥

वेदोंमें आपका गुणगान हुआ है—इसे वेदज्ञ गाते हैं। आप विद्वज्जनोंके आश्रय हैं, वेदोंसे जानने योग्य एवं नित्यस्वरूप हैं; आप विष्णुको मेरा नमस्कार है। विश्व जिनसे समुद्भूत हुआ है और जिनमें विलीन होगा तथा जो विश्वके उद्भव एवं प्रतिष्ठाके स्वरूप हैं उन महान् आत्मा (परमात्मा)-को मेरा नमस्कार है जिनके द्वारा मायाजालसे बँधा हुआ ब्रह्मासे लेकर चराचर (विश्व) व्याप्त है, उन उपेन्द्र भगवान्‌को मैं नमस्कार करती हूँ। जो ईश्वर जल-स्वरूपमें स्थित होकर अखिल विश्वका भरण करते हैं उन विश्वपति एवं प्रजापति विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ॥ २९ -३२॥

जो सूर्यरूपी उपेन्द्र असुरमय रात्रिसे उत्पन्न, रूपधारी तमका विनाश करते हैं मैं उनको प्रणाम करती हूँ जिनकी सूर्य तथा चन्द्रमा-रूप दोनों आँखें समस्त लोकोंके शुभाशुभ कर्मोंको सतत देखती रहती हैं, उन उपेन्द्रको मैं नमस्कार करती हूँ जिन सर्वेश्वरके विषयमें मेरा यह समस्त उद्गार सत्य है—असत्य नहीं है उन अजन्मा, अव्यय एवं स्रष्टा विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ। हे जनार्दन! यदि मैंने यह सत्य कहा है तो उस सत्यके प्रभावसे मेरे मनकी सारी अभिलाषाएँ परिपूर्ण हों॥ ३३—३६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २७॥

अदितिकी प्रार्थनापर भगवान्‌का प्रकट होना तथा भगवान्‌का अदितिको वर देना

लोमहर्षण उवाच

एवं स्तुतोऽथ भगवान् वासुदेव उवाच ताम्।
अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याः संदर्शने स्थितः॥ १

लोमहर्षणने कहा— इस प्रकार स्तुति किये जानेपर समस्त प्राणियोंके दृष्टि पथमें न आनेवाले भगवान् वासुदेव उसके सामने प्रकट हुए और उससे (इस प्रकार) बोले—॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

मनोरथांस्त्वमदिते यानिच्छस्यभिवाञ्छितान्।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशयः॥ २

शृणु त्वं च महाभागे वरो यस्ते हृदि स्थितः।
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद् भविष्यति॥ ३

यश्चेह त्वद्वने स्थित्वा त्रिरात्रं वै करिष्यति
सर्वे कामाः समृध्यन्ते मनसा यानिहेच्छति॥ ४

दूरस्थोऽपि वनं यस्तु अदित्याः स्मरते नरः।
सोऽपि याति परं स्थानं किं पुनर्निवसन् नरः॥ ५

यश्चेह ब्राह्मणान् पञ्च त्रीन् वा द्वावेकमेव वा।
भोजयेच्छ्रद्धया युक्तः स याति परमां गतिम्॥ ६

श्रीभगवान् बोले— धर्मज्ञे (धर्मके मर्मको जाननेवाली), अदिति! तुम मुझसे जिन मनचाही कामनाओंकी पूर्ति चाहती हो, उन्हें तुम मेरी कृपासे प्राप्त करोगी, इसमें कोई संदेह नहीं। महाभागे! सुनो, तुम्हारे मनमें जिन वरोंकी इच्छा है, उन्हें तुम मुझसे माँगो; क्योंकि मेरे दर्शन करनेका फल कभी व्यर्थ नहीं होता। तुम्हारे इस (अदिति) वनमें रहकर जो तीन रातोंतक निवास करेगा, उसकी सभी मनचाही कामनाएँ पूरी होंगी। जो मनुष्य दूर देशमें स्थित रहकर भी तुम्हारे इस वनका स्मरण करेगा, वह परम धामको प्राप्त कर लेगा। फिर यहाँ रहनेवाले मनुष्यको परम धामकी प्राप्ति हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य? जो मानव इस स्थानपर पाँच, तीन अथवा दो या एक ही ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक भोजन करायेगा, वह उत्तम गति (मोक्ष) को प्राप्त करेगा॥ २—६॥

अदितिरुवाच

यदि देव प्रसन्नस्त्वं भक्त्या मे भक्तवत्सल।
त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वासवः॥ ७

हृतं राज्यं हृतश्चास्य यज्ञभाग इहासुरैः।
त्वयि प्रसन्ने वरद तत् प्राप्नोतु सुतो मम॥ ८

हृतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव।
प्रपन्नदायविभ्रंशो बाधां मे कुरुते हृदि॥ ९

अदितिने कहा— भक्तवत्सल देव! यदि आप मेरी भक्तिसे मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरा पुत्र इन्द्र तीनों लोकोंका स्वामी हो जाय। असुरोंने उसके राज्यको तथा यज्ञमें मिलनेवाले भागको छीन लिया है। अतः वरदाता प्रभो! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरा पुत्र उसे (राज्यको) प्राप्त कर ले। केशव! मेरे पुत्रके राज्यके असुरोंद्वारा छीने जानेका मुझे दुःख नहीं है, किंतु (उसके) प्राप्त होनेवाले उचित भागका छिन जाना मेरे हृदयको कुरेद रहा है॥ ७—९॥

श्रीभगवानुवाच

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितम्।
स्वांशेन चैव ते गर्भे सम्भविष्यामि कश्यपात्॥ १०

श्रीभगवान् बोले— देवि! तुम्हारी इच्छाके अनुकूल मैंने तुम्हारे ऊपर कृपा-प्रसाद प्रकट किया है। (सुनो) कश्यपसे तुम्हारे गर्भमें मैं अपने अंशसे जन्म लूँगा और

तव गर्भे समुद्भूतस्ततस्ते ये त्वरातयः।
तानहं च हनिष्यामि निवृत्ता भव नन्दिनि॥ ११

तुम्हारी कोखसे जन्म लेकर फिर तुम्हारे जितने शत्रु हैं उन (सभी)-का वध करूँगा। नन्दिनि! तुम शोक छोड़कर स्वस्थ हो जाओ॥ १०-११॥

अदितिरुवाच

प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभावन।
नाहं त्वामुदरे वोढुमीश शक्ष्यामि केशव।
यस्मिन् प्रतिष्ठितं सर्वं विश्वयोनिस्त्वमीश्वरः॥ १२

अदितिने कहा— देवदेवेश! आप (मुझपर) प्रसन्न हों। विश्वभावन! आपको मेरा नमस्कार है। हे केशव! हे ईश! आप विश्वके उत्पत्ति-स्थान और ईश्वर हैं। जिन आप प्रभुमें सारा संसार प्रतिष्ठित है, उन आपके भारको मैं अपनी कोखमें वहन न कर सकूँगी॥ १२॥

श्रीभगवानुवाच

अहं त्वां च वहिष्यामि आत्मानं चैव नन्दिनि।
न च पीडां करिष्यामि स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्॥ १३

इत्युक्त्वान्तर्हिते देवेऽदितिर्गर्भं समादधे।
गर्भस्थिते ततः कृष्णे चचाल सकला क्षितिः।
चकम्पिरे महाशैला जग्मुः क्षोभं महाब्धयः॥ १४

यतो यतोऽदितिर्याति ददाति पदमुत्तमम्।
ततस्ततः क्षितिः खेदान्ननाम द्विजपुंगवाः॥ १५

दैत्यानामपि सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने।
बभूव तेजसो हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना॥ १६

श्रीभगवान्ने कहा— नन्दिनि! मैं स्वयं अपना और तुम्हारा—दोनोंका भार वहन कर लूँगा; मैं तुम्हें पीड़ा नहीं करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। यह कहकर भगवान्के चले जानेपर अदितिने गर्भको धारण कर लिया। भगवान् (कृष्ण)-के गर्भमें आ जानेपर सारी पृथ्वी डगमगा गयी। बड़े-बड़े पर्वत हिलने लगे एवं विशाल समुद्र विक्षुब्ध हो गये। द्विजश्रेष्ठो! अदिति जहाँ-जहाँ जाती या पैर रखती थीं, वहाँ-वहाँकी पृथ्वी खेद (भार)-के कारण झुक जाती थी। जैसा कि ब्रह्माने (पहले) बतलाया था, मधुसूदनके गर्भमें आनेपर सभी दैत्योंके तेजकी हानि हो गयी॥ १३—१६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २८॥

बलिका पितामह प्रह्लादसे प्रश्न, प्रह्लादका अदितिके गर्भमें वामनागमन एवं विष्णु-महिमाका कथन तथा स्तवन

लोमहर्षण उवाच

निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः।
प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम्॥ १

लोमहर्षण बोले— उसके बाद (दैत्योंके तेजके समाप्त हो जानेपर) असुरराज बलिने समस्त असुरोंको श्रीहीन देखकर अपने पितामह प्रह्लादजीसे पूछा—॥ १॥

बलिरुवाच

तात निस्तेजसो दैत्या निर्दग्धा इव वह्निना।
किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव॥ २

बलिने कहा— तात! (इस समय) दैत्य लोग आगसे झुलसे हुए-से कान्तिहीन हो गये हैं। आज ये ऐसे क्यों हो गये हैं? प्रतीत होता है कि मानो इन्हें ब्राह्मणका अभिशाप लग गया है। ये ब्रह्मदण्डसे जैसे

दुरिष्टं किं तु दैत्यानां किं कृत्या विधिनिर्मिता।
नाशायैषां समुद्भूता येन निस्तेजसोऽसुराः॥ ३

पीड़ित हो गये हैं? क्या दैत्योंका कोई अशुभ होनेवाला है? अथवा इनके नाशके लिये ब्रह्माने कृत्या (पुरश्चरणसे उत्पन्न की गयी मारिकाशक्ति)-को उत्पन्न कर दिया है, जिससे ये असुरलोग इस प्रकार तेजसे रहित हो गये हैं॥ २-३॥

लोमहर्षण उवाच

इत्यसुरवरस्तेन पृष्टः पौत्रेण ब्राह्मणाः।
चिरं ध्यात्वा जगादेदमसुरं तं तदा बलिम्॥ ४

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणो! अपने पौत्र (पुत्रके पुत्र) राजा बलिके इस प्रकार पूछनेपर दैत्योंमें प्रधान प्रह्लादने देरतक ध्यान करके तब असुर बलिसे कहा॥ ४॥

प्रह्लाद उवाच

चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहसा धृतिम्।
सद्यः समुद्राः क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः॥ ५

सूर्योदये यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः।
देवानां च परा लक्ष्मीः कारणेनानुमीयते॥ ६

महदेतन्महाबाहो कारणं दानवेश्वर।
न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं कथंचन॥ ७

प्रह्लादने कहा—दानवाधिप! इस समय पहाड़ डगमगा रहे हैं, पृथ्वी एकाएक अपनी (स्वाभाविक) धीरता छोड़ रही है, समुद्रमें जोरोंकी लहरें उठ रही हैं और दैत्य तेजसे रहित हो गये हैं। सूर्योदय होनेपर अब पहलेके समान ग्रहोंकी चाल नहीं दीखती है। इन कारणों (लक्षणों)-से अनुमान होता है कि देवताओंका अभ्युदय होनेवाला है। महाबाहु दानवेश्वर! यह कोई विशेष कारण अवश्य है। इस कारणको छोटा नहीं मानना चाहिये और आपको इसका कोई प्रतियत्न (उपाय) करना चाहिये॥ ५—७॥

लोमहर्षण उवाच

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः।
अत्यर्थभक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम्॥ ८
स ध्यानपथगं कृत्वा प्रह्लादश्च मनोऽसुरः।
विचारयामास ततो यथा देवो जनार्दनः॥ ९
स ददर्शोदरेऽदित्याः प्रह्लादो वामनाकृतिम्।
तदन्तश्च वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा॥ १०
साध्यान् विश्वे तथादित्यान् गन्धर्वोरगराक्षसान्।
विरोचनं च तनयं बलिं चासुरनायकम्॥ ११
जम्भं कुजम्भं नरकं बाणमन्यांस्तथासुरान्।
आत्मानमुर्वीं गगनं वायुं वारि हुताशनम्॥ १२
समुद्राद्रिसरिद्द्वीपान् सरांसि च पशून् महीम्।
वयोमनुष्यानखिलांस्तथैव च सरीसृपान्॥ १३
समस्तलोकस्रष्टारं ब्रह्माणं भवमेव च।
ग्रहनक्षत्रताराश्च दक्षाद्यांश्च प्रजापतीन्॥ १४
सम्पश्यन् विस्मयाविष्टः प्रकृतिस्थः क्षणात् पुनः।
प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं बलिं वैरोचनिं ततः॥ १५

लोमहर्षणने कहा—असुरोंमें श्रेष्ठ महान् भक्त प्रह्लादने दैत्यराज बलिसे इस प्रकार कहकर मनसे श्रीहरिका ध्यान किया। असुर प्रह्लादने अपने मनको भगवान्‌के ध्यान-पथमें लगाकर चिन्तन किया—जैसा कि भगवान्‌का स्वरूप है। उन्होंने उस समय (चिन्तन करते समय) अदितिकी कोखमें वामनके रूपमें भगवान्‌को देखा। उनके भीतर वसुओं, रुद्रों, दोनों अश्विनीकुमारों, मरुतों, साध्यों, विश्वेदेवों, आदित्यों, गन्धर्वों, नागों, राक्षसों तथा अपने पुत्र विरोचन एवं असुरनायक बलि, जम्भ, कुजम्भ, नरक, बाण तथा इस प्रकारके दूसरे बहुत-से असुरों एवं अपनेको और पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, समुद्रों, पर्वतों, नदियों, द्वीपों, सरों, पशुओं, भूसम्पत्तियों, पक्षियों, सम्पूर्ण मनुष्यों, सरकनेवाले जीवों, समस्त लोकोंके स्रष्टा ब्रह्मा, शिव, ग्रहों, नक्षत्रों, ताराओं तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंको भी देखा। प्रह्लाद इन्हें देखकर आश्चर्यमें पड़ गये, किंतु क्षणमात्रमें ही पुनः पूर्ववत् प्रकृतिस्थ हो गये और विरोचन-पुत्र दैत्योंके राजा बलिसे बोले—॥ ८—१५॥

तत्संज्ञातं मया सर्वं यदर्थं भवतामियम्।
तेजसो ह्यानिरुत्पन्ना शृण्वन्तु तदशेषतः ॥ १६

देवदेवो जगद्योनिरयोनिर्जगदादिजः।
अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः ॥ १७

परावराणां परमः परापरसतां गतिः।
प्रभुः प्रमाणं मानानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः।
स्थितिं कर्तुं जगन्नाथः सोऽचिन्त्यो गर्भतां गतः ॥ १८

प्रभुः प्रभूणां परमः पराणा-
मनादिमध्यो भगवाननन्तः।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेकः
कर्तुं महात्माऽदितिजोऽवतीर्णः ॥ १९
न यस्य रुद्रा न च पद्मयोनि-
र्नेन्द्रो न सूर्येन्दुमरीचिमिश्राः।
जानन्ति दैत्याधिप यत्स्वरूपं
स वासुदेवः कलयावतीर्णः ॥ २०
यमक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यं ज्ञानविधूतपापाः।
यस्मिन् प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति
तं वासुदेवं प्रणमामि देवम् ॥ २१
भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति
यथोर्मयस्तोयनिधेरजस्रम्।
लयं च यस्मिन् प्रलये प्रयान्ति
तं वासुदेवं प्रणतोऽस्म्यचिन्त्यम् ॥ २२
न यस्य रूपं न बलं प्रभावो
न च प्रतापः परमस्य पुंसः।
विज्ञायते सर्वपितामहाद्यै-
स्तं वासुदेवं प्रणमामि नित्यम् ॥ २३
रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे त्वगेषा
स्पर्शग्रहित्री रसना रसस्य।
घ्राणं च गन्धग्रहणे नियुक्तं
न घ्राणचक्षुः श्रवणादि तस्य ॥ २४
स्वयंप्रकाशः परमार्थतो यः
सर्वेश्वरो वेदितव्यः स युक्त्या।
शक्यं तमीड्यमनघं च देवं
ग्राह्यं नतोऽहं हरिमीशितारम् ॥ २५

(दैत्यो!) मैंने तुम लोगोंकी कान्तिहीनताके (वास्तविक) सब कारणको—अच्छी तरहसे समझ लिया है (अब) उसे तुम लोग भलीभाँति सुनो। देवोंके देव, जगद्योनि, (विश्वको उत्पन्न करनेवाले) किंतु स्वयं अयोनि, विश्वके प्रारम्भमें विद्यमान पर स्वयं अनादि फिर भी विश्वके आदि, वर देनेवाले वरणीय हरि, सर्वश्रेष्ठोंमें भी परम (श्रेष्ठ), बड़े छोटे सज्जनोंकी गति, मानोंके भी प्रमाणभूत प्रभु, सातों लोकोंके गुरुओंके भी गुरु एवं चिन्तनमें न आने योग्य विश्वके स्वामी मर्यादा (धर्मसेतु) की स्थापना करनेके लिये (अदितिके) गर्भमें आ गये हैं। प्रभुओंके प्रभु, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, आदि मध्यसे रहित, अनन्त भगवान् तीनों लोकोंको सनाथ करनेके लिये अदितिके पुत्रके रूपमें अंशावतारस्वरूपसे अवतीर्ण हुए हैं॥ १६—१९॥

दैत्यपते! जिन वासुदेव भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र एवं मरीचि आदि श्रेष्ठ पुरुष नहीं जानते, वे ही वासुदेव भगवान् अपनी एक कलासे अवतीर्ण हुए हैं। वेदके जाननेवाले जिन्हें अक्षर कहते हैं तथा ब्रह्मज्ञानके होनेसे जिनके पाप नष्ट हो गये हैं—ऐसे निष्पाप शुद्ध प्राणी जिनमें प्रवेश पाते हैं और जिनके भीतर प्रविष्ट हुए लोग पुनः जन्म नहीं लेते, ऐसे उन वासुदेव भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ। समुद्रकी लहरोंके समान जिनसे समस्त जीव निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं तथा प्रलयकालमें जिनके भीतर विलीन हो जाते हैं, उन अचिन्त्य वासुदेवको मैं प्रणाम करता हूँ। ब्रह्मा आदि जिन परम पुरुषके रूप, बल, प्रभाव और प्रतापको नहीं जान पाते उन वासुदेवको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ॥ २०—२३॥

जिन परमेश्वरने रूप देखनेके लिये आँखोंको, स्पर्शज्ञानके लिये त्वचाको, खट्टे मीठे स्वाद लेनेके लिये जीभको और सुगन्ध-दुर्गन्ध सूँघनेके लिये नाकको नियत किया है; पर स्वयं उनके नाक, आँख और कान आदि नहीं हैं। जो वस्तुतः स्वयं प्रकाशस्वरूप हैं, वे सर्वेश्वर युक्तिके द्वारा (कुछ-कुछ) जाने जा सकते हैं। उन सर्वसमर्थ, स्तुतिके योग्य, किसी भी प्रकारके मलसे रहित, (भक्तिसे) ग्राह्य, ईश हरिदेवको मैं प्रणाम करता हूँ।

येनैकदंष्ट्रेण समुद्धृतेयं
धरा चला धारयतीह सर्वम्।
शेते ग्रसित्वा सकलं जगद् य-
स्तमीड्यमीशं प्रणतोऽस्मि विष्णुम्॥ २६
अंशावतीर्णेन च येन गर्भे
हृतानि तेजांसि महासुराणाम्।
नमामि तं देवमनन्तमीश-
मशेषसंसारतरोः कुठारम्॥ २७
देवो जगद्योनिरयं महात्मा
स षोडशांशेन महाऽसुरेन्द्राः।
सुरेन्द्रमातुर्जठरं प्रविष्टो
हृतानि वस्तेन बलं वपूंषि॥ २८

बलिरुवाच

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम्।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः॥ २९
विप्रचित्तिः शिबिः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च।
हयशिरा अश्वशिरा भङ्गकारो महाहनुः॥ ३०
प्रतापी प्रघसः शम्भुः कुक्कुराक्षश्च दुर्जयः।
एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दानवास्तथा॥ ३१
महाबला महावीर्या भूभारधरणक्षमाः।
एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्यार्द्धेन सम्मितः॥ ३२

लोमहर्षण उवाच

पौत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।
सक्रोधश्च बलिं प्राह वैकुण्ठाक्षेपवादिनम्॥ ३३
विनाशमुपयास्यन्ति दैत्या ये चापि दानवाः।
येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान्॥ ३४
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम्।
त्वामृते पापसंकल्प कोऽन्य एवं वदिष्यति॥ ३५
य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः।
सब्रह्मकास्तथा देवाः स्थावरान्ता विभूतयः॥ ३६
त्वं चाहं च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीवनम्।
ससमुद्रद्वीपलोकोऽयं यश्चेदं सचराचरम्॥ ३७
यस्याभिवाद्यवन्द्यस्य व्यापिनः परमात्मनः।
एकांशांशकलाजन्म कस्तमेवं प्रवक्ष्यति॥ ३८

जिनके द्वारा एक मोटे तथा बड़े दाँतसे निकाली गयी चिरस्थायिनी पृथ्वी सभी कुछ धारण करनेमें समर्थ है तथा जो समस्त संसारको अपनेमें स्थान देकर सोनेका स्वाँग धारण करते हैं, उन स्तुत्य ईश विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने अपने अंशसे अदितिके गर्भमें आकर महासुरोंके तेजका अपहरण कर लिया, उन समस्त संसाररूपी वृक्षके लिये कुठाररूप धारण करनेवाले अनन्त देवाधीश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। हे महासुरो! जगत्की उत्पत्तिके स्थान वे ही महात्मा देव अपने सोलहवें अंशकी कलासे इन्द्रकी माताके गर्भमें प्रविष्ट हुए हैं और उन्होंने ही तुम लोगोंके शारीरिक बलको अपहृत कर लिया है॥ २४—२८॥

बलिने कहा—तात! जिनसे हम सबको डर है वे हरि कौन हैं? हमारे पास वासुदेवसे अधिक शक्तिशाली सैकड़ों दैत्य हैं; जैसे—विप्रचित्ति, शिबि, शङ्कु, अयःशंकु, हयशिरा, अश्वशिरा, (विघटन करनेवाला) भङ्गकार, महाहनु, प्रतापी, प्रघस, शम्भु, कुक्कुराक्ष एवं दुर्जय। ये तथा अन्य भी ऐसे अनेक दैत्य एवं दानव हैं। ये सभी महाबलवान् तथा महापराक्रमी एवं पृथ्वीके भारको धारण करनेमें समर्थ हैं। कृष्ण तो हमारे इन बलवान् दैत्योंमेंसे पृथक्-पृथक् एक-एकके आधे बलके समान भी नहीं हैं॥ २९—३२॥

लोमहर्षणने कहा—अपने पौत्रकी इस उक्तिको सुनकर दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद क्रुद्ध हो गये और भगवान्की निन्दा करनेवाले बलिसे बोले—बलि! तेरे-जैसे विवेकहीन एवं दुर्बुद्धि राजाके साथ ये सारे दैत्य एवं दानव मारे जायँगे। हे पापको ही सोचनेवाले पापबुद्धि! तुम्हारे सिवा ऐसा कौन है, जो देवाधिदेव महाभाग अज एवं सर्वव्यापी वासुदेवको इस तरह कहेगा॥ ३३—३५॥

तुमने जिन-जिनका नाम लिया है, वे सभी दैत्य एवं दानव तथा ब्रह्माके साथ सभी देवता एवं चराचरकी समस्त विभूतियाँ, तुम और मैं, पर्वत तथा वृक्ष, नदी और वनसे युक्त सारा जगत् तथा समुद्र एवं द्वीपोंसे युक्त सम्पूर्ण लोक तथा चर और अचर जिन सर्ववन्द्य श्रेष्ठ सर्वव्यापी परमात्माके एक अंशकी अंशकलासे उत्पन्न

ब्रूते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम्।
दुर्बुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शासनातिगम्॥ ३९

हुए हैं, उनके विषयमें विनाशकी ओर चलनेवाले विवेकहीन, मूर्ख, इन्द्रियोंके गुलाम, वृद्धोंके आदेशोंका उल्लङ्घन करनेवाले तुम्हारी अपेक्षा कौन ऐसा (कृत्या नामसे) कह सकेगा?॥ ३६—३९॥

शोच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तव पिताऽधमः।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो देवदेवावमानकः॥ ४०

तिष्ठत्वनेकसंसारसंचितौघविनाशिनि।
कृष्णे भक्तिरहं तावदवेक्ष्यो भवता न किम्॥ ४१

न मे प्रियतरः कृष्णादपि देहोऽयमात्मनः।
इति जानात्ययं लोको भवांश्च दितिनन्दन॥ ४२

जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम।
निन्दां करोषि तस्य त्वमकुर्वन् गौरवं मम॥ ४३

विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले।
ममापि सर्वजगतां गुरुर्नारायणो हरिः॥ ४४

मैं (ही सचमुच) शोचनीय हूँ, जिसके घरमें तुम्हारा अधम पिता उत्पन्न हुआ, जिसका तुम्हारे जैसा देवदेव (विष्णु)-का तिरस्कार करनेवाला पुत्र है। जो अनेक संसारके समूहोंके प्रवाहका विनाश करनेवाले हैं, ऐसे कृष्णमें भक्तिके लिये तुम्हें क्या मेरा भी ध्यान नहीं रहा। दितिनन्दन! मेरे विषयमें समस्त संसार एवं तुम भी यह जानते हो कि मुझे यह मेरी देह भी कृष्णसे अधिक प्रिय नहीं है। फिर यह समझते हुए भी कि भगवान् कृष्ण मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, फिर भी तुम मेरी मर्यादापर ध्यान न देकर ठेस पहुँचाते हुए उनकी निन्दा कर रहे हो। बलि! तुम्हारा गुरु (पिता) विरोचन है, उसका गुरु (पिता) मैं हूँ तथा मेरे भी गुरु सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् नारायण श्रीहरि हैं॥ ४०—४४॥

निन्दां करोषि तस्मिंस्त्वं कृष्णे गुरुगुरोर्गुरौ।
यस्मात् तस्मादिहैव त्वमैश्वर्याद् भ्रंशमेष्यसि॥ ४५

स देवो जगतां नाथो बले प्रभुर्जनार्दनः।
नन्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते भक्तिमानत्र मे गुरुः॥ ४६

एतावन्मात्रमप्यत्र निन्दता जगतो गुरुम्।
नापेक्षितस्त्वया यस्मात् तस्माच्छापं ददामि ते॥ ४७

यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं बले।
त्वयोक्तमच्युताक्षेपं राज्यभ्रष्टस्तथा पत॥ ४८

यथा न कृष्णादपरः परित्राणं भवार्णवे।
तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम्॥ ४९

जिस कारण तुम अपने गुरु (पिता विरोचन)-के गुरु (पिता मैं प्रह्लाद) के भी गुरु विष्णुकी निन्दा कर रहे हो, इस कारण तुम यहीं ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाओगे। बलि! वे प्रभु जनार्दनदेव जगत्के स्वामी हैं। इस विषयमें मेरा गुरु (अर्थात् मैं) भक्तिमान् हूँ, यह विचारकर तुझे मेरी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। जिस कारणसे जगद्गुरुकी निन्दा करनेवाले तुमने मेरी इतनी भी अपेक्षा नहीं की, इस कारण मैं तुम्हें शाप देता हूँ; क्योंकि बलि! तुम्हारे द्वारा अच्युतके प्रति अपमानजनित ये वचन मेरे लिये सिर कट जानेसे भी अधिक कष्टदायी हैं, अतः तुम राज्यसे भ्रष्ट होकर गिर जाओ। भवसागरमें भगवान् विष्णुको छोड़कर दूसरा कोई रक्षक नहीं है, अतः शीघ्र ही मैं तुम्हें राज्यसे भ्रष्ट हुआ देखूँगा॥ ४५—४९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

तीसवाँ अध्याय

बलिका प्रह्लादको संतुष्ट करना, अदितिके गर्भसे वामनका प्राकट्य; ब्रह्माद्वारा स्तुति, वामनका बलिके यज्ञमें आना

लोमहर्षण उवाच

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा वचनं रौद्रमप्रियम्।
प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः॥ १

बलिरुवाच

प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहते मयि।
बलावलेपमूढेन मयैतद्वाक्यमीरितम्॥ २

मोहापहृतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम।
यच्छप्तोऽस्मि दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम्॥ ३

राज्यभ्रंशं यशोभ्रंशं प्राप्स्यामीति ततस्त्वहम्।
विषण्णोऽस्मि यथा तात तथैवाविनये कृते॥ ४

त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नातिदुर्लभम्।
संसारे दुर्लभास्तात गुरवो ये भवद्विधाः॥ ५

प्रसीद तात मा कोपं कर्तुमर्हसि दैत्यप।
त्वत्कोपपरिदग्धोऽहं परितप्ये दिवानिशम्॥ ६

प्रह्लाद उवाच

वत्स कोपेन मे मोहो जनितस्तेन ते मया।
शापो दत्तो विवेकश्च मोहेनापहृतो मम॥ ७

यदि मोहेन मे ज्ञानं नाक्षिप्तं स्यान्महासुर।
तत्कथं सर्वगं जानन् हरिं कञ्चिच्छपाम्यहम्॥ ८

यो यः शापो मया दत्तो भवतोऽसुरपुंगव।
भाव्यमेतेन नूनं ते तस्मात्त्वं मा विषीद वै॥ ९

अद्यप्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ।
भवेथा भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति॥ १०

शापं प्राप्य च मे वीर देवेशः संस्मृतस्त्वया।
तथा तथा वदिष्यामि श्रेयस्त्वं प्राप्स्यसे यथा॥ ११

लोमहर्षणने कहा— दैत्यपति बलि प्रह्लादकी इस प्रकार कठोर एवं अप्रिय उक्तिको सुनकर उनके चरणोंमें बार-बार सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए मनाने लगा॥ १॥

बलिने कहा— तात! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों, मैं मूढ़ हो गया था, मेरे ऊपर क्रोध न करें। बलके घमण्डसे विवेकहीन होनेके कारण मैंने यह वचन कहा था। दैत्यश्रेष्ठ! मोहके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, मैं अधम हूँ। मैंने सदाचारका पालन नहीं किया, जिससे मुझ पापाचारीको आपने जो शाप दिया, वह बहुत ठीक किया। तात! आप (मत:) मेरी उद्दण्डताके कारण बहुत दुःखी हैं, अतः मैं राज्यसे च्युत और अपनी कीर्तिसे रहित हो जाऊँगा। तात! संसारमें तीनों लोकोंका राज्य, ऐश्वर्य अथवा अन्य किसी (वस्तु)-का मिलना बहुत कठिन नहीं है, परंतु आप-जैसे जो गुरुजन हैं, वे संसारमें दुर्लभ हैं। दैत्योंकी रक्षा करनेवाले तात! आप प्रसन्न हों, क्रोध न करें। आपका क्रोध मुझे जला रहा है, इसलिये मैं दिन-रात (आठों प्रहर) संतप्त हो रहा हूँ॥ २—६॥

प्रह्लाद बोले— वत्स! क्रोधके कारण हमें मोह उत्पन्न हो गया था और उसीने मेरी विचार करनेवाली बुद्धि भी नष्ट कर दी थी, इसीसे मैंने तुम्हें शाप दे दिया। महासुर! यदि मोहवश मेरा ज्ञान दूर नहीं हुआ होता तो मैं भगवान्‌को सब जगह विद्यमान जानता हुआ भी तुम्हें शाप कैसे देता। असुरश्रेष्ठ! मैंने तुम्हें जो क्रोधवश शाप दिया है, वह तो तुम्हारे लिये होगा, किंतु तुम दुःखी मत हो। बल्कि आजसे तुम उन देवोंके भी ईश्वर भगवान् अच्युत हरिकी भक्ति करनेवाले बन जाओ—भक्त हो जाओ। वे ही तुम्हारे रक्षक हो जायँगे। वीर! मेरा शाप पाकर तुमने देवेश्वर भगवान्‌का स्मरण किया है, अतः मैं तुमसे वही कहूँगा, जिससे तुम कल्याणको प्राप्त करो॥ ७—११॥

लोमहर्षण उवाच

अदितिर्वरमासाद्य सर्वकामसमृद्धिदम्।
क्रमेण जठरे देवो वृद्धिं प्राप्तो महायशाः॥ १२

ततो मासेऽथ दशमे काले प्रसव आगते।
अजायत स गोविन्दो भगवान् वामनाकृतिः॥ १३

अवतीर्णे जगन्नाथे तस्मिन् सर्वामरेश्वरे।
देवाश्च मुमुचुर्दुःखं देवमाताऽदितिस्तथा॥ १४

ववुर्वाताः सुखस्पर्शा नीरजस्कमभून्नभः।
धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत॥ १५

नोद्वेगश्चाप्यभूद् देहे मनुजानां द्विजोत्तमाः।
तदा हि सर्वभूतानां धर्मे मतिरजायत॥ १६

तं जातमात्रं भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
जातकर्मादिकां कृत्वा क्रियां तुष्टाव च प्रभुम्॥ १७

ब्रह्मोवाच

जयाधीश जयाजेय जय विश्वगुरो हरे।
जन्ममृत्युजरातीत जयानन्त जयाच्युत॥ १८

जयाजित जयाशेष जयाव्यक्तस्थिते जय।
परमार्थार्थ सर्वज्ञ ज्ञानज्ञेयार्थनिःसृत॥ १९

जयाशेष जगत्साक्षिञ्जगत्कर्तर्जगद्गुरो।
जगतोऽजगदन्तेश स्थितौ पालयते जय॥ २०

जयाखिल जयाशेष जय सर्वहृदिस्थित।
जयादिमध्यान्तमय सर्वज्ञानमयोत्तम॥ २१

मुमुक्षुभिरनिर्देश्य नित्यहृष्ट जयेश्वर।
योगिभिर्मुक्तिकामैस्तु दमादिगुणभूषण॥ २२

जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जय स्थूल जगन्मय।
जय सूक्ष्मातिसूक्ष्म त्वं जयानिन्द्रिय सेन्द्रिय॥ २३

जय स्वमायायोगस्थ शेषभोग जयाक्षर।
जयैकदंष्ट्रप्रान्तेन समुद्धृतवसुंधर॥ २४

लोमहर्षणने कहा—(उधर) अदितिने सभी कामनाओंकी समृद्धि करनेवाले वरको प्राप्त कर लिया तब उसके उदरमें महायशस्वी देव (भगवान्) धीरे-धीरे बढ़ने लगे। इसके बाद दसवें महीनेमें जब प्रसवका समय आया तब भगवान् गोविन्द वामनाकारमें उत्पन्न हो गये। संसारके स्वामी उन अखिलेश्वरके अवतार ले लेनेपर देवता और देवमाता अदिति दुःखसे मुक्त हो गये। फिर तो (संसारमें) आनन्ददायी वायु बहने लगी, गगनमण्डल बिना धूलिका (स्वच्छ) हो गया एवं सभी जीवोंकी बुद्धि धर्म करनेमें लग गयी। द्विजोत्तमो! उस समय मनुष्योंकी देहमें कोई घबड़ाहट नहीं थी और सब समस्त प्राणियोंकी बुद्धि धर्ममें लग गयी। उनके उत्पन्न होते ही लोकपितामह ब्रह्माने उनको तत्काल जातकर्म आदि क्रिया (संस्कार) सम्पन्न करके उन प्रभुकी स्तुति की॥ १२—१७॥

ब्रह्मा बोले—अधीश! आपकी जय हो। अजेय! आपकी जय हो। विश्वके गुरु हरि! आपकी जय हो। जन्म-मृत्यु तथा जरासे अतीत अनन्त! आपकी जय हो। अच्युत! आपकी जय हो। अजित! आपकी जय हो। अशेष! आपकी जय हो। अव्यक्त स्थितिवाले भगवन्! आपकी जय हो। परमार्थार्थको (उत्तम अभिप्रायको) पूर्तिमें निमित्त! ज्ञान और ज्ञेयके अर्थके उत्पादक सर्वज्ञ! आपकी जय हो। अशेष जगत्के साक्षी! जगत्के कर्ता जगद्गुरु! आपकी जय हो। जगत् (चर) एवं अजगत् (अचर) के स्थिति, पालन एवं प्रलयके स्वामी! आपकी जय हो। अखिल! आपकी जय हो। अशेष! आपकी जय हो। सभीके हृदयमें रहनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। आदि, मध्य और अन्तस्वरूप! समस्त ज्ञानकी मूर्ति, उत्तम! आपकी जय हो। मुमुक्षुओंके द्वारा अनिर्देश्य, नित्य-प्रसन्न ईश्वर! आपकी जय हो। हे मुक्तिकी कामना करनेवाले योगियोंसे सेवित, दम आदि गुणोंसे विभूषित परमेश्वर! आपकी जय हो॥ १८—२२॥

हे अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपवाले! हे दुर्ज्ञेय (कठिनतासे समझमें आनेवाले)! आपकी जय हो। हे स्थूल और जगत्-मूर्ति! आपकी जय हो। हे सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म प्रभो! आपकी जय हो। हे इन्द्रियोंसे रहित तथा इन्द्रियोंसे युक्त (नाथ)! आपकी जय हो

नृकेसरिन् सुरारातिवक्षःस्थलविदारण।
साम्प्रतं जय विश्वात्मन् मायावामन केशव॥ २५

निजमायापरिच्छिन्न जगद्धातर्जनार्दन।
जयाचिन्त्य जयानेकस्वरूपैकविध प्रभो॥ २६

वर्द्धस्व वर्धितानेकविकारप्रकृते हरे।
त्वय्येषा जगतामीशे संस्थिता धर्मपद्धतिः॥ २७

न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राद्यास्त्रिदशा हरे।
ज्ञातुमीशा न मुनयः सनकाद्या न योगिनः॥ २८

त्वं मायापटसंवीतो जगत्यत्र जगत्पते।
कस्त्वां वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसादं विना नरः॥ २९

त्वमेवाराधितो यस्य प्रसादसुमुखः प्रभो।
स एव केवलं देवं वेत्ति त्वां नेतरो जनः॥ ३०

तदीश्वरेश्वरेशान विभो वर्द्धस्व भावन।
प्रभवायास्य विश्वस्य विश्वात्मन् पृथुलोचन॥ ३१

लोमहर्षण उवाच

एवं स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचारूढसम्पदम्॥ ३२

स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्राद्यैः कश्यपेन च।
मया च वः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम्॥ ३३

भूयश्चाहं स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि मया श्रुतम्।
यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्यं हतकण्टकम्॥ ३४

सोऽहं तथा करिष्यामि यथेन्द्रो जगतः पतिः।
भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतद् ब्रवीमि वः॥ ३५

ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान्।
यज्ञोपवीतं भगवान् ददौ तस्य बृहस्पतिः॥ ३६

हे अपनी मायासे योगमें स्थित रहनेवाले (स्वामी)! आपकी जय हो। शेषकी शय्यापर सोनेवाले अविनाशी शेषशायी प्रभो! आपकी जय हो। एक दाँतके कोनेपर पृथ्वीको उठानेवाले वराहरूपधारी भगवन्! आपकी जय हो। हे देवताओंके शत्रु (हिरण्यकशिपु) के वक्षःस्थलको विदीर्ण करनेवाले नृसिंह भगवान् तथा विश्वकी आत्मा एवं अपनी मायासे वामनका रूप धारण करनेवाले केशव! आपकी जय हो। हे अपनी मायासे आवृत तथा संसारको धारण करनेवाले परमेश्वर, आपकी जय हो। हे ध्यानसे परे अनेक स्वरूप धारण करनेवाले तथा एकविध प्रभो! आपकी जय हो। हरे! आपने प्रकृतिके भाँति-भाँति विकार बढ़ाये हैं। आपकी वृद्धि हो। जगत्का यह धर्ममार्ग आप प्रभुमें स्थित है॥ २३—२७॥

हे हरे! मैं, शंकर, इन्द्र आदि देव, सनकादि मुनि तथा योगिगण आपको जाननेमें असमर्थ हैं। हे जगत्पते! आप इस संसारमें मायारूपी वस्त्रसे ढके हैं। हे सर्वेश! आपकी प्रसन्नताके बिना कौन ऐसा मनुष्य है जो आपको जान सके। प्रभो! जो मनुष्य आपकी आराधना करता है और आप उसपर प्रसन्न होते हैं, वही आपको जानता है, अन्य नहीं। हे ईश्वरोंके भी ईश्वर! हे ईशान! हे विभो! हे भावन! हे विश्वात्मन्! हे पृथुलोचन! इस विश्वके प्रभव (उत्पत्ति—सृष्टिके कारण) विष्णु, आपकी वृद्धि हो, जय हो॥ २८—३१॥

लोमहर्षणने कहा—इस प्रकार जब वामनरूपमें अवतीर्ण भगवान्की स्तुति सम्पन्न हुई, तब हृषीकेश भगवान् हँसकर अभिप्रायपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त वाणीमें बोले—पूर्वकालमें आपने, इन्द्र आदि देवों तथा कश्यपने मेरी स्तुति की थी। मैंने भी आप लोगोंसे इन्द्रके लिये त्रिभुवनको देनेकी प्रतिज्ञा की थी। इसके बाद अदितिने मेरी स्तुति की तो उससे भी मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं बाधाओंसे रहित तीनों लोकोंको इन्द्रको दूँगा। अतः मैं ऐसा करूँगा, जिससे हजारों नेत्रोंवाले (इन्द्र) संसारके स्वामी होंगे। मेरा यह कथन सत्य है॥ ३२—३५॥

(हृषीकेश भगवान्के इस प्रकार अपने वचनको सत्यता घोषित करनेके बाद) ब्रह्माने हृषीकेशको कृष्ण मृगचर्म समर्पित किया एवं भगवान् बृहस्पतिने उन्हें

आषाढमददाद् दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः।
कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं चीरमथाङ्गिराः।
आसनं चैव पुलहः पुलस्त्यः पीतवाससी॥ ३७

उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवस्वरभूषणाः।
शास्त्राण्यशेषाणि तथा सांख्ययोगोक्तयश्च याः॥ ३८

स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः।
सर्वदेवमयो देवो बलेरध्वरमभ्यगात्॥ ३९

यत्र यत्र पदं विप्रा भूभागे वामनो ददौ।
ददाति भूमिर्विवरं तत्र तत्राभिपीडिता॥ ४०

स वामनो जडगतिर्मृदु गच्छन् सपर्वताम्।
साब्धिद्वीपवतीं सर्वां चालयामास मेदिनीम्॥ ४१

बृहस्पतिस्तु शनकैर्मार्गं दर्शयते शुभम्।
तथा क्रीडाविनोदार्थमतिजाड्यगतोऽभवत्॥ ४२

ततः शेषो महानागो निःसृत्यासौ रसातलात्।
साहाय्यं कल्पयामास देवदेवस्य चक्रिणः॥ ४३

तदद्यापि च विख्यातमहेर्बिलमनुत्तमम्।
तस्य संदर्शनादेव नागेभ्यो न भयं भवेत्॥ ४४

यज्ञोपवीत दिया। ब्रह्मपुत्र मरीचिने उन्हें पलाशदण्ड, वसिष्ठने कमण्डलु और अङ्गिराने रेशमी वस्त्र दिया। पुलहने आसन तथा पुलस्त्यने दो पीले वस्त्र दिये। ओंकारके स्वरसे अलंकृत वेद, सभी शास्त्र तथा सांख्ययोग आदि दर्शनोंकी उक्तियाँ उनका उपस्थान करने लगीं। समस्त देवताओंके मूर्तिरूप वामनभगवान् जटा, दण्ड, छत्र एवं कमण्डलु धारण करके बलिकी यज्ञभूमिमें पधारे॥ ३६—३९॥

ब्राह्मणो! पृथ्वीपर वामनभगवान् जिस-जिस स्थानपर डग रखते थे, वहाँकी दबी हुई भूमिमें दरार पड़ जाता था—गड्ढा हो जाता था। मधुरभावसे धीरे-धीरे चलते हुए वामनभगवान्ने समुद्रों, द्वीपों तथा पर्वतोंसे युक्त सारी पृथ्वीको कँपा दिया। बृहस्पति भी शनैः शनैः उन्हें सारे कल्याणकारी मार्गको दिखाने लगे एवं स्वयं भी क्रीडापूर्ण मनोरञ्जनके लिये अत्यन्त धीरे-धीरे चलने लगे। उसके बाद महानाग शेष रसातलसे ऊपर आकर देवदेव चक्रधारी भगवान्की सहायता करने लगे। आज भी वह श्रेष्ठ सर्पोंका बिल विख्यात है और उसके दर्शनमात्रसे नागोंसे भय नहीं होता॥ ४०—४४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३०॥

वामनद्वारा तीन पग भूमिकी याचना तथा विराट्‌रूपसे तीनों लोकोंको तीन पगमें नाप लेना और बलिका पातालमें जाना

लोमहर्षण उवाच

सपर्वतवनामुर्वीं दृष्ट्वा संक्षुभितां बलिः।
पप्रच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥ १

आचार्य क्षोभमायाति साब्धिभूमिधरा मही।
कस्माच्च नासुरान् भागान् प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः॥ २

इति पृष्टोऽथ बलिना काव्यो वेदविदां वरः।
उवाच दैत्याधिपतिं चिरं ध्यात्वा महामतिः॥ ३

लोमहर्षण बोले—बलिने वनों और पर्वतोंके साथ सम्पूर्ण पृथ्वीको क्षोभसे भरी देखकर हाथ जोड़ करके शुक्राचार्यको प्रणाम कर पूछा—आचार्यदेव! समुद्र तथा पर्वतोंके साथ पृथ्वीके क्षुब्ध होनेका क्या कारण है और अग्निदेव असुरोंके भागोंको क्यों नहीं ग्रहण कर रहे हैं? बलिके इस प्रकार प्रश्न करनेपर वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् शुक्राचार्यने चिरकालतक ध्यान लगाकर (और

अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः।
वामनेनेह रूपेण परमात्मा सनातनः॥ ४

तथ्य समझकर) दैत्येन्द्रसे कहा—कश्यपके घरमें जगद्योनि—संसारको उत्पन्न करनेवाले सनातन परमात्मा वामनके रूपमें अवतीर्ण हो गये हैं॥ १—४॥

स नूनं यज्ञमायाति तव दानवपुंगव।
तत्पादन्यासविक्षोभादियं प्रचलिता मही॥ ५
कम्पन्ते गिरयश्चेमे क्षुभिता मकरालयाः।
नेयं भूतपतिं भूमिः समर्था वोढुमीश्वरम्॥ ६
सदेवासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः।
धारयत्यखिलान् देवान् मनुष्यांश्च महासुरान्॥ ७
इयमस्य जगद्धातुर्माया कृष्णस्य गह्वरी।
धार्यधारकभावेन यया संपीडितं जगत्॥ ८

दानवश्रेष्ठ! वे ही प्रभु तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं उन्हींके पैर रखनेसे पृथ्वीमें विक्षोभ हो रहा है जिससे यह पृथ्वी काँप रही है, ये पर्वत भी काँप रहे हैं और सिन्धुमें जोरोंकी लहरें उठ रही हैं। इस भूमिमें उन भूतपति भगवान्‌को वहन करनेकी शक्ति नहीं है। ये ही (परमात्मा) देव, असुर, गन्धर्व—देवों, मनुष्यों एवं महासुरोंको धारण करते हैं। जगत्‌को धारण करनेवाले भगवान् कृष्णकी ही यह गम्भीर (अचिन्त्य) माया है, जिस मायाके द्वारा यह संसार धार्यधारकभावसे क्षुब्ध हो रहा है॥ ५—८॥

तत्संनिधानादसुरा न भागार्हाः सुरद्विषः
भुञ्जते नासुरान् भागानपि तेन त्रयोऽग्नयः॥ ९

शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमाऽब्रवीद् बलिः।
धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम्।
यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन् मत्तः कोऽन्योऽधिकः पुमान्॥ १०

यं योगिनः सदोद्युक्ताः परमात्मानमव्ययम्।
द्रष्टुमिच्छन्ति देवोऽसौ ममाध्वरमुपेष्यति।
यन्मयाचार्य कर्तव्यं तन्ममादेष्टुमर्हसि॥ ११

उनके सन्निधान होनेके कारण देवताओंके शत्रु दैत्यलोग यज्ञ-भाग पानेके योग्य नहीं रह गये हैं अतएव तीनों अग्निदेव भी असुरोंके भागको नहीं ले रहे हैं। शुक्राचार्यकी बात सुननेके बाद बलिके रोंगटे खड़े हो गये उसके बाद बलिने (शुक्राचार्यसे) कहा- ब्रह्मन्! मैं धन्य एवं कृतकृत्य हो गया, जो स्वयं यज्ञके अधिपति भगवान् लगातार मेरे यज्ञमें पधार रहे हैं कौन दूसरा पुरुष मुझसे श्रेष्ठ है? सदैव सावधान रहनेवाले योगीलोग जिन नित्य परमात्माको देखना चाहते हैं, वे ही देव मेरे यज्ञमें (कृपाकर) पधार रहे हैं। आचार्य! मुझे जो करना चाहिये, उसे आप आदिष्ट कीजिये॥ ९—११॥

शुक्र उवाच

यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर।
त्वया तु दानवा दैत्य यज्ञभागभुजः कृताः॥ १२

अयं च देवः सत्त्वस्थः करोति स्थितिपालनम्।
विसृष्टं च तथाऽयं च स्वयमत्ति प्रजाः प्रभुः॥ १३

भवांस्तु बन्दी भविता नूनं विष्णुः स्थितौ स्थितः।
विदित्वैवं महाभाग कुरु यत् ते मनोगतम्॥ १४

शुक्राचार्य बोले—असुर! वेदोंका विधान है कि यज्ञभागके भोक्ता देवता हैं। परंतु दैत्य! तुमने यज्ञभागका भोक्ता दानवोंको बना दिया है। (यह वेद-विधानके विपरीत किया है—विधानका उल्लङ्घन किया है।) ये ही देव सत्त्वगुणका आश्रय लेकर विश्वकी स्थिति और पालन करते हैं और ये ही सृष्टि भी करते हैं, फिर ये ही प्रभु स्वयं प्रजाका (जीवोंका) अन्त भी करते हैं विष्णु स्थितिके कार्यमें (कल्याणमय मर्यादाके स्थापनमें) तत्पर हो गये हैं। अतः आपको निश्चय ही बन्दी होना है। महाभाग! इसपर विचारकर तुम्हारे मनमें जैसी

त्वयाऽस्य दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि।
प्रतिज्ञा नैव वोढव्या वाच्यं साम तथाऽफलम्॥ १५

कृतकृत्यस्य देवस्य देवार्थं चैव कुर्वतः।
अलं दद्यां धनं देवे त्वेतद्वाच्यं तु याचतः।
कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर॥ १६

बलिरुवाच

ब्रह्मन् कथमहं ब्रूयामन्येनापि हि याचितः।
नास्तीति किमु देवस्य संसारस्याघहारिणः॥ १७

व्रतोपवासैर्विविधैर्यः प्रभुर्गृह्यते हरिः।
स मे वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमतोऽधिकम्॥ १८

यदर्थं सुमहारम्भा दमशौचगुणान्वितैः।
यज्ञाः क्रियन्ते यज्ञेशः स मे देहीति वक्ष्यति॥ १९

तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं च नः।
यन्मां देहीति विश्वेशः स्वयमेव वदिष्यति॥ २०

नास्तीत्यहं गुरो वक्ष्ये तमभ्यागतमीश्वरम्।
प्राणत्यागं करिष्येऽहं न तु नास्ति जने क्वचित्॥ २१

नास्तीति यन्मया नोक्तमन्येषामपि याचताम्।
वक्ष्यामि कथमायाते तदद्य चामरेऽच्युते॥ २२

श्लाघ्य एव हि वीराणां दानाच्चापत्समागमः।
न बाधाकारि यद्दानं तदङ्ग बलवत् स्मृतम्॥ २३

मद्राज्ये नासुखी कश्चिन्न दरिद्रो न चातुरः।
न दुःखितो न चोद्विग्नो न शमादिविवर्जितः॥ २४

इच्छा हो वैसा करो दैत्यपते! (देखना) तुम थोड़ी-सी भी वस्तु देनेके लिये उनसे प्रतिज्ञा मत करना। व्यर्थकी कोमल और मधुर बातें करना। महासुर! कृतकृत्य एवं देवताओंका कार्य पूरा करनेवाले तथा देवताओंके ऐश्वर्यके लिये प्रयत्नशील भगवान् श्रीकृष्णके याचना करनेपर 'मैं देवताओंके हेतु पर्याप्त धन दूँगा' ऐसा कहना॥ १२—१६॥

बलि बोले—ब्रह्मन्! मैं दूसरोंके याचना करनेपर भी 'नहीं है' ऐसा कैसे कह सकता हूँ? फिर संसारके पापोंको दूर करनेवाले (उन) देवसे कहनेकी तो बात ही क्या है? विविध प्रकारके व्रतों एवं उपवासोंसे जो परमेश्वर ग्रहण किये जाने योग्य हैं, वे ही गोविन्द मुझसे 'दो' इस प्रकार कहेंगे तो इससे बढ़कर (मेरे लिये) और (भाग्य) क्या हो सकता है? जिनके लिये दम-शमादि शौच—भीतरी-बाहरी पवित्रता आदि गुणोंसे युक्त लोग यज्ञीय उपकरणों एवं सम्पत्तियोंको लगाकर यज्ञ करते हैं, वे ही यज्ञेश (यज्ञके स्वामी) यदि मुझसे 'दो' इस प्रकार कहेंगे तो मेरे किये हुए सभी कर्म सफल हो गये और हमारा तपश्चरण भी सफल हो गया; क्योंकि विश्वके स्वामी स्वयं मुझसे 'दो'—इस तरह कहेंगे॥ १७—२०॥

गुरुदेव! क्या अपने यहाँ (याचकरूपमें) आये उन परमेश्वरसे 'नहीं है' मैं ऐसा कहूँ? (यह तो उचित नहीं जँचता) भले ही प्राणोंका त्याग कर दूँगा; किंतु किसी भी याचक मनुष्यसे 'नहीं है' यह नहीं कह सकता। दूसरोंके भी याचना करनेपर जब मैंने 'नहीं है' ऐसा नहीं कहा तो आज अपने यहाँ स्वयं पूर्ण परमेश्वरके आ जानेपर मैं यह कैसे कहूँगा कि 'नहीं है'? दानके कारण यदि कठिनाई आती है तो उसे वीर पुरुष प्रशंसनीय ही मानते हैं। क्योंकि दानका महत्त्व उससे और बढ़ जाता है। गुरो! (हाँ, साधारणतया यह समझा जाता है कि) जो दान बाधा डालनेवाला नहीं होता, वह निःसंदेह बलवान् कहा गया है। (पर ऐसा प्रसङ्ग नहीं आ सकता; क्योंकि) मेरे राज्यमें ऐसा कोई भी नहीं है, जो सुखी न हो और न कोई रोगी या दुःखी ही है, न कोई किसीके द्वारा उद्वेजित किया गया है और न कोई

हृष्टस्तुष्टः सुगन्धी च तृप्तः सर्वसुखान्वितः।
जनः सर्वो महाभाग किमुताहं सदा सुखी॥ २५

एतद्विशिष्टमत्राहं दानबीजफलं लभे।
विदितं मुनिशार्दूल मयैतत् त्वन्मुखाच्छ्रुतम्॥ २६

मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः।
मम दानमवाप्यासौ पुष्णाति यदि देवताः॥ २७

एतद्बीजवरे दानबीजं पतति चेद् गुरो।
जनार्दने महापात्रे किं न प्राप्तं ततो मया॥ २८

विशिष्टं मम तद्दानं परितुष्टाश्च देवताः।
उपभोगाच्छतगुणं दानं सुखकरं स्मृतम्॥ २९
मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः।
तेनाभ्येति न संदेहो दर्शनादुपकारकृत्॥ ३०

अथ कोपेन चाभ्येति देवभागोपरोधतः।
मां निहन्तुं ततो हि स्याद् वधः श्लाघ्यतरोऽच्युतात्॥ ३१

एतज्ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ दानविघ्नकरेण मे।
नैव भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते॥ ३२

लोमहर्षण उवाच

इत्येवं वदतस्तस्य प्राप्तस्तत्र जनार्दनः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो मायावामनरूपधृक्॥ ३३

तं दृष्ट्वा यज्ञवाटं तु प्रविष्टमसुराः प्रभुम्।
जग्मुः प्रभावतः क्षोभं तेजसा तस्य निष्प्रभाः॥ ३४

जेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे।
वसिष्ठो गाधिजो गर्गो अन्ये च मुनिसत्तमाः॥ ३५

बलिश्चैवाखिलं जन्म मेने सफलमात्मनः।
ततःसंक्षोभमापन्नो न कश्चित् किंचिदुक्तवान्॥ ३६

प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास तेजसा।
अथासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान्॥ ३७

शम आदि गुणोंसे रहित है महाभाग! सभी लोग हृष्ट-तुष्ट, पुण्यात्मा-धर्मपरायण तृप्त एवं सुखी हैं। अधिक क्या है? मैं तो सदा सुखी हूँ॥ २१—२५॥

मुनिशार्दूल! आपके मुखसे सुनकर मुझे यह मालूम हो गया कि मैं यहाँपर विशिष्ट दानरूपी बीजका शुभ फल प्राप्त कर रहा हूँ। वे हरि यदि मुझसे दान लेकर देवताओंकी पुष्टि करते हैं तो यज्ञसे आराधित वे (हरि) मुझपर निश्चय ही प्रसन्न हैं यदि श्रेष्ठ बीज (ऐसा दान) महान् (योग्य) पात्र, पूज्य जनार्दनको मिल गया तो फिर मुझे क्या नहीं मिला? निश्चय ही मेरा यह दान विशिष्ट गुणोंवाला है और देवता मेरे ऊपर प्रसन्न हैं। दानके उपभोगकी अपेक्षा दान देना सौ गुना सुख देनेवाला माना गया है॥ २६—२९॥

यज्ञसे पूजे गये श्रीहरि निश्चय ही मेरे ऊपर प्रसन्न हैं। तभी तो निस्संदेह मुझे दर्शन देकर मेरा कल्याण करनेवाले वे प्रभु आ रहे हैं, निश्चय ही यही बात है। देवताओंके देवभागकी प्राप्तिमें रुकावट होनेके कारण यदि वे क्रोधवश मेरा वध करने भी आ रहे हों तो भी उन अच्युतसे होनेवाला मेरा वध भी प्रशंसनीय ही होगा। मुनिश्रेष्ठ यह समझकर गोविन्दके यहाँ समुपस्थित होनेपर आप मेरे दानमें विघ्न न डालें॥ ३०—३२॥

लोमहर्षण बोले—शुक्राचार्य और बलिमें इस प्रकार बात हो ही रही थी कि सर्वदेवमय, अचिन्त्य भगवान् अपनी मायासे अपना वामनरूप धारणकर वहाँ पहुँच गये। उन प्रभुको यज्ञस्थानमें उपस्थित देखकर दैत्यलोग उनके प्रभावसे अशान्त और तीव्र तेजसे रहित हो गये उस महायज्ञमें एकत्र (उपस्थित) वसिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग एवं अन्य श्रेष्ठ मुनिजन अपना-अपना जप करने लगे। बलिने भी अपने सम्पूर्ण जन्मको सफल माना, किंतु उसके बाद (इधर) खलबली मच गयी और संक्षुब्ध होनेके कारण किसीने कुछ भी नहीं कहा॥ ३३—३६॥

उनके देदीप्यमान तेजके कारण प्रत्येकने देवाधिदेवकी पूजा की उसके बाद वामनरूपमें प्रत्यक्ष प्रकट हुए विष्णुभगवान्‌ने लोगोंसे पूजित होनेके बाद एक दृष्टिसे (चारों ओर देखकर) उस विनम्र दैत्यपति एवं

देवदेवपतिः साक्षाद् विष्णुर्वामनरूपधृक्।
तुष्टाव यज्ञं वह्निं च यजमानमथार्चितः।
यज्ञकर्माधिकारस्थान् सदस्यान् द्रव्यसम्पदम्॥ ३८
सदस्याः पात्रमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात्।
यज्ञवाटस्थितं विप्राः साधु साध्वित्युदीरयन्॥ ३९
स चार्घमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तदा।
पूजयामास गोविन्दं प्राह चेदं महासुरः॥ ४०

बलिरुवाच

सुवर्णरत्नसंघातो गजाश्वसमितिस्तथा।
स्त्रियो वस्त्राण्यलंकारान् गावो ग्रामाश्च पुष्कलाः॥ ४१

सर्वे च सकला पृथ्वी भवतो वा यदीप्सितम्।
तद् ददामि वृणुष्वेष्टं ममार्थाः सन्ति ते प्रियाः॥ ४२
इत्युक्तो दैत्यपतिना प्रीतिगर्भान्वितं वचः।
प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान् वामनाकृतिः॥ ४३

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम्।
सुवर्णग्रामरत्नादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्॥ ४४

बलिरुवाच

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पदैः पदवतां वर।
शतं शतसहस्रं वा पदानां मार्गतां भवान्॥ ४५

श्रीवामन उवाच

एतावता दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि मार्गणे।
अन्येषामर्थिनां वित्तमिच्छया दास्यते भवान्॥ ४६

एतच्छ्रुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः।
वाचयामास वै तस्मै वामनाय महात्मने॥ ४७

पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः।
सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात्॥ ४८

चन्द्रसूर्यौ तु नयने द्यौः शिरश्चरणौ क्षितिः।
पादाङ्गुल्यः पिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः॥ ४९
विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः।
यक्षा नखेषु सम्भूता रेखास्वप्सरसस्तथा॥ ५०

मुनिवरोंको देखा तथा यज्ञ, अग्नि, यजमान, यज्ञकर्ममें अधिकृत सदस्यों एवं द्रव्यकी सामग्रियोंकी प्रशंसा की किये। तत्काल ही सभी सदस्यगण यज्ञमण्डपमें उपस्थित पात्रस्वरूप वामनके प्रति 'साधु-साधु' कहने लगे। उस समय हर्षमें विह्वल होकर महासुर बलिने अर्घ्य लिया और गोविन्दकी पूजा की तथा उनसे यह कहा॥ ३७—४०॥

बलिने कहा—(वामनदेव) अनन्त सुवर्ण और रत्नोंके ढेर तथा हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ, वस्त्र, आभूषण, गायें तथा ग्रामसमूह—ये सभी वस्तुएँ, समस्त पृथ्वी अथवा आपकी जो अभिलाषा हो वह मैं देता हूँ। आप अपना अभीष्ट बतलायें। मेरे प्रिय लगनेवाले समस्त अर्थ आपके लिये हैं॥ ४१-४२॥

दैत्यपति बलिके इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक उदार वचन कहनेपर वामनका आकार धारण करनेवाले भगवान्‌ने हँसते हुए दुर्बोध वाणीमें कहा—राजन्! मुझे अग्निशालाके लिये तीन पग (भूमि) दें। सुवर्ण, ग्राम एवं रत्न आदि उनकी इच्छा रखनेवाले याचकोंको प्रदान करें॥ ४३-४४॥

बलिने कहा—हे पदधारियोंमें श्रेष्ठ! तीन पग भूमिसे आपका कौन सा स्वार्थ सिद्ध होगा। सौ अथवा सौ हजार पग भूमि आप माँगिये॥ ४५॥

श्रीवामनने कहा—हे दैत्यपते! मैं इतना पानेसे ही कृतकृत्य हूँ (मेरा स्वार्थ इतनेसे ही सिद्ध हो जायगा) आप दूसरे याचना करनेवाले याचकोंको उनके इच्छानुकूल दान दीजियेगा। महात्मा वामनकी यह वाणी सुनकर (बलिने) उन महात्मा वामनको तीन पग भूमि देनेके लिये वचन दे दिया। दान देनेके लिये हाथपर जल गिरते ही वामन अवामन (विराट्) बन गये। तत्क्षण उन्होंने उन्हें अपना सर्वदेवमय स्वरूप दिखाया। चन्द्र और सूर्य उनके दोनों नेत्र, आकाश सिर, पृथ्वी दोनों चरण, पिशाच पैरकी अँगुलियाँ एवं गुह्यक हाथोंकी अँगुलियाँ थे॥ ४६—४९॥

जानुओंमें विश्वेदेवगण, दोनों जङ्घाओंमें सुरश्रेष्ठ साध्यगण, नखोंमें यक्ष एवं रेखाओंमें अप्सराएँ थीं।

दृष्टिर्ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः।
तारका रोमकूपाणि रोमेषु च महर्षयः॥ ५१

बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः।
अश्विनौ श्रवणे तस्य नासा वायुर्महात्मनः॥ ५२

प्रसादे चन्द्रमा देवो मनो धर्मः समाश्रितः।
सत्यमस्याभवद् वाणी जिह्वा देवी सरस्वती॥ ५३
ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा।
स्वर्गद्वारमभून्मैत्रं त्वष्टा पूषा च वै भ्रुवौ॥ ५४

मुखे वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः।
हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कश्यपो मुनिः॥ ५५

पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसन्धिषु।
वक्षःस्थले तथा रुद्रो धैर्ये चास्य महार्णवः॥ ५६

उदरे चास्य गन्धर्वा मरुतश्च महाबलाः।
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्याश्च वै कटिः॥ ५७
सर्वज्योतींषि यानीह तपश्च परमं महत्।
तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम्॥ ५८

तनौ कुक्षिषु वेदाश्च जानुनी च महामखाः।
इष्टयः पशवश्चास्य द्विजानां चेष्टितानि च॥ ५९

तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महात्मनः।
उपसर्पन्ति ते दैत्याः पतङ्गा इव पावकम्॥ ६०

चिक्षुरस्तु महादैत्यः पादाङ्गुष्ठं गृहीतवान्।
दन्ताभ्यां तस्य वै ग्रीवामङ्गुष्ठेनाहनद्धरिः॥ ६१
प्रमथ्य सर्वानसुरान् पादहस्ततलैर्विभुः।
कृत्वा रूपं महाकायं संजहाराशु मेदिनीम्॥ ६२

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे।
नभो विक्रममाणस्य सक्थिदेशे स्थितावुभौ॥ ६३

परं विक्रममाणस्य जानुमूले प्रभाकरौ।
विष्णोरास्तां स्थितस्यैतौ देवपालनकर्मणि॥ ६४

जित्वा लोकत्रयं तांश्च हत्वा चासुरपुंगवान्।
पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः॥ ६५

समस्त नक्षत्र उनकी दृष्टियाँ, सूर्यकिरणें प्रभुके केश, तारकाएँ उनके रोमकूप एवं महर्षिगण रोमोंमें स्थित थे विदिशाएँ उनकी बाहें, दिशाएँ उन महात्माके कर्ण, दोनों अश्विनीकुमार श्रवण एवं वायु उन महात्माके नासिका-स्थानपर थे। उनके प्रसादमें (मधुर हास्यछटामें) चन्द्रदेव तथा मनमें धर्म आश्रित थे। सत्य उनकी वाणी तथा जिह्वा सरस्वतीदेवी थीं॥ ५०—५३॥

देवमाता अदिति उनकी ग्रीवा, विद्या उनकी वलियाँ, स्वर्गद्वार उनकी गुदा तथा त्वष्टा एवं पूषा उनकी भौंहें थे। वैश्वानर उनके मुख तथा प्रजापति वृषण थे परब्रह्म उनके हृदय तथा कश्यप मुनि उनके पुंस्त्व थे उनकी पीठमें वसु देवता, सभी सन्धियोंमें मरुद्गण, वक्षःस्थलमें रुद्र तथा उनके धैर्यमें महार्णव आश्रित थे उनके उदरमें गन्धर्व एवं महाबली मरुद्गण स्थित थे लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति एवं सभी विद्याएँ उनकी कटिमें स्थित थीं॥ ५४—५७॥

समस्त ज्योतियाँ एवं परम महत् तप उन देवाधिदेवके उत्तम तेज थे। उनके शरीर एवं कुक्षियोंमें वेद थे तथा बड़े-बड़े यज्ञ इष्टियाँ थीं, पशु एवं ब्राह्मणोंकी चेष्टाएँ उनकी दोनों जानुएँ थीं उन महात्मा विष्णुके सर्वदेवमय रूपको देखकर वे दैत्य उनके निकट उसी प्रकार जाते थे, जिस प्रकार अग्निके निकट पतिंगे जाते हैं। महादैत्य चिक्षुरने दाँतोंसे उनके पैरके अँगूठेको दबोच लिया। फिर भगवान्‌ने अँगूठेसे उसकी ग्रीवापर प्रहार किया और—॥ ५८—६१॥

अपने पैरों एवं हाथोंके तलवोंसे समस्त असुरोंको रगड़ डाला तथा विराट् शरीर धारण करके शीघ्र ही उन्होंने पृथ्वीको उनसे छीन लिया। भूमिको नापते समय चन्द्र और सूर्य उनके स्तनोंके मध्य स्थित थे तथा आकाशको नापते समय उनके सक्थिप्रदेश (जाँघ) में स्थित हो गये एवं परम (ऊर्ध्व) लोकका अतिक्रमण करते समय देवताओंकी रक्षा करनेमें स्थित श्रीविष्णुके जानुमूल (घुटनेके स्थान)-में चन्द्र एवं सूर्य स्थित हो गये। उरुक्रम (लंबी डगोंवाले) विष्णुने तीनों लोकोंको जीतकर एवं उन बड़े-बड़े असुरोंका वध कर तीनों लोक इन्द्रको दे दिये॥ ६२—६५॥

सुतलं नाम पातालमधस्ताद् वसुधातलात्।
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ६६

अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः।
तत् त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया॥ ६७

कल्पप्रमाणं तस्मात् ते भविष्यत्यायुरुत्तमम्।
वैवस्वते तथाऽतीते काले मन्वन्तरे तथा॥ ६८

सावर्णिके तु संप्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति।
इदानीं भुवनं सर्वं दत्तं शक्राय वै पुरा॥ ६९

चतुर्युगव्यवस्था च साधिका ह्येकसप्ततिः।
नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः॥ ७०

तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले।
सुतलं नाम पातालं समासाद्य वचो मम। ७१

वसासुर ममादेशं यथावत्परिपालयन्।
तत्र देवसुखोपेते प्रासादशतसंकुले॥ ७२

प्रोत्फुल्लपद्मसरसि ह्रदशुद्धसरिद्वरे।
सुगन्धी रूपसम्पन्नो वराभरणभूषितः॥ ७३

स्रक्चन्दनादिदिग्धाङ्गो नृत्यगीतमनोहरान्।
उपभुञ्जन् महाभोगान् विविधान् दानवेश्वर॥ ७४

ममाज्ञया कालमिमं तिष्ठ स्त्रीशतसंवृतः।
यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं गमिष्यसि॥ ७५

तावत् त्वं भुङ्क्ष्व संभोगान् सर्वकामसमन्वितान्।
यदा सुरैश्च विप्रैश्च विरोधं त्वं करिष्यसि।
बन्धिष्यन्ति तदा पाशा वारुणा घोरदर्शनाः॥ ७६

बलिरुवाच

तत्रासतो मे पाताले भगवन् भवदाज्ञया।
किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम्।
आप्यायितो येन देव स्मरेयं त्वामहं सदा॥ ७७

श्रीभगवानुवाच

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च।
हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम्॥ ७८

शक्तिशाली भगवान् विष्णुने पृथ्वीतलके नीचे स्थित सुतल नामक पातालको बलिके लिये दे दिया। तदनन्तर सर्वेश्वर विष्णुने दैत्येश्वरसे कहा—मैंने तुम्हारे द्वारा दानके लिये दिये हुए जलको अपने हाथमें ग्रहण किया है, अतः तुम्हारी उत्तम आयु कल्पप्रमाणकी होगी तथा वैवस्वत मन्वन्तरका काल व्यतीत होनेपर एवं सावर्णिक मन्वन्तरके आनेपर तुम इन्द्रपद प्राप्त करोगे—इन्द्र बनोगे। इस समयके लिये मैंने समस्त भुवनको पहले ही इन्द्रको दे रखा है, इकहत्तर चतुर्युगीके कालसे कुछ अधिक कालतक जो समयकी व्यवस्था है अर्थात् एक मन्वन्तरके कालतक मैं उसके (इन्द्रके) विरोधियोंको अनुशासित करूँगा॥ ६६—७०॥

बलि! पूर्वकालमें तुमने बड़ी श्रद्धासे मेरी आराधना की थी, अतः तुम मेरे कहनेसे सुतल नामक पातालमें जाकर मेरे आदेशका भलीभाँति पालन करो तथा देवताओंके सुखसे भरे-पूरे सैकड़ों प्रासादोंसे पूर्ण विकसित कमलोंवाले सरोवरों, ह्रदों एवं शुद्ध श्रेष्ठ सरिताओंवाले उस स्थानपर निवास करो। दानवेश्वर! सुगन्धिसे अनुलिप्त हो तथा श्रेष्ठ आभरणोंसे भूषित एवं माला और चन्दन आदिसे अलंकृत सुन्दर स्वरूपवाले तुम नृत्य और गीतसे युक्त विविध भाँतिके महान् भोगोंका उपभोग करते हुए सैकड़ों स्त्रियोंसे आवृत होकर इतने कालतक मेरी आज्ञासे वहाँ निवास करो। जबतक तुम देवताओं एवं ब्राह्मणोंसे विरोध न करोगे, तबतक समस्त कामनाओंसे युक्त भोगोंको भोगोगे। किंतु जब तुम देवों एवं ब्राह्मणोंके साथ विरोध करोगे तो देखनेमें भयंकर वरुणके पाश तुम्हें बाँध लेंगे॥ ७१—७६॥

बलिने पूछा—हे भगवन्! हे देव! आपकी आज्ञासे वहाँ पातालमें निवास करनेवाले मेरे भोगोंका साधन क्या होगा? जिससे तृप्त होकर मैं सदा आपका स्मरण करूँगा॥ ७७॥

श्रीभगवान्ने कहा—अविधिपूर्वक दिये गये दान, श्रोत्रिय ब्राह्मणसे रहित श्राद्ध तथा बिना श्रद्धाके किये गये जो हवन हैं, वे तुम्हारे भाग होंगे।

अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः।
फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च॥ ७९

उदकेन विना पूजा विना दर्भेण या क्रिया।
आज्येन च विना होमं फलं दास्यन्ति ते बले॥ ८०

यश्चेदं स्थानमाश्रित्य क्रियाः काश्चित् करिष्यति।
न तत्र चासुरो भागो भविष्यति कदाचन॥ ८१

ज्येष्ठाश्रमे महापुण्ये तथा विष्णुपदे ह्रदे।
ये च श्राद्धानि दास्यन्ति व्रतं नियममेव च॥ ८२

क्रिया कृता च या काचिद् विधिनाऽविधिनापि वा।
सर्वं तदक्षयं तस्य भविष्यति न संशयः॥ ८३

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
द्वादश्यां वामनं दृष्ट्वा स्नात्वा विष्णुपदे ह्रदे।
दानं दत्त्वा यथाशक्त्या प्राप्नोति परमं पदम्॥ ८४

दक्षिणा-रहित यज्ञ, अविधिपूर्वक किये गये कर्म और व्रतसे रहित अध्ययन तुम्हें फल प्रदान करेंगे। हे बलि! जलके बिना की गयी पूजा, बिना कुशकी की गयी क्रिया और बिना घीके किये गये हवन तुमको फल देंगे। इस स्थानका आश्रय कर जो मनुष्य किन्हीं भी क्रियाओंको करेगा, उसमें कभी भी असुरोंका अधिकार न होगा। अत्यन्त पवित्र ज्येष्ठाश्रम तथा विष्णुपद सरोवरमें जो श्राद्ध, दान, व्रत या नियम-पालन करेगा तथा विधि या अविधिपूर्वक जो कोई क्रिया वहाँ की जायगी, उसके लिये वे सभी निःसंदेह अक्षय फलदायी होंगे। जो मनुष्य ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें एकादशीके दिन उपवास कर द्वादशीके दिन विष्णुपद नामके सरोवरमें स्नान कर वामनका दर्शन करनेके बाद यथाशक्ति दान देगा, वह परम पदको प्राप्त करेगा॥ ७८—८४॥

लोमहर्षण उवाच

बलेर्वरमिमं दत्त्वा शक्राय च त्रिविष्टपम्।
व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः॥ ८५

शशास च यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यमूर्जितः।
निःशेषं च तदा कालं बलिः पातालमास्थितः॥ ८६

इत्येतत् कथितं तस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्।
शृणुयाद्यो वामनस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ८७

बलिप्रह्लादसंवादं मन्त्रितं बलिशुक्रयोः।
बलेर्विष्णोश्च चरितं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः॥ ८८

नाधयो व्याधयस्तेषां न च मोहाकुलं मनः।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पुंसस्तस्य कदाचन॥ ८९

च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टप्राप्तिं वियोगवान्।
समाप्नोति महाभागा नरः श्रुत्वा कथामिमाम्॥ ९०

ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो जयते महीम्।
वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रः सुखमवाप्नुयात्।
वामनस्य च माहात्म्यं शृण्वन् पापैः प्रमुच्यते॥ ९१

लोमहर्षणजी बोले—भगवान् उस सर्वव्यापी रूपसे बलिको यह वरदान तथा इन्द्रको स्वर्ग प्रदानकर अन्तर्हित हो गये। तबसे बलशाली इन्द्र पहलेकी भाँति तीनों लोकोंका शासन करने लगे और बलि सर्वदा पातालमें निवास करने लगे। इस प्रकार उन भगवान् (वामन) विष्णुका उत्तम माहात्म्य कहा गया; जो इसे (वामन-माहात्म्यको) सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्विजश्रेष्ठो! बलि एवं प्रह्लादके संवाद, बलि एवं शुक्रकी मन्त्रणा तथा बलि एवं विष्णुके चरितका जो मनुष्य स्मरण करेंगे, उन्हें कभी कोई आधि एवं व्याधि न होगी तथा उनका मन भी मोहसे आकुल नहीं होगा। हे महाभागो! इस कथाको सुनकर राज्यच्युत व्यक्ति अपने राज्यको एवं वियोगी मनुष्य अपने प्रियको प्राप्त करता है। (इनको सुननेसे) ब्राह्मणको वेदकी प्राप्ति होती है, क्षत्रिय पृथ्वीको जय प्राप्त करता है तथा वैश्यको धन-समृद्धि एवं शूद्रको सुखकी प्राप्ति होती है। वामनका माहात्म्य सुननेसे पापोंसे मुक्ति होती है॥ ८५—९१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

सरस्वती नदीका वर्णन—उसका कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होना

ऋषय ऊचुः

कथमेषा समुत्पन्ना नदीनामुत्तमा नदी।
सरस्वती महाभागा कुरुक्षेत्रप्रवाहिनी॥ १

कथं सरः समासाद्य कृत्वा तीर्थानि पार्श्वतः।
प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यादृश्यगतिः शुभा।
एतद् विस्तरतो ब्रूहि तीर्थवंशं सनातनम्॥ २

लोमहर्षण उवाच

प्लक्षवृक्षात् समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी।
सर्वपापक्षयकरी स्मरणादेव नित्यशः॥ ३

सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी।
प्रविष्टा पुण्यतोयौघा वनं द्वैतमिति स्मृतम्॥ ४

तस्मिन् प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः।
प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम्॥ ५

त्वं देवि सर्वलोकानां माता देवारणिः शुभा।
सदसद् देवि यत्किंचिन्मोक्षदाय्यर्थवत् पदम्॥ ६

तत् सर्वं त्वयि संयोगि योगिवद् देवि संस्थितम्।
अक्षरं परमं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वं चैतत् क्षरात्मकम्॥ ७

दारुण्यवस्थितो वह्निर्भूमौ गन्धो यथा ध्रुवम्।
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः॥ ८

ॐकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरास्थिरम्।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च॥ ९

त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम्।
त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा॥ १०

ऋषियोंने पूछा—(लोमहर्षणजी!) कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ भाग्यशालिनी यह सरस्वती नदी कैसे उत्पन्न हुई? सरोवरमें जाकर अगल-बगलमें (अपने दोनों तटोंपर) तीर्थोंकी स्थापना करती हुई दृश्य और अदृश्यरूपसे यह शुभ नदी किस प्रकार पश्चिम दिशाको गयी? इस सनातन तीर्थ-वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन करें॥ १-२॥

लोमहर्षणने कहा—(ऋषियो!) स्मरण करनेमात्रसे ही नित्य सभी पापोंको नष्ट करनेवाली यह सनातनी श्रेष्ठ (सरस्वती) नदी पाकड़ वृक्षसे उत्पन्न हुई है। यह पवित्र जलधारमयी महानदी हजारों पर्वतोंको तोड़ती-फोड़ती हुई प्रसिद्ध द्वैत वनमें प्रविष्ट हुई, ऐसी प्रसिद्धि है। महामुनि मार्कण्डेयने उस प्लक्षवृक्षमें स्थित सरस्वती नदीको देखकर सिरसे (सिर झुकाकर नम्रतापूर्वक) प्रणाम करनेके बाद उसकी स्तुति की—हे देवि! आप सभी लोकोंकी माता एवं देवोंकी शुभ अरणि हैं। देवि! समस्त सद्, असद्, मोक्ष देनेवाले एवं अर्थवान् पद, यौगिक क्रियासे युक्त पदार्थकी भाँति आपमें मिलकर स्थित हैं। देवि! अक्षर परमब्रह्म तथा यह विनाशशील समस्त संसार आपमें प्रतिष्ठित है॥ ३-७॥

जिस प्रकार काठमें आग एवं पृथिवीमें गन्धकी निश्चित स्थिति होती है, उसी प्रकार तुम्हारे भीतर ब्रह्म और यह सम्पूर्ण जगत् नित्य (सदा) स्थित हैं। देवि! जो कुछ भी स्थिर (अचर) तथा अस्थिर (चर) है वह सब ओंकार अक्षरमें अवस्थित है। जो कुछ भी अस्तित्वयुक्त है या अस्तित्वविहीन, उन सबमें ओंकारकी तीन मात्राएँ (अनुस्यूत) हैं। हे सरस्वति! भूः, भुवः, स्वः—ये तीनों लोक; ऋक्, यजुः, साम—ये तीनों वेद; आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता—ये तीनों विद्याएँ; गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि—ये तीनों अग्नियाँ; सूर्य, चन्द्र, अग्नि—ये तीनों ज्योतियाँ; धर्म, अर्थ, काम—ये तीनों

त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात्।
त्रैधातवस्तथावस्थाः पितरश्चैवमादयः॥ ११

एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति।
विभिन्नदर्शनामाद्यां ब्रह्मणो हि सनातनीम्॥ १२

सोमसंस्था हविःसंस्था पाकसंस्था सनातनी।
तास्त्वदुच्चारणाद् देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः॥ १३

अनिर्देश्यपदं त्वेतदर्द्धमात्राश्रितं परम्।
अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम्॥ १४

तवैतत् परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितुम्।
न चास्येन न वा जिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते॥ १५

स विष्णुः स वृषो ब्रह्मा चन्द्रार्कज्योतिरेव च।
विश्वावासं विश्वरूपं विश्वात्मानमनीश्वरम्॥ १६

सांख्यसिद्धान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम्।
अनादिमध्यनिधनं सदसच्च सदेव तु॥ १७

एकं त्वनेकधाप्येकभाववेदसमाश्रितम्।
अनाख्यं षड्गुणाख्यं च बह्वाख्यं त्रिगुणाश्रयम्॥ १८

नानाशक्तिविभावज्ञं नानाशक्तिविभावकम्।
सुखात् सुखं महत्सौख्यं रूपं तत्त्वगुणात्मकम्॥ १९

एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत्।
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम्॥ २०

येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये
येऽर्थाः स्थूला ये तथा सन्ति सूक्ष्माः।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा
तेषां देवि त्वत्त एवोपलब्धिः॥ २१

यद्वा मूर्तं यदमूर्तं समस्तं
यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किंचित्।
यच्च द्वैते व्यस्तभूतं च लक्ष्यं
तत्सम्बद्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च॥ २२

वर्ण; सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—ये तीनों वर्ण; तीनों देव; वात, पित्त, कफ—ये तीनों धातुएँ तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ एवं पिता, पितामह, प्रपितामह—ये तीनों पितर इत्यादि—ये सभी ओंकारके मात्रात्रयस्वरूप आपके रूप हैं। आपको ब्रह्मकी विभिन्न रूपोंवाली आद्या एवं सनातनी मूर्ति कहा जाता है॥ ८—१२॥

देवि! ब्रह्मवादी लोग आपकी शक्तिसे ही उच्चारण करके सोमसंस्था, हवि:संस्था एवं सनातनी पाकसंस्थाको सम्पन्न करते हैं। अर्धमात्रामें आश्रित आपका यह अनिर्देश्य पद अविकारी, अक्षय, दिव्य तथा अपरिणामी है—यह आपका अनिर्देश्य पद परम रूप है, जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। न तो मुखसे ही इसका वर्णन हो सकता है और न जिह्वा, तालु, ओष्ठ आदिसे ही। तुम्हारा यह रूप ही विष्णु, वृष (धर्म), ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य एवं ज्योति है। उसीको विश्वावास, विश्वरूप, विश्वात्मा एवं अनीश्वर (स्वतन्त्र) कहते हैं॥ १३—१६॥

आपका यह रूप सांख्य-सिद्धान्त तथा वेदद्वारा वर्णित, (वेदोंकी) बहुत सी शाखाओंद्वारा स्थिर किया हुआ, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, सत्-असत् अथवा एकमात्र सत् (ही) है। यह एक तथा अनेक प्रकारका, वेदोंद्वारा एकाग्र भक्तिसे अवलम्बित, आख्या (नाम)-विहीन, ऐश्वर्य आदि षड्गुणोंसे युक्त, बहुत नामोंवाला तथा त्रिगुणाश्रय है। आपका यह तत्त्वगुणात्मक रूप सुखसे भी परम सुख, महान् सुखरूप नाना शक्तियोंके विभावको जाननेवाला है। हे देवि! यह अद्वैत तथा द्वैतमें आश्रित 'निष्कल' तथा 'सकल ब्रह्म' आपके द्वारा व्याप्त है॥ १७—२०॥

(सरस्वती) देवि! जो पदार्थ नित्य हैं तथा जो विनष्ट हो जानेवाले हैं, जो पदार्थ स्थूल हैं तथा जो सूक्ष्म हैं, जो भूमिपर हैं तथा जो अन्तरिक्षमें हैं या जो इनसे भिन्न स्थानोंमें हैं, उन समस्त पदार्थोंकी प्राप्ति आपसे ही होती है। जो मूर्त या अमूर्त है वह सब कुछ और जो सब भूतोंमें एक रूपसे स्थित है एवं केवल एकमात्र है और जो द्वैतमें अलग-अलग रूपसे दिखलायी पड़ता है, वह सब कुछ आपके स्वर-व्यञ्जनोंसे सम्बद्ध है।

एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती
प्रत्युवाच महात्मानं मार्कण्डेयं महामुनिम्
यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्यतन्द्रिता॥ २३

इस प्रकार स्तुति किये जानेपर विष्णुकी जीभरूपिणी सरस्वतीने महामुनि महात्मा मार्कण्डेयसे कहा—हे विप्र! तुम मुझे जहाँ ले जाओगे, मैं वहाँ आलस्य छोड़कर चली आऊँगी॥ २१—२३॥

मार्कण्डेय उवाच

आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं ततो रामह्रदः स्मृतः।
कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्।
तस्य मध्येन वै गाढं पुण्या पुण्यजलावहा॥ २४

मार्कण्डेयने कहा— आरम्भमें (इसका) पवित्र नाम ब्रह्मसर था, फिर रामह्रद प्रसिद्ध हुआ एवं उसके बाद कुरु ऋषिद्वारा कृष्ट होनेसे कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा। (अब) उसके मध्यमें अत्यन्त पवित्र जलवाली गहरी सरस्वती प्रवाहित हों॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

सरस्वती नदीका कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होना और कुरुक्षेत्रमें निवास करने तथा तीर्थमें स्नान करनेका महत्त्व

लोमहर्षण उवाच

इत्युषेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य धीमतः।
नदी प्रवाहसंयुक्ता कुरुक्षेत्रं विवेश ह॥ १

तत्र सा रन्तुकं प्राप्य पुण्यतोया सरस्वती।
कुरुक्षेत्रं समाप्लाव्य प्रयाता पश्चिमां दिशम्॥ २

तत्र तीर्थसहस्राणि ऋषिभिः सेवितानि च।
तान्यहं कीर्तयिष्यामि प्रसादात् परमेष्ठिनः॥ ३

तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम्।
स्नानं मुक्तिकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः॥ ४

लोमहर्षणने कहा— बुद्धिमान् मार्कण्डेय ऋषिके इस उपर्युक्त वचनको सुनकर प्रवाहसे भरी हुई सरस्वती नदी कुरुक्षेत्रमें प्रविष्ट हुई। वह पवित्रसलिला सरस्वती नदी वहाँ रन्तुकमें आकर कुरुक्षेत्रको जलसे प्लावित करती हुई, जो पश्चिम दिशाकी ओर चली गयी, वहाँ (कुरुक्षेत्रमें) हजारों तीर्थ ऋषियोंसे सेवित हैं। परमेष्ठी (ब्रह्मा) के प्रसादसे मैं उनका वर्णन करूँगा। पापियोंके लिये भी तीर्थोंका स्मरण पुण्यदायक, उनका दर्शन पापनाशक और स्नान मुक्तिदायक कहा गया है (पुण्यशालियोंके लिये तो कहना ही क्या है)॥ १—४॥

ये स्मरन्ति च तीर्थानि देवताः प्रीणयन्ति च।
स्नान्ति च श्रद्दधानाश्च ते यान्ति परमां गतिम्॥ ५

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् कुरुक्षेत्रं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ ६

कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम्।
इत्येवं वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७

जो श्रद्धापूर्वक तीर्थोंका स्मरण करते हैं और उनमें स्नान करते हैं तथा देवताओंको प्रसन्न करते हैं, वे परम गति (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं। (मनुष्य) अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ हो, यदि कुरुक्षेत्रका स्मरण करे तो वह बाहर तथा भीतरसे (हर प्रकारसे) पवित्र हो जाता है। 'मैं कुरुक्षेत्रमें जाऊँगा और मैं कुरुक्षेत्रमें निवास करूँगा'—इस प्रकारका वचन कहनेसे (भी) मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोग्रहे मरणं तथा।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा॥ ८

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥ ९

दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रे गच्छामि च वसाम्यहम्।
एवं यः सततं ब्रूयात् सोऽपि पापैः प्रमुच्यते॥ १०

तत्र चैव सरःस्नायी सरस्वत्यास्तटे स्थितः।
तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयमुत्पत्स्यति न संशयः॥ ११

देवता ऋषयः सिद्धाः सेवन्ते कुरुजाङ्गलम्।
तस्य संसेवनान्नित्यं ब्रह्म चात्मनि पश्यति॥ १२

चञ्चलं हि मनुष्यत्वं प्राप्य ये मोक्षकाङ्क्षिणः।
सेवन्ति नियतात्मानो अपि दुष्कृतकारिणः॥ १३

ते विमुक्ताश्च कलुषैरनेकजन्मसम्भवैः।
पश्यन्ति निर्मलं देवं हृदयस्थं सनातनम्॥ १४

ब्रह्मवेदिः कुरुक्षेत्रं पुण्यं संनिहितं सरः।
सेवमाना नरा नित्यं प्राप्नुवन्ति परं पदम्॥ १५

ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद् भयम्।
कुरुक्षेत्रे मृतानां च पतनं नैव विद्यते॥ १६

यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः सेवन्ति स्थानकाङ्क्षिणः॥ १७

गत्वा तु श्रद्धया युक्तः स्नात्वा स्थाणुमहाह्रदे।
मनसा चिन्तितं कामं लभते नात्र संशयः॥ १८

नियमं च ततः कृत्वा गत्वा सरः प्रदक्षिणम्।
रन्तुकं च समासाद्य क्षामयित्वा पुनः पुनः॥ १९

सरस्वत्यां नरः स्नात्वा यक्षं दृष्ट्वा प्रणम्य च।
पुष्पं धूपं च नैवेद्यं दत्त्वा वाचमुदीरयेत्॥ २०

तव प्रसादाद् यक्षेन्द्र वनानि सरितश्च याः।
भ्रमिष्यामि च तीर्थानि अविघ्नं कुरु मे सदा॥ २१

मानवोंके लिये ब्रह्मज्ञान, गयामें श्राद्ध, गौओंकी रक्षामें मृत्यु और कुरुक्षेत्रमें निवास—यह चार प्रकारकी मुक्ति कही गयी है॥ ५—८॥

सरस्वती और दृषद्वती—इन दो देव-नदियोंके बीच देव-निर्मित देशको ब्रह्मावर्त कहते हैं। दूर देशमें स्थित रहकर भी जो मनुष्य 'मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा, वहाँ निवास करूँगा' इस प्रकार निरन्तर (मनमें संकल्प करता या) कहता है, वह भी सभी पापोंसे छूट जाता है। वहाँ सरस्वतीके तटपर रहते हुए सरोवरमें स्नान करनेवाले मनुष्यको निश्चित ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जाता है। देवता, ऋषि और सिद्ध लोग सदा कुरुजाङ्गल (तीर्थ)-का सेवन करते हैं। उस तीर्थका नित्य सेवन करनेसे, (वहाँ नित्य निवास करनेसे), मनुष्य अपने भीतर ब्रह्मका दर्शन करता है॥ ९—१२॥

जो भी पापी चञ्चल मानव-जीवन पाकर जितेन्द्रिय होकर मोक्ष प्राप्त करनेकी कामनासे यहाँ निवास करते हैं, वे अनेक जन्मोंके पापोंसे छूट जाते हैं तथा अपने हृदयमें रहनेवाले निर्मल देव—सनातन (ब्रह्म)-का दर्शन करते हैं। जो मनुष्य ब्रह्मवेदी, कुरुक्षेत्र एवं पवित्र 'संनिहित सरोवर'का सदा सेवन करते हैं, वे परम पदको प्राप्त करते हैं। समयपर ग्रह, नक्षत्र एवं ताराओंके भी पतनका भय होता है, किंतु कुरुक्षेत्रमें मरनेवालोंका कभी पतन नहीं होता॥ १३—१६॥

ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ और यक्ष उत्तम स्थानकी प्राप्तिके लिये जहाँ (कुरुक्षेत्रमें) निवास करते हैं, वहाँ जाकर स्थाणु नामक महासरोवरमें श्रद्धापूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य निःसंदेह मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। नियम-परायण होनेके पश्चात् सरोवरकी प्रदक्षिणा करके रन्तुकमें जाकर बार-बार क्षमा-प्रार्थना करनेके बाद सरस्वती नदीमें स्नान कर यक्षका दर्शन करे और उन्हें प्रणाम करे तथा पुष्प, धूप एवं नैवेद्य देकर इस प्रकार वचन कहे—हे यक्षेन्द्र! आपकी कृपासे मैं वनों, नदियों और तीर्थोंमें भ्रमण करूँगा; उसे आप सदा विघ्न-रहित करें (मेरी यात्रामें किसी प्रकारका विघ्न न हो)॥ १७—२१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके सात प्रसिद्ध वनों, नौ नदियों एवं सम्पूर्ण तीर्थोंका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

वनानि सप्त नो ब्रूहि नव नद्यश्च याः स्मृताः।
तीर्थानि च समग्राणि तीर्थस्नानफलं तथा॥ १
येन येन विधानेन यस्य तीर्थस्य यत् फलम्।
तत् सर्वं विस्तरेणेह ब्रूहि पौराणिकोत्तम॥ २

लोमहर्षण उवाच

शृणु सप्त वनानीह कुरुक्षेत्रस्य मध्यतः।
येषां नामानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च॥ ३
काम्यकं च वनं पुण्यं तथाऽदितिवनं महत्।
व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकीवनमेव च॥ ४
तत्र सूर्यवनस्थानं तथा मधुवनं महत्।
पुण्यं शीतवनं नाम सर्वकल्मषनाशनम्॥ ५
वनान्येतानि वै सप्त नदीः शृणुत मे द्विजाः।
सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी॥ ६
आपगा च महापुण्या गङ्गा मन्दाकिनी नदी।
मधुस्रवा वासुनदी कौशिकी पापनाशिनी॥ ७
दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्वती नदी।
वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम्॥ ८
एतासामुदकं पुण्यं प्रावृट्काले प्रकीर्तितम्।
रजस्वलत्वमेतासां विद्यते न कदाचन।
तीर्थस्य च प्रभावेण पुण्या ह्येताः सरिद्वराः॥ ९

शृण्वन्तु मुनयः प्रीतास्तीर्थस्नानफलं महत्।
गमनं स्मरणं चैव सर्वकल्मषनाशनम्॥ १०

रन्तुकं च नरो दृष्ट्वा द्वारपालं महाबलम्।
यक्षं समभिवाद्यैव तीर्थयात्रां समाचरेत्॥ ११

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा नाम्नाऽदितिवनं महत्।
अदित्या यत्र पुत्रार्थं कृतं घोरं महत्तपः॥ १२
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च अदितिं देवमातरम्।
पुत्रं जनयते शूरं सर्वदोषविवर्जितम्।
आदित्यशतसंकाशं विमानं चाधिरोहति॥ १३

ऋषियोंने [लोमहर्षणजीसे] कहा—(मुने आप) हमसे उन सात वनों, नौ नदियों, समग्र तीर्थों एवं तीर्थ-स्नानके फलका वर्णन करें। पुराणवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ मुने! जिस-जिस विधानसे जिस तीर्थका जो फल होता है, उन सबको आप विस्तारपूर्वक बतलायें॥ १-२॥

लोमहर्षणने कहा—(ऋषियो!) कुरुक्षेत्रके मध्यमें जो सात वन हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ, आपलोग उसे सुनें। उन वनोंके नाम सभी पापोंको नष्ट करनेवाले तथा पवित्र हैं। (उन वनोंके नाम हैं—) पवित्र काम्यकवन, महान् अदितिवन, पुण्यप्रद व्यासवन, फलकीवन, सूर्यवन, महान् मधुवन तथा सर्वकल्मष-नाशक पवित्र शीतवन—ये ही सात वन हैं। हे द्विजो! (अब) नदियों (के नाम)-को मुझसे सुनो। (उनके नाम हैं—) पवित्र सरस्वती नदी, वैतरणी नदी, महापवित्र आपगा, मन्दाकिनी गङ्गा, मधुस्रवा, वासुनदी, पापनाशिनी कौशिकी, महापवित्र दृषद्वती (कग्गर) तथा हिरण्वती नदी। इनमें सरस्वतीके अतिरिक्त सभी नदियाँ वर्षाकालमें (ही) बहनेवाली हैं॥ ३—८॥

वर्षाकालमें इनका जल पवित्र माना जाता है। इनमें कभी भी रजस्वलात्व दोष नहीं होता। तीर्थके प्रभावसे ये सभी श्रेष्ठ नदियाँ पवित्र हैं। हे मुनियो! आपलोग (अब) प्रसन्न होकर तीर्थस्नानका महान् फल सुनें। वहाँ जाना एवं उनका स्मरण करना समस्त पापोंका नाश करनेवाला होता है। महाबलवान् रन्तुक नामक द्वारपालका दर्शन करनेके बाद यक्षको प्रणाम कर तीर्थयात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये। विप्रेन्द्रो! उसके बाद महान् अदिति-वनमें जाना चाहिये, जहाँ अदितिने पुत्रके लिये अत्यन्त कठोर तप किया था॥ ९—१२॥

वहाँ स्नानकर तथा देवमाता अदितिका दर्शनकर मनुष्य समस्त दोषोंसे रहित (निर्मल) वीर पुत्र उत्पन्न करता है और सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान विमानपर

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा विष्णोः स्थानमनुत्तमम्।
सवनं नाम विख्यातं यत्र संनिहितो हरिः ॥ १४
विमले च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा च विमलेश्वरम्।
निर्मलं स्वर्गमायाति रुद्रलोकं च गच्छति॥ १५
हरिं च बलदेवं च एकत्रासनसमन्वितौ।
दृष्ट्वा मोक्षमवाप्नोति कलिकल्मषसम्भवैः ॥ १६
ततः पारिप्लवं गच्छेत् तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्माणं वेदसंयुतम्॥ १७
ब्रह्मवेदफलं प्राप्य निर्मलं स्वर्गमाप्नुयात्।
तत्रापि संगमं प्राप्य कौशिक्यां तीर्थसम्भवम्।
संगमे च नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥ १८
धरण्यास्तीर्थमासाद्य सर्वपापविमोचनम्।
क्षान्तियुक्तो नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥ १९
धरण्यामपराधानि कृतानि पुरुषेण वै।
सर्वाणि क्षमते तस्य स्नानमात्रस्य देहिनः॥ २०
ततो दक्षाश्रमं गत्वा दृष्ट्वा दक्षेश्वरं शिवम्।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ २१
ततः शालूकिनीं गत्वा स्नात्वा तीर्थे द्विजोत्तमाः।
हरिं हरेण संयुक्तं पूज्य भक्तिसमन्वितः।
प्राप्नोत्यभिमतॉंल्लोकान् सर्वपापविवर्जितान्॥ २२
सर्पिर्दधि समासाद्य नागानां तीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नानं नरः कृत्वा मुक्तो नागभयाद् भवेत्॥ २३
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रन्तुकम्।
तत्रोष्य रजनीमेकां स्नात्वा तीर्थवरे शुभे॥ २४
द्वितीयं पूजयेद् यत्र द्वारपालं प्रयत्नतः।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च प्रणिपत्य क्षमापयेत्॥ २५
तव प्रसादाद् यक्षेन्द्र मुक्तो भवति किल्बिषैः।
सिद्धिर्मयाभिलषिता तया सार्द्धं भवाम्यहम्।
एवं प्रसाद्य यक्षेन्द्रं ततः पञ्चनदं व्रजेत्॥ २६
पञ्चनदाश्च रुद्रेण कृता दानवभीषणाः।
तत्र सर्वेषु लोकेषु तीर्थं पञ्चनदं स्मृतम्॥ २७
कोटितीर्थानि रुद्रेण समाहृत्य यतः स्थितम्।
तेन त्रैलोक्यविख्यातं कोटितीर्थं प्रचक्षते॥ २८

आरब्ध होता है। विप्रेन्द्रो! इसके बाद 'सवन' नामसे विख्यात सर्वोत्तम विष्णु स्थानको जाना चाहिये, जहाँ भगवान् हरि सदा संनिहित रहते हैं। विमल तीर्थमें स्नानकर विमलेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य निर्मल हो जाता है तथा रुद्रलोकमें जाता है। एक आसनपर स्थित कृष्ण और बलदेवका दर्शन करनेसे मनुष्य कलिके दुष्कर्मोंसे उत्पन्न पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १३—१६॥

इसके पश्चात् तीनों लोकोंमें विख्यात पारिप्लव नामक तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करनेके पश्चात् वेदों-सहित ब्रह्माका दर्शन करनेसे अथर्ववेदका ज्ञान प्राप्त कर निर्मल स्वर्गको प्राप्त करता है। कौशिकी-संगम तीर्थमें जाकर स्नान कर मनुष्य परम पदको प्राप्त करता है। समस्त पापोंसे मुक्त करनेवाले धरणीके तीर्थमें जाकर स्नान करनेसे क्षमाशील मनुष्य परम पदकी प्राप्ति करता है। वहाँ स्नान करनेमात्रसे पृथ्वीपर मनुष्यद्वारा किये गये समस्त अपराध क्षमा कर दिये जाते हैं॥ १७—२०॥

उसके बाद दक्षाश्रममें जाकर दक्षेश्वर शिवका दर्शन करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। द्विजोत्तमो! तदनन्तर शालूकिनी तीर्थमें जाकर स्नान करनेके उपरान्त भक्तिपूर्वक हरसे संयुक्त हरिका पूजन कर मनुष्य समस्त पापोंसे रहित इच्छाके अनुकूल लोकोंको प्राप्त करता है। सर्पिर्दधि नामवाले नागोंके उत्तम तीर्थमें जाकर स्नान करनेसे मनुष्य नाग-भयसे मुक्त हो जाता है। विप्रश्रेष्ठो! तदनन्तर रन्तुक नामक द्वारपालके पास जाय। वहाँ एक रात्रि निवास करे तथा कल्याणकारी (उस) श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करनेके बाद दूसरे दिन प्रयत्नपूर्वक (निष्ठाके साथ मन लगाकर) द्वारपालका पूजन करे एवं ब्राह्मणोंको भोजन कराये। फिर उन्हें प्रणाम कर इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—'हे यक्षेन्द्र! तुम्हारी कृपासे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है। मैं अपनी अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त करूँ (मेरी मनःकामना पूर्ण हो)।' इस प्रकार यक्षेन्द्रको प्रसन्न करनेके पश्चात् पञ्चनद तीर्थमें जाना चाहिये। जहाँ भगवान् रुद्रने दानवोंके लिये भयंकर पाँच नदोंका निर्माण किया है, उस स्थानपर समस्त संसारमें प्रसिद्ध पञ्चनद तीर्थ है॥ २१—२७॥

क्योंकि करोड़ों तीर्थोंको एकत्र (स्थापित) कर भगवान् वहाँ स्थित हैं, अतः उसे त्रैलोक्य-प्रसिद्ध

तस्मिन् तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं हरम्।
पञ्चयज्ञानवाप्नोति नित्यं श्रद्धासमन्वितः ॥ २९

तत्रैव वामनो देवः सर्वदेवैः प्रतिष्ठितः।
तत्रापि च नरः स्नात्वा ह्यग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ३०

अश्विनोस्तीर्थमासाद्य श्रद्धावान् यो जितेन्द्रियः।
रूपस्य भागी भवति यशस्वी च भवेन्नरः ॥ ३१
वाराहं तीर्थमाख्यातं विष्णुना परिकीर्तितम्।
तस्मिन् स्नात्वा श्रद्दधानः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३२
ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः सोमतीर्थमनुत्तमम्।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा व्याधिमुक्तोऽभवत् पुरा ॥ ३३
तत्र सोमेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा तीर्थवरे शुभे।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३४
व्याधिभिश्च विनिर्मुक्तः सर्वदोषविवर्जितः।
सोमलोकमवाप्नोति तत्रैव रमते चिरम् ॥ ३५
भूतेश्वरं च तत्रैव ज्वालामालेश्वरं तथा।
तावुभौ लिङ्गावभ्यर्च्य न भूयो जन्म चाप्नुयात् ॥ ३६

एकहंसे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्।
कृतशौचं समासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तमः ॥ ३७

पुण्डरीकमवाप्नोति कृतशौचो भवेन्नरः।
ततो मुञ्जवटं नाम महादेवस्य धीमतः ॥ ३८

उपोष्य रजनीमेकां गाणपत्यमवाप्नुयात्।
तत्रैव च महाग्राही यक्षिणी लोकविश्रुता ॥ ३९

स्नात्वाऽभिगत्वा तत्रैव प्रसाद्य यक्षिणीं ततः।
उपवासं च तत्रैव महापातकनाशनम् ॥ ४०
कुरुक्षेत्रस्य तद् द्वारं विश्रुतं पुण्यवर्धनम्।
प्रदक्षिणमुपावर्त्य ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः।
पुष्करं च ततो गत्वा अभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥ ४१
जामदग्न्येन रामेण आहृतं तन्महात्मना।
कृतकृत्यो भवेद् राजा अश्वमेधं च विन्दति ॥ ४२
कन्यादानं च यस्तत्र कार्तिक्यां वै करिष्यति।
प्रसन्ना देवतास्तस्य दास्यन्त्यभिमतं फलम् ॥ ४३

कोटितीर्थ कहा जाता है। मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस तीर्थमें स्नान कर तथा कोटीश्वर हरका दर्शन कर पाँच प्रकारके (महा) यज्ञोंके अनुष्ठानका फल प्राप्त करता है। इसी स्थानपर सब देवताओंने भगवान् वामनदेवकी स्थापना की है। वहाँ भी स्नान करनेसे मनुष्यको अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रद्धावान् जितेन्द्रिय मनुष्य अश्विनीकुमारोंके तीर्थमें जाकर रूपवान् और यशस्वी होता है॥ २८—३१॥

विष्णुद्वारा वर्णित वाराह नामक विख्यात तीर्थ है। श्रद्धालु पुरुष उसमें स्नान कर परमपदको प्राप्त करता है। विप्रेन्द्रो! उसके बाद श्रेष्ठ सोमतीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ चन्द्रमा पूर्वकालमें तपस्या कर व्याधिसे मुक्त हुए थे। इस शुभ तीर्थमें स्नान कर सोमेश्वर भगवान्‌का दर्शन करनेसे मनुष्य राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा व्याधियों और सभी दोषोंसे मुक्त होकर सोमलोकमें जाता एवं चिरकालतक वहाँ सानन्द विहार करता है॥ ३२—३५॥

वहींपर भूतेश्वर एवं ज्वालामालेश्वर नामक लिङ्ग हैं। इन दोनों लिङ्गोंकी पूजा करनेसे (मनुष्य) पुनर्जन्म नहीं पाता। एकहंस (सरोवर)-में स्नान कर मनुष्य हजारों गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। 'कृतशौच' नामक तीर्थमें जाकर मनोयोगपूर्वक तीर्थकी सेवा करनेवाला द्विजोत्तम 'पुण्डरीक' यज्ञविशेषके फलको प्राप्त करता है तथा उसकी शुद्धि हो जाती है (—वह पवित्र हो जाता है)। उसके बाद बुद्धिमान् महादेवके मुञ्जवट नामक तीर्थमें एक रात्रि निवास करके मनुष्य गाणपत्य (गणनायकके पदको) प्राप्त करता है। वहीं विश्वप्रसिद्ध महाग्राही यक्षिणी है। वहाँ जाकर स्नान करनेके बाद यक्षिणीको प्रसन्न कर उपवास करनेसे महान् पातकोंका नाश होता है॥ ३६—४०॥

पुण्यकी वृद्धि करनेवाले कुरुक्षेत्रके उस विख्यात द्वारकी प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। फिर पुष्करमें जाकर पितृदेवोंकी अर्चना करे। उस तीर्थका महात्मा जमदग्निनन्दन परशुरामजीने निर्माण किया था। वहाँ (जाकर) मनुष्य सफल-मनोरथ हो जाता है और राजाको अश्वमेधयज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। कार्तिकी पूर्णिमाको जो मनुष्य वहाँ कन्यादान करेगा, उसके ऊपर देवता प्रसन्न होकर उसे मनोवाञ्छित फल देंगे। वहाँ

कपिलश्च महायक्षो द्वारपालः स्वयं स्थितः।
विघ्नं करोति पापानां दुर्गतिं च प्रयच्छति॥ ४४

पत्नी तस्य महायक्षी नाम्नोदूखलमेखला।
आहत्य दुन्दुभिं तत्र भ्रमते नित्यमेव हि॥ ४५

कपिल नामक महायक्ष स्वयं द्वारपालके रूपमें स्थित हैं जो पापियोंके मार्गमें विघ्न उपस्थित कर उनकी दुर्गति करते हैं (जिससे वे पापाचरण न करें तथा धर्मकी मर्यादा स्थित रहे)। 'उदूखलमेखला' नामक उनकी महायक्षी पत्नी दुन्दुभि बजाकर वहाँ नित्य भ्रमण करती रहती है॥ ४१—४५॥

सा ददर्श स्त्रियं चैकां सपुत्रां पापदेशजाम्।
तामुवाच तदा यक्षी आहत्य निशि दुन्दुभिम्॥ ४६

युगन्धरे दधि प्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले।
तद्वद् भूतालये स्नात्वा सपुत्रा वस्तुमिच्छसि॥ ४७

दिवा मया ते कथितं रात्रौ भक्ष्यामि निश्चितम्।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं प्रणिपत्य च यक्षिणीम्॥ ४८

उवाच दीनया वाचा प्रसादं कुरु भामिनि।
ततः सा यक्षिणी तां तु प्रोवाच कृपयान्विता॥ ४९

यदा सूर्यस्य ग्रहणं कालेन भविता क्वचित्।
सन्निहत्यां तदा स्नात्वा पूता स्वर्गं गमिष्यसि॥ ५०

उस यक्षीने पापवाले देशमें उत्पन्न पुत्रके साथ एक रात्रिमें स्त्रीको देखनेके बाद दुन्दुभि बजाकर उससे कहा—युगन्धरमें दही खाकर तथा अच्युतस्थलमें निवास करनेके बाद भूतालयमें स्नान कर तुम पुत्रके साथ निवास करना चाहती हो। मैंने दिनमें यह बात तुमसे कही है। रात्रिमें मैं अवश्य तुमको खा जाऊँगी*। उसकी यह बात सुननेके बाद यक्षिणीको प्रणाम कर उसने दीन वाणीमें उससे कहा—'हे भामिनी! मेरे ऊपर दया करो।' फिर उस यक्षिणीने उससे कृपापूर्वक कहा—जब किसी समय सूर्य-ग्रहण होगा, उस समय सान्निहत्य (सरोवर)-में स्नान करके पवित्र होकर तुम स्वर्ग चली जाओगी॥ ४६—५०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३४॥

कुरुक्षेत्रके तीर्थोंके माहात्म्य एवं क्रमका वर्णन

लोमहर्षण उवाच

ततो रामह्रदं गच्छेत् तीर्थसेवी द्विजोत्तम।
यत्र रामेण विप्रेण तरसा दीप्ततेजसा॥ १

क्षत्रमुत्साद्य वीरेण ह्रदाः पञ्च निवेशिताः।
पूरयित्वा नरव्याघ्र रुधिरेणेति नः श्रुतम्॥ २

पितरस्तर्पितास्तेन तथैव प्रपितामहाः।
ततस्ते पितरः प्रीता राममूचुर्द्विजोत्तम॥ ३

राम राम महाबाहो प्रीताः स्मस्तव भार्गव।
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण च ते विभो॥ ४

लोमहर्षणने कहा—इसके बाद तीर्थका सेवन करनेवाले उत्तम द्विजको रामकुण्ड नामक स्थानमें जाना चाहिये, जहाँ उद्दीप्त तेजस्वी विप्र-वीर राम (परशुराम)-ने बलपूर्वक क्षत्रियोंका संहारकर पाँच कुण्डोंको स्थापित किया था। पुरुषसिंह! हमलोगोंने ऐसा सुना है कि परशुरामने उन (कुण्डों)-को रक्तसे भरकर उससे अपने पितरों एवं प्रपितामहोंका तर्पण किया था। द्विजोत्तमो! उसके बाद उन प्रसन्न पितरोंने परशुरामसे कहा था कि महाबाहु भार्गव राम! परशुराम! विभु! तुम्हारी इस पितृभक्ति और पराक्रमसे हम सब तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं॥ १—४॥

* इन श्लोकोंकी सटिप्पण विस्तृत व्याख्या गीताप्रेसके महाभारत वनपर्व १२९।९-१० में द्रष्टव्य है।

वरं वृणीष्व भद्रं ते किमिच्छसि महायशः।
एवमुक्तस्तु पितृभी रामः प्रभवतां वरः॥५

अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं स पितॄन् गगने स्थितान्।
भवन्तो यदि मे प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि॥६

पितृप्रसादादिच्छेयं तपसाप्यायनं पुनः।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया॥७

ततश्च पापान्मुच्येयं युष्माकं तेजसा ह्यहम्।
ह्रदाश्चैते तीर्थभूता भवेयुर्भुवि विश्रुताः॥८

एवमुक्ताः शुभं वाक्यं रामस्य पितरस्तदा।
प्रत्यूचुः परमप्रीता रामं हर्षपुरस्कृताः॥९

तपस्ते वर्द्धतां पुत्र पितृभक्त्या विशेषतः।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं त्वया॥१०

ततश्च पापान्मुक्तस्त्वं पातितास्ते स्वकर्मभिः।
ह्रदाश्च तव तीर्थत्वं गमिष्यन्ति न संशयः॥११

ह्रदेष्वेतेषु ये स्नात्वा स्वान् पितॄंस्तर्पयन्ति च।
तेभ्यो दास्यन्ति पितरो यथाभिलषितं वरम्॥१२

ईप्सितान् मानसान् कामान् स्वर्गवासं च शाश्वतम्।
एवं दत्त्वा वरान् विप्रा रामस्य पितरस्तदा॥१३

आमन्त्र्य भार्गवं प्रीतास्तत्रैवान्तर्हितास्तदा।
एवं रामह्रदाः पुण्या भार्गवस्य महात्मनः॥१४

स्नात्वा ह्रदेषु रामस्य ब्रह्मचारी शुचिव्रतः।
राममभ्यर्च्य श्रद्धावान् विन्देद् बहु सुवर्णकम्॥१५

वंशमूलं समासाद्य तीर्थसेवी सुसंयतः।
स्ववंशसिद्धये विप्राः स्नात्वा वै वंशमूलके॥१६

कायशोधनमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
शरीरशुद्धिमाप्नोति स्नातस्तस्मिन् न संशयः॥१७

शुद्धदेहश्च तं याति यस्मान्नावर्तते पुनः।
तावद् भ्रमन्ति तीर्थेषु सिद्धास्तीर्थपरायणाः।
यावन्न प्राप्नुवन्तीह तीर्थं तत्कायशोधनम्॥१८

महायशस्विन्! तुम्हारा कल्याण हो। तुम वर माँगो, क्या चाहते हो? पितरोंके इस प्रकार कहनेपर प्रभावशालियोंमें श्रेष्ठ रामने आकाशमें स्थित पितरोंसे हाथ जोड़कर कहा—यदि आपलोग मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तथा मुझपर आप सबकी दया है तो आप पितरोंके प्रसादसे मैं पुनः तपसे पूर्ण हो जाऊँ। रोषसे अभिभूत होकर मैंने जो क्षत्रियोंका विनाश किया है, आपके तेजद्वारा मैं उस पापसे मुक्त हो जाऊँ एवं ये कुण्ड संसारमें विख्यात तीर्थस्वरूप हो जायँ॥५—८॥

परशुरामके इस प्रकारके मङ्गलमय वचन कहनेपर उनके परम प्रसन्न पितरोंने हर्षपूर्वक उनसे कहा—'पुत्र! पितृभक्तिसे तुम्हारा तप विशेषरूपसे बढ़े। क्रोधसे अभिभूत होनेके कारण तुमने क्षत्रियोंका जो विनाश किया है उस पापसे तुम मुक्त हो; क्योंकि वे क्षत्रिय अपने कर्मसे ही मारे गये हैं। तुम्हारे ये कुण्ड निःसंदेह तीर्थके गुणोंको प्राप्त करेंगे। जो इन कुण्डोंमें स्नान कर अपने पितरोंका तर्पण करेंगे, उन्हें (उनके) पितृगण मनकी इच्छाके अनुसार वर देंगे, उनकी मनोऽभिलषित कामनाएँ पूर्ण करेंगे एवं उन्हें स्वर्गमें शाश्वत निवास प्रदान करेंगे।' विप्रो! इस प्रकार वर देकर परशुरामके पितर उनसे अनुमति लेकर प्रसन्नतापूर्वक वहीं अन्तर्हित हो गये। इस प्रकार महात्मा परशुरामके ये रामह्रद परम पवित्र हैं॥९—१४॥

श्रद्धालु पवित्रकर्मा व्यक्ति ब्रह्मचर्यपूर्वक परशुरामजीके ह्रदोंमें स्नान करनेके बाद परशुरामका अर्चन कर प्रचुर सुवर्ण प्राप्त करता है। ब्राह्मणो! तीर्थसेवी जितेन्द्रिय मनुष्य वंशमूलक नामक तीर्थमें जाकर उसमें स्नान करनेसे अपने वंशकी सिद्धि प्राप्त करता है। तीनों लोकोंमें विख्यात कायशोधन नामक तीर्थमें जाकर उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको निस्संदेह शरीरकी शुद्धि प्राप्त होती है और वह शुद्धदेही मनुष्य उस स्थानको जाता है, जहाँसे वह पुनः नहीं लौटता (जन्म-मरणके चक्करमें नहीं पड़ता)। तीर्थपरायण सिद्ध पुरुष तीर्थोंमें तबतक भ्रमण करते रहते हैं, जबतक वे उस कायशोधन नामक तीर्थमें नहीं पहुँचते॥१५—१८॥

तस्मिंस्तीर्थे च संप्लाव्य कायं संयतमानसः।
परं पदमवाप्नोति यस्मान्नावर्तते पुनः॥ १९

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रास्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
लोका यत्रोद्धृताः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना॥ २०

लोकोद्धारं समासाद्य तीर्थस्मरणतत्परः।
स्नात्वा तीर्थवरे तस्मिन् लोकान् पश्यति शाश्वतान्॥ २१

यत्र विष्णुः स्थितो नित्यं शिवो देवः सनातनः।
तौ देवौ प्रणिपातेन प्रसाद्य मुक्तिमाप्नुयात्॥ २२

श्रीतीर्थं तु ततो गच्छेत शालग्राममनुत्तमम्।
तत्र स्नातस्य सांनिध्यं सदा देवी प्रयच्छति॥ २३
कपिलाह्रदमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवतानि पितॄंस्तथा॥ २४
कपिलानां सहस्रस्य फलं विन्दति मानवः।
तत्र स्थितं महादेवं कापिलं वपुरास्थितम्॥ २५
दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति ऋषिभिः पूजितं शिवम्।
सूर्यतीर्थं समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः॥ २६
अर्चयित्वा पितॄन् देवानुपवासपरायणः।
अग्निष्टोममवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति॥ २७
सहस्रकिरणं देवं भानुं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति नरो ज्ञानसमन्वितः॥ २८

भवानीवनमासाद्य तीर्थसेवी यथाक्रमम्।
तत्राभिषेकं कुर्वाणो गोसहस्रफलं लभेत्॥ २९

पितामहस्य पिबतो ह्यमृतं पूर्वमेव हि।
उद्गारात् सुरभिर्जाता सा च पातालमाश्रिता॥ ३०

तस्याः सुरभयो जाताः तनया लोकमातरः।
ताभिस्तत्सकलं व्याप्तं पातालं सुनिरन्तरम्॥ ३१
पितामहस्य यजतो दक्षिणार्थमुपाहृता।
आहूता ब्रह्मणा साश्च विभ्रान्ता विवरेण हि॥ ३२

मनको नियन्त्रित करनेवाला मनुष्य उस तीर्थमें शरीरको धोकर (प्रक्षालित कर) उस परम पदको प्राप्त करता है, जहाँसे उसे पुनः परावर्तित नहीं होना पड़ता। विप्रवरो! उसके बाद तीनों लोकोंमें विख्यात लोकोद्धार नामके तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ सर्वसमर्थ विष्णुने समस्त लोकोंका उद्धार किया था। तीर्थका स्मरण करनेमें तत्पर मनुष्य लोकोद्धार नामके तीर्थमें जाकर उसमें स्नान करनेसे शाश्वत लोकोंका दर्शन प्राप्त करता है। वहाँ विष्णु एवं सनातनदेव शिव ये दोनों ही स्थित हैं। उन दोनों देवोंको प्रणामद्वारा प्रसन्न कर फिर मुक्तिका फल प्राप्त करे। तदनन्तर अनुत्तम शालग्राम एवं श्रीतीर्थमें जाना चाहिये वहाँ स्नान करनेवालोंको भगवती (लक्ष्मी) अपने निकट निवास प्रदान करती हैं॥ १९—२३॥

फिर त्रैलोक्यप्रसिद्ध कपिलाह्रद नामक तीर्थमें जाकर उसमें स्नान करनेके पश्चात् देवता तथा पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्यको सहस्र कपिला गायोंके दानका फल प्राप्त होता है। वहींपर स्थित ऋषियोंसे पूजित कापिल शरीरधारी महादेव शिवका दर्शन करनेसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है स्थिर अन्तःकरणवाला एवं उपवास-परायण व्यक्ति सूर्यतीर्थमें जाकर स्नान करनेके बाद पितरोंका अर्चन करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है एवं सूर्यलोकको जाता है॥ २४—२७॥

तीनों लोकोंमें विख्यात हजारों किरणोंवाले सूर्यदेव भगवान्का दर्शन करनेसे मनुष्य ज्ञानसे युक्त होकर मुक्तिको प्राप्त करता है तीर्थसेवन करनेवाला मनुष्य क्रमानुसार भवानीवनमें जाकर वहाँ (भवानीका) अभिषेक करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त करता है प्राचीन कालमें अमृत पान करते हुए ब्रह्माके उद्गार (डकार)-से सुरभिकी उत्पत्ति हुई और वह पाताल लोकमें चली गयी। उस सुरभिसे लोकमाताएँ (सुरभिकी पुत्रियाँ) (गायें) उत्पन्न हुईं। उनसे समस्त पाताल लोक व्याप्त हो गया॥ २८—३१॥

पितामहके यज्ञ करते समय दक्षिणाके लिये लायी गयी एवं ब्रह्माके द्वारा बुलायी ये गायें विवरके कारण

तस्मिन् विवरद्वारे तु स्थितो गणपतिः स्वयम्।
यं दृष्ट्वा सकलान् कामान् प्राप्नोति संयतेन्द्रियः॥ ३३

सङ्गिनीं तु समासाद्य तीर्थं मुक्तिसमाश्रयम्।
देव्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा लभते रूपमुत्तमम्॥ ३४

अनन्तां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः।
भोगांश्च विपुलान् भुक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥ ३५

ब्रह्मावर्ते नरः स्नात्वा ब्रह्मज्ञानसमन्वितः।
भवते नात्र संदेहः प्राणान् मुञ्चति स्वेच्छया॥ ३६

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रन्तुकम्।
तस्य तीर्थं सरस्वत्यां यक्षेन्द्रस्य महात्मनः॥ ३७

तत्र स्नात्वा महाप्राज्ञ उपवासपरायणः।
यक्षस्य च प्रसादेन लभते कामिकं फलम्॥ ३८

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा ब्रह्मावर्तं मुनिस्तुतम्।
ब्रह्मावर्ते नरः स्नात्वा ब्रह्म चाप्नोति निश्चितम्॥ ३९

ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः सुतीर्थकमनुत्तमम्।
तत्र संनिहिता नित्यं पितरो दैवतैः सह॥ ४०

तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः।
अश्वमेधमवाप्नोति पितॄन् प्रीणाति शाश्वतान्॥ ४१

ततोऽम्बुवनं धर्मज्ञ समासाद्य यथाक्रमम्।
कामेश्वरस्य तीर्थं तु स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः॥ ४२

सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्मावाप्तिर्भवेद् ध्रुवम्।
मातृतीर्थं च तत्रैव यत्र स्नातस्य भक्तितः॥ ४३

प्रजा विवर्द्धते नित्यमनन्तां चाप्नुयाच्छ्रियम्।
ततः शीतवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः॥ ४४

तीर्थं तत्र महाविप्रा महदन्यत्र दुर्लभम्।
पुनाति दर्शनादेव दण्डकं च द्विजोत्तमाः॥ ४५

केशानभ्युक्ष्य वै तस्मिन् पूतो भवति पापतः।
तत्र तीर्थवरं चान्यत् स्वानुलोमायनं महत्॥ ४६

तत्र विप्रा महाप्राज्ञा विद्वांसस्तीर्थतत्पराः।
स्वानुलोमायने तीर्थे विप्रास्त्रैलोक्यविश्रुते॥ ४७

भटकने लगीं। उस विवरके द्वारपर स्वयं गणपति भगवान् स्थित हैं। जितेन्द्रिय मनुष्य उनका दर्शन करके समस्त कामनाओंको प्राप्त करता है। मुक्तिके आश्रयस्वरूप देवीके संगिनीतीर्थमें जाकर स्नान करनेसे मनुष्यको सुन्दर रूपकी प्राप्ति होती है तथा वह स्नानकर्ता पुरुष पुत्र-पौत्रसमन्वित होकर अनन्त ऐश्वर्यको प्राप्त करता है और विपुल भोगोंका उपभोग कर परम पदको प्राप्त करता है॥ ३२—३५॥

ब्रह्मावर्त नामक तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य निःसंदेह ब्रह्मज्ञानी हो जाता है एवं वह निज इच्छाके अनुसार अपने प्राणोंका परित्याग करता है। हे विप्रश्रेष्ठो! संगिनीतीर्थके बाद द्वारपाल रन्तुकके तीर्थमें जाय। उन महात्मा यक्षेन्द्रका तीर्थ सरस्वती नदीमें है। वहाँ स्नान करके उपवास-व्रतमें निरत परमज्ञानी व्यक्ति यक्षके प्रसादसे इच्छित फल प्राप्त करता है। हे विप्रवरो! फिर मुनियोंद्वारा प्रशंसा-प्राप्त ब्रह्मावर्त तीर्थमें जाना चाहिये। ब्रह्मावर्तमें स्नान करनेसे मनुष्य निश्चय ही ब्रह्मको प्राप्त करता है॥ ३६—३९॥

हे विप्रश्रेष्ठो! उसके बाद श्रेष्ठ सुतीर्थक नामके स्थानपर जाना चाहिये। उस स्थानमें देवताओंके साथ पितृगण नित्य स्थित रहते हैं। पितरों एवं देवोंकी अर्चनामें लगा रहनेवाला व्यक्ति वहाँ स्नानकर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा शाश्वत पितरोंको प्रसन्न करता है। धर्मज्ञ! उसके बाद क्रमानुसार कामेश्वर तीर्थके अम्बुवनमें जाकर श्रद्धापूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य सभी व्याधियोंसे छूटकर निश्चय ही ब्रह्मकी प्राप्ति करता है। उसी स्थानमें स्थित मातृतीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यकी प्रजा (संतति) की नित्य वृद्धि होती है तथा उसे अनन्त लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। उसके बाद नियत आहार करनेवाला एवं जितेन्द्रिय व्यक्ति शीतवन नामक तीर्थमें जाय। हे महाविप्रो! वहाँ दण्डक नामक एक महान् तीर्थ है; वह अत्यन्त दुर्लभ है। द्विजोत्तमो! वह दण्डक नामका महान् तीर्थ दर्शनमात्रसे मनुष्यको पवित्र कर देता है॥ ४०—४५॥

उस तीर्थमें केशोंका मुण्डन करानेसे मनुष्य अपने पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँ स्वानुलोमायन नामका एक दूसरा महान् तीर्थ है। हे द्विजोत्तमो! वहाँ तीर्थ-सेवन करनेमें तत्पर परमज्ञानी विद्वान् लोग रहते हैं। त्रिलोकविख्यात

स आपगां नदीं गत्वा तिलैः संतर्पयिष्यति।
तेन तृप्ता भविष्यामो यावत्कल्पशतं गतम्॥ ५

नभस्ये मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे विशेषतः।
चतुर्दश्यां तु मध्याह्ने पिण्डदो मुक्तिमाप्नुयात्॥ ६

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्।
ब्रह्मोदुम्बरमित्येवं सर्वलोकेषु विश्रुतम्॥ ७

तत्र ब्रह्मर्षिकुण्डेषु स्नातस्य द्विजसत्तमाः।
सप्तर्षीणां प्रसादेन सप्तसोमफलं भवेत्॥ ८

भरद्वाजो गौतमश्च जमदग्निश्च कश्यपः।
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च अत्रिश्च भगवानृषिः॥ ९

एतैः समेत्य तत्कुण्डं कल्पितं भुवि दुर्लभम्।
ब्रह्मणा सेवितं यस्माद् ब्रह्मोदुम्बरमुच्यते॥ १०

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नातो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ११

देवान् पितॄन् समुद्दिश्य यो विप्रं भोजयिष्यति।
पितरस्तस्य सुखिता दास्यन्ति भुवि दुर्लभम्॥ १२

सप्तर्षींश्च समुद्दिश्य पृथक् स्नानं समाचरेत्।
ऋषीणां च प्रसादेन सप्तलोकाधिपो भवेत्॥ १३

कपिस्थलेति विख्यातं सर्वपातकनाशनम्।
यस्मिन् स्थितः स्वयं देवो वृद्धकेदारसंज्ञितः॥ १४

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च रुद्रं दिण्डिसमन्वितम्।
अन्तर्धानमवाप्नोति शिवलोके स मोदते॥ १५

यस्तत्र तर्पणं कृत्वा पिबते चुलकत्रयम्।
दिण्डिदेवं नमस्कृत्य केदारस्य फलं लभेत्॥ १६

यस्तत्र कुरुते श्राद्धं शिवमुद्दिश्य मानवः।
चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां प्राप्नोति परमं पदम्॥ १७

कलस्यां तु ततो गच्छेद् यत्र देवी स्वयं स्थिता।
दुर्गा कात्यायनी भद्रा निद्रा माया सनातनी॥ १८

कलस्यां च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा दुर्गां तटे स्थिताम्।
संसारगहनं दुर्गं निस्तरेन्नात्र संशयः॥ १९

ऐसा पुत्र या पौत्र उत्पन्न होगा, जो आपगा नदीके तटपर जाकर तिलसे तर्पण करेगा, जिससे हम सभी सैकड़ों कल्पतक (अनन्त कालतक) तृप्त रहेंगे॥ १—५॥

भाद्रपदके महीनेमें, विशेषकर कृष्णपक्षमें, चतुर्दशी तिथिको मध्याह्न कालमें पिण्डदान करनेवाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। विप्रवरो! इसके बाद समस्त लोकोंमें 'ब्रह्मोदुम्बर' नामसे प्रसिद्ध ब्रह्माके श्रेष्ठ स्थानमें जाना चाहिये। द्विजवरो! वहाँ ब्रह्मर्षिकुण्डमें स्नान करनेवाले व्यक्तिको सप्तर्षियोंकी कृपासे सात सोमयज्ञोंका फल प्राप्त होता है। भरद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, विश्वामित्र, वसिष्ठ एवं भगवान् अत्रि (इन सात) ऋषियोंने मिलकर पृथ्वीमें दुर्लभ इस कुण्डको बनाया था। ब्रह्माद्वारा सेवित होनेके कारण यह स्थान 'ब्रह्मोदुम्बर' कहलाता है॥ ६—१०॥

अव्यक्त जन्मवाले ब्रह्माके उस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है—इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है। जो मनुष्य वहाँ देवताओं और पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको भोजन करायेगा, उसके पितर सुखी होकर उसे संसारमें दुर्लभ वस्तु प्रदान करेंगे। सात ऋषियोंके उद्देश्यसे जो (व्यक्ति) अलगसे स्नान करेगा, वह ऋषियोंके अनुग्रहसे सात लोकोंका स्वामी होगा। वहीं सभी पापोंका विनाश करनेवाला विख्यात कपिस्थल नामक तीर्थ है, जहाँ वृद्धकेदार नामके देव स्वयं विद्यमान हैं। वहाँ स्नान करनेके बाद दिण्डिके साथ रुद्रदेवका अर्चन करनेसे मनुष्यको अन्तर्धानकी शक्ति प्राप्त होती है और वह शिवलोकमें आनन्द प्राप्त करता है॥ ११—१५॥

जो व्यक्ति उस स्थानपर तर्पण करके दिण्डि भगवान्‌को प्रणाम कर तीन चुल्लू जल पीता है, वह केदारतीर्थमें जानेका फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति वहाँ शिवजीके उद्देश्यसे चैत्र शुक्ला चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करता है, वह परम पद (मोक्ष)-को प्राप्त कर लेता है। उसके बाद कलसी नामके तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ भद्रा, निद्रा, माया, सनातनी, कात्यायनीरूपा दुर्गादेवी स्वयं अवस्थित हैं। कलसी तीर्थमें स्नानकर उसके तीरपर स्थित दुर्गादेवीका दर्शन करनेवाला मनुष्य दुस्तर संसार दुर्ग (सांसारिक भवबन्धन)-को पार कर जाता है। इसमें (तनिक भी) संदेह नहीं करना चाहिये॥ १६—१९॥

ततो गच्छेत सरकं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्॥ २०

लभते सर्वकामांश्च शिवलोकं स गच्छति।
तिस्रः कोट्यस्तु तीर्थानां सरके द्विजसत्तमाः॥ २१

रुद्रकोटिस्तथा कूपे सरोमध्ये व्यवस्थिता।
तस्मिन् सरे च यः स्नात्वा रुद्रकोटिं स्मरेन्नरः॥ २२

पूजिता रुद्रकोटिश्च भविष्यति न संशयः।
रुद्राणां च प्रसादेन सर्वदोषविवर्जितः॥ २३

ऐन्द्रज्ञानेन संयुक्तः परं पदमवाप्नुयात्।
इडास्पदं च तत्रैव तीर्थं पापभयापहम्॥ २४

अस्मिन् मुक्तिमवाप्नोति दर्शनादेव मानवः।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च पितृदेवगणानपि॥ २५

न दुर्गतिमवाप्नोति मनसा चिन्तितं लभेत्।
केदारं च महातीर्थं सर्वकल्मषनाशनम्॥ २६

तत्र स्नात्वा तु पुरुषः सर्वदानफलं लभेत्।
किंरूपं च महातीर्थं तत्रैव भुवि दुर्लभम्।
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषः सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ २७

सरकस्य तु पूर्वेण तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
अन्यजन्म सुविख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २८

नारसिंहं वपुः कृत्वा हत्वा दानवमूर्जितम्।
तिर्यग्योनौ स्थितो विष्णुः सिंहेषु रतिमाप्नुवन्॥ २९

ततो देवाः सगन्धर्वा आराध्य वरदं शिवम्।
ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा विष्णुदेहस्य लम्भने॥ ३०

ततो देवो महात्माऽसौ शारभं रूपमास्थितः।
युद्धं च कारयामास दिव्यं वर्षसहस्रकम्।
युध्यमानौ तु तौ देवौ पतितौ सरमध्यतः॥ ३१

तस्मिन् सरस्तटे विप्रो देवर्षिर्नारदः स्थितः।
अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य ध्यानस्थस्तौ ददर्श ह॥ ३२

दुर्गादेवीके दर्शनके बाद तीनों लोकोंमें दुर्लभ सरकतीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको महेश्वरदेवका दर्शन करके मनुष्य (अपने) सभी मनोरथोंको प्राप्त करता और (अन्तमें) शिवलोकमें चला जाता है। द्विजश्रेष्ठो! सरकतीर्थमें तीन करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं। सरके बीच कूपमें रुद्रकोटि स्थित है। उस सरमें यदि व्यक्ति स्नान कर रुद्रकोटिका स्मरण करता है तो निःसंदेह (उसके द्वारा) रुद्रकोटि पूजित हो जाते हैं और रुद्रोंके प्रसादसे वह व्यक्ति समस्त दोषोंसे छूट जाता है। वह इन्द्रसम्बन्धी ज्ञानसे पूरित होकर परम पदको प्राप्त कर लेता है। वहीं पापों और भयोंका दूर करनेवाला इडास्पद नामका तीर्थ वर्तमान है॥ २०-२४॥

इस इडास्पद नामके तीर्थके दर्शनसे ही मनुष्य मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। वहाँ स्नान करके पितरों एवं देवोंका पूजन करनेसे मनुष्यकी दुर्गति नहीं होती और उसे मनोवाञ्छित वस्तु प्राप्त होती है। सभी पापोंका विनाश करनेवाला केदार नामक महातीर्थ है। वहाँ जाकर स्नान करनेसे मनुष्यको सभी प्रकारके दानोंका फल प्राप्त होता है। वहींपर पृथ्वीमें दुर्लभ किंरूप नामका (भी) तीर्थ है। उसमें स्नान करनेवाले मनुष्यको सभी प्रकारके यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। सरकके पूर्वमें तीनों लोकोंमें सुप्रसिद्ध सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला अन्यजन्म नामका तीर्थ है॥ २५—२८॥

नरसिंहका शरीर धारण कर शक्तिशाली दानव (हिरण्याक्ष)-का वध करनेके बाद विष्णु पशुयोनिमें स्थित सिंहोंमें प्रेम करने लगे। उसके बाद गन्धर्वोंके साथ सभी देवताओंने वरदाता शिवकी आराधना कर साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए विष्णुसे पुनः स्वदेह (स्वरूप) धारण करनेकी प्रार्थना की। उसके बाद (फिर) महादेवने शरभ (सिंहोंसे भी बलवान् पशु-विशेष)-का रूप धारण करके (नरसिंहसे) हजारों दिव्य वर्षोंतक युद्ध किया-कराया। दोनों देवता (आपसमें) युद्ध करते हुए सरोवरमें गिर पड़े। उस सरोवरके तीरपर (स्थित) अश्वत्थ (पीपल)-वृक्षके नीचे देवर्षि नारद ध्यान लगाये

विष्णुश्चतुर्भुजो जज्ञे लिङ्गाकारः शिवः स्थितः।
तौ दृष्ट्वा तत्र पुरुषौ तुष्टाव भक्तिभावितः॥ ३३

बैठे थे, उन्होंने उन दोनोंको देखा। (फिर तो) विष्णु चतुर्भुज-रूपमें और शिव लिङ्गरूपमें (परिवर्तित) हो गये। उन दोनों पुरुषों (देवों) को देखकर उन्होंने भक्तिभावसे उनकी स्तुति की॥ २९—३३॥

नमः शिवाय देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
हरये च उमाभर्त्रे स्थितिकालभृते नमः॥ ३४

हराय बहुरूपाय विश्वरूपाय विष्णवे।
त्र्यम्बकाय सुसिद्धाय कृष्णाय ज्ञानहेतवे॥ ३५

धन्योऽहं सुकृती नित्यं यद् दृष्टौ पुरुषोत्तमौ।
ममाश्रममिदं पुण्यं युवाभ्यां विमलीकृतम्।
अद्यप्रभृति त्रैलोक्ये अन्यजन्मेति विश्रुतम्॥ ३६

य इहागत्य स्नात्वा च पितॄन् संतर्पयिष्यति।
तस्य श्रद्धान्वितस्येह ज्ञानमैन्द्रं भविष्यति॥ ३७

[नारदजीने स्तुति की]—देवाधिदेव शिवको नमस्कार है। प्रभावशाली विष्णुको नमस्कार है। स्थिति (प्रजापालन) करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है। संहारके आधारभूत उमापति भगवान् शिवको नमस्कार है। बहुरूपधारी शङ्करजी एवं विश्वरूपधारी (विश्वात्मा) विष्णुको नमस्कार है। परमसिद्ध (योगीश्वर) शङ्कर एवं ज्ञानके मूल कारण भगवान् कृष्णको नमस्कार है। मैं धन्य तथा सदा पुण्यवान् हूँ; क्योंकि मुझे (आज) आप दोनों (श्रेष्ठ) पुरुषों (देवों) के दर्शन प्राप्त हुए। आप दोनों पुरुषोंद्वारा पवित्र किया गया मेरा यह आश्रम पुण्यमय हो गया। आजसे तीनों लोकोंमें यह 'अन्यजन्म' नामसे प्रसिद्ध हो जायगा। जो व्यक्ति यहाँ आकर इस तीर्थमें स्नान कर अपने पितरोंका तर्पण करेगा श्रद्धासे सम्पन्न उस पुरुषको यहाँ इन्द्र सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो जायगा॥ ३४—३७॥

अश्वत्थस्य तु यन्मूलं सदा तत्र वसाम्यहम्।
अश्वत्थवन्दनं कृत्वा यमं रौद्रं न पश्यति॥ ३८

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा नागस्य ह्रदमुत्तमम्।
पौण्डरीके नरः स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत्॥ ३९

दशम्यां शुक्लपक्षस्य चैत्रस्य तु विशेषतः।
स्नानं जपं तथा श्राद्धं मुक्तिमार्गप्रदायकम्॥ ४०

ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत् तीर्थं देवनिषेवितम्।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रमोचनी॥ ४१

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छत्येव परां गतिम्॥ ४२

मैं पीपल वृक्षके मूलमें सदा निवास करूँगा। उस अश्वत्थ (पीपल वृक्ष) को प्रणाम करनेवाला व्यक्ति भयंकर यमराजको नहीं देखेगा, श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उसके बाद (उस तीर्थसेवीको) उत्तम नागह्रदमें जाना चाहिये, पौण्डरीकमें स्नान करके मनुष्य पुण्डरीक (एक प्रकारके यज्ञ) का फल प्राप्त करता है। शुक्लपक्षकी दशमी विशेषकर चैत्रमासकी (शुक्ला) दशमी तिथिमें वहाँ किया गया स्नान, जप और श्राद्ध मोक्षपथको प्राप्ति करानेवाला होता है। पुण्डरीकमें स्नान करनेके बाद देवताओंद्वारा पूजित 'त्रिविष्टप' नामक तीर्थमें जाना चाहिये, वहाँ पापोंसे विमुक्त करनेवाली पवित्र वैतरणी नदी है। वहाँ स्नानकर शूलपाणि वृषध्वज (शिव)-की पूजा कर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा विशुद्ध होकर निश्चय ही परमगतिको प्राप्त कर लेता है॥ ३८—४२॥

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा रसावर्त्तमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तः सिद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम्॥ ४३

विप्रश्रेष्ठो! तत्पश्चात् सर्वश्रेष्ठ रसावर्त्त (तीर्थ) में जाना चाहिये, वहाँ भक्तिसहित स्नान करनेवाला सर्वश्रेष्ठ

चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां तीर्थे स्नात्वा ह्यलेपके।
पूजयित्वा शिवं तत्र पापलेपो न विद्यते॥ ४४

ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः फलकीवनमुत्तमम्।
यत्र देवाः सगन्धर्वाः साध्याश्च ऋषयः स्थिताः।
तपश्चरन्ति विपुलं दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥ ४५

दृषद्वत्यां नरः स्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः।
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं विन्दति मानवः॥ ४६
सोमक्षये च सम्प्राप्ते सोमस्य च दिने तथा
यः श्राद्धं कुरुते मर्त्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु॥ ४७

गयायां च यथा श्राद्धं पितॄन् प्रीणाति नित्यशः।
तथा श्राद्धं च कर्तव्यं फलकीवनमाश्रितैः॥ ४८

मनसा स्मरते यस्तु फलकीवनमुत्तमम्।
तस्यापि पितरस्तृप्तिं प्रयास्यन्ति न संशयः॥ ४९

तत्रापि तीर्थं सुमहत् सर्वदेवैरलंकृतम्।
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो गोसहस्रफलं लभेत्॥ ५०

पाणिखाते नरः स्नात्वा पितॄन् संतर्प्य मानवः।
अवाप्नुयाद् राजसूयं सांख्यं योगं च विन्दति॥ ५१
ततो गच्छेत सुमहत्तीर्थं मिश्रकमुत्तमम्।
तत्र तीर्थानि मुनिना मिश्रितानि महात्मना॥ ५२

व्यासेन मुनिशार्दूला दधीच्यर्थं महात्मना।
सर्वतीर्थेषु स स्नाति मिश्रके स्नाति यो नरः॥ ५३

ततो व्यासवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः।
मनोजवे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवमणिं शिवम्॥ ५४

मनसा चिन्तितं सर्वं सिध्यते नात्र संशयः।
गत्वा मधुवटीं चैव देव्यास्तीर्थं नरः शुचिः॥ ५५

तत्र स्नात्वाऽर्चयेद् देवान् पितॄंश्च प्रयतो नरः।
स देव्या समनुज्ञातो यथा सिद्धिं लभेन्नरः॥ ५६

कौशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्वत्यां नरोत्तमः।
स्नायीत नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५७

सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त करता है। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी (चौदस) तिथिको 'अलेपक' नामक तीर्थमें स्नान कर वहाँ शिवकी पूजा करनेसे पापसे लिप्त नहीं होता—पाप दूर भाग जाता है। विप्रवरो! वहाँसे उत्तम फलकीवनमें जाना चाहिये, जहाँ देवता, गन्धर्व, साध्य और ऋषि लोग रहते हैं एवं दिव्य सहस्र वर्षोंतक बहुत तप करते हैं। दृषद्वती (कग्गर) नदीमें स्नानकर देवताओंका तर्पण करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम और अतिरात्र नामक यज्ञोंसे मिलनेवाले फलको प्राप्त करता है॥ ४३—४६॥

सोमवारके दिन चन्द्रमाके क्षीण हो जानेपर अर्थात् सोमवती अमावास्याको जो मनुष्य श्राद्ध करता है, उसका पुण्यफल सुनो। जैसे गया-क्षेत्रमें किया गया श्राद्ध पितरोंको नित्य तृप्त करता है, वैसे ही फलकीवनमें रहनेवालोंको श्राद्ध करनेसे पितरोंको तृप्ति होती है। जो मनुष्य मनसे फलकीवनका स्मरण करता है, उसके भी पितर निःसंदेह तृप्ति प्राप्त करते हैं। वहीं सभी देवोंसे सुशोभित एक 'सुमहत्' तीर्थ है; उसमें स्नान करनेवाला पुरुष हजारों गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। मानव पाणिखात तीर्थमें स्नान करके एवं पितरोंका तर्पण कर राजसूय-यज्ञ तथा सांख्य (ज्ञान) और योग (कर्म)-के अनुष्ठान करनेसे होनेवाले फलको प्राप्त करता है॥ ४७—५१॥

पाणिखातके बाद 'मिश्रक' नामक महान् एवं श्रेष्ठ तीर्थमें जाना चाहिये। मुनिश्रेष्ठो! वहाँ महात्मा व्यासदेवने दधीचिऋषिके हेतु तीर्थोंको एकमें मिश्रित किया था। इस मिश्रक तीर्थमें स्नान कर लेनेवाला मनुष्य (मानो) सभी तीर्थोंमें स्नान कर लेता है। फिर संयमशील तथा नियमित आहार करनेवाला होकर व्यासवनमें जाना चाहिये। 'मनोजव' तीर्थमें स्नानकर 'देवमणि' शङ्करका दर्शन करनेसे मनुष्यको अभीष्ट-सिद्धिकी प्राप्ति होती है—इसमें संदेह नहीं। मनुष्यको देवीके मधुवटी नामक तीर्थमें जाकर स्नान करके संयत होकर देवों एवं पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला व्यक्ति देवीकी आज्ञासे (जैसी चाहता है वैसी) सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ५२—५६॥

जो मनुष्य 'कौशिकी' और 'दृषद्वती' (कग्गर) नदियोंके संगममें स्नान करता और नियत भोजन करता है, वह श्रेष्ठ पुरुष सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है

ततो व्यासस्थली नाम यत्र व्यासेन धीमता।
पुत्रशोकाभिभूतेन देहत्यागाय निश्चयः ॥ ५८

कृतो देवैश्च विप्रेन्द्राः पुनरुत्थापितस्तदा।
अभिगम्य स्थलीं तस्य पुत्रशोकं न विन्दति ॥ ५९

किंदत्तं कूपमासाद्य तिलप्रस्थं प्रदाय च।
गच्छेत परमां सिद्धिं ऋणैर्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ६०

अहं च सुदिनं चैव द्वे तीर्थे भुवि दुर्लभे।
तयोः स्नात्वा विशुद्धात्मा सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥ ६१

कृतजप्यं ततो गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्राभिषेकं कुर्वीत गङ्गायां प्रयतः स्थितः ॥ ६२

अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत्।
कोटितीर्थं च तत्रैव दृष्ट्वा कोटीश्वरं प्रभुम् ॥ ६३

तत्र स्नात्वा श्रद्दधानः कोटियज्ञफलं लभेत्।
ततो वामनकं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ६४

यत्र वामनरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना।
बलेरपहृतं राज्यमिन्द्राय प्रतिपादितम् ॥ ६५

तत्र विष्णुपदे स्नात्वा अर्चयित्वा च वामनम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ६६

ज्येष्ठाश्रमं च तत्रैव सर्वपातकनाशनम्।
तं तु दृष्ट्वा नरो मुक्तिं संप्रयाति न संशयः ॥ ६७

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
द्वादश्यां च नरः स्नात्वा ज्येष्ठत्वं लभते नृषु ॥ ६८

तत्र प्रतिष्ठिता विप्रा विष्णुना प्रभविष्णुना।
दीक्षाप्रतिष्ठासंयुक्ता विष्णुप्रीणनतत्पराः ॥ ६९

तेभ्यो दत्तानि श्राद्धानि दानानि विविधानि च।
अक्षयाणि भविष्यन्ति यावन्मन्वन्तरस्थितिः ॥ ७०

तत्रैव कोटितीर्थं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ ७१

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! 'व्यासस्थली' नामका एक स्थान है, जहाँ पुत्रशोकसे दुःखी होकर वेदव्यासने अपने शरीरत्यागका निश्चय कर लिया था, पर देवोंने उन्हें पुनः सँभाल लिया। उसके बाद उस भूमिमें जानेवाले मनुष्यको पुत्रशोक नहीं होता। 'किंदत्तकूप'में जाकर एक पसर (तौलका एक परिमाण) तिलका दान करनेसे मनुष्य परमसिद्धि और ऋणसे मुक्ति प्राप्त करता है। 'अह' एवं 'सुदिन' नामक ये दो तीर्थ पृथ्वीमें दुर्लभ हैं। इन दोनोंमें स्नान करनेसे मनुष्य विशुद्धात्मा होकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है ॥ ५७—६१ ॥

उसके बाद तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध 'कृतजप्य' नामके तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ नियमपूर्वक संयत रहते हुए गङ्गामें स्नान करना चाहिये। वहाँपर महादेवका पूजन करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। वहींपर कोटितीर्थ स्थित है। वहाँ श्रद्धापूर्वक स्नानकर 'कोटीश्वर' नामका दर्शन करनेसे मनुष्य कोटि यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है। उसके बाद तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध 'वामनक' तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ प्रभावशाली विष्णुने वामनरूप धारणकर बलिका राज्य छीन कर इन्द्रको दे दिया था ॥ ६२—६५ ॥

वहाँ 'विष्णुपद' तीर्थमें स्नान कर वामनदेवकी पूजा कर समस्त पापोंसे शुद्ध होकर (छूटकर) मनुष्य विष्णुके लोकको प्राप्त कर लेता है। वहींपर सभी पापोंको नष्ट करनेवाला ज्येष्ठाश्रम नामका तीर्थ है। उसका दर्शन कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। इसमें संदेह नहीं। ज्येष्ठ महीनेके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिको उपवास कर द्वादशी तिथिके दिन स्नानकर मानव मनुष्योंमें श्रेष्ठता (बड़प्पन) प्राप्त करता है। वहाँ (सर्वाधिक) प्रभावशाली विष्णुभगवान्‌ने यज्ञादिमें दीक्षित (लगे हुए), प्रतिष्ठित एवं सम्मान्य तथा विष्णु-भगवान्‌की आराधनामें परायण ब्राह्मणोंको सम्मानित किया था ॥ ६६—६९ ॥

उन्हें दिये गये (पात्रक) श्राद्ध और अनेक प्रकारके दान अक्षय एवं मन्वन्तरतक स्थिर रहते हैं। वहाँ तीनों लोकोंमें विख्यात 'कोटितीर्थ' है। उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य करोड़ों यज्ञोंके फल प्राप्त करता है

कोटीश्वरं नरो दृष्ट्वा तस्मिंस्तीर्थे महेश्वरम्।
महादेवप्रसादेन गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ ७२

तत्रैव सुमहत् तीर्थं सूर्यस्य च महात्मनः।
तस्मिन् स्नात्वा भक्तियुक्तः सूर्यलोके महीयते॥ ७३

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रास्तीर्थं कल्मषनाशनम्।
कुलोत्तारणनामानं विष्णुना कल्पितं पुरा॥ ७४

वर्णानामाश्रमाणां च तारणाय सुनिर्मलम्।
ब्रह्मचर्यात्परं मोक्षं ये इच्छन्ति सुनिर्मलम्।
तेऽपि तत्तीर्थमासाद्य पश्यन्ति परमं पदम्॥ ७५

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
कुलानि तारयेत् स्नातः सप्त सप्त च सप्त च॥ ७६

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये तत्परायणाः।
स्नाता भक्तियुताः सर्वे पश्यन्ति परमं पदम्॥ ७७

दूरस्थोऽपि स्मरेद् यस्तु कुरुक्षेत्रं सवामनम्।
सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्निवसन्नरः॥ ७८

उस तीर्थमें 'कोटीश्वर' महादेवका दर्शन कर मनुष्य उन महादेवकी कृपासे गाणपत्य पद (गणनायकत्वकी उपाधि) प्राप्त करता है। और वहीं महात्मा सूर्यदेवका महान् तीर्थ है। उसमें भक्तिपूर्वक स्नानकर मनुष्य सूर्यलोकमें महान् माना जाता है॥ ७०-७३॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! कोटितीर्थके बाद पापका नाश करनेवाले 'कुलोत्तारणतीर्थ'में जाना चाहिये, जिसे प्राचीनकालमें विष्णुने वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंको तारनेके लिये बनाया था। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यव्रतसे विशुद्ध मुक्तिकी इच्छा करते हैं ऐसे लोग भी उस तीर्थमें जाकर परम पदका दर्शन कर लेते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और संन्यासी वहाँ स्नानकर अपने कुलके (७+७+७=२१) इक्कीस पूर्व पुरुषोंका उद्धार कर देते हैं। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र उस तीर्थमें तीर्थपरायण होकर एवं भक्तिसे स्नान करते हैं वे सभी परम पदका दर्शन करते हैं। और जो दूर रहता हुआ भी वामनसहित कुरुक्षेत्रका स्मरण करता है, वह भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है। फिर वहाँ निवास करनेवालेका तो कहना ही क्या?॥ ७४-७८॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३६॥

कुरुक्षेत्रके तीर्थोंके माहात्म्य और क्रमका पूर्वानुक्रान्त वर्णन

लोमहर्षण उवाच

पवनस्य ह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्।
विमुक्तः कलुषैः सर्वैः शैवं पदमवाप्नुयात्॥ १

पुत्रशोकेन पवनो यस्मिँल्लीनो बभूव ह।
ततः सब्रह्मकैर्देवैः प्रसाद्य प्रकटीकृतः॥ २

अतो गच्छेत अमृतं स्थानं तच्छूलपाणिनः।
यत्र देवैः सगन्धर्वैः हनुमान् प्रकटीकृतः॥ ३

लोमहर्षण बोले—पवनके ह्रदमें, पुत्र (हनुमान्‌जी)-के शोकके कारण जिस सरोवरमें पवन लीन हो गये थे, उसमें स्नान करके महेश्वरदेवका दर्शन कर मनुष्य समस्त पापोंसे विमुक्त हो शिवपदको प्राप्त करता है। उसके बाद ब्रह्माके साथ सभी देवोंने मिलकर उन्हें प्रसन्न एवं प्रत्यक्ष प्रकट किया। वहाँसे शूलपाणि (भगवान् शंकर)-के अमृत नामक स्थानमें जाना चाहिये, जहाँ गन्धर्वोंके साथ देवताओंने हनुमान्‌जीको प्रकट किया था।

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा अमृतत्वमवाप्नुयात्।
कुलोत्तारणमासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तमः॥ ४

कुलानि तारयेत् सर्वान् मातामहपितामहान्।
शालिहोत्रस्य राजर्षेस्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ५

तत्र स्नात्वा विमुक्तस्तु कलुषैर्देहसंभवैः।
श्रीकुञ्जं तु सरस्वत्यां तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ६

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या अग्निष्टोमफलं लभेत्।
ततो नैमिषकुञ्जं तु समासाद्य नरः शुचिः॥ ७

नैमिषस्य च स्नानेन यत् पुण्यं तत् समाप्नुयात्।
तत्र तीर्थं महाख्यातं वेदवत्या निषेवितम्॥ ८

रावणेन गृहीतायाः केशेषु द्विजसत्तमाः।
तद्वधाय च सा प्राणान् मुमुचे शोककर्शिता॥ ९

ततो जाता गृहे राज्ञो जनकस्य महात्मनः।
सीता नामेति विख्याता रामपत्नी पतिव्रता॥ १०

सा हृता रावणेनेह विनाशायात्मनः स्वयम्।
रामेण रावणं हत्वा अभिषिच्य विभीषणम्॥ ११

समानीता गृहं सीता कीर्तिरात्मवता यथा।
तस्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा कन्यायज्ञफलं लभेत्॥ १२

विमुक्तः कलुषैः सर्वैः प्राप्नोति परमं पदम्।
ततो गच्छेत सुमहद् ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्॥ १३

यत्र वर्णावरः स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते नरः।
ब्राह्मणश्च विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात्॥ १४

ततो गच्छेत सोमस्य तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम्।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा द्विजराज्यमवाप्नुयात्॥ १५

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च स्वपितॄन् दैवतानि च।
निर्मलः स्वर्गमायाति कार्तिक्यां चन्द्रमा यथा॥ १६

उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य अमृतपदको पा लेता है। नियमानुसार तीर्थका सेवन करनेवाला श्रेष्ठ ब्राह्मण 'कुलोत्तारण' तीर्थमें जाकर अपने मातामह और पितामहके समस्त वंशोंका उद्धार कर देता है। तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध राजर्षि शालिहोत्रके तीर्थमें स्नान कर मुक्त हो मनुष्य शारीरिक पापोंसे सर्वथा छूट जाता है। सरस्वती-क्षेत्रमें तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध श्रीकुञ्ज नामक तीर्थ है। उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त कर लेता है। मनुष्य वहाँसे नैमिषकुञ्जतीर्थमें जाकर पवित्र हो जाता है और नैमिषारण्यतीर्थमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, उसे प्राप्त कर लेता है। वहाँपर 'वेदवती'से निषेवित बहुत प्रसिद्ध तीर्थ है॥ १-८॥

द्विजश्रेष्ठो! रावणके द्वारा अपने केशके पकड़े जानेपर शोकसे संतप्त होकर (वेदवतीने) उसके (रावणके) वधके लिये अपने प्राणोंको छोड़ दिया था और उसके बाद महात्मा राजा जनकके घरमें वे उत्पन्न हुईं और उनका नाम 'सीता' विख्यात हुआ तथा वे रामकी पतिव्रता पत्नी हुईं। उस सीताको रावणने स्वयं अपने विनाशके लिये अपहृत कर लिया। सीताके अपहरण हो जानेपर राम-रावण-युद्ध हुआ, जिसमें रावणको मारनेके बाद विभीषणको (लङ्काके राज्यपर) अभिषिक्त कर राम सीताको वैसे ही घर लौटा लाये, जैसे आत्मवान् (जितेन्द्रिय) पुरुष कीर्तिको प्राप्त करता है। उनके तीर्थमें स्नान कर मनुष्य कन्यायज्ञ (कन्यादान)-का फल एवं समस्त पापोंसे मुक्त होकर परम पदको प्राप्त करता है। उस वेदवतीतीर्थके बाद ब्रह्माके उत्तम और महान् स्थानमें जाना चाहिये, जहाँ स्नान करनेसे अवर वर्णका व्यक्ति (जन्मान्तरमें) ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है और ब्राह्मण विशुद्ध अन्तःकरणवाला होकर परम पदकी प्राप्ति करता है॥ ९—१४॥

उस ब्रह्माके तीर्थस्थलपर जानेके बाद तीनों लोकोंमें दुर्लभ 'सोमतीर्थ'में जाना चाहिये, जहाँ चन्द्रमाने तपस्या करके द्विजराजत्व पदको प्राप्त किया था। वहाँ स्नानकर अपने पितरों और देवताओंकी पूजा करनेसे मनुष्य कार्तिककी पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान निर्मल

सप्तसारस्वतं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्।
यत्र सप्त सरस्वत्य एकीभूता वहन्ति च॥ १७

सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला मानसह्रदा।
सरस्वत्योघनामा च सुरेणुर्विमलोदका॥ १८

पितामहस्य यजतः पुष्करेषु स्थितस्य ह।
अब्रुवन् ऋषयः सर्वे नाऽयं यज्ञो महाफलः॥ १९

न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती।
तच्छ्रुत्वा भगवान् प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम्॥ २०

पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै।
सुप्रभा नाम सा देवी तत्र ख्याता सरस्वती॥ २१

तां दृष्ट्वा मुनयः प्रीता वेगयुक्तां सरस्वतीम्।
पितामहं मानयन्तीं ते तु तां बहु मेनिरे॥ २२

एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करस्था सरस्वती।
समानीता कुरुक्षेत्रे मङ्कणेन महात्मना॥ २३

नैमिषे मुनयः स्थित्वा शौनकाद्यास्तपोधनाः।
ते पृच्छन्ति महात्मानं पौराणं लोमहर्षणम्॥ २४

कथं यज्ञफलोऽस्माकं वर्ततां सत्पथे भवेत्।
ततोऽब्रवीन्महाभागः प्रणम्य शिरसा ऋषीन्॥ २५

सरस्वती स्थिता यत्र तत्र यज्ञफलं महत्।
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो नानास्वाध्यायवेदिनः॥ २६

समागम्य ततः सर्वे सस्मरुस्ते सरस्वतीम्।
सा तु ध्याता ततस्तत्र ऋषिभिः सत्रयाजिभिः॥ २७

समागता प्लावनार्थं यज्ञे तेषां महात्मनाम्।
नैमिषे काञ्चनाक्षी तु स्मृता मङ्कणकेन सा॥ २८

समागता कुरुक्षेत्रं पुण्यतोया सरस्वती।
गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम्॥ २९

आहूता च सरिच्छ्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती।
विशालां नाम तां प्राहुर्ऋषयः संशितव्रताः॥ ३०

सरित् सा हि समाहूता मङ्कणेन महात्मना।
कुरुक्षेत्रं समायाता प्रविष्टा च महानदी॥ ३१

उत्तरे कोशलाभागे पुण्ये देवर्षिसेविते।
उद्दालकेन मुनिना तत्र ध्याता सरस्वती॥ ३२

होकर स्वर्गको प्राप्त कर लेता है। तीनों लोकोंमें दुर्लभ 'सप्तसारस्वत' नामक एक तीर्थ है, जहाँ सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मानसह्रदा, सरस्वती, ओघवती, विमलोदका एवं सुरेणु नामकी सातों सरस्वतियाँ (नदियाँ) एकत्र मिलकर प्रवाहित होती हैं॥ १५—१८॥

पुष्करतीर्थमें स्थित ब्रह्माजीके यज्ञके अनुष्ठानमें लग जानेपर सभी ऋषियोंने उनसे कहा—आपका यह यज्ञ महाफलजनक नहीं होगा; क्योंकि यहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती (नदी) नहीं दिखलायी पड़ रही हैं। इसे सुनकर भगवान्‌ने प्रसन्नतापूर्वक सरस्वतीका स्मरण किया। पुष्करमें यज्ञ कर रहे ब्रह्माजीद्वारा आहूत की गयी 'सुप्रभा' नामकी देवी वहाँ सरस्वती नामसे प्रसिद्ध हुई। ब्रह्माजीका मान करनेवाली उस वेगवती सरस्वतीको देखकर मुनिजन प्रसन्न हो गये और उन सबोंने उनका अत्यधिक सम्मान किया॥ १९—२२॥

इस प्रकार पुष्करतीर्थमें स्थित एवं नदियोंमें श्रेष्ठ इस सरस्वतीको महात्मा मङ्कण कुरुक्षेत्रमें लाये।

एक समय नैमिषारण्यमें रहनेवाले तपस्याके धनी शौनक आदि मुनियोंने पुराणोंके ज्ञाता महात्मा लोमहर्षणसे पूछा—सत्पथगामी हम लोगोंको यज्ञका फल कैसे प्राप्त होगा? (—इसे कृपाकर समझाइये।) उसके बाद महानुभाव लोमहर्षणजीने ऋषियोंको सिरसे प्रणाम कर कहा कि ऋषियो! जहाँ सरस्वती नदी अवस्थित है, वहाँ (रहनेसे) यज्ञका महान् फल प्राप्त होता है। इसको सुनकर विविध वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले मुनियोंने एकत्र होकर सरस्वतीका स्मरण किया। दीर्घकालिक यज्ञ करनेवाले उन ऋषियोंके ध्यान (स्मरण) करनेपर वे (सरस्वती) वहाँ नैमिषक्षेत्रमें उन महात्माओंके यज्ञमें प्लावन करनेके लिये काञ्चनाक्षी नामसे उपस्थित हो गयीं। वे ही प्रसिद्ध नदी मङ्कणके द्वारा स्मृत होनेपर पवित्र-सलिला सरस्वतीके रूपमें कुरुक्षेत्रमें (भी) आयीं और महान् व्रती ऋषियोंने गया-क्षेत्रमें महायज्ञका अनुष्ठान करनेवाले गयके यज्ञमें आहूत की गयी उन श्रेष्ठ सरस्वती नदीको 'विशाला'के नामसे स्मरण किया॥ २३—३०॥

महात्मा मङ्कण ऋषिद्वारा समाहूत की गयी वही नदी कुरुक्षेत्रमें आकर प्रवेश कर गयी। (फिर) उद्दालक मुनिने देवर्षियोंके द्वारा सेवित परम पवित्र उत्तरकोसल

आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात्।
पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः॥ ३३

मनोहरेति विख्याता सर्वपापक्षयावहा।
आहूता सा कुरुक्षेत्रे मङ्कणेन महात्मना।
ऋषेः संमाननार्थाय प्रविष्टा तीर्थमुत्तमम्॥ ३४

सुवेणुरिति विख्याता केदारे या सरस्वती।
सर्वपापक्षया ज्ञेया ऋषिसिद्धनिषेविता॥ ३५

प्रदेशमें सरस्वतीका ध्यान किया। इन मुनिके कारण नदियोंमें श्रेष्ठ वह सरस्वती नदी उस देशमें आ गयी एवं वह वल्कल तथा मृगचर्मको धारण करनेवाले मुनियोंद्वारा पूजित हुई। तब सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाली वह 'मनोहरा' नामसे विख्यात हुई। फिर वह महात्मा मङ्कणद्वारा आहूत होकर ऋषिको सम्मानित करनेके लिये कुरुक्षेत्रके उत्तम तीर्थमें प्रविष्ट हुई। केदारतीर्थमें जो सरस्वती 'सुवेणु' नामसे प्रसिद्ध है, वह ऋषियों और सिद्धोंके द्वारा सेवित तथा सर्वपापनाशक रूपसे जानी जाती है॥ ३१—३५॥

सापि तेनेह मुनिना आराध्य परमेश्वरम्।
ऋषीणामुपकारार्थं कुरुक्षेत्रं प्रवेशिता॥ ३६

दक्षेण यजता सापि गङ्गाद्वारे सरस्वती।
विमलोदा भगवती दक्षेण प्रकटीकृता॥ ३७

समाहूता ययौ तत्र मङ्कणेन महात्मना।
कुरुक्षेत्रे तु कुरुणा यजिता च सरस्वती॥ ३८

सरोमध्ये समानीता मार्कण्डेयेन धीमता।
अभिष्टूय महाभागां पुण्यतोयां सरस्वतीम्॥ ३९

यत्र मङ्कणकः सिद्धः सप्तसारस्वते स्थितः।
नृत्यमानश्च देवेन शंकरेण निवारितः॥ ४०

परमेश्वरकी आराधना कर इन मुनिने उसे (सुवेणुको) भी ऋषियोंका उपकार करनेके लिये इस कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित कराया। गङ्गाद्वारमें यज्ञ कर रहे दक्षने 'विमलोदा' नामसे भगवती सरस्वतीको प्रकट किया। कुरुक्षेत्रमें कुरुद्वारा पूजित सरस्वती मङ्कणद्वारा बुलायी जानेपर वहाँ गयी। फिर बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी उस पवित्र जलवाली महाभागा सरस्वतीकी स्तुति कर उसे सरोवरके मध्यमें ले गये। वहीं सप्तसारस्वततीर्थमें उपस्थित एवं नृत्य करते हुए सिद्ध मङ्कणकको नृत्य करनेसे शंकरजीने रोका था॥ ३६—४०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३७॥

मङ्कणक-प्रसङ्ग, मङ्कणकका शिवस्तवन और उनकी अनुकूलता प्राप्ति

ऋषय ऊचुः

कथं मङ्कणकः सिद्धः कस्माज्जातो महानृषिः।
नृत्यमानस्तु देवेन किमर्थं स निवारितः॥ १

ऋषियोंने कहा—(प्रभो!) मङ्कणक किस प्रकार सिद्ध हुए? वे महान् ऋषि किससे उत्पन्न हुए थे? नृत्य करते हुए उन मङ्कणकको महादेवने क्यों रोका?॥ १॥

लोमहर्षण उवाच

कश्यपस्य सुतो जज्ञे मानसो मङ्कणो मुनिः।
स्नानं कर्तुं व्यवसितो गृहीत्वा वल्कलं द्विजः॥ २

तत्र गता ह्यप्सरसो रम्भाद्याः प्रियदर्शनाः।
स्नायन्ति रुचिराः स्निग्धास्तेन सार्धमनिन्दिताः॥ ३

लोमहर्षणने कहा—(ऋषियो!) मङ्कणकमुनि महर्षि कश्यपके मानसपुत्र थे। (एक समय) वे ब्राह्मण देवता वल्कल-वस्त्र लेकर स्नान करने गये। वहाँ रम्भा आदि सुन्दरी अप्सराएँ भी गयी थीं। अनिन्द्य, कोमल एवं मनोहर (रूपवाली वे सभी) अप्सराएँ उनके साथ (ही,

ततो मुनेस्तदा क्षोभाद्रेतः स्कन्नं यदम्भसि।
तद्रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः॥ ४

सप्तधा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह।
तत्रर्षयः सप्त जाता विदुर्यान् मरुतां गणान्॥ ५

वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः।
वायुज्वालो वायुरेता वायुचक्रश्च वीर्यवान्॥ ६

एते ह्यपत्यास्तस्यर्षेर्धारयन्ति चराचरम्।
पुरा मङ्कणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति मे श्रुतम्॥ ७

क्षतः किल करे विप्रास्तस्य शाकरसोऽस्रवत्।
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान्॥ ८

ततः सर्वं प्रनृत्तं च स्थावरं जङ्गमं च यत्।
प्रनृत्तं च जगद् दृष्ट्वा तेजसा तस्य मोहितम्॥ ९

ब्रह्मादिभिः सुरैस्तत्र ऋषिभिश्च तपोधनैः।
विज्ञप्तो वै महादेवो मुनेरर्थे द्विजोत्तमाः॥ १०

नायं नृत्येद् यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि।
ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव हि॥ ११

सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत।
हर्षस्थानं किमर्थं च तवेदं मुनिसत्तम।
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम॥ १२

ऋषिरुवाच

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन् कराच्छाकरसं स्रुतम्।
यं दृष्ट्वाऽहं प्रनृत्तो वै हर्षेण महताऽन्वितः॥ १३

तं प्रहस्याब्रवीद् देवो मुनिं रागेण मोहितम्।
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीह प्रपश्यताम्॥ १४

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं देवदेवो महाद्युतिः।
अङ्गुल्यग्रेण विप्रेन्द्राः स्वाङ्गुष्ठं ताडयद् भवः॥ १५

ततो भस्म क्षताात् तस्मान्निर्गतं हिमसन्निभम्।
तद् दृष्ट्वा व्रीडितो विप्रः पादयोः पतितोऽब्रवीत्॥ १६

नान्यं देवादहं मन्ये शूलपाणेर्महात्मनः।
चराचरस्य जगतो वरस्त्वमसि शूलधृक्॥ १७

स्नान करने लगीं। उसके बाद मुनिके मनमें विकृति हो गयी, फलतः उनका शुक्र जलमें स्खलित हो गया। उस रेतको उन महातपस्वीने उठाकर घड़ेमें रख लिया। वह कलशस्थ (रेत) सात भागोंमें विभक्त हो गया। उससे सात ऋषि उत्पन्न हुए, जिन्हें मरुद्गण कहा जाता है। (उनके नाम हैं—) वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेता एवं वीर्यवान् वायुचक्र। उन (मङ्कणक) ऋषिके ये सात पुत्र चराचरको धारण करते हैं। ब्राह्मणो! मैंने यह सुना है कि प्राचीन कालमें सिद्ध मङ्कणकके हाथमें कुशके अग्रभागसे छिद जानेके कारण घाव हो गया था। उससे शाकरस निकलने लगा। वे (अपने हाथसे निकलते हुए उस) शाकरसको देखकर प्रसन्न हो गये और नाचने लगे॥ २—८॥

इससे (उनके नृत्य करनेसे उनके साथ) सम्पूर्ण अचर-चर जगत् भी नाचने लगा। उनके तेजसे मोहित जगत्को नाचते देखकर ब्रह्मा आदि देव एवं तपस्वी ऋषियोंने मुनिके (हितके) लिये महादेवसे कहा—देव! आप ऐसा (कार्य) करें, जिससे ये नृत्य न करें (उन्हें नृत्यसे विरत करनेका उपाय करें)। उसके बाद हर्षसे अधिक मग्न उन मुनिको देखकर एवं देवोंके हितकी इच्छासे महादेवने कहा—मुनिसत्तम! ब्राह्मणश्रेष्ठ! आप तो तपस्वी एवं धर्मपथमें स्थित रहनेवाले हैं। फिर आपके इस हर्षका क्या कारण है?॥ ९—१२॥

ऋषिने कहा— ब्रह्मन्! क्या आप नहीं देखते कि मेरे हाथसे शाकका रस चू रहा है; जिसे देखकर मैं अत्यन्त आनन्दमग्न होकर नृत्य कर रहा हूँ। महादेवजीने हँसकर आसक्तिसे मोहित हुए उन मुनिसे कहा—विप्रवर! मुझे आश्चर्य नहीं हो रहा है (किंतु) आप इधर देखें। विप्रेन्द्रो! श्रेष्ठ मुनिसे ऐसा कहकर देदीप्यमान भगवान् देवाधिदेव महादेवने अपनी अंगुलिके अग्रभागसे अपने अंगूठेको ठोंक किया। उसके बाद उस चोटसे हिमतुल्य (स्वच्छ) भस्म निकलने लगा। उसे देखनेके बाद ब्राह्मण लज्जित होकर (महादेवके) चरणोंमें गिर पड़े और बोले—॥ १३—१६॥

मैं महात्मा शूलपाणि महादेवके अतिरिक्त किसीको नहीं मानता। शूलपाणे! मेरी दृष्टिमें आप ही चराचर

त्वदाश्रयाश्च दृश्यन्ते सुरा ब्रह्मादयोऽनघ।
पूर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता महत्॥ १८

त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे मोदन्ते ह्यकुतोभयाः।
एवं स्तुत्वा महादेवमृषिः स प्रणतोऽब्रवीत्॥ १९

भगवंस्त्वत्प्रसादाद्धि तपो मे न क्षयं व्रजेत्।
ततो देवः प्रसन्नात्मा तमृषिं वाक्यमब्रवीत्॥ २०

समस्त संसारमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अनघ! ब्रह्म आदि देवता आपके ही आश्रित देखे जाते हैं। आप ही देवताओंमें प्रथम हैं और आप (सब कुछ) करने एवं करानेवाले तथा महत्स्वरूप हैं। आपकी कृपासे सभी देवगण निर्भय होकर मोदमग्न होते रहते हैं। ऋषिने इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करनेके बाद उन्हें प्रणामकर कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मेरे तपका क्षय न हो। तब महादेवजीने प्रसन्न होकर उन ऋषिसे यह वचन कहा— ॥ १७—२० ॥

ईश्वर उवाच

तपस्ते वर्धतां विप्र मत्प्रसादात् सहस्रधा।
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्द्धमहं सदा॥ २१
सप्तसारस्वते स्नात्वा यो मामर्चिष्यते नरः।
न तस्य दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च॥ २२
सारस्वतं च तं लोकं गमिष्यति न संशयः।
शिवस्य च प्रसादेन प्राप्नोति परमं पदम्॥ २३

(सदाशिव) ईश्वरने कहा—विप्र! मेरी कृपासे तुम्हारी तपस्या सहस्रों प्रकारसे बढ़े। मैं तुम्हारे साथ इस आश्रममें सदा निवास करूँगा। जो मनुष्य इस सप्तसारस्वततीर्थमें स्नान करके मेरी पूजा करेगा, उसे इस लोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। वह निःसंदेह उस सारस्वतलोकको जायगा एवं (मुझ) शिवके अनुग्रहसे परम पदको प्राप्त करेगा॥ २१—२३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३८ ॥

कुरुक्षेत्रके तीर्थोंका अनुक्रान्त वर्णन

लोमहर्षण उवाच

ततस्त्वौशनसं तीर्थं गच्छेत्तु श्रद्धयान्वितः।
उशना यत्र संसिद्धो ग्रहत्वं च समाप्तवान्॥ १

तस्मिन् स्नात्वा विमुक्तस्तु पातकैर्जन्मसम्भवैः।
ततो याति परं ब्रह्म यस्मान्नावर्तते पुनः॥ २

रहोदरो नाम मुनिर्यत्र मुक्तो बभूव ह।
महता शिरसा ग्रस्तस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात्॥ ३

लोमहर्षणने कहा—(ऋषियो!) सप्तसारस्वतके बाद श्रद्धासे युक्त होकर 'औशनस' तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ शुक्र सिद्धि प्राप्तकर ग्रहत्वको प्राप्त हो गये। उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य अनेक जन्मोंमें किये हुए पातकोंसे छूटकर परब्रह्मको प्राप्त करता है, जहाँसे पुनः (जन्म-मरणके चक्करमें) लौटना नहीं पड़ता। (वह तीर्थ ऐसा है) जहाँ तीर्थ दर्शनकी महिमासे भारी सिरसे जकड़े हुए रहोदर नामके एक मुनि उससे मुक्त हो गये थे॥ १—३॥

ऋषय ऊचुः

कथं रहोदरो ग्रस्तः कथं मोक्षमवाप्तवान्।
तीर्थस्य तस्य माहात्म्यमिच्छामः श्रोतुमादरात्॥ ४

ऋषियोंने कहा (पूछा)—रहोदर मुनि सिरसे ग्रस्त कैसे हो गये थे? और वे उससे मुक्त कैसे हुए? हम लोग उस तीर्थके माहात्म्यको आदरके साथ सुनना चाहते हैं (जिसकी महिमासे ऐसा हुआ)॥ ४॥

लोमहर्षण उवाच

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना।
वसता द्विजशार्दूला राक्षसास्तत्र हिंसिताः॥ ५
तत्रैकस्य शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः।
क्षुरेण शितधारेण तत् पपात महावने॥ ६
रहोदरस्य तल्लग्नं जङ्घायां वै यदृच्छया।
वने विचरतस्तत्र अस्थि भित्त्वा विवेश ह॥ ७
स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह।
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च॥ ८
स पूतिना विस्रवता वेदनार्तो महामुनिः।
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां यानि कानि च॥ ९

ततः स कथयामास ऋषीणां भावितात्मनाम्।
तेऽब्रुवन् ऋषयो विप्रं प्रयाह्यौशनसं प्रति॥ १०

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगाम स रहोदरः।
ततस्त्वौशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा॥ ११

तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले द्विजाः।
ततः स विरजो भूत्वा पूतात्मा वीतकल्मषः॥ १२

आजगामाश्रमं प्रीतः कथयामास चाखिलम्।
ते श्रुत्वा ऋषयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।
कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः॥ १३
तत्रापि सुमहत्तीर्थं विश्वामित्रस्य विश्रुतम्।
ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रो महामुनिः॥ १४

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते ध्रुवम्।
ब्राह्मणस्तु विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात्॥ १५

ततः पृथूदकं गच्छेन्नियतो नियताशनः।
तत्र सिद्धस्तु ब्रह्मर्षी रुषङ्गुर्नाम नामतः॥ १६

जातिस्मरो रुषङ्गुस्तु गङ्गाद्वारे सदा स्थितः।
अन्तकालं ततो दृष्ट्वा पुत्रान् वचनमब्रवीत्।
इह श्रेयो न पश्यामि नयध्वं मां पृथूदकम्॥ १७

लोमहर्षणजी बोले — द्विजश्रेष्ठो! प्राचीन कालमें दण्डकारण्यमें रहते हुए रघुवंशी महात्मा रामचन्द्रने बहुत-से राक्षसोंको मारा था। वहाँ एक दुरात्मा राक्षसका सिर तीक्ष्णधारवाले क्षुर नामक बाणसे कटकर उस महावनमें गिरा। (फिर वह) संयोगवश वनमें विचरण करते हुए रहोदर मुनिकी जंघामें उनकी हड्डीको तोड़कर उससे चिपक गया। महाप्राज्ञ वे ब्राह्मणदेव (जाँघकी टूटी हड्डीमें) उस मस्तकके लग जानेके कारण तीर्थों और देवालयोंमें नहीं जा पाते थे॥ ५—८॥

वे महामुनि दुर्गन्धपूर्ण पीब आदि बहनेके कारण तथा वेदनासे अत्यन्त दुःखी रहते थे। पृथ्वीके जिन-जिन तीर्थोंमें वे गये, वहाँ-वहाँ उन्होंने पवित्रात्मा ऋषियोंसे (अपना दुःख) कहा। ऋषियोंने उन विप्रसे कहा— ब्राह्मणदेव! आप औशनस (तीर्थ)-में जाइये। (लोमहर्षणने कहा—) द्विजो! उनका यह वचन सुनकर रहोदर मुनि वहाँसे औशनसतीर्थमें गये। वहाँ उन्होंने तीर्थ-जलका स्पर्श किया। उनके द्वारा (जलका) स्पर्श होते ही वह मस्तक उनसे (जाँघ)-को छोड़कर जलमें गिर गया। उसके बाद वे मुनि पापसे रहित निर्मल रजोगुणसे रहित अतएव पवित्रात्मा होकर प्रसन्नतापूर्वक (अपने) आश्रममें गये और उन्होंने (ऋषियोंसे) सारी आपबीती कह सुनायी। फिर तो वहाँ आये हुए सभी ऋषियोंने औशनसतीर्थके इस उत्तम माहात्म्यको सुनकर उसका नाम 'कपालमोचन' रख दिया॥ ९—१३॥

वहीं (कपालमोचन तीर्थमें ही) महामुनि विश्वामित्रका बहुत बड़ा तीर्थ है, जहाँ विश्वामित्रने ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया था। उस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको निश्चय रूपसे ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है और वह ब्राह्मण विशुद्धात्मा होकर ब्रह्मके परम पदको प्राप्त करता है। कपालमोचनके बाद पृथूदक नामके तीर्थमें जाय और नियमपूर्वक नियत मात्रामें आहार करे। वहाँ रुषङ्गु नामके ब्रह्मर्षिने सिद्धि पायी थी। सदा गङ्गाद्वारमें स्थित रहते हुए पूर्वजन्मके वृत्तान्तको स्मरण रखनेवाले रुषङ्गुने (अपना) अन्तकाल आया देखकर (अपने) पुत्रोंसे कहा कि यहाँ (मैं) अपना कल्याण नहीं देख रहा हूँ। मुझे पृथूदक

विज्ञाय तस्य तद्भावं रुषङ्गोस्ते तपोधनाः।
तं वै तीर्थं उपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम्॥ १८

तीर्थ) में ले चलो। रुषङ्गुके उस भावको जानकर वे तपोधन (पुत्र) उन तपके धनीको सरस्वतीके तीर्थमें ले गये॥ १४—१८॥

स तैः पुत्रैः समानीतः सरस्वत्यां समाप्लुतः।
स्मृत्वा तीर्थगुणान् सर्वान् प्राहेदमृषिसत्तमः॥ १९
सरस्वत्युत्तरे तीर्थे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम्।
पृथूदके जप्यपरो नूनं चामरतां व्रजेत्॥ २०
तत्रैव ब्रह्मयोन्यस्ति ब्रह्मणा यत्र निर्मिता।
पृथूदकं समाश्रित्य सरस्वत्यास्तटे स्थितः॥ २१
चातुर्वर्ण्यस्य सृष्ट्यर्थमात्मज्ञानपरोऽभवत्।
तस्याभिध्यायतः सृष्टिं ब्रह्मणो व्यक्तजन्मनः॥ २२
मुखतो ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा।
ऊरुभ्यां वैश्यजातीयाः पद्भ्यां शूद्रास्ततोऽभवन्॥ २३

उन पुत्रोंद्वारा लाये गये उन ऋषिश्रेष्ठने सरस्वतीमें स्नान करनेके पश्चात् उस तीर्थके सब गुणोंका स्मरण कर यह कहा था—'सरस्वतीके उत्तरकी ओर स्थित पृथूदक नामके तीर्थमें अपने शरीरका त्याग करनेवाला जपपरायण मनुष्य निश्चय ही देवत्वको प्राप्त होता है।' वहीं ब्रह्माद्वारा निर्मित 'ब्रह्मयोनितीर्थ' है, जहाँ सरस्वतीके किनारे अवस्थित पृथूदकमें स्थित होकर ब्रह्मा चारों वर्णोंकी सृष्टिके लिये आत्मज्ञानमें लीन हुए थे। सृष्टिके विषयमें अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके चिन्तन करनेपर उनके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, दोनों ऊरुओंसे वैश्य और दोनों पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए॥ १९—२३॥

चातुर्वर्ण्यं ततो दृष्ट्वा आश्रमस्थं ततस्ततः।
एवं प्रतिष्ठितं तीर्थं ब्रह्मयोनीति संज्ञितम्॥ २४
तत्र स्नात्वा मुक्तिकामः पुनर्योनिं न पश्यति।
तत्रैव तीर्थं विख्यातमवकीर्णेति नामतः॥ २५
यस्मिंस्तीर्थे बको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रममर्षणम्।
जुहाव वाहनैः सार्धं तत्राबुध्यत् ततो नृपः॥ २६

उसके बाद उन्होंने चारों वर्णोंको विभिन्न आश्रमोंमें स्थित हुआ देखा। इस प्रकार ब्रह्मयोनि नामक तीर्थकी प्रतिष्ठा हुई थी। मुक्तिकी कामना करनेवाला व्यक्ति वहाँ स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं देखता। वहीं अवकीर्ण नामक एक विख्यात तीर्थ भी है, जहाँपर दाल्भ्य (दल्भ या दल्भि गोत्रमें उत्पन्न) बक नामक ऋषिने क्रोधी धृतराष्ट्रको उसके वाहनोंके साथ हवन कर दिया था, तब कहीं राजाको (अपने किये कर्मका) ज्ञान हुआ था॥ २४—२६॥

ऋषय ऊचुः

कथं प्रतिष्ठितं तीर्थमवकीर्णेति नामतः।
धृतराष्ट्रेण राज्ञा च स किमर्थं प्रसादितः॥ २७

ऋषियोंने पूछा—अवकीर्ण नामक तीर्थ कैसे प्रतिष्ठित हुआ एवं राजा धृतराष्ट्रने उन (बक दाल्भ्य मुनि) को क्यों प्रसन्न किया था?॥ २७॥

लोमहर्षण उवाच

ऋषयो नैमिषेया ये दक्षिणार्थं ययुः पुरा।
तत्रैव च बको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रमयाचत॥ २८
तेनापि तत्र निन्दार्थमुक्तं पश्वनृतं तु यत्।
ततः क्रोधेन महता मांसमुत्कृत्य तत्र ह॥ २९
पृथूदके महातीर्थे अवकीर्णेति नामतः।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेस्ततः॥ ३०
हूयमाने तदा राष्ट्रे प्रवृत्ते यज्ञकर्मणि।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं नृपतेर्दुष्कृतेन वै॥ ३१

लोमहर्षणने कहा—प्राचीन कालमें नैमिषारण्य-निवासी जो ऋषि दक्षिणा पानेके लिये (राजा धृतराष्ट्रके यहाँ) गये थे, उनमेंसे दल्भिवंशीय बक ऋषिने धृतराष्ट्रसे (धनकी) याचना की। उन्होंने (धृतराष्ट्रने) भी निन्दापूर्ण ग्राम्य और असत्य बात कही। उसके बाद वे (बक दाल्भ्य) अत्यन्त क्रुद्ध होकर पृथूदकमें स्थित अवकीर्ण नामक तीर्थमें जा करके मांस काट-काटकर धृतराष्ट्रके राष्ट्रके नाम हवन करने लगे। तब यज्ञमें राष्ट्रका हवन प्रारम्भ होनेपर राजाके दुष्कर्मके कारण राष्ट्रका क्षय होने लगा॥ २८—३१॥

ततः स चिन्तयामास ब्राह्मणस्य विचेष्टितम्।
पुरोहितेन संयुक्तो रत्नान्यादाय सर्वशः॥ ३२

प्रसादनार्थं विप्रस्य ह्यवकीर्णं ययौ तदा।
प्रसादितः स राज्ञा च तुष्टः प्रोवाच तं नृपम्॥ ३३

ब्राह्मणा नावमन्तव्याः पुरुषेण विजानता।
अवज्ञातो ब्राह्मणस्तु हन्यात् त्रिपुरुषं कुलम्॥ ३४

एवमुक्त्वा स नृपतिं राज्येन यशसा पुनः।
उत्थापयामास ततस्तस्य राज्ञो हिते स्थितः॥ ३५

तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नाति श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
स प्राप्नोति नरो नित्यं मनसा चिन्तितं फलम्॥ ३६

तत्र तीर्थं सुविख्यातं यायातं नाम नामतः।
यस्येह यजमानस्य मधु सुस्राव वै नदी॥ ३७

तस्मिन् स्नातो नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
फलं प्राप्नोति यज्ञस्य अश्वमेधस्य मानवः॥ ३८

मधुस्रवं च तत्रैव तीर्थं पुण्यतमं द्विजाः।
तस्मिन् स्नात्वा नरो भक्त्या मधुना तर्पयेत् पितॄन्॥ ३९

तत्रापि सुमहत्तीर्थं वसिष्ठोद्वाहसंज्ञितम्।
तत्र स्नातो भक्तियुक्तो वासिष्ठं लोकमाप्नुयात्॥ ४०

(राष्ट्रको क्षीण होते देख) उसने विचार किया और वह इसे ब्राह्मणका विकर्म जानकर (उस ब्राह्मणको) प्रसन्न करनेके लिये समस्त रत्नोंको लेकर पुरोहितके साथ अवकीर्ण तीर्थमें गया (और उस) राजाने उन्हें प्रसन्न कर लिया। प्रसन्न होकर उन्होंने राजासे कहा — (राजन्!) विद्वान् मनुष्यको ब्राह्मणका अपमान नहीं करना चाहिये। अपमानित हुआ ब्राह्मण मनुष्यके कुलके तीन पुरुषों (पीढ़ियों)-का विनाश कर देता है। ऐसा कहकर उन्होंने पुनः राजाको राज्य एवं यशके साथ सम्पन्न कर दिया और वे उस राजाके हितकारी हो गये॥ ३२—३५॥

उस (अवकीर्ण) तीर्थमें जो जितेन्द्रिय मनुष्य श्रद्धापूर्वक स्नान करता है वह नित्य मनोऽभिलषित फल प्राप्त करता है। वहीं 'यायात' (ययातिका तीर्थ) नामसे सुविख्यात तीर्थ है, जहाँ यज्ञ करनेवालेके लिये नदीने मधु बहाया था। उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है एवं उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। द्विजो! वहीं 'मधुस्रव' नामक पवित्र तीर्थ है। उसमें मनुष्यको भक्तिपूर्वक स्नान कर मधुसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये। वहींपर 'वसिष्ठोद्वाह' नामक सुन्दर महान् तीर्थ है। वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेवाला व्यक्ति महर्षि वसिष्ठके लोकको प्राप्त करता है॥ ३६—४०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३९॥

वसिष्ठापवाह नामक तीर्थका उत्पत्ति-प्रसङ्ग

ऋषय ऊचुः

वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ कथं वै सम्बभूव ह।
किमर्थं सा सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत्॥ १

लोमहर्षण उवाच

विश्वामित्रस्य राजर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः।
भृशं वैरं बभूवेह तपःस्पर्द्धाकृते महत्॥ २

ऋषियोंने कहा (पूछा)— महाराज! वह वसिष्ठापवाह कैसे उत्पन्न हुआ? उस श्रेष्ठ सरिताने उन ऋषिको अपने प्रवाहमें क्यों बहा दिया था?॥ १॥

लोमहर्षण बोले— (ऋषियो!) राजर्षि विश्वामित्र एवं महात्मा वसिष्ठमें तपस्याके विषयमें परस्पर चुनौती होनेके कारण बड़ी भारी शत्रुता हो गयी।

आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थे बभूव ह।
तस्य पश्चिमदिग्भागे विश्वामित्रस्य धीमतः॥ ३
यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम्।
स्थापयामास देवेशो लिङ्गाकारां सरस्वतीम्॥ ४
वसिष्ठस्तत्र तपसा घोररूपेण संस्थितः।
तस्येह तपसा हीनो विश्वामित्रो बभूव ह॥ ५
सरस्वतीं समाहूय इदं वचनमब्रवीत्।
वसिष्ठं मुनिशार्दूलं स्वेन वेगेन आनय॥ ६
इहाहं तं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यथिता सा महानदी॥ ७
तथा तां व्यथितां दृष्ट्वा वेपमानां महानदीम्।
विश्वामित्रोऽब्रवीत् क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय॥ ८
ततो गत्वा सरिच्छ्रेष्ठा वसिष्ठं मुनिसत्तमम्।
कथयामास रुदती विश्वामित्रस्य तद् वचः॥ ९
तपःक्रियाविशीर्णां च भृशं शोकसमन्विताम्।
उवाच स सरिच्छ्रेष्ठां विश्वामित्राय मां वह॥ १०
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित्।
चालयामास तं स्थानात् प्रवाहेणाम्भसस्तदा॥ ११
स च कूलापहारेण मित्रावरुणयोः सुतः।
उह्यमानश्च तुष्टाव तदा देवीं सरस्वतीम्॥ १२
पितामहस्य सरसः प्रवृत्ताऽसि सरस्वति।
व्याप्तं त्वया जगत् सर्वं तवैवाम्भोभिरुत्तमैः॥ १३
त्वमेवाकाशगा देवी मेघेषु सृजसे पयः।
सर्वास्त्वापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहे॥ १४
पुष्टिर्धृतिस्तथा कीर्तिः सिद्धिः कान्तिः क्षमा तथा।
स्वधा स्वाहा तथा वाणी तवायत्तमिदं जगत्॥ १५
त्वमेव सर्वभूतेषु वाणीरूपेण संस्थिता।
एवं सरस्वती तेन स्तुता भगवती सदा॥ १६
सुखेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति।
न्यवेदयत्तदा खिन्ना विश्वामित्राय तं मुनिम्॥ १७

वसिष्ठका आश्रम स्थाणुतीर्थमें था और उसके पश्चिम दिशामें बुद्धिमान् विश्वामित्र महर्षिका आश्रम था; जहाँ देवाधिदेव भगवान् शिवने यज्ञ करनेके बाद सरस्वतीकी पूजा कर मूर्तिके रूपमें सरस्वतीकी स्थापना की थी। वसिष्ठजी वहाँ घोर तपस्यामें संलग्न थे। उनकी तपस्यासे विश्वामित्र (प्रभावतः) हीन-से होने लगे॥ २—५॥

(एक बार) विश्वामित्रने सरस्वतीको बुलाकर यह वचन कहा—सरस्वति! तुम मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठको अपने वेगसे यहाँ लाओ। मैं उन द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठको यहाँ मारूँगा, इसमें संदेहकी बात नहीं है। इस (अवाञ्छनीय बात)-को सुनकर वह महानदी दुःखित हो गयी। (पर) विश्वामित्रने उस प्रकार दुःखित एवं काँपती हुई उस महानदीको देखकर क्रोधमें भरकर कहा कि वसिष्ठको शीघ्र लाओ। उसके बाद उस श्रेष्ठ नदीने मुनिश्रेष्ठके पास जाकर उनसे रोते हुए विश्वामित्रकी उस बातको कहा॥ ६—९॥

उन वसिष्ठजीने तपश्चर्यासे दुर्बल एवं अतिशय शोक-समन्वित उस श्रेष्ठ सरिता (सरस्वती)-से कहा—(तुम) विश्वामित्रके पास मुझे बहा ले चलो। उन दयालुके उस वचनको सुनकर उस सरस्वती सरिताने जलके (तेज) प्रवाहद्वारा उन्हें उस स्थानसे बहाना प्रारम्भ किया। किनारेसे लो जाये जानेके कारण बहते हुए मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठ-ऋषि प्रसन्न होकर देवी सरस्वतीकी स्तुति करने लगे—सरस्वति! आप ब्रह्माके सरोवरसे निकली हैं। आपने अपने उत्तम जलसे समस्त जगत्को व्याप्त कर दिया है॥ १०—१३॥

'आप ही आकाशगामिनी देवी हैं और मेघोंमें जलको उत्पन्न करती हैं। आप ही सभी जलोंके रूपमें वर्तमान हैं। आपकी ही शक्तिसे हम लोग अध्ययन करते हैं। आप ही पुष्टि, धृति, कीर्ति, सिद्धि, कान्ति, क्षमा, स्वधा, स्वाहा तथा सरस्वती हैं। यह पूरा विश्व आपके ही अधीन है। आप ही समस्त प्राणियोंमें वाणीरूपसे स्थित हैं।' वसिष्ठजीने भगवती सरस्वतीकी इसी प्रकार स्तुति की और सरस्वती नदीने उन विप्रदेवको विश्वामित्रके आश्रममें सुखपूर्वक पहुँचा दिया और खिन्न होकर उन मुनिको विश्वामित्रके लिये निवेदित कर दिया॥ १४—१७॥

तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः।
अथान्विषत् प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा॥ १८

तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्महत्याभयान्नदी।
अपोवाह वसिष्ठं तं मध्ये चैवाम्भसस्तदा।
उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा च गाधिजम्॥ १९

ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम्।
अब्रवीत् क्रोधरक्ताक्षो विश्वामित्रो महातपाः॥ २०

यस्मान्मां सरितां श्रेष्ठे वञ्चयित्वा विनिर्गता।
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसंयुता॥ २१

ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता।
अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा॥ २२

अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा।
सरस्वतीं तदा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः॥ २३

तस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये शोणितं समुपाव्हत्।
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसाश्च समागताः॥ २४

ततस्ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखमासते।
तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः।
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा॥ २५

कस्यचित्त्वथ कालस्य ऋषयः सतपोधनाः।
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां तपोधनाः॥ २६

तां दृष्ट्वा राक्षसैर्घोरैः पीयमानां महानदीम्।
परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे॥ २७

ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन्॥ २८

किं कारणं सरिच्छ्रेष्ठे शोणितेन ह्रदो ह्ययम्।
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा वेत्स्यामहे वयम्॥ २९

ततः सा सर्वमाचष्ट विश्वामित्रविचेष्टितम्।
ततस्ते मुनयः प्रीताः सरस्वत्यां समानयन्।
अरुणां पुण्यतोयौघां सर्वदुष्कृतनाशनीम्॥ ३०

उसके बाद सरस्वतीद्वारा बहाकर लाये गये वसिष्ठको देखकर विश्वामित्र क्रोधसे भर गये और वसिष्ठका अन्त करनेवाला शस्त्र ढूँढ़ने लगे। उन्हें क्रोधसे भरा हुआ देखकर ब्रह्महत्याके भयसे डरती हुई वह सरस्वती नदी गाधिपुत्र विश्वामित्रको वञ्चित कर दोनोंकी बातोंका पालन करती हुई उन वसिष्ठको जलमें (पुनः) बहा ले गयी। उसके बाद ऋषिप्रवर वसिष्ठको अपवाहित होते देखकर महातपस्वी विश्वामित्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। फिर विश्वामित्रने कहा—ओ श्रेष्ठ नदी! यतः तुम मुझे वञ्चितकर चली गयी हो, कल्याणि! अतः श्रेष्ठ राक्षसोंसे संयुक्त होकर तुम शोणितका वहन करो—तुम्हारा जल रक्तसे युक्त हो जाय॥ १८—२१॥

उसके बाद बुद्धिमान् विश्वामित्रसे इस प्रकार शाप प्राप्तकर सरस्वतीने एक वर्षतक रक्तसे मिले हुए जलको बहाया। उसके पश्चात् सरस्वती नदीको रक्तसे मिश्रित जलवाली देखकर ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ अत्यन्त दुःखित हो गयीं। (यतः) उस पवित्र श्रेष्ठ तीर्थमें रुधिर ही बहने लगा। अतः वहाँ भूत, पिशाच, राक्षस एकत्र होने लगे। वे सभी रक्तका पान करते हुए वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। वे उससे अत्यन्त तृप्त, सुखी एवं निश्चिन्त होकर इस प्रकार नाचने एवं हँसने लगे, मानो उन्होंने स्वर्गको जीत लिया हो॥ २२—२५॥

कुछ समय बीतनेपर तपस्याके धनी ऋषिलोग तीर्थयात्रा करते-करते सरस्वतीके तटपर पहुँचे। (वहाँ) भयानक राक्षसोंके द्वारा पीती जाती हुई महानदी सरस्वतीको देखकर वे उसकी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न करने लगे। और महान् व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाले उन महाभागोंने श्रेष्ठ नदीको (पास) बुलाकर उससे यह वचन फिर कहा—श्रेष्ठ सरिते! हम सब आपसे यह जानना चाहते हैं कि यह जलाशय रक्तसे भरकर ऐसा क्षुब्ध कैसे हुआ है?॥ २६—२९॥

तब उसने विश्वामित्रके समस्त विकर्मोंका (उनके सामने ही) वर्णन किया। उसके पश्चात् प्रसन्न हुए मुनिजन सरस्वती तथा समस्त पापोंका विनाश करनेवाली अरुणा नदीको ले आये। (जिससे सरस्वती ह्रदका

दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या राक्षसा दुःखिता भृशम्।
ऊचुस्तान् वै मुनीन् सर्वान् दैन्ययुक्ताः पुनः पुनः॥ ३१

वयं हि क्षुधिताः सर्वे धर्महीनाश्च शाश्वताः।
न च नः कामकारोऽयं यद् वयं पापकारिणः॥ ३२

युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा।
पक्षोऽयं वर्धतेऽस्माकं यतः स्मो ब्रह्मराक्षसाः॥ ३३

एवं वैश्याश्च शूद्राश्च क्षत्रियाश्च विकर्मभिः।
ये ब्राह्मणान् प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः॥ ३४

योषितां चैव पापानां योनिदोषेण वर्द्धते।
इयं संततिरस्माकं गतिरेषा सनातनी॥ ३५

शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे।
तेषां ते मुनयः श्रुत्वा कृपाशीलाः पुनश्च ते॥ ३६

ऊचुः परस्परं सर्वे तप्यमानाश्च ते द्विजाः।
क्षुतकीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाशितं भवेत्॥ ३७

केशावपन्नमाधूतं मारुतश्वासदूषितम्।
एभिः संसृष्टमन्नं च भागं वै रक्षसां भवेत्॥ ३८

तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वान् अन्नान्येतानि वर्जयेत्।
राक्षसानामसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्तेऽन्नमीदृशम्॥ ३९

शोधयित्वा तु तत्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषां संगमं तत्र कल्पयन्॥ ४०

अरुणायाः सरस्वत्याः संगमे लोकविश्रुते।
त्रिरात्रोपोषितः स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥ ४१

प्राप्ते कलियुगे घोरे अधर्मे प्रत्युपस्थिते।
अरुणासंगमे स्नात्वा मुक्तिमाप्नोति मानवः॥ ४२

ततस्ते राक्षसाः सर्वे स्नाताः पापविवर्जिताः।
दिव्यमाल्याम्बरधराः स्वर्गस्थितिसमन्विताः॥ ४३

शोधित पवित्र जल हो गया) (पर) सरस्वतीके जलको (इस प्रकार शुद्ध हुआ) देखकर राक्षस बहुत दुःखित हो गये। वे दीनतापूर्वक उन सभी मुनियोंसे बार-बार कहने लगे कि हम सभी सदा भूखे एवं धर्मसे रहित रहते हैं। हम अपनी इच्छासे पापकर्म करनेवाले पापी नहीं बने हुए हैं, अपितु आप लोगोंकी अकृपा एवं अशोभन कर्मोंसे ही हमारा पक्ष बढ़ता रहता है; क्योंकि हम सभी ब्रह्मराक्षस हैं॥ ३०—३३॥

इसी प्रकार जो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं वे (ऐसे ही) विकर्म करनेके कारण राक्षस हो जाते हैं। पापिनी स्त्रियोंके योनिदोषसे हमारी यह संतति बढ़ती रहती है। यह हमारी प्राचीन गति है। आप लोग सभी लोकोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं। (लोमहर्षणजी कहते हैं—) द्विजो! वे कृपालु मुनि उन सदाकी रीति ब्रह्मराक्षसोंके इन वचनोंको सुनकर बहुत दुःखी हुए और परस्पर परामर्शकर उनसे बोले—(ब्रह्मराक्षसो!) छींक तथा कीटके संसर्गसे दूषित, उच्छिष्ट भोजन, केशयुक्त, तिरस्कृत एवं श्वासवायुसे दूषित अन्न तुम राक्षसोंका भाग होगा॥ ३४—३८॥

(पुनः लोमहर्षणजी बोले—) ऋषियो! इसको जानकर विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इस प्रकारके अन्नोंको त्याग दे। इस प्रकार अन्न खानेवाला व्यक्ति राक्षसोंका भाग खाता है। उन तपोधन ऋषियोंने उस तीर्थको शुद्धकर उन राक्षसोंकी मुक्तिके लिये वहाँ एक सङ्गमकी रचना की। [उसका फल इस प्रकार है—] लोक-प्रसिद्ध अरुणा और सरस्वतीके सङ्गममें तीन दिनोंतक व्रतपूर्वक स्नान करनेवाला (व्यक्ति) सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। (आगे भी) घोर कलियुग आनेपर तथा अधर्मका अधिक प्रसार हो जानेपर मनुष्य अरुणाके सङ्गममें स्नान करके मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। इसको सुननेके बाद उन सभी राक्षसोंने उसमें स्नान किया और वे निष्पाप हो गये तथा दिव्य माला और वस्त्र धारणकर स्वर्गमें विराजने लगे॥ ३९—४३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके तीर्थों— शतसाहस्त्रिक, शतिक, रेणुका, ऋणमोचन, ओजस, संनिहति, प्राची सरस्वती, पञ्चवट, कुरुतीर्थ, अनरकतीर्थ, काम्यकवन आदिका वर्णन

लोमहर्षण उवाच

समुद्रास्तत्र चत्वारो दर्विणा आहृताः पुरा।
प्रत्येकं तु नरः स्नातो गोसहस्रफलं लभेत्॥ १

यत्किंचित् क्रियते तस्मिंस्तपस्तीर्थे द्विजोत्तमाः।
परिपूर्णं हि तत्सर्वमपि दुष्कृतकर्मणः॥ २

शतसाहस्त्रिकं तीर्थं तथैव शतिकं द्विजाः।
उभयोर्हि नरः स्नातो गोसहस्रफलं लभेत्॥ ३

सोमतीर्थं च तत्रापि सरस्वत्यास्तटे स्थितम्।
यस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो राजसूयफलं लभेत्॥ ४

रेणुकाश्रममासाद्य श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
मातृभक्त्या च यत्पुण्यं तत्फलं प्राप्नुयान्नरः॥ ५

ऋणमोचनमासाद्य तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम्।
ऋणैर्मुक्तो भवेन्नित्यं देवर्षिपितृसम्भवैः।
कुमारस्याभिषेकं च ओजसं नाम विश्रुतम्॥ ६

तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो यशसा च समन्वितः।
कुमारपुरमाप्नोति कृत्वा श्राद्धं तु मानवः॥ ७

चैत्रषष्ठ्यां सिते पक्षे यस्तु श्राद्धं करिष्यति।
गयाश्राद्धे च यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः॥ ८

संनिहत्यां यथा श्राद्धं राहुग्रस्ते दिवाकरे।
तथा श्राद्धं तत्र कृतं नात्र कार्या विचारणा॥ ९

ओजसे ह्यक्षयं श्राद्धं वायुना कथितं पुरा।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं तत्र समाचरेत्॥ १०

यस्तु स्नानं श्रद्दधानश्चैत्रषष्ठ्यां करिष्यति।
अक्षय्यमुदकं तस्य पितॄणामुपजायते॥ ११

तत्र पञ्चवटं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
महादेवः स्थितो यत्र योगमूर्तिधरः स्वयम्॥ १२

लोमहर्षणने कहा— प्राचीन कालकी बात है महर्षि दर्वि वहाँ चार समुद्रोंको ले आये थे। उनमेंसे प्रत्येक समुद्रमें स्नान करनेसे मनुष्योंको हजार गोदान करनेका फल प्राप्त होता है। द्विजोत्तमो! उस तीर्थमें जो तपस्या की जाती है, वह पापीद्वारा की गयी होनेपर भी सिद्ध हो जाती है। द्विजो! वहाँ शतसाहस्त्रिक एवं शतिक नामके दो तीर्थ हैं। उन दोनों ही तीर्थोंमें स्नान करनेवाला मनुष्य हजार गौ-दान करनेका फल प्राप्त करता है। वहीं सरस्वतीके तटपर सोमतीर्थ भी स्थित है, जिसमें स्नान करनेसे पुरुष राजसूययज्ञका फल प्राप्त करता है॥ १—४॥

माताकी सेवा करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्य-फलको इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेवाला श्रद्धालु मनुष्य रेणुकातीर्थमें जाकर प्राप्त कर लेता है और ब्रह्माद्वारा सेवित ऋणमोचन नामके तीर्थमें जाकर देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणसे छूट जाता है। कुमार (कार्तिकेय)-का अभिषेकस्थल ओजसनामसे विख्यात है। उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है और वहाँ श्राद्ध करनेसे उसे कार्तिकेयके लोककी प्राप्ति होती है। चैत्रमासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें जो मनुष्य वहाँ श्राद्ध करेगा, वह गयामें श्राद्ध करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्यको प्राप्त करता है॥ ५—८॥

राहुद्वारा सूर्यके ग्रस्त हो जानेपर (सूर्यग्रहण लगनेपर) सन्निहति तीर्थमें किये गये श्राद्धके समान वहाँका श्राद्ध पुण्यप्रद होता है; इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। पूर्वसमयमें वायुने कहा था कि ओजसतीर्थमें किये गये श्राद्धका क्षय नहीं होता है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक वहाँ श्राद्ध करना चाहिये। चैत्र मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिके दिन जो उसमें श्रद्धापूर्वक स्नान करेगा, उसके पितरोंको अक्षय (कभी भी क्षय न होनेवाले) जलकी प्राप्ति होगी। तीनों लोकोंमें विख्यात एक 'पञ्चवट' नामका तीर्थ है, जहाँ स्वयं भगवान् महादेव योगसाधना करनेकी मुद्रामें विराजमान हैं॥ ९—१२॥

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च देवदेवं महेश्वरम्।
गाणपत्यमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते॥ १३

कुरुतीर्थं च विख्यातं कुरुणा यत्र वै तपः।
तप्तं सुघोरं क्षेत्रस्य कर्षणार्थं द्विजोत्तमाः॥ १४

तस्य घोरेण तपसा तुष्ट इन्द्रोऽब्रवीद् वचः।
राजर्षे परितुष्टोऽस्मि तपसाऽनेन सुव्रत॥ १५

यज्ञं ये च कुरुक्षेत्रे करिष्यन्ति शतक्रतोः।
ते गमिष्यन्ति सुकृताँल्लोकान् पापविवर्जितान्॥ १६

अवहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं प्रभुः।
आगम्यागम्य चैवेनं भूयो भूयो वहस्य च॥ १७

शतक्रतुरनिर्विण्णः पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह।
यदा तु तपसोग्रेण चकर्ष देहमात्मनः।
ततः शक्रोऽब्रवीत् प्रीत्या ब्रूहि यत्ते चिकीर्षितम्॥ १८

कुरुरुवाच

ये श्रद्दधानास्तीर्थेऽस्मिन् मानवा निवसन्ति ह।
ते प्राप्नुवन्तु सदनं ब्रह्मणः परमात्मनः॥ १९

अन्यत्र कृतपापा ये पञ्चपातकदूषिताः।
अस्मिंस्तीर्थे नराः स्नात्वा मुक्ता यान्तु परां गतिम्॥ २०

कुरुक्षेत्रे पुण्यतमं कुरुतीर्थं द्विजोत्तमाः।
तं दृष्ट्वा पापमुक्तस्तु परं पदमवाप्नुयात्॥ २१

कुरुतीर्थे नरः स्नातो मुक्तो भवति किल्बिषैः।
कुरुणा समनुज्ञातः प्राप्नोति परमं पदम्॥ २२

स्वर्गद्वारं ततो गच्छेच्छिवद्वारे व्यवस्थितम्।
तत्र स्नात्वा शिवद्वारे प्राप्नोति परमं पदम्॥ २३

ततो गच्छेदनरकं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
यत्र पूर्वे स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे तु महेश्वरः॥ २४

रुद्रपत्नी पश्चिमतः पद्मनाभोत्तरे स्थितः।
मध्ये अनरकं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्॥ २५

उस (पञ्चवट) स्थानपर स्नान करके देवाधिदेव महादेवकी पूजा करनेवाला मनुष्य गणपतिका पद और देवताओंके साथ आनन्द प्राप्त करता हुआ प्रसन्न रहता है। श्रेष्ठ द्विजो! 'कुरुतीर्थ' विख्यात तीर्थ है, जिसमें कुरुने कीर्तिकी प्राप्तिके लिये धर्मकी खेती करनेके लिये तपस्या की थी। उनकी घोर तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्रने कहा—सुन्दर व्रतोंके करनेवाले राजर्षि! तुम्हारी इस तपस्यासे मैं संतुष्ट हूँ। (सुनो) इस कुरुक्षेत्रमें जो लोग इन्द्रका यज्ञ करेंगे, वे लोग पापरहित हो जायँगे और पवित्र लोकोंको प्राप्त होंगे। इतना कहकर इन्द्रदेव मुस्कराकर स्वर्ग चले गये। बिना खिन्न हुए इन्द्र बारंबार आये और उपहासपूर्वक उनसे (उनकी योजनाके सम्बन्धमें कुछ) पूछ-पूछकर चले गये। कुरुने जब उग्र तपस्याद्वारा अपनी देहका कर्षण किया तो इन्द्रने प्रेमपूर्वक उनसे कहा—'कुरु! तुम्हें जो कुछ करनेकी इच्छा हो उसे कहो'॥ १३—१८॥

कुरुने कहा—इन्द्रदेव! जो श्रद्धालु मानव इस तीर्थमें निवास करते हैं, वे परमात्मस्वरूप परब्रह्मके लोकको प्राप्त करते हैं। इस स्थानसे अन्यत्र पाप करनेवालों एवं पञ्चपातकोंसे दूषित मनुष्य भी इस तीर्थमें स्नान करनेसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त करता है। (लोमहर्षणने कहा—) श्रेष्ठ ब्राह्मणो! कुरुक्षेत्रमें कुरुतीर्थ सर्वाधिक पवित्र है। उसका दर्शन कर पापात्मा मनुष्य (भी) मोक्ष प्राप्त कर लेता है तथा कुरुतीर्थमें स्नानकर पापोंसे छूट जाता है एवं कुरुकी आज्ञासे परमपद (मोक्ष)-को प्राप्त करता है॥ १९—२२॥

फिर (कुरुतीर्थमें स्नान करनेके बाद) शिवद्वारमें स्थित स्वर्गद्वारको जाय (और स्नान करे), क्योंकि वहाँ (शिवद्वारमें) स्नान करनेसे मनुष्य परमपदको प्राप्त करता है। शिवद्वार जानेके पश्चात् तीनों लोकोंमें विख्यात अनरक नामके तीर्थमें जाय। उस अनरकके पूर्वमें ब्रह्मा, दक्षिणमें महेश्वर, पश्चिममें रुद्रपत्नी एवं उत्तरमें पद्मनाभ और इन सबके मध्यमें अनरक नामका तीर्थ स्थित है; यह तीनों लोकोंके लिये भी दुर्लभ है—॥ २३—२५॥

यस्मिन् स्नातस्तु मुच्येत पातकैरुपपातकैः ।
वैशाखे च यदा षष्ठी मङ्गलस्य दिनं भवेत्॥ २६

तदा स्नानं तत्र कृत्वा मुक्तो भवति पातकैः ।
यः प्रयच्छेत करकांश्चतुरो भक्ष्यसंयुतान्॥ २७

कलशं च तथा दद्यादपूपैः परिशोभितम्
देवताः प्रीणयेत् पूर्वं करकैरन्नसंयुतैः ॥ २८

ततस्तु कलशं दद्यात् सर्वपातकनाशनम्।
अनेनैव विधानेन यस्तु स्नानं समाचरेत्॥ २९

स मुक्तः कलुषैः सर्वैः प्रयाति परमं पदम्।
अन्यत्रापि यदा षष्ठी मङ्गलेन भविष्यति॥ ३०

तत्रापि मुक्तिफलदा क्रिया तस्मिन् भविष्यति।
तीर्थं च सर्वतीर्थानां यस्मिन् स्नातो द्विजोत्तमाः ॥ ३१

सर्वदेवैरनुज्ञातः परं पदमवाप्नुयात्।
काम्यकं च वनं पुण्यं सर्वपातकनाशनम्॥ ३२

यस्मिन् प्रविष्टमात्रस्तु मुक्तो भवति किल्बिषैः ।
यमाश्रित्य वनं पुण्यं सविता प्रकटः स्थितः॥ ३३

पूषा नाम द्विजश्रेष्ठा दर्शनान्मुक्तिमाप्नुयात्।
आदित्यस्य दिने प्राप्ते तस्मिन् स्नातस्तु मानवः ।
विशुद्धदेहो भवति मनसा चिन्तितं लभेत्॥ ३४

जिस (अनरकतीर्थ) में स्नान करनेवाला मनुष्य छोटे-बड़े सभी पापोंसे छूट जाता है। जब वैशाखमासकी षष्ठी तिथिको मङ्गल दिन हो तब वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाता है। (उस दिन) खाद्य पदार्थसे संयुक्त चार करक (करवे या कमण्डलु) एवं मालपुओं आदिसे सुशोभित कलशका दान करे। पहले अन्नसे युक्त करवोंसे देवताकी पूजा करे, फिर सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाले कलशका दान करे। जो मानव इस विधानसे स्नान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जायगा और परमपदको प्राप्त करेगा। इसके अतिरिक्त (वैशाखके सिवा) अन्य समयमें भी मङ्गलके दिन षष्ठी तिथि होनेपर उस तीर्थमें की हुई पूर्वोक्त क्रिया मुक्ति देनेवाली होती॥ २६—३०॥

श्रेष्ठ द्विजो! यहाँ समस्त पापोंका विनाश करनेवाला तीर्थ-शिरोमणि काम्यकवन नामका एक तीर्थ है। जो मनुष्य उसमें स्नान करता है, वह सभी देवोंकी अनुमतिसे परमपदको प्राप्त करता है। इस वनमें प्रवेश करनेसे ही मनुष्य अपने समस्त पापोंसे छूट जाता है। इस पवित्र वनमें पूषा नामके सूर्यभगवान् प्रत्यक्ष रूपसे स्थित हैं। द्विजश्रेष्ठो! उन सूर्यभगवान्‌के दर्शनसे मुक्ति प्राप्त होती है। रविवारको उस तीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य विशुद्ध देह हो जाता है और अपने मनोरथको प्राप्त करता है॥ ३१—३४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४१॥

काम्यकवन-तीर्थका प्रसङ्ग, सरस्वती नदीकी महिमा और तत्सम्बद्ध तीर्थोंका वर्णन

ऋषय ऊचुः

काम्यकस्य तु पूर्वेण कुञ्जं देवैर्निषेवितम्।
तस्य तीर्थस्य सम्भूतिं विस्तरेण ब्रवीहि नः॥ १

लोमहर्षण उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।
ऋषीणां चरितं श्रुत्वा मुक्तो भवति किल्बिषैः ॥ २

ऋषियोंने पूछा—(लोमहर्षणजी!) काम्यकवनके पूर्वमें स्थित कुञ्जका आश्रयण देवताओंने किया था, पर उस काम्यकवन-तीर्थकी उत्पत्ति कैसे हुई? इसे आप हमें विस्तारसे बतलाइये॥ १॥

लोमहर्षणजी बोले—(उत्तर दिया)— मुनियो! आप सभी लोग इस तीर्थके श्रेष्ठ माहात्म्यको सुनें। ऋषियोंके चरित्रको सुननेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है।

नैमिषेयाश्च ऋषयः कुरुक्षेत्रं समागताः।
सरस्वत्यास्तु स्नानार्थं प्रवेशं ते न लेभिरे॥ ३

ततस्ते कल्पयामासुस्तीर्थं यज्ञोपवीतिकम्।
शेषास्तु मुनयस्तत्र न प्रवेशं हि लेभिरे॥ ४

रन्तुकस्याश्रमाद्यावद् यावत्तीर्थं सचक्रकम्।
ब्राह्मणैः परिपूर्णं तु दृष्ट्वा देवी सरस्वती॥ ५

हितार्थं सर्वविप्राणां कृत्वा कुञ्जानि सा नदी।
प्रयाता पश्चिमं मार्गं सर्वभूतहिते स्थिता॥ ६
पूर्वप्रवाहे यः स्नाति गङ्गास्नानफलं लभेत्।
प्रवाहे दक्षिणे तस्या नर्मदा सरितां वरा॥ ७

पश्चिमे तु दिशाभागे यमुना संश्रिता नदी।
यदा उत्तरतो याति सिन्धुर्भवति सा नदी॥ ८

एवं दिशाप्रवाहेण याति पुण्या सरस्वती।
तस्यां स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः॥ ९

ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठा मदनस्य महात्मनः।
तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं विहारं नाम नामतः॥ १०
यत्र देवाः समागम्य शिवदर्शनकाङ्क्षिणः।
समागता न चापश्यन् देवं देव्या समन्वितम्॥ ११
ते स्तुवन्तो महादेवं नन्दिनं गणनायकम्।
ततः प्रसन्नो नन्दीशः कथयामास चेष्टितम्॥ १२
भवस्य उमया सार्धं विहारे क्रीडितं महत्।
तच्छ्रुत्वा देवतास्तत्र पत्नीराहूय क्रीडिताः॥ १३
तेषां क्रीडाविनोदेन तुष्टः प्रोवाच शंकरः।
योऽस्मिंस्तीर्थे नरः स्नाति विहारे श्रद्धयान्वितः॥ १४
धनधान्यप्रियैर्युक्तो भवते नात्र संशयः।
दुर्गातीर्थं ततो गच्छेद् दुर्गया सेवितं महत्॥ १५
यत्र स्नात्वा पितॄन् पूज्य न दुर्गतिमवाप्नुयात्।
तत्रापि च सरस्वत्याः कूपं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ १६

(एक बारकी बात है) नैमिषारण्यके निवासी ऋषि सरस्वती नदीमें स्नान करनेके लिये कुरुक्षेत्र आये, परंतु वे सरस्वतीमें स्नान करनेके लिये प्रवेश न पा सके। तब उन्होंने यज्ञोपवीतिक नामके एक तीर्थकी कल्पना कर ली। (पर फिर भी) शेष मुनिलोग उसमें भी प्रवेश न पा सके। सरस्वतीने देखा कि रन्तुक आश्रमसे सचक्रकतक जितने भी तीर्थस्थल हैं, वे सब-के-सब ब्राह्मणोंसे भर गये हैं। इसलिये सभी ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये उस सरस्वती नदीने कुञ्ज बना दिया और सभी प्राणियोंकी भलाईमें तत्पर होकर वह पश्चिम मार्गको (पश्चिमवाहिनी बनकर) चल पड़ी॥ ३—६॥

जो मनुष्य सरस्वतीके पूर्वी प्रवाहमें स्नान करता है, उसे गङ्गामें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। इसके दक्षिणी प्रवाहमें सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा एवं पश्चिम दिशाकी ओर यमुना नदी संश्रित है। किंतु जब वह उत्तर दिशाकी ओर बहने लगती है तो वह सिन्धु हो जाती है। इस प्रकार विभिन्न दिशाओंमें वह पवित्र सरस्वती नदी (भिन्न-भिन्न रूपोंमें) प्रवाहित होती है। उस सरस्वती नदीमें स्नान करनेवाला मनुष्य मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर लेता है। द्विजश्रेष्ठो! सरस्वती नदीमें स्नान करनेके बाद तीर्थसेवीको तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध महात्मा मदनके 'विहार' नामक तीर्थमें जाना चाहिये॥ ७—१०॥

जहाँपर भगवान् शिवके दर्शनाभिलाषी देवता आये, पर वे उमासहित शिवका दर्शन न कर पाये। वे लोग गणनायक महादेव नन्दीकी स्तुति करने लगे। इससे नन्दीश्वर प्रसन्न हो गये और (उन्होंने) उमाके साथ की जा रही शिवकी महती विहार-क्रीडाका वर्णन किया। यह सुनकर देवताओंने भी अपनी पत्नियोंको बुलाया और उनके साथ (उन लोगोंने भी) क्रीडा की। उनके क्रीडा-विनोदसे शंकर प्रसन्न हो गये और बोले—इस विहार-तीर्थमें जो श्रद्धाके साथ स्नान करेगा, वह निःसंदेह धन-धान्य एवं प्रिय सम्बन्धियोंसे सम्पन्न होगा। उमा-शिवके विहार-स्थलकी यात्राके बाद दुर्गासे प्रतिष्ठित उस महान् दुर्गातीर्थमें जाना चाहिये॥ ११—१५॥

जहाँ स्नानकर पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्यको दुर्गतिकी प्राप्ति नहीं होती। उसी स्थानपर तीनों लोकोंमें

दर्शनान्मुक्तिमाप्नोति सर्वपातकवर्जितः।
यस्तत्र तर्पयेद् देवान् पितॄंश्च श्रद्धयान्वितः॥ १७

अक्षय्यं लभते सर्वं पितृतीर्थं विशिष्यते।
मातृहा पितृहा यश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः॥ १८

स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति यत्र प्राची सरस्वती।
देवमार्गप्रविष्टा च देवमार्गेण निःसृता॥ १९

प्राची सरस्वती पुण्या अपि दुष्कृतकर्मणाम्।
त्रिरात्रं ये करिष्यन्ति प्राचीं प्राप्य सरस्वतीम्॥ २०

न तेषां दुष्कृतं किंचिद् देहमाश्रित्य तिष्ठति।
नरनारायणौ देवौ ब्रह्मा स्थाणुस्तथा रविः॥ २१

प्राचीं दिशं निषेवन्ते सदा देवाः सवासवाः।
ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राचीमाश्रित्य मानवाः॥ २२

तेषां न दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च।
तस्मात् प्राची सदा सेव्या पञ्चम्यां च विशेषतः॥ २३

पञ्चम्यां सेवमानस्तु लक्ष्मीवाञ्जायते नरः।
तत्र तीर्थमौशनसं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्॥ २४

उशना यत्र संसिद्ध आराध्य परमेश्वरम्।
ग्रहमध्येषु पूज्यते तस्य तीर्थस्य सेवनात्॥ २५

एवं शुक्रेण मुनिना सेवितं तीर्थमुत्तमम्।
ये सेवन्ते श्रद्दधानास्ते यान्ति परमां गतिम्॥ २६

यस्तु श्राद्धं नरो भक्त्या तस्मिंस्तीर्थे करिष्यति।
पितरस्तारितास्तेन भविष्यन्ति न संशयः॥ २७

चतुर्मुखं ब्रह्मतीर्थं सरो मर्यादया स्थितम्।
ये सेवन्ते चतुर्दश्यां सोपवासा वसन्ति च॥ २८

अष्टम्यां कृष्णपक्षस्य चैत्रे मासि द्विजोत्तमाः।
ते पश्यन्ति परं सूक्ष्मं यस्मान्नावर्तते पुनः॥ २९

स्थाणुतीर्थं ततो गच्छेत् सहस्रलिङ्गशोभितम्।
तत्र स्थाणुवटं दृष्ट्वा मुक्तो भवति किल्बिषैः॥ ३०

प्रसिद्ध सरस्वतीका एक कूप है। उसका दर्शन करनेमात्रसे ही मनुष्य सभी पापोंसे रहित हो जाता है और मुक्ति प्राप्त करता है। जो वहाँ श्रद्धापूर्वक देवता और पितरोंका तर्पण करता है, वह व्यक्ति समस्त अक्षय्य (कभी भी नष्ट न होनेवाले) पदार्थोंको प्राप्त करता है। पितृतीर्थकी विशेष महत्ता है। उस तीर्थमें माता, पिता और ब्राह्मणका घातक तथा गुरुपत्नीगामी भी स्नान करनेसे (ही) शुद्ध हो जाता है। वहाँ पूर्व दिशाकी ओर बहनेवाली सरस्वती देवमार्गमें प्रविष्ट होकर देवमार्गसे ही निकली हुई है॥ १६—१९॥

पूर्ववाहिनी सरस्वती दुष्कर्मियोंके लिये भी पुण्य देनेवाली है। जो प्राची सरस्वतीके निकट जाकर त्रिरात्रव्रत करता है, उसके शरीरमें कोई पाप नहीं रह जाता। नर और नारायण—ये दोनों देव, ब्रह्मा, स्थाणु तथा सूर्य एवं इन्द्रसहित सभी देवता प्राची दिशाका सेवन करते हैं। जो मानव प्राची सरस्वतीमें श्राद्ध करेंगे, उन्हें इस लोक तथा परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। अतः प्राची सरस्वतीका सर्वदा सेवन करना चाहिये; विशेषतः पञ्चमीके दिन। पञ्चमी तिथिको प्राची सरस्वतीका सेवन करनेवाला मनुष्य लक्ष्मीवान् होता है। वहीं तीनों लोकोंमें दुर्लभ औशनस नामका तीर्थ है, जहाँ परमेश्वरकी आराधना कर शुक्राचार्य सिद्ध हो गये थे। उस तीर्थका सेवन करनेसे ग्रहोंके मध्य उनकी पूजा होती है॥ २०—२५॥

इस प्रकार शुक्रमुनिके द्वारा सेवित उत्तमतीर्थका जो श्रद्धापूर्वक (स्वयं) सेवन करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। उस तीर्थमें भक्तिपूर्वक जो व्यक्ति श्राद्ध करेगा, उसके द्वारा उसके पितर निःसन्देह तर जायँगे। द्विजोत्तमो! जो सरोवरकी मर्यादासे स्थित चतुर्मुख ब्रह्मतीर्थमें चतुर्दशीके दिन उपवासव्रत करते हैं तथा चैत्रमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीतक निवास करके तीर्थका सेवन करते हैं, उन्हें परम सूक्ष्म (तत्त्व)-का दर्शन प्राप्त होता है; जिससे वे पुनः संसारमें नहीं आते। ब्रह्मतीर्थके नियम पालन करनेके बाद सहस्रलिङ्गसे शोभित स्थाणुतीर्थमें जाय। वहाँ स्थाणुवटका दर्शन प्राप्त कर मनुष्य पापोंसे विमुक्त हो जाता है॥ २६—३०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४२॥

स्थाणुतीर्थ, स्थाणुवट और सांनिहत्य सरोवरके सम्बन्धमें प्रश्न और ब्रह्माके हवालेसे लोमहर्षणका उत्तर

ऋषय ऊचुः

स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं वटस्य च महामुने।
सांनिहत्यसरोत्पत्तिं पूरणं पांशुना ततः॥ १

लिङ्गानां दर्शनात् पुण्यं स्पर्शनेन च किं फलम्।
तथैव सरमाहात्म्यं ब्रूहि सर्वमशेषतः॥ २

लोमहर्षण उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे पुराणं वामनं महत्।
यच्छ्रुत्वा मुक्तिमाप्नोति प्रसादाद् वामनस्य तु॥ ३

सनत्कुमारमासीनं स्थाणोर्वटसमीपतः।
ऋषिभिर्वालखिल्याद्यैर्ब्रह्मपुत्रैर्महात्मभिः॥ ४

मार्कण्डेयो मुनिस्तत्र विनयेनाभिगम्य च।
पप्रच्छ सरमाहात्म्यं प्रमाणं च स्थितिं तथा॥ ५

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वशास्त्रविशारद।
ब्रूहि मे सरमाहात्म्यं सर्वपापभयापहम्॥ ६

कानि तीर्थानि दृश्यानि गुह्यानि द्विजसत्तम।
लिङ्गानि ह्यतिपुण्यानि स्थाणोर्यानि समीपतः॥ ७

येषां दर्शनमात्रेण मुक्तिं प्राप्नोति मानवः।
वटस्य दर्शनं पुण्यमुत्पत्तिं कथयस्व मे॥ ८

प्रदक्षिणायां यत्पुण्यं तीर्थस्नानेन यत्फलम्।
गुह्येषु चैव दृष्टेषु यत्पुण्यमभिजायते॥ ९

देवदेवो यथा स्थाणुः सरोमध्ये व्यवस्थितः।
किमर्थं पांशुना शक्रस्तीर्थं पूरितवान् पुनः॥ १०

स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य यत्फलम्।
सूर्यतीर्थस्य माहात्म्यं सोमतीर्थस्य ब्रूहि मे॥ ११

(स्थाणुतीर्थमें जाने तथा स्थाणुवटके दर्शनसे मुक्ति-प्राप्ति होनेकी बात सुननेके बाद) **ऋषियोंने पूछा—** महामुने! आप स्थाणुतीर्थ एवं स्थाणुवटके माहात्म्य तथा सांनिहत्य सरोवरकी उत्पत्ति और इन्द्रद्वारा उसके धूलसे भरे जानेके कारणका वर्णन करें। (इसी प्रकार) लिङ्गोंके दर्शनसे होनेवाले पुण्य तथा स्पर्शसे होनेवाले फल और सरोवरके माहात्म्यका भी पूर्णतः वर्णन करें॥ १-२॥

लोमहर्षणजी बोले—मुनियो! आप लोग महान् वामनपुराणको श्रवण करें, जिसका श्रवण कर मनुष्य वामनभगवान्‌की कृपासे मुक्ति पा लेता है। (एक समय) ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमार महात्मा वालखिल्य आदि ऋषियोंके साथ स्थाणुवटके पास बैठे हुए थे। महर्षि मार्कण्डेयने उनके निकट जाकर नम्रतापूर्वक सरोवरके माहात्म्य, उसके विस्तार और स्थितिके विषयमें पूछा—॥ ३-५॥

मार्कण्डेयजीने कहा (पूछा)—सर्वशास्त्रविशारद महाभाग ब्रह्मपुत्र (सनत्कुमार)! आप मुझसे सभी पापोंके नष्ट करनेवाले सरोवरके माहात्म्यको कहिये। द्विजश्रेष्ठ! स्थाणुतीर्थके पास कौन-कौन-से तीर्थ दृश्य हैं और कौन-कौन-से अदृश्य और कौन-से लिङ्ग अत्यन्त पवित्र हैं, जिनका दर्शन कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। मुने! आप स्थाणुवटके दर्शनसे होनेवाले पुण्य तथा उसकी उत्पत्तिके विषयमें भी कहिये—बताइये। इनकी प्रदक्षिणा करनेसे होनेवाले पुण्य, तीर्थमें स्नान करनेसे मिलनेवाले फल एवं गुप्त तीर्थों तथा प्रकट तीर्थोंके दर्शनसे मिलनेवाले पुण्यका भी वर्णन करें। प्रभो! सरोवरके मध्यमें देवाधिदेव स्थाणु (शिव) किस प्रकार स्थित हुए और किस कारणसे इन्द्रने इस तीर्थको पुनः धूलिसे भर दिया? आप स्थाणुतीर्थका माहात्म्य, चक्रतीर्थका फल एवं सूर्यतीर्थ तथा सोमतीर्थका माहात्म्य—इन

शंकरस्य च गुह्यानि विष्णोः स्थानानि यानि च।
कथयस्व महाभाग सरस्वत्याः सविस्तरम्॥ १२

ब्रूहि देवाधिदेवस्य माहात्म्यं देव तत्त्वतः।
विरिञ्चस्य प्रसादेन विदितं सर्वमेव च॥ १३

लोमहर्षण उवाच

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा ब्रह्मात्मा स महामुनिः।
अतिभक्त्या तु तीर्थस्य प्रवणीकृतमानसः॥ १४

पर्यङ्कं शिथिलीकृत्वा नमस्कृत्वा महेश्वरम्।
कथयामास तत्सर्वं यच्छ्रुतं ब्रह्मणः पुरा॥ १५

सनत्कुमार उवाच

नमस्कृत्य महादेवमीशानं वरदं शिवम्।
उत्पत्तिं च प्रवक्ष्यामि तीर्थानां ब्रह्मभाषिताम्॥ १६

पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजसम्भवम्॥ १७

तस्मिन्नण्डे स्थितो ब्रह्मा शयनायोपचक्रमे।
सहस्रयुगपर्यन्तं सुप्त्वा स प्रत्यबुध्यत॥ १८

सुप्तोत्थितस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमपश्यत।
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च॥ १९

रजः सृष्टिगुणं प्रोक्तं सत्त्वं स्थितिगुणं विदुः।
उपसंहारकाले च तमोगुणः प्रवर्तते॥ २०

गुणातीतः स भगवान् व्यापकः पुरुषः स्मृतः।
तेनेदं सकलं व्याप्तं यत्किंचिज्जीवसंज्ञितम्॥ २१

स ब्रह्मा स च गोविन्द ईश्वरः स सनातनः।
यस्तं वेद महात्मानं स सर्वं वेद मोक्षवित्॥ २२

किं तेषां सकलैस्तीर्थैराश्रमैर्वा प्रयोजनम्।
येषामनन्तकं चित्तमात्मन्येव व्यवस्थितम्॥ २३

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलसमाधियुक्ता।

सबको मुझसे कहिये महाभाग! सरस्वतीके निकट शंकर तथा विष्णुके जो-जो गुप्त स्थान हैं उनका भी आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें, देव! देवाधिदेवके माहात्म्यको आप भलीभाँति बतावें, क्योंकि ब्रह्माकी कृपासे आपको सब कुछ विदित है॥ ६—१३॥

लोमहर्षणने कहा (उत्तर दिया)—मार्कण्डेयके वचनको सुनकर ब्रह्मस्वरूप महामुनिका मन उस तीर्थके प्रति अत्यन्त भक्ति प्रवण होनेसे गद्गद हो गया। उन्होंने आसनसे उठकर भगवान् शंकरको प्रणाम किया तथा प्राचीनकालमें ब्रह्मासे इसके विषयमें जो कुछ सुना था उन सबका वर्णन किया॥ १४-१५॥

सनत्कुमारने कहा—मैं कल्याणकर्ता, वरदानी महादेव ईशानको नमस्कार कर ब्रह्मासे कहे हुए तीर्थकी उत्पत्तिके विषयमें वर्णन करूँगा। प्राचीन कालमें जब महाप्रलय हो गया और सर्वत्र केवल जल-ही-जल हो गया एवं उसमें समस्त चर-अचर जगत् नष्ट हो गया, तब प्रजाओंके बीजस्वरूप एक 'अण्ड' उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा उस अण्डमें स्थित थे। उन्होंने उसमें अपने सोनेका उपक्रम किया। फिर तो वे हजारों युगोंतक सोते रहे। उसके बाद जगे। ब्रह्मा जब सोकर उठे, तब उन्होंने संसारको शून्य देखा। (जब उन्होंने संसारमें कुछ भी नहीं देखा) तब रजोगुणसे आविष्ट हो गये और सृष्टिके विषयमें विचार करने लगे॥ १६—१९॥

रजोगुणको सृष्टिकारक तथा सत्त्वगुणको स्थिति-कारक माना गया है। उपसंहार करनेके समयमें तमोगुणकी प्रवृत्ति होती है, परंतु भगवान् वास्तवमें व्यापक एवं गुणातीत हैं। वे पुरुष नामसे कहे जाते हैं। जीव नामसे निर्दिष्ट सारे पदार्थ उन्हींसे ओतप्रोत हैं। वे ही ब्रह्मा हैं, वे ही विष्णु हैं और वे ही सनातन महेश्वर हैं। मोक्षके ज्ञानी जिस प्राणीने उन महान् आत्माको समझ लिया, उसने सब कुछ जान लिया। जिस मनुष्यका अनन्त (बहुमुखी) चित्त उन परमात्मामें ही भलीभाँति स्थित है, उनके लिये सारे तीर्थ एवं आश्रमोंसे क्या प्रयोजन?॥ २०—२३॥

यह आत्मारूपी नदी शील और समाधिसे युक्त है। इसमें संयमरूपी पवित्र तीर्थ है, जो सत्यरूपी जलसे

तस्यां स्नातः पुण्यकर्मा पुनाति
न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥ २४
एतत्प्रधानं पुरुषस्य कर्म
यदात्मसम्बोधसुखे प्रविष्टम्।
ज्ञेयं तदेव प्रवदन्ति सन्त-
स्तत्प्राप्य देही विजहाति कामान् ॥ २५
नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं
यथैकता समता सत्यता च।
शीले स्थितिर्दण्डविधानवर्जन-
मक्रोधनश्चोपरमः क्रियाभ्यः ॥ २६
एतद् ब्रह्म समासेन मयोक्तं ते द्विजोत्तम।
यज्ज्ञात्वा ब्रह्म परमं प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥ २७
इदानीं शृणु चोत्पत्तिं ब्रह्मणः परमात्मनः।
इमं चोदाहरन्त्येव श्लोकं नारायणं प्रति ॥ २८
आपो नारा वै तनव इत्येवं नाम शुश्रुमः।
तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ॥ २९

विबुद्धः सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतं जगत्।
अण्डं बिभेद भगवांस्तस्मादोमित्यजायत ॥ ३०

ततो भूरभवत् तस्माद् भुव इत्यपरः स्मृतः।
स्वः शब्दश्च तृतीयोऽभूद् भूर्भुवः स्वेति संज्ञितः ॥ ३१

तस्मात्तेजः समभवत् तत्सवितुर्वरेण्यं यत्।
उदकं शोषयामास यत्तेजोऽण्डविनिःसृतम् ॥ ३२
तेजसा शोषितं शेषं कललत्वमुपागतम्।
कललाद् बुद्बुदं ज्ञेयं ततः काठिन्यतां गतम् ॥ ३३

काठिन्याद् धरणी ज्ञेया भूतानां धारिणी हि सा।
यस्मिन् स्थाने स्थितं ह्यण्डं तस्मिन् संनिहितं सरः ॥ ३४

यदाद्यं निःसृतं तेजस्तस्मादादित्य उच्यते।
अण्डमध्ये समुत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३५

उल्बं तस्याभवन्मेरुर्जरायुः पर्वताः स्मृताः।
गर्भोदकं समुद्राश्च तथा नद्यः सहस्रशः ॥ ३६

परिपूर्ण है। जो पुण्यात्मा इस (नदी) में स्नान करता है, वह पवित्र हो जाता है, (पिये जानेवाले सामान्य) जलसे अन्तरात्माकी शुद्धि नहीं होती। इसलिये पुरुषका मुख्य कर्तव्य है कि वह आत्मज्ञानरूपी सुखमें प्रविष्ट रहे। महात्मा लोग उसीको 'ज्ञेय' कहते हैं। शरीर धारण करनेवाला देही जब उसे पा लेता है, तब सभी इच्छाओंको छोड़ देता है। ब्राह्मणके लिये एकता, समता, सत्यता, मर्यादामें स्थिति, दण्ड-विधानका त्याग, क्रोध न करना एवं (सांसारिक) क्रियाओंसे विराग ही धन है, इनके समान उनके लिये कोई अन्य धन नहीं है। द्विजोत्तम! मैंने थोड़ी मात्रामें तुमसे यह जो ज्ञानके विषयमें कहा है, इसे जानकर तुम निःसंदेह परम ब्रह्मको प्राप्त करोगे। अब तुम परमात्मा ब्रह्मकी उत्पत्तिके विषयमें सुनो। उस नारायणके विषयमें लोग इस श्लोकका उदाहरण दिया करते हैं— ॥ २४—२८ ॥

'आप्' (जल) ही को 'नार', (एवं परमात्मा) को 'तनु'—ऐसा हमने सुन रखा है। वे (परमात्मा) उसमें शयन करते हैं, जिससे वे (शब्दव्युत्पत्तिसे) 'नारायण' शब्दसे स्मरण किये गये हैं। जलमें सोनेके बाद जाग जानेपर उन्होंने जगत्‌को अपनेमें प्रविष्ट जानकर अण्डको तोड़ दिया, उससे 'ॐ' शब्दकी उत्पत्ति हुई। इसके बाद उससे (पहली बार) भूः, दूसरी बार भुवः एवं तीसरी बार स्वःकी उत्पत्ति (ध्वनि) हुई। इन तीनोंका नाम क्रमशः मिलकर 'भूर्भुवः स्वः' हुआ। उस सविता देवताका जो वरेण्य तेज है, वह उसीसे उत्पन्न हुआ। अण्डसे जो तेज निकला, उसने जलको सुखा दिया ॥ २९—३२ ॥

तेजसे जलके सोखे जानेपर शेष जल कललकी आकृतिमें बदल गया। कललसे बुद्बुद हुआ और उसके बाद वह कठोर हो गया। कठोर हो जानेके कारण वह बुद्बुद भूतोंको धारण करनेवाली धरणी बन गया। जिस स्थानपर अण्ड स्थित था, वहीं संनिहित नामका सरोवर है। तेजके आदिमें उत्पन्न होनेके कारण उसे 'आदित्य' नामसे कहा जाता है। फिर सारे संसारके पितामह ब्रह्मा अण्डके मध्यमें उत्पन्न हुए। उस अण्डका उल्ब (गर्भका आवरण) मेरु पर्वत है एवं अन्य पर्वत उसके जरायु (झिल्ली) माने जाते हैं। समुद्र एवं सहस्रों नदियाँ

नाभिस्थाने यदुदकं ब्रह्मणो निर्मलं महत्।
महत्सरस्तेन पूर्णं विमलेन वराम्भसा॥ ३७

तस्मिन् मध्ये स्थाणुरूपी वटवृक्षो महामनाः।
तस्माद् विनिर्गता वर्णा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः॥ ३८

शूद्राश्च तस्मादुत्पन्नाः शुश्रूषार्थं द्विजन्मनाम्।
ततश्चिन्तयतः सृष्टिं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
मनसा मानसा जाताः सनकाद्या महर्षयः॥ ३९

पुनश्चिन्तयतस्तस्य प्रजाकामस्य धीमतः।
उत्पन्ना ऋषयः सप्त ते प्रजापतयोऽभवन्॥ ४०

पुनश्चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च।
बालखिल्याः समुत्पन्नास्तपःस्वाध्यायतत्पराः॥ ४१
ते सदा स्नाननिरता देवार्चनपरायणाः।
उपवासैर्व्रतैस्तीव्रैः शोषयन्ति कलेवरम्॥ ४२

वानप्रस्थेन विधिना अग्निहोत्रसमन्विताः।
तपसा परमेणेह शोषयन्ति कलेवरम्॥ ४३

दिव्यं वर्षसहस्रं ते कृशा धमनिसंतताः।
आराधयन्ति देवेशं न च तुष्यति शंकरः॥ ४४

ततः कालेन महता उमया सह शंकरः।
आकाशमार्गेण तदा दृष्ट्वा देवी सुदुःखिता॥ ४५

प्रसाद्य देवदेवेशं शंकरं प्राह सुव्रता।
क्लिश्यन्ते ते मुनिगणा देवदारुवनाश्रयाः॥ ४६

तेषां क्लेशक्षयं देव विधेहि कुरु मे दयाम्।
किं वेदधर्मनिष्ठानामनन्तं देव दुष्कृतम्॥ ४७

नाद्यापि येन शुद्ध्यन्ति शुष्कस्नाय्वस्थिशोणिताः।
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः पिनाकी पातितान्धकः।
प्रोवाच प्रहसन् मूर्ध्नि चारुचन्द्रांशुशोभितः॥ ४८

श्रीमहादेव उवाच

न वेत्सि देवि तत्त्वेन धर्मस्य गहना गतिः।
नैते धर्मं विजानन्ति न च कामविवर्जिताः॥ ४९

गर्भके जल हैं। ब्रह्माके नाभि-स्थानमें जो विशाल निर्मल जल राशि है, उस स्वच्छ श्रेष्ठ जलसे महान् सरोवर भरा-पूरा है॥ ३३—३७॥

उस सरोवरके मध्यमें स्थाणुके आकारका महान् विशाल एक वटवृक्ष है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों वर्ण उससे निकले और द्विजोंकी शुश्रूषा करनेके लिये उसीसे शूद्रोंकी भी उत्पत्ति हुई। (इस प्रकार चारों वर्णोंकी सृष्टि सरोवरके मध्यमें स्थाणुरूपसे स्थित वटवृक्षसे हुई।) उसके बाद सृष्टिकी चिन्ता करते हुए अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके मनसे सनकादि महर्षियोंकी उत्पत्ति हुई। फिर प्रजाकी इच्छासे चिन्तन कर रहे मतिमान् ब्रह्मासे सात ऋषि उत्पन्न हुए। वे प्रजापति हुए। रजोगुणसे मोहित होकर ब्रह्माने जब पुनः चिन्तन किया, तब तप एवं स्वाध्यायमें परायण बालखिल्य ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई॥ ३८—४१॥

वे सर्वदा स्नान (शुद्धि) करनेमें निरत तथा देवताओंकी पूजा करनेमें विशेषरूपसे लगे रहते तथा उपवासों एवं तीव्र व्रतोंसे अपने शरीरको सुखाये जा रहे थे। अग्निहोत्रसे युक्त होकर वानप्रस्थकी विधिसे वे उत्कृष्ट तपस्या करते और अपने शरीर सुखाते जाते थे। वे लोग अत्यन्त दुर्बल एवं कंकाल-काय होकर सहस्र दिव्य वर्षोंतक देवेशकी उपासना करते रहे; परंतु भगवान् शंकर प्रसन्न न हुए। उसके बहुत दिनोंके बाद उमाके साथ भगवान् शंकर आकाश-मार्गसे भ्रमण कर रहे थे। धार्मिक कार्योंको करनेवाली उमा (बालखिल्योंकी) इस प्रकारकी दशा (कंकालमात्र) देखकर दुःखी हो गयीं और दुःखी होकर देवदेवेश शंकरको प्रसन्नकर कहने लगीं—देव! देवदारु-वनमें रहनेवाले ये मुनिगण क्लेश उठा रहे हैं। देव! मेरे ऊपर दया करें, आप उनके क्लेशका विनाश करें। देव! वैदिक धर्ममें निष्ठा रखनेवाले इन (तपस्वियों) के कौन ऐसा अनन्त दुष्कृत है जिससे ये कङ्कालमात्र होनेपर भी अबतक शुद्ध नहीं हुए? अन्धकको मार गिरानेवाले, चन्द्रमाकी मनोहर किरणोंसे सुशोभित सिरवाले पिनाकधारी शंकरजी उमाकी बातको सुनकर हँसते हुए बोले—॥ ४२—४८॥

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! धर्मकी गति गहन होती है। तुम उसे तत्त्वतः नहीं जानती। ये लोग न तो धर्मज्ञ हैं

न च क्रोधेन निर्मुक्ताः केवलं मूढबुद्धयः।
एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीद् देवी मा मैवं शंसितव्रतान्॥ ५०

देव प्रदर्शयात्मानं परं कौतूहलं हि मे।
स इत्युक्त उवाचेदं देवीं देवः स्मितानन:॥ ५१

तिष्ठ त्वमत्र यास्यामि यत्रैते मुनिपुंगवाः।
साधयन्ति तपो घोरं दर्शयिष्यामि चेष्टितम्॥ ५२
इत्युक्ता तु ततो देवी शंकरेण महात्मना।
गच्छस्वेत्याह मुदिता भर्तारं भुवनेश्वरम्॥ ५३

यत्र ते मुनयः सर्वे काष्ठलोष्ठसमाः स्थिताः।
अधीयाना महाभागाः कृताग्निसदनक्रियाः॥ ५४

तान् विलोक्य ततो देवो नग्नः सर्वाङ्गसुन्दरः।
वनमालाकृतापीडो युवा भिक्षाकपालभृत्॥ ५५

आश्रमे पर्यटन् भिक्षां मुनीनां दर्शनं प्रति।
देहि भिक्षां ततश्चोक्त्वा ह्याश्रमादाश्रमं ययौ॥ ५६
तं विलोक्याश्रमगतं योषितो ब्रह्मवादिनाम्।
सकौतुकस्वभावेन तस्य रूपेण मोहिताः॥ ५७

प्रोचुः परस्परं नार्य एहि पश्याम भिक्षुकम्।
परस्परमिति चोक्त्वा गृह्य मूलफलं बहु॥ ५८

गृहाण भिक्षामूचुस्तास्तं देवं मुनियोषितः।
स तु भिक्षाकपालं तं प्रसार्य बहु सादरम्॥ ५९

देहि देहि शिवं वोऽस्तु भवतीभ्यस्तपोवने।
हसमानस्तु देवेशस्तत्र देव्या निरीक्षितः।
तस्मै दत्त्वैव तां भिक्षां पप्रच्छुस्तं स्मरातुराः॥ ६०

नार्य ऊचुः

कोऽसौ नाम व्रतविधिस्त्वया तापस सेव्यते।
यत्र नग्नेन लिङ्गेन वनमालाविभूषितः।
भवान् वै तापसो हृद्यो हृद्याः स्मो यदि मन्यसे॥ ६१

और न कामशून्य, ये क्रोधसे मुक्त भी नहीं हैं और विचार-रहित हैं। यह सुनकर उमादेवीने कहा—नहीं, व्रत धारण करनेवाले इन लोगोंको ऐसा मत कहिये; (प्रत्युत) देव! आप अपनेको प्रकट करें। निश्चय ही मुझे बड़ा कौतूहल है। उमाके ऐसा कहनेपर शंकरने मुस्कुराकर देवीसे इस प्रकार कहा—अच्छा, तुम यहाँ रुको। ये मुनिश्रेष्ठ जहाँ घोर तपस्याकी साधना कर रहे हैं, वहाँ जाकर मैं इनकी चेष्टा कैसी है, उसे दिखलाता हूँ॥ ४९—५२॥

जब महात्मा शंकरने देवी उमासे इस प्रकार कहा तब उमादेवी प्रसन्न हो गयीं और भुवनोंके पालन करनेवाले भुवनेश्वर शिवसे बोलीं—अच्छा, जिस स्थानपर लकड़ी और मिट्टीके ढेलेके समान निश्चेष्ट, अग्निहोत्री एवं अध्ययनमें लगे हुए मुनिगण रहते हैं, उस स्थानपर आप जायँ। (फिर उमाद्वारा इस प्रकार प्रेरित किये जानेपर शंकरजी मुनिमण्डलीकी ओर जानेके लिये प्रस्तुत हो गये।) फिर शंकरने उस मुनिमण्डलीको देखकर वनमाला धारण कर लिया। तब वे सर्वाङ्गसुन्दर (पर) नग्न-सुडौल देह धारण कर युवाके रूपमें हो गये और भिक्षा-पात्र हाथमें लेकर मुनियोंके सामने भिक्षाके लिये भ्रमण करते हुए 'भिक्षा दो' यह कहते हुए एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें जाने लगे॥ ५३—५६॥

एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें घूम रहे उन नग्न युवाको देखकर ब्रह्मवादियोंकी स्त्रियाँ उत्सुकताके साथ स्वभाववश उनके रूपसे मोहित हो गयीं और परस्परमें कहने लगीं—आओ, भिक्षुकको देखा जाय। आपसमें इस प्रकार कहकर बहुत-सा मूल-फल लेकर मुनि-पत्नियोंने उन देवसे कहा—आप भिक्षा ग्रहण करें। उन्होंने भी अत्यन्त आदरसे उस भिक्षापात्रको फैलाकर (सामने दिखाकर) कहा—तपोवनवासिनियो! (भिक्षा) दो, दो, आप सबका कल्याण हो। पार्वतीजी वहाँ हँसते हुए शंकरको देख रही थीं। कामातुर मुनिपत्नियोंने उस नग्न युवाको भिक्षा देकर उनसे पूछा—॥ ५७—६०॥

मुनिपत्नियोंने पूछा—तापस! आप किस व्रतके विधानका पालन कर रहे हैं, जिसमें वनमालासे विभूषित हृदयहारी तपस्वीका सुन्दर स्वरूप धारण कर नग्न मूर्ति बनना पड़ा है? आप हमारे हृदयके आनन्दप्रद तापस हैं, यदि आप मानें तो हम भी आपकी

इत्युक्तस्तापसीभिस्तु प्रोवाच हसिताननः।
इदमीदृग् व्रतं किंचिन्न रहस्यं प्रकाश्यते॥ ६२

शृण्वन्ति बहवो यत्र तत्र व्याख्या न विद्यते।
अस्य व्रतस्य सुभगा इति मत्वा गमिष्यथ॥ ६३

एवमुक्तास्तदा तेन ताः प्रत्यूचुस्तदा मुनिम्।
रहस्ये हि गमिष्यामो मुने नः कौतुकं महत्॥ ६४

इत्युक्त्वा तास्तदा तं वै जगृहुः पाणिपल्लवैः।
काचित् कण्ठे सकन्दर्पा बाहुभ्यामपरास्तथा॥ ६५

जानुभ्यामपरा नार्यः केशेषु ललिताऽपराः।
अपरास्तु कटीरन्ध्रे अपराः पादयोरपि॥ ६६

क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमेषु स्वयोषिताम्
हन्यतामिति संभाष्य काष्ठपाषाणपाणयः॥ ६७

पातयन्ति स्म देवस्य लिङ्गमुद्धृत्य भीषणम्।
पातिते तु ततो लिङ्गे गतोऽन्तर्धानमीश्वरः॥ ६८

देव्या स भगवान् रुद्रः कैलासं नगमाश्रितः।
पतिते देवदेवस्य लिङ्गे नष्टे चराचरे॥ ६९

क्षोभो बभूव सुमहानृषीणां भावितात्मनाम्।
एवं देवे तदा तत्र वर्तति व्याकुलीकृते॥ ७०

उवाचैको मुनिवरस्तत्र बुद्धिमतां वरः।
न वयं विद्मः सद्भावं तापसस्य महात्मनः॥ ७१

विरिञ्चिं शरणं यामः स हि ज्ञास्यति चेष्टितम्।
एवमुक्ताः सर्व एव ऋषयो लज्जिता भृशम्॥ ७२

ब्रह्मणः सदनं जग्मुर्देवैः सह निषेवितम्।
प्रणिपत्याथ देवेशं लज्जयाऽधोमुखाः स्थिताः॥ ७३

अथ तान् दुःखितान् दृष्ट्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।
अहो मुग्धा यदा यूयं क्रोधेन कलुषीकृताः॥ ७४

न धर्मस्य क्रिया काचिज्ज्ञायते मूढबुद्धयः।
श्रूयतां धर्मसर्वस्वं तापसाः क्रूरचेष्टिताः॥ ७५

मनोऽनुकूल प्रिया हो सकती हैं उन्होंने तपस्विनियोंके इस प्रकार कहनेपर हँसते हुए कहा—यह व्रत ऐसा है कि इसका कुछ भी रहस्य प्रकट नहीं किया जा सकता। सौभाग्यशालिनियो, जहाँ बहुत-से सुननेवाले हों वहाँ इस व्रतकी व्याख्या नहीं की जा सकती इसलिये यह जानकर आप सभी चली जायँ। उनके ऐसा कहनेपर उन्होंने मुनिसे कहा—मुने हम सब (यह जाननेके लिये) एकान्तमें चलेंगी; (क्योंकि) हमें महान् कौतूहल हो रहा है॥ ६१—६४॥

यह कहकर उन सभीने उनको अपने कोमल हाथोंसे पकड़ लिया। कुछ कामसे आतुर होकर कण्ठसे लिपट गयीं और कुछने उन्हें भुजाओंमें बाँध लिया; कुछ स्त्रियोंने उन्हें घुटनोंसे पकड़ लिया; कुछ सुन्दरी स्त्रियाँ उनके केश छूने लगीं और कुछ उनकी कमरसे लिपट गयीं एवं कुछने उनके पैरोंको पकड़ लिया मुनियोंने आश्रममें अपनी स्त्रियोंकी अधीरता देख 'मारो-मारो' इस प्रकार कहते हुए हाथोंमें डंडा और पत्थर लेकर शिवके लिङ्गको ही उखाड़कर फेंक दिया। लिङ्गके गिरा दिये जानेपर भगवान् शंकर अन्तर्हित हो गये॥ ६५—६८॥

वे भगवान् रुद्र उमादेवीके साथ कैलास पर्वतपर चले गये। देवदेव शंकरके लिङ्गके गिरनेपर प्रायः समस्त चर अचर जगत् नष्ट हो गया। इससे आत्मनिष्ठ महर्षियोंको व्याकुलता हुई। इसी प्रकार देवके (भी) व्याकुल हो जानेपर एक अत्यन्त बुद्धिमान् श्रेष्ठ मुनिने कहा—हम उन महात्मा तापसके सद्भाव (सदाशय)-को नहीं जानते। हम ब्रह्माकी शरणमें चलें। वे ही उनकी चेष्टा (रहस्य) समझ सकेंगे ऐसा कहनेपर सभी ऋषि अत्यन्त लज्जित हो गये॥ ६९—७२॥

फिर, वे लोग देवताओंसे उपासित ब्रह्माके लोकमें गये। वहाँ देवेश (ब्रह्मा)-को प्रणाम कर लज्जासे मुख नीचा कर खड़े हो गये उसके बाद ब्रह्माने उन्हें दुःखी देखकर यह वचन कहा—अहो, क्रोध करनेसे तुम सबका मन कलुषित हो गया है, इसलिये मूढ़ हो गये हो। मूढ़ बुद्धिवाले तुम सब धर्मकी कोई वास्तविक क्रिया नहीं जानते। अप्रिय कर्म करनेवाले तापसो धर्मके सारभूत रहस्यको सुनो, जिसे

विदित्वा यद् बुधः क्षिप्रं धर्मस्य फलमाप्नुयात्।
योऽसावात्मनि देहेऽस्मिन् विभुर्नित्यो व्यवस्थितः॥ ७६

सोऽनादिः स महास्थाणुः पृथक्त्वे परिसूचितः।
मणिर्यथोपधानेन धत्ते वर्णोज्ज्वलोऽपि वै॥ ७७

तन्मयो भवते तद्वदात्माऽपि मनसा कृतः।
मनसो भेदमाश्रित्य कर्मभिश्चोपचीयते॥ ७८

ततः कर्मवशाद् भुङ्क्ते संभोगान् स्वर्गनारकान्।
तन्मनः शोधयेद् धीमाञ्ज्ञानयोगाद्युपक्रमैः॥ ७९

तस्मिञ्शुद्धे ह्यन्तरात्मा स्वयमेव निराकुलः।
न शरीरस्य संक्लेशैरपि निर्दहनात्मकैः॥ ८०

शुद्धिमाप्नोति पुरुषः संशुद्धं यस्य नो मनः।
क्रिया हि नियमार्थाय पातकेभ्यः प्रकीर्तिताः॥ ८१

यस्मादत्याविलं देहं न शीघ्रं शुद्ध्यते किल।
तेन लोकेषु मार्गोऽयं सत्पथस्य प्रवर्त्तितः॥ ८२

वर्णाश्रमविभागोऽयं लोकाध्यक्षेण केनचित्।
निर्मितो मोहमाहात्म्यं चिह्नं चोत्तमभागिनाम्॥ ८३

भवन्तः क्रोधकामाभ्यामभिभूताश्रमे स्थिताः।
ज्ञानिनामाश्रमो वेश्म अनाश्रममयोगिनाम्॥ ८४

क्व च न्यस्तसमस्तेच्छा क्व च नारीमयो भ्रमः।
क्व क्रोधमीदृशं घोरं येनात्मानं न जानथ॥ ८५

यत्क्रोधनो यजति यच्च ददाति नित्यं
यद् वा तपस्तपति यच्च जुहोति तस्य।
प्राप्नोति नैव किमपीह फलं हि लोके
मोघं फलं भवति तस्य हि क्रोधनस्य॥ ८६

जानकर बुद्धिमान् मनुष्य शीघ्र ही कर्मका फल प्राप्त करता है। हम सबके इस शरीरमें रहनेवाला जो नित्य विभु (परमेश्वर) है वह आदि-अन्त-रहित एवं महा स्थाणु है (विचार करनेपर) वह (देही) इस शरीरसे अलग प्रतीत होता है। जिस प्रकार उज्ज्वल वर्णकी मणि भी आश्रयके प्रभावसे उसी रूपकी भासती है, उसी प्रकार आत्मा भी मनसे संयुक्त होकर मनके भेदका आश्रय कर कर्मोंसे ढक जाता है उसके बाद कर्मवश वह स्वर्गीय तथा नारकीय भोगोंको भोगता रहता है बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि ज्ञान तथा योग आदि उपायोंद्वारा मनका शोधन करे॥ ७३—७९॥

मनके शुद्ध होनेपर अन्तरात्मा अपने-आप निर्मल हो जाता है। जिसका मन शुद्ध नहीं है, ऐसा पुरुष शरीरको सुखानेवाले क्लेशोंके द्वारा शुद्ध नहीं होता। पापोंसे बचनेके लिये ही (धर्म्य) क्रियाओंका विधान हुआ है, अतः अत्यन्त पापपूर्ण शरीर (स्वतः) शीघ्र शुद्ध नहीं होता। इसीलिये लोकमें सत्पथ शास्त्रविहित क्रियाओंका यह मार्ग प्रवर्तित हुआ है। किसी दिव्यद्रष्टा लोक-स्वामीने उत्तम भाग्यवालोंके निमित्त मोह-माहात्म्यके प्रतीकस्वरूप इस वर्णाश्रम-विभागका निर्माण किया है॥ ८०—८३॥

आप लोग आश्रममें रहते हुए भी क्रोध तथा कामके वशीभूत हैं ज्ञानियोंके लिये घर ही आश्रम है और अयोगियों (अज्ञानियों) के लिये आश्रम भी अनाश्रम है कहाँ समस्त कामनाओंका त्याग और कहाँ नारीमय यह भ्रम-जाल (कहाँ तप और) कहाँ तो इस प्रकारका क्रोध, जिससे तुम लोग अपने आत्मा (शिव) को नहीं पहचान पाते। क्रोधी पुरुष लोकमें जो सदा यज्ञ करता है, जो दान देता है अथवा जो तप या हवन करता है, उसका कोई फल उसे नहीं मिलता उस क्रोधीके सभी फल व्यर्थ होते हैं॥ ८४—८६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

ऋषियोंसहित ब्रह्माजीका शंकरजीकी शरणमें जाना और स्तवन, स्थाण्वीश्वरप्रसङ्ग और हस्तिरूप शंकरकी स्तुति एवं लिङ्गमें संनिधान

सनत्कुमार उवाच

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ऋषयः सर्व एव ते।
पुनरेव च पप्रच्छुर्जगतः श्रेयकारणम्॥ १

ब्रह्मोवाच

गच्छामः शरणं देवं शूलपाणिं त्रिलोचनम्।
प्रसादाद् देवदेवस्य भविष्यथ यथा पुरा॥ २

इत्युक्ता ब्रह्मणा सार्धं कैलासं गिरिमुत्तमम्।
ददृशुस्ते समासीनमुमया सहितं हरम्॥ ३

ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः।
देवाधिदेवं वरदं त्रैलोक्यस्य प्रभुं शिवम्॥ ४

ब्रह्मोवाच

अनन्ताय नमस्तुभ्यं वरदाय पिनाकिने।
महादेवाय देवाय स्थाणवे परमात्मने॥ ५

नमोऽस्तु भुवनेशाय तुभ्यं तारक सर्वदा।
ज्ञानानां दायको देवस्त्वमेकः पुरुषोत्तमः॥ ६

नमस्ते पद्मगर्भाय पद्मेशाय नमो नमः।
घोरशान्तिस्वरूपाय चण्डक्रोध नमोऽस्तु ते॥ ७

नमस्ते देव विश्वेश नमस्ते सुरनायक।
शूलपाणे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन॥ ८

एवं स्तुतो महादेवो ब्रह्मणा ऋषिभिस्तदा।
उवाच मा भैर्व्रजत लिङ्गं वो भविता पुनः॥ ९

क्रियतां मद्वचः शीघ्रं येन मे प्रीतिरुत्तमा।
भविष्यति प्रतिष्ठायां लिङ्गस्यात्र न संशयः॥ १०

ये लिङ्गं पूजयिष्यन्ति मामकं भक्तिमाश्रिताः।
न तेषां दुर्लभं किंचिद् भविष्यति कदाचन॥ ११

सनत्कुमारने कहा—उन सभी ऋषियोंने ब्रह्माकी इस वाणीको सुनकर संसारके कल्याणार्थ पुनः उपाय पूछा॥ १॥

ब्रह्माने कहा—(उत्तर दिया) (आओ), हम सभी लोग हाथमें शूल धारण करनेवाले, त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरकी शरणमें चलें। तुम सब लोग उन्हीं देवदेवके प्रसादसे पहले जैसे हो जाओगे। ब्रह्माके ऐसा कहनेपर वे लोग उनके साथ श्रेष्ठ पर्वत कैलासपर चले गये और वहाँ उन लोगोंने उमा (पार्वती)-के साथ बैठे हुए शंकरका दर्शन किया। उसके बाद संसारके पितामह ब्रह्माने देवोंके इष्टदेव, तीनों लोकोंके स्वामी वरदानी भगवान् शंकरकी स्तुति करनी आरम्भ की—॥ २—४॥

पिनाक धारण करनेवाले वरदानी अनन्त महादेव! स्थाणुस्वरूप परमात्मदेव! आपको मेरा नमस्कार है। भुवनोंके स्वामी भुवनेश्वर तारक भगवान्! आपको सदा नमस्कार है। पुरुषोत्तम! आप ज्ञान देनेवाले अद्वितीय देव हैं। आप कमलगर्भ एवं पद्मेश हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है (प्रचण्ड) घोर-स्वरूप एवं शान्तिमूर्ति आपको नमस्कार है विश्वके शासकदेव आपको नमस्कार है। सुरनायक आपको नमस्कार है। शूलपाणि शंकर! आपको नमस्कार है (संसारके रचनेवाले) विश्वभावन आपको मेरा नमस्कार है॥ ५—८॥

ऋषियों और ब्रह्माने जब इस प्रकार शंकरकी स्तुति की तब महादेव शङ्करने कहा—भय मत करो, जाओ (तुम लोगोंके कल्याणार्थ) लिङ्ग फिर भी (उत्पन्न) हो जायगा। मेरे वचनका शीघ्र पालन करो लिङ्गकी प्रतिष्ठा कर देनेपर निस्सन्देह मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी। जो व्यक्ति भक्तिके साथ मेरे लिङ्गकी पूजा करेंगे उनके लिये कोई भी पदार्थ कभी दुर्लभ न होगा

सर्वेषामेव पापानां कृतानामपि जानता।
शुद्ध्यते लिङ्गपूजायां नात्र कार्या विचारणा॥ १२

युष्माभिः पातितं लिङ्गं सारयित्वा महत्सरः।
सांनिहत्यं तु विख्यातं तस्मिञ्शीघ्रं प्रतिष्ठितम्॥ १३

यथाभिलषितं कामं ततः प्राप्स्यथ ब्राह्मणाः।
स्थाणुर्नाम्ना हि लोकेषु पूजनीयो दिवौकसाम्॥ १४

स्थाण्वीश्वरे स्थितो यस्मात्स्थाण्वीश्वरस्ततः स्मृतः।
ये स्मरन्ति सदा स्थाणुं ते मुक्ताः सर्वकिल्बिषैः॥ १५

भविष्यन्ति शुद्धदेहा दर्शनान्मोक्षगामिनः।
इत्येवमुक्ता देवेन ऋषयो ब्रह्मणा सह॥ १६

तस्माद् दारुवनाल्लिङ्गं नेतुं समुपचक्रमुः।
न तं चालयितुं शक्तास्ते देवा ऋषिभिः सह॥ १७

श्रमेण महता युक्ता ब्रह्माणं शरणं ययुः।
तेषां श्रमाभितप्तानामिदं ब्रह्माऽब्रवीद् वचः॥ १८

किं वा श्रमेण महता न यूयं वहनक्षमाः।
स्वेच्छया पातितं लिङ्गं देवदेवेन शूलिना॥ १९

तस्मात् तमेव शरणं यास्यामः सहिताः सुराः।
प्रसन्नश्च महादेवः स्वयमेव नयिष्यति॥ २०

इत्येवमुक्ता ऋषयो देवाश्च ब्रह्मणा सह।
कैलासं गिरिमासेदू रुद्रदर्शनकाङ्क्षिणः॥ २१

न च पश्यन्ति तं देवं ततश्चिन्तासमन्विताः।
ब्रह्माणमूचुर्मुनयः क्व स देवो महेश्वरः॥ २२

ततो ब्रह्मा चिरं ध्यात्वा ज्ञात्वा देवं महेश्वरम्।
हस्तिरूपेण तिष्ठन्तं मुनिभिर्मानसैः स्तुतम्॥ २३

अथ ते ऋषयः सर्वे देवाश्च ब्रह्मणा सह।
गता महत्सरः पुण्यं यत्र देवः स्वयं स्थितः॥ २४

न च पश्यन्ति तं देवमन्विष्यन्तस्ततस्ततः।
ततश्चिन्तान्विता देवा ब्रह्मणा सहिताः स्थिताः॥ २५

जानकर किये गये समस्त पापोंकी भी शुद्धि लिङ्गकी पूजा करनेसे हो जाती है; इसमें किसी प्रकारका अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ ९—१२॥

तुम लोगोंने लिङ्गको गिरा दिया है, इसलिये शीघ्र ही उसे उठाकर प्रसिद्ध महान् सांनिहत्य-सरोवरमें स्थापित करो। ब्राह्मणो! ऐसा करनेसे तुम लोग अपने इच्छानुकूल मनोरथोंको प्राप्त करोगे, सारे संसारमें उस लिङ्गकी प्रसिद्धि स्थाणु नामसे होगी। देवताओंद्वारा (भी) यह पूज्य होगा। यह लिङ्ग स्थाण्वीश्वरमें स्थित रहनेके कारण स्थाण्वीश्वर नामसे स्मरण किया जायगा। जो स्थाण्वीश्वरको सदा स्मरण करेंगे, उनके सारे पाप कट जायँगे और वे पवित्र देह होकर मोक्षकी प्राप्ति करेंगे। जब शंकरने ऐसा कहा तब ब्रह्माके सहित ऋषिलोग लिङ्गको उस दारुवनसे ले आनेका उद्योग करने लगे। किंतु ऋषियोंसहित वे सभी देवगण उसे हिलाने-डुलानेमें समर्थ न हो सके॥ १३—१७॥

(फिर) वे बहुत परिश्रम करके ब्रह्माकी शरणमें गये, ब्रह्माने परिश्रमसे श्रान्त-क्लान्त (संतप्त) हुए उन लोगोंसे यह वचन कहा—देवताओ! अत्यन्त कठोर परिश्रम करनेसे क्या लाभ? तुमलोग इसे उठानेमें समर्थ नहीं हो, देवाधिदेव भगवान् शंकरने अपनी इच्छासे इस लिङ्गको गिराया है। अतः हे देवो! हम सभी एक साथ उन्हीं भगवान् शंकरकी शरणमें चलें। महादेव सन्तुष्ट होकर अपने आप ही (लिङ्गको) ले जायँगे। इस प्रकार ब्रह्माके कहनेपर सभी ऋषि और देवता ब्रह्माके साथ शंकरजीके दर्शनकी अभिलाषासे कैलासपर्वतपर पहुँचे॥ १८—२१॥

वहाँ उन लोगोंने शंकरजीको नहीं देखा, तब वे चिन्तित हो गये। फिर उन्होंने ब्रह्माजीसे पूछा (कि ब्रह्मन्) वे महेश्वरदेव कहाँ हैं? उसके बाद ब्रह्माने चिरकालतक ध्यान लगाया और देखा कि मुनियोंके अन्तः-करणसे स्तुत महेश्वर देव हाथीके आकारमें स्थित हैं। उसके पश्चात् वे ऋषि और ब्रह्माके सहित सभी देवता उस पावन महान् सरोवरपर गये जहाँ भगवान् शंकर स्वयं उपस्थित थे। वे लोग वहाँ इधर-उधर चारों ओर उन्हें ढूँढ़ने लगे, फिर भी शंकरजीका दर्शन न पा सके।

पश्यन्ति देवीं सुप्रीतो कमण्डलुविभूषिताम्।
प्रीयमाणा तदा देवी इदं वचनमब्रवीत्॥ २६

श्रमेण महता युक्ता अन्विष्यन्तो महेश्वरम्।
पीयताममृतं देवास्ततो ज्ञास्यथ शङ्करम्।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भवान्या समुदाहृतम्॥ २७

सुखोपविष्टास्ते देवाः पपुस्तदमृतं शुचि।
अनन्तरं सुखासीनाः पप्रच्छुः परमेश्वरीम्॥ २८

क्व स देव इहायातो हस्तिरूपधरः स्थितः।
दर्शितश्च तदा देव्या सरोमध्ये व्यवस्थितः॥ २९

दृष्ट्वा देवं हर्षयुक्ताः सर्वे देवाः सहर्षिभिः।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इदं वचनमब्रुवन्॥ ३०

त्वया त्यक्तं महादेव लिङ्गं त्रैलोक्यवन्दितम्।
तस्य चानयने नान्यः समर्थः स्यान्महेश्वर॥ ३१

इत्येवमुक्तो भगवान् देवो ब्रह्मादिभिर्हरः।
जगाम ऋषिभिः सार्द्धं देवदारुवनाश्रमम्॥ ३२

तत्र गत्वा महादेवो हस्तिरूपधरो हरः।
करेण जग्राह ततो लीलया परमेश्वरः॥ ३३

तमादाय महादेवः स्तूयमानो महर्षिभिः।
निवेशयामास तदा सरःपार्श्वे तु पश्चिमे॥ ३४

ततो देवाः सर्व एव ऋषयश्च तपोधनाः।
आत्मानं सफलं दृष्ट्वा स्तवं चक्रुर्महेश्वरे॥ ३५

नमस्ते परमात्मन् अनन्तयोने लोकसाक्षिन् परमेष्ठिन् भगवन् सर्वज्ञ क्षेत्रज्ञ परावरज्ञ ज्ञानज्ञेय सर्वेश्वर महाविरिञ्च महाविभूते महाक्षेत्रज्ञ महापुरुष सर्वभूतावास मनोनिवास आदिदेव महादेव सदाशिव ईशान दुर्विज्ञेय दुराराध्य महाभूतेश्वर परमेश्वर महायोगेश्वर त्र्यम्बक महायोगिन् परब्रह्मन् परमज्योतिः ब्रह्मविदुत्तम ओंकार वषट्कार स्वाहाकार स्वधाकार परमकारण सर्वगत सर्वदर्शिन्

ब्रह्माके साथ दर्शन न पानेके कारण सभी देवता चिन्तित हो गये। उसके बाद उन्होंने कमण्डलुसे सुशोभित देवीको अत्यन्त प्रसन्न देखा। उस समय प्रसन्न होती हुई देवी उनसे यह वचन बोलीं— ॥ २२—२६॥

महेश्वरको ढूँढ़ते हुए तुम लोग अत्यन्त श्रान्त हो गये हो। देवो! तुम सब अमृतका पान करो; तब तुम सब शङ्करको जान सकोगे। भवानीद्वारा कही हुई इस वाणीको सुनकर वे देवता सुखपूर्वक बैठ गये और उन्होंने उस पवित्र अमृतको पी लिया। उसके बाद सुखपूर्वक बैठे हुए उन देवताओंने परमेश्वरीसे पूछा— देवि! हाथीके रूपको धारण किये हुए भगवान् शंकर देव यहाँ किस स्थानपर आये हुए हैं? देवताओंके इस प्रकार पूछनेपर देवीने सरोवरके बीचमें स्थित शंकरको उन्हें दिखला दिया। ऋषियोंके साथ सभी देवता उनका दर्शन पाकर हर्षित हो गये और ब्रह्माको आगे कर शंकरजीसे ये वचन बोले— ॥ २७—३०॥

महेश्वर! आपने तीनों लोकोंमें वन्दित जिस लिङ्गको छोड़ दिया है, उसे ले आनेमें दूसरे किसीकी शक्ति नहीं है, उसे कोई दूसरा उठा नहीं सकता। इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओंने जब भगवान् शंकरसे कहा, तब देवदेव शिवजी ऋषियोंके साथ देवदारुवनके आश्रममें चले गये। वहाँ जाकर हाथीका रूप धारण करनेवाले महादेव शिवने खेल-खेलमें (लिङ्गको) अपने सूँड़से पकड़कर उठा लिया। शंकरजी महर्षियोंके द्वारा स्तुति किये जाते हुए उस लिङ्गको लाकर सरोवरके पास पश्चिम दिशामें स्थापित कर दिया। उसके बाद सभी देवता एवं तपस्वी ऋषियोंने अपनेको सफल समझा और वे भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे॥ ३१—३५॥

परमात्मन्! अनन्तयोने! लोकसाक्षिन्! परमेष्ठिन्! भगवन्! सर्वज्ञ! क्षेत्रज्ञ! हे पर और अवरके ज्ञाता! ज्ञानज्ञेय! सर्वेश्वर! महाविरिञ्च! महाविभूते! महाक्षेत्रज्ञ! महापुरुष! हे सब भूतोंके निवास! मनोनिवास! आदिदेव! महादेव! सदाशिव! ईशान! दुर्विज्ञेय! दुराराध्य! महाभूतेश्वर! परमेश्वर! महायोगेश्वर! त्र्यम्बक! महायोगिन्! परब्रह्मन्! परमज्योति! ब्रह्मविद् उत्तम! ओंकार! वषट्कार! स्वाहाकार! स्वधाकार! परमकारण! सर्वगत! सर्वदर्शिन्!

सर्वशक्ते सर्वदेव अज सहस्रार्चि पृषार्चि सुधामन् हरधाम अनन्तधाम संवर्त संकर्षण वडवानल अग्नीषोमात्मक पवित्र महापवित्र महामेघ महामायाधर महाकाम कामहन् हंस परमहंस महाराजिक महेश्वर महाकामुक महाहंस भवक्षयकर सुरसिद्धार्चित हिरण्यवाह हिरण्यरेता हिरण्यनाभ हिरण्याग्रकेश मुञ्जकेशिन् सर्वलोकवरप्रद सर्वानुग्रहकर कमलेशय कुशेशय हृदयेशय ज्ञानोदधे शम्भो विभो महायज्ञ महायाज्ञिक सर्वयज्ञमय सर्वयज्ञहृदय सर्वयज्ञसंस्तुत निराश्रय समुद्रेशय अत्रिसम्भव भक्तानुकम्पिन् अभग्नयोग योगधर वासुकिमहामणि विद्योतितविग्रह हरितनयन त्रिलोचन जटाधर नीलकण्ठ चन्द्रार्धधर उमाशरीरार्धहर गजचर्मधर दुस्तरसंसारमहासंहारकर प्रसीद भक्तजनवत्सल।

एवं स्तुतो देवगणैः सुभक्त्या सब्रह्ममुख्यैश्च पितामहेन।
तदा हस्तिरूपं महात्मा लिङ्गे तदा संनिधानं चकार॥ ३६

सर्वशक्ति! सर्वदेव! अज सहस्रार्चि! पृषार्चि! सुधामन् हरधाम! अनन्तधाम! संवर्त संकर्षण वडवानल, अग्नि और सोमस्वरूप! पवित्र! महापवित्र महामेघ महामायाधर महाकाम कामहन् हंस परमहंस! महाराजिक! महेश्वर महाकामुक महाहंस! भवक्षयकर! हे देवों और सिद्धोंसे पूजित! हिरण्यवाह हिरण्यरेता! हिरण्यनाभ! हिरण्याग्रकेश! मुञ्जकेशिन्! सर्वलोकवरप्रद! सर्वानुग्रहकर कमलेशय! कुशेशय! हृदयेशय! ज्ञानोदधे! शम्भो विभो! महायज्ञ! महायाज्ञिक सर्वयज्ञमय! सर्वयज्ञहृदय! सर्वयज्ञसंस्तुत! निराश्रय! समुद्रेशय अत्रिसम्भव! भक्तानुकम्पिन्! अभग्नयोग! योगधर! हे वासुकि और महामणिसे द्युतिमान् शिव हरितनयन! त्रिलोचन! जटाधर! नीलकण्ठ! चन्द्रार्धधर! उमाशरीरार्धहर! गजचर्मधर! दुस्तरसंसारका महासंहार करनेवाले महाप्रलयंकर शिव! हमारा आपको नमस्कार है। भक्तजनवत्सल शङ्कर आप हम सबपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार पितामह ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवगणोंके साथ भक्तिपूर्वक स्तुति करनेपर उन महात्माने हस्तिरूपको त्यागकर लिङ्गमें सन्निधान (निवास) कर लिया॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४४॥

सांनिहितसर—स्थाणुतीर्थ, स्थाणुवट और स्थाणुलिङ्गका माहात्म्य-वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथोवाच महादेवो देवान् ब्रह्मपुरोगमान्।
ऋषीणां चैव प्रत्यक्षं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्॥ १
एतत् सांनिहितं प्रोक्तं सरः पुण्यतमं महत्।
मयोपसेवितं यस्मात् तस्मान्मुक्तिप्रदायकम्॥ २
इह ये पुरुषाः केचिद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः।
लिङ्गस्य दर्शनादेव पश्यन्ति परमं पदम्॥ ३
अहन्यहनि तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च।
स्थाणुतीर्थं समेष्यन्ति मध्यं प्राप्ते दिवाकरे॥ ४

सनत्कुमारने कहा—इसके बाद महादेवने ऋषियोंके सामने (ही) ब्रह्मा आदि देवोंसे परमश्रेष्ठ तीर्थके माहात्म्यको कहा ऋषियो! यह सांनिहित नामक सरोवर अत्यन्त पवित्र एवं महान् कहा गया है। यतः मेरे द्वारा यह सेवित किया गया है, अतः यह मुक्ति प्रदान करनेवाला है। यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य—सभी वर्णोंके पुरुष लिङ्गका दर्शन कर ही परम पदका दर्शन करते हैं। समुद्रसे लेकर सरोवरतकके तीर्थ प्रतिदिन भगवान् सूर्यके आकाशके मध्यमें आ जानेपर (दोपहरमें) स्थाणुतीर्थमें आ जाते हैं॥ १—४॥

स्तोत्रेणानेन च नरो यो मां स्तोष्यति भक्तितः।
तस्याहं सुलभो नित्यं भविष्यामि न संशयः॥ ५

इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रो ह्यन्तर्धानं गतः प्रभुः।
देवाश्च ऋषयः सर्वे स्वानि स्थानानि भेजिरे॥ ६

ततो निरन्तरं स्वर्गं मानुषैर्मिश्रितं कृतम्।
स्थाणुलिङ्गस्य माहात्म्यं दर्शनात् स्वर्गमाप्नुयात्॥ ७

ततो देवाः सर्व एव ब्रह्माणं शरणं ययुः।
तानुवाच तदा ब्रह्मा किमर्थमिह चागताः॥ ८

ततो देवाः सर्व एव इदं वचनमब्रुवन्।
मानुषेभ्यो भयं तीव्रं रक्षास्माकं पितामह॥ ९

तानुवाच तदा ब्रह्मा सुरांस्त्रिदशनायकः।
पांसुना पूर्यतां शीघ्रं सरः शक्र हितं कुरु॥ १०

ततो ववर्ष भगवान् पांसुना पाकशासनः।
सप्ताहं पूरयामास सरो देवैस्तदा वृतः॥ ११

तं दृष्ट्वा पांसुवर्षं च देवदेवो महेश्वरः।
करेण धारयामास लिङ्गं तीर्थवटं तदा॥ १२

तस्मात् पुण्यतमं तीर्थमाद्यं यत्रोदकं स्थितम्।
तस्मिन् स्नातः सर्वतीर्थैः स्नातो भवति मानवः॥ १३

यस्तत्र कुरुते श्राद्धं वटलिङ्गस्य चान्तरे।
तस्य प्रीताश्च पितरो दास्यन्ति भुवि दुर्लभम्॥ १४

पूरितं च ततो दृष्ट्वा ऋषयः सर्व एव ते।
पांशुना सर्वगात्राणि स्पृशन्ति श्रद्धया युताः॥ १५

तेऽपि निर्धूतपापास्ते पांशुना मुनयो गताः।
पूज्यमानाः सुरगणैः प्रयाता ब्रह्मणः पदम्॥ १६

ये तु सिद्धा महात्मानस्ते लिङ्गं पूजयन्ति च।
व्रजन्ति परमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥ १७
एवं ज्ञात्वा तदा ब्रह्मा लिङ्गं शैलमयं तदा।
आद्यलिङ्गं तदा स्थाप्य तस्योपरि दधार तत्॥ १८

जो मनुष्य इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन करेगा, उसके लिये मैं सदा सुलभ होऊँगा—इसमें कोई संदेह नहीं है। यह कहकर भगवान् शंकर अदृश्य हो गये। सभी देवता तथा ऋषिगण अपने-अपने स्थानको चले गये। उसके बाद पूरा-सारा-का-सारा स्वर्ग मनुष्योंसे भर गया; क्योंकि स्थाणुलिङ्गका यह माहात्म्य है कि उसका दर्शन करनेसे ही स्वर्ग प्राप्त हो जाता है। फिर सभी देवता ब्रह्माकी शरणमें गये, तब ब्रह्माने उनसे पूछा—देवताओ! आप लोग यहाँ किस कार्यसे आये हैं?॥ ५—८॥

तब सभी देवताओंने यह वचन कहा—पितामह! हम लोगोंको मनुष्योंसे बहुत भारी भय हो रहा है। आप हम सबकी रक्षा करें। उसके बाद देवताओंके नेता ब्रह्माने उन देवोंसे कहा—इन्द्र! सरोवरको शीघ्र धूलिसे पाट दो और इस प्रकार इन्द्रका कल्याण करो। ब्रह्माके इस प्रकार समझानेपर पाक नामके राक्षसको मारनेवाले (पाकशासन) भगवान् इन्द्रने देवताओंके साथ सात दिनतक धूलिकी वर्षा की और सरोवरको धूलिसे पाट दिया। देवदेव महेश्वरने देवताओंद्वारा बरसायी गयी इस धूलिकी वर्षाको देखकर लिङ्ग और तीर्थवटको अपने हाथमें ले लिया॥ ९—१२॥

इसलिये पहले जिस स्थानपर जल था, वह तीर्थ अत्यन्त पवित्र है। उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य सभी तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य वट और लिङ्गके बीचमें श्राद्ध करता है उसके पितर उसपर संतुष्ट होकर उसे पृथ्वी (भर)-में दुर्लभ वस्तु सुलभ कर देते हैं—ऐसा सुनकर वे सभी ऋषि धूलिसे भरे हुए सरोवरको देखकर श्रद्धासे अपने सभी अङ्गोंमें धूलि मलने लगे। वे मुनि भी धूलि मलनेके कारण निष्पाप हो गये और देवताओंसे पूजित होकर ब्रह्मलोक चले गये॥ १३—१६॥

जो सिद्ध महात्मा पुरुष लिङ्गकी पूजा करते थे आवागमनसे रहित होकर परमसिद्धिको प्राप्त करने लगे। ऐसा जानकर तब ब्रह्माने उस आदिलिङ्गको नीचे रख उसके ऊपर पाषाणमय लिङ्गको स्थापित कर दिया

ततः कालेन महता तेजसा तस्य रञ्जितम्।
तस्यापि स्पर्शनात् सिद्धः परं पदमवाप्नुयात्॥ १९

ततो देवैः पुनर्ब्रह्मा विज्ञप्तो द्विजसत्तम।
एते यान्ति परां सिद्धिं लिङ्गस्य दर्शनान्नराः॥ २०

तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा देवानां हितकाम्यया।
उपर्युपरि लिङ्गानि सप्त तत्र चकार ह॥ २१

कुछ समय बीत जानेपर उसके (आद्य लिङ्गके) तेजसे (वह पाषाण-मूर्ति-लिङ्ग भी) रञ्जित हो गया। सिद्ध-समुदाय उसका भी स्पर्श करनेसे परमपदको प्राप्त करने लगा। द्विजश्रेष्ठ! तत्पश्चात् देवताओंने पुनः ब्रह्माको बतलाया ब्रह्मन्! ये मनुष्य लिङ्गका दर्शन करके परम सिद्धिको प्राप्त करनेका लाभ उठा रहे हैं। देवताओंसे यह सुनकर भगवान् ब्रह्माने देवताओंके मंगलकी इच्छासे एकके ऊपर एक, इस प्रकार सात लिङ्गोंको स्थापित कर दिया॥ १७—२१॥

ततो ये मुक्तिकामाश्च सिद्धाः शमपरायणाः।
सेव्य पांशुं प्रयत्नेन प्रयाताः परमं पदम्॥ २२

पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरिताः।
महादुष्कृतकर्माणं प्रयान्ति परमं पदम्॥ २३

अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रियो वा पुरुषस्य वा।
नश्यते दुष्कृतं सर्वं स्थाणुतीर्थप्रभावतः॥ २४

लिङ्गस्य दर्शनान्मुक्तिः स्पर्शनाच्च वटस्य च।
तत्संनिधौ जले स्नात्वा प्राप्नोत्यभिमतं फलम्॥ २५

पितॄणां तर्पणं यस्तु जले तस्मिन् करिष्यति।
बिन्दौ बिन्दौ तु तोयस्य अनन्तफलभाग्भवेत्॥ २६

उसके बाद मुक्तिके अभिलाषी शम (दमादि)-में लगे रहनेवाले सिद्धगण यत्नपूर्वक धूलिका सेवनकर परमपदको प्राप्त करने लगे। (वस्तुतः) कुरुक्षेत्रमें वायुके चलनेसे उड़ी हुई धूल भी बड़े-बड़े पापियोंको मुक्ति दे देती है। किसी स्त्री या पुरुषने चाहे जानेमें या अनजानेसे पाप किया हो तो उसके सारे पाप स्थाणु-तीर्थके प्रभावसे नष्ट हो जाते हैं। लिङ्गका दर्शन करनेसे और वटका स्पर्श करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है और उसके निकट जलमें स्नान करनेसे मनुष्य मनचाहे फलको प्राप्त करता है। उस जलमें पितरोंका तर्पण करनेवाला व्यक्ति जलके प्रत्येक बिन्दुमें अनन्त फलको प्राप्त करता है॥ २२—२६॥

यस्तु कृष्णतिलैः सार्द्धं लिङ्गस्य पश्चिमे स्थितः।
तर्पयेच्छ्रद्धया युक्तः स प्रीणाति युगत्रयम्॥ २७

यावन्मन्वन्तरं प्रोक्तं यावल्लिङ्गस्य संस्थितिः।
तावत्प्रीताश्च पितरः पिबन्ति जलमुत्तमम्॥ २८

कृते युगे सान्निहत्यं त्रेतायां वायुसंज्ञितम्।
कलिद्वापरयोर्मध्ये कूपं रुद्रह्रदं स्मृतम्॥ २९

चैत्रस्य कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां नरोत्तमः।
स्नात्वा रुद्रह्रदे तीर्थे परं पदमवाप्नुयात्॥ ३०

यस्तु वटे स्थितो रात्रिं ध्यायते परमेश्वरम्।
स्थाणोर्वटप्रसादेन मनसा चिन्तितं फलम्॥ ३१

लिङ्गसे पश्चिम दिशामें काले तिलोंसे श्रद्धापूर्वक तर्पण करनेवाला व्यक्ति तीन युगोंतक (पितरोंको) तृप्त करता है। जबतक मन्वन्तर है और जबतक लिङ्गकी संस्थिति है, तबतक पितृगण संतुष्ट होकर उत्तम जलका पान करते हैं। सत्ययुगमें 'सान्निहत्य' सर, त्रेतामें 'वायु' नामका ह्रद, कलि एवं द्वापरमें 'रुद्रह्रद' नामके कूप सेवनीय माने गये हैं। चैत्रके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन 'रुद्रह्रद' नामक तीर्थमें स्नान करनेवाला उत्तम पुरुष परमपद—मुक्तिको प्राप्त करता है। रात्रिके समय वटके नीचे रहकर परमेश्वरका ध्यान करनेवालेको स्थाणुवटके अनुग्रह (दया)-से मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है॥ २७—३१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ अध्याय

स्थाणु-लिङ्गके समीप असंख्य लिङ्गोंकी स्थापना और उनके दर्शन अर्चनका माहात्म्य

सनत्कुमार उवाच

स्थाणोर्वटस्योत्तरतः शुक्रतीर्थं प्रकीर्तितम्।
स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण सोमतीर्थं द्विजोत्तम॥ १
स्थाणोर्वटं दक्षिणतो दक्षतीर्थमुदाहृतम्।
स्थाणोर्वटात् पश्चिमतः स्कन्दतीर्थं प्रतिष्ठितम्॥ २
एतानि पुण्यतीर्थानि मध्ये स्थाणुरिति स्मृतः।
तस्य दर्शनमात्रेण प्राप्नोति परमं पदम्॥ ३
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां यस्त्वेतानि परिक्रमेत्।
पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः॥ ४
एतानि मुनिभिः साध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तदा।
मरुद्भिर्वह्निभिश्चैव सेवितानि प्रयत्नतः॥ ५

अन्ये ये प्राणिनः केचित् प्रविष्टाः स्थाणुमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति परमां गतिम्॥ ६

अस्ति तत्संनिधौ लिङ्गं देवदेवस्य शूलिनः।
उमा च लिङ्गरूपेण हरपार्श्वं न मुञ्चति॥ ७

तस्य दर्शनमात्रेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः।
वटस्य उत्तरे पार्श्वे तक्षकेण महात्मना॥ ८

प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वकामप्रदायकम्।
वटस्य पूर्वदिग्भागे विश्वकर्मकृतं महत्॥ ९

लिङ्गं प्रत्यङ्मुखं दृष्ट्वा सिद्धिमाप्नोति मानवः।
तत्रैव लिङ्गरूपेण स्थिता देवी सरस्वती॥ १०
प्रणम्य तां प्रयत्नेन बुद्धिं मेधां च विन्दति।
वटपार्श्वे स्थितं लिङ्गं ब्रह्मणा तत् प्रतिष्ठितम्॥ ११
दृष्ट्वा वटेश्वरं देवं प्रयाति परमं पदम्।
ततः स्थाणुवटं दृष्ट्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्॥ १२
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे नकुलीशो गणः स्मृतः॥ १३

सनत्कुमारने कहा—द्विजोत्तम! स्थाणुवटकी उत्तर दिशामें 'शुक्रतीर्थ' और स्थाणुवटकी पूर्व दिशामें 'सोमतीर्थ' कहा गया है। स्थाणुवटके दक्षिण 'दक्षतीर्थ' एवं स्थाणुवटके पश्चिममें 'स्कन्दतीर्थ' स्थित है। इन परम पावन तीर्थोंके बीचमें 'स्थाणु' नामका तीर्थ है। उसका दर्शन करनेमात्रसे परमपद (मोक्ष)-की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य अष्टमी और चतुर्दशीको इनकी प्रदक्षिणा करता है, वह एक-एक पगपर यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है—इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ १—४॥

मुनियों, साध्यों, आदित्यों, वसुओं, मरुतों एवं अग्नियोंने इन तीर्थोंका यत्नपूर्वक सेवन किया है। जो भी अन्य कोई प्राणी उस उत्तम स्थाणुतीर्थमें प्रवेश करते हैं, वे भी सभी पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त करते हैं। उसीके निकट त्रिशूल धारण करनेवाले देवदेव भगवान् शंकरका लिङ्ग है। उमादेवी वहाँपर लिङ्गरूपमें रहनेवाले शंकरजीके पासमें ही रहती हैं; वे उनकी बगलसे अलग नहीं होतीं। उस लिङ्गके दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य सिद्धिको प्राप्त करता है। वटके उत्तरी भागमें महात्मा तक्षकने सभी कामनाओंको सिद्ध करनेवाले महालिङ्गको प्रतिष्ठित किया है। वटकी पूर्व दिशाकी ओर विश्वकर्माके द्वारा निर्मित किया गया महान् लिङ्ग है। पश्चिमकी ओर रहनेवाले लिङ्गका दर्शन कर मानवको सिद्धि प्राप्त होती है। वहींपर देवी सरस्वती लिङ्गरूपसे स्थित हैं॥ ५—१०॥

मनुष्य उन्हें प्रयत्न (श्रद्धा-विधि)-पूर्वक प्रणाम कर बुद्धि एवं तीव्र मेधा प्राप्त करता है। वटकी बगलमें ब्रह्माके द्वारा प्रतिष्ठापित वटेश्वर लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य परम पदको प्राप्त करता है। तत्पश्चात् जिसने स्थाणुवटका दर्शन और प्रदक्षिणा कर ली उसकी वह मानो सातों द्वीपवाली पृथिवीकी की हुई प्रदक्षिणा हो जाती है। स्थाणुकी पश्चिम दिशाकी ओर 'नकुलीश'

तमभ्यर्च्य प्रयत्नेन सर्वपापैः प्रमुच्यते।
तस्य दक्षिणदिग्भागे तीर्थं रुद्रकरं स्मृतम्॥ १४

तस्मिन् स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः।
तस्य चोत्तरदिग्भागे रावणेन महात्मना॥ १५

प्रतिष्ठितं महालिङ्गं गोकर्णं नाम नामतः।
आषाढमासे या कृष्णा भविष्यति चतुर्दशी।
तस्यां योऽर्चति गोकर्णं तस्य पुण्यफलं शृणु॥ १६

कामतोऽकामतो वापि यत् पापं तेन संचितम्।
तस्माद् विमुच्यते पापात् पूजयित्वा हरं शुचिः॥ १७

कौमारब्रह्मचर्येण यत्पुण्यं प्राप्यते नरैः।
तत्पुण्यं सकलं तस्य अष्टम्यां योऽर्चयेच्छिवम्॥ १८

यदीच्छेत् परमं रूपं सौभाग्यं धनसंपदः।
कुमारेश्वरमाहात्म्यात् सिद्ध्यते नात्र संशयः॥ १९

तस्य चोत्तरदिग्भागे लिङ्गं पूज्य विभीषणः।
अजरश्चामरश्चैव कल्पयित्वा बभूव ह॥ २०

आषाढस्य तु मासस्य शुक्ला या चाष्टमी भवेत्।
तस्यां पूज्य सोपवासो ह्यमृतत्वमवाप्नुयात्॥ २१

खरेण पूजितं लिङ्गं तस्मिन् स्थाने द्विजोत्तम।
तं पूजयित्वा यत्नेन सर्वकामानवाप्नुयात्॥ २२

दूषणस्त्रिशिराश्चैव तत्र पूज्य महेश्वरम्।
यथाभिलषितान् कामानापतुस्तौ मुदान्वितौ॥ २३

चैत्रमासे सिते पक्षे यो नरस्तत्र पूजयेत्।
तस्य तौ वरदौ देवौ प्रयच्छेतेऽभिवाञ्छितम्॥ २४

स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण हस्तिपादेश्वरः शिवः।
तं दृष्ट्वा मुच्यते पापैरन्यजन्मनि संभवैः॥ २५

तस्य दक्षिणतो लिङ्गं हारीतस्य ऋषेः स्थितम्।
यत् प्रणम्य प्रयत्नेन सिद्धिं प्राप्नोति मानवः॥ २६

नामके गण स्थित हैं। विधिपूर्वक उनकी पूजा करनेवाला मनुष्य सभी प्रकारके पापोंसे छूट जाता है। उनकी दक्षिण दिशामें 'रुद्रकरतीर्थ' है॥ ११—१४॥

जिसने उस (रुद्रकरतीर्थ)-में स्नान कर लिया मानो उसने सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया उसकी उत्तर दिशाकी ओर महात्मा रावणने गोकर्ण नामका प्रसिद्ध महालिङ्ग स्थापित किया है। आषाढमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें जो गोकर्णकी अर्चना करता है उसके पुण्यफलको सुनो। यदि किसीने अपनी इच्छा या अनिच्छासे भी पापसंचय कर लिया है तो वह भगवान् शंकरकी पूजा करके पवित्र हो जाता है और वह संचित पापसे छूट जाता है। जो अष्टमी तिथिमें शिवका पूजन करता है उसे कौमार-अवस्था (जन्मसे १६ वर्षकी अवस्था)-में ब्रह्मचर्य-पालनसे जो फल प्राप्त होता है वह सम्पूर्ण पुण्य-फल उसे प्राप्त होता है॥ १५—१८॥

यदि मनुष्य उत्तम सौन्दर्य, सौभाग्य या धन-सम्पत्ति चाहता है तो (उसे कुमारेश्वरकी आराधना करनी चाहिये, क्योंकि) कुमारेश्वरके माहात्म्यसे उसे निस्सन्देह उन सबकी सिद्धि प्राप्त होती है। उन (कुमारेश्वर)-के उत्तर भागमें विभीषणने शिव-लिङ्गको स्थापित कर उसकी पूजा की, जिससे वे अजर और अमर हो गये आषाढ़ महीनेके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको उपवास रखकर उसकी पूजा करनेवाला मनुष्य देवत्व प्राप्त कर लेता है। द्विजोत्तम खरने वहाँपर लिङ्गकी पूजा की थी उस लिङ्गकी विधिपूर्वक पूजा करनेवालेकी सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं॥ १९—२२॥

दूषण एवं त्रिशिराने भी वहाँ महेश्वरकी पूजा की और वे प्रसन्न हो गये। उन दोनोंने अभिवाञ्छित मनोरथ प्राप्त कर लिये चैत्र महीनेके शुक्लपक्षमें जो मनुष्य वहाँ पूजन करता है, उसकी समस्त इच्छाएँ वे दोनों देव पूरी कर देते हैं 'हस्तिपादेश्वर' शिव स्थाणुवटकी पूर्व दिशामें हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य अन्य जन्मोंमें बने पापोंसे छूट जाता है। उसके दक्षिणमें हारीत नामके ऋषिद्वारा स्थापित किया हुआ लिङ्ग है, जिसको विधिपूर्वक प्रणाम करनेसे (ही) मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥ २३—२६॥

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु वापीतस्य महात्मनः।
लिङ्गं त्रैलोक्यविख्यातं सर्वपापहरं शिवम्॥ २७

कङ्कालरूपिणा चापि रुद्रेण सुमहात्मना।
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २८

भुक्तिदं मुक्तिदं प्रोक्तं सर्वकिल्बिषनाशनम्।
लिङ्गस्य दर्शनाच्चैव अग्निष्टोमफलं लभेत्॥ २९

तस्य पश्चिमदिग्भागे लिङ्गं सिद्धप्रतिष्ठितम्।
सिद्धेश्वरं तु विख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ ३०
तस्य दक्षिणदिग्भागे मृकण्डेन महात्मना।
तत्र प्रतिष्ठितं लिङ्गं दर्शनात् सिद्धिदायकम्॥ ३१

तस्य पूर्वे च दिग्भागे आदित्येन महात्मना।
प्रतिष्ठितं लिङ्गवरं सर्वकिल्बिषनाशनम्॥ ३२

चित्राङ्गदस्तु गन्धर्वो रम्भा चाप्सरसां वरा।
परस्परं सानुरागौ स्थाणुदर्शनकाङ्क्षिणौ॥ ३३

दृष्ट्वा स्थाणुं पूजयित्वा सानुरागौ परस्परम्।
आराध्य वरदं देवं प्रतिष्ठाप्य महेश्वरम्॥ ३४
चित्राङ्गदेश्वरं दृष्ट्वा तथा रम्भेश्वरं द्विज।
सुभगो दर्शनीयश्च कुले जन्म समाप्नुयात्॥ ३५

तस्य दक्षिणतो लिङ्गं वज्रिणा स्थापितं पुरा।
तस्य प्रसादात् प्राप्नोति मनसा चिन्तितं फलम्॥ ३६

पराशरेण मुनिना तथैवाराध्य शंकरम्।
प्राप्तं कवित्वं परमं दर्शनाच्छंकरस्य च॥ ३७

वेदव्यासेन मुनिना आराध्य परमेश्वरम्।
सर्वज्ञत्वं ब्रह्मज्ञानं प्राप्तं देवप्रसादतः॥ ३८
स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे वायुना जगदायुना।
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं दर्शनात् पापनाशनम्॥ ३९

तस्यापि दक्षिणे भागे लिङ्गं हिमवतेश्वरम्।
प्रतिष्ठितं पुण्यकृतां दर्शनात् सिद्धिकारकम्॥ ४०

उसके निकट दक्षिण भागमें महात्मा वापीतके द्वारा संस्थापित सभी पापोंका हरण करनेवाला कल्याणकर्ता लिङ्ग है जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। कंकालके रूपमें रहनेवाले महात्मा भगवान् रुद्रने भी समस्त पापोंका नाश करनेवाला महालिङ्ग प्रतिष्ठित किया है। महात्मा रुद्रद्वारा प्रतिष्ठापित यह लिङ्ग भुक्ति एवं मुक्तिका देनेवाला तथा सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है। उस लिङ्गका दर्शन करनेसे ही अग्निष्टोम-यज्ञके फलकी प्राप्ति हो जाती है। उसकी पश्चिम दिशामें सिद्धोंद्वारा प्रतिष्ठित सिद्धेश्वर नामसे विख्यात लिङ्ग है। वह सर्वसिद्धिप्रदाता है॥ २७—३० ॥

उसकी दक्षिण दिशामें महात्मा मृकण्डने (शिव-) लिङ्गकी स्थापना की है। उस लिङ्गके दर्शन करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। उसके पूर्व भागमें महात्मा आदित्यने सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाले श्रेष्ठ लिङ्गको प्रतिष्ठापित किया है। अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भा और चित्राङ्गद नामके गन्धर्व—इन दोनोंने परस्परमें प्रेमपूर्वक स्थाणु भगवान्‌के दर्शन किये, फिर उनका पूजन किया और तब वरदानी देवकी स्थापनाकर आराधना की। (उनसे स्थापित लिङ्गोंका नाम हुआ चित्राङ्गद और रम्भेश्वर) ॥ ३१—३४ ॥

द्विज! चित्राङ्गदेश्वर एवं रम्भेश्वरका दर्शन करके मनुष्य सुन्दर और दर्शनीय (रूपवाला) हो जाता है एवं सत्कुलमें जन्म ग्रहण करता है। उसके दक्षिण भागमें इन्द्रने प्राचीन कालमें लिङ्गकी स्थापना की थी। इन्द्रद्वारा प्रतिष्ठापित लिङ्गके प्रसादसे मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार पराशर मुनिने शंकरकी आराधना की और भगवान् शंकरके दर्शनसे उत्कृष्ट कवित्वको प्राप्त किया। वेदव्यास मुनिने परमेश्वर (शंकर)-की आराधना की और उनकी कृपासे सर्वज्ञता तथा ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया॥ ३५—३८ ॥

स्थाणुके पश्चिम भागमें जगत्‌के प्राण-स्वरूप (जगत्प्राण) वायुने महालिङ्गको प्रतिष्ठित किया है, जो दर्शनमात्रसे ही पापका विनाश कर देता है। उसके भी दक्षिण भागमें हिमवतेश्वर लिङ्ग प्रतिष्ठित है। पुण्यात्माओंने इसे प्रतिष्ठित किया है। उसका दर्शन सिद्धि देनेवाला है।

तस्यापि पश्चिमे भागे कार्तवीर्येण स्थापितम्।
लिङ्गं पापहरं सद्यो दर्शनात् पुण्यमाप्नुयात्॥ ४१

तस्याप्युत्तरदिग्भागे सुपार्श्वे स्थापितं पुनः।
आराध्य हनुमांश्चाप सिद्धिं देवप्रसादतः॥ ४२

उसके पश्चिम भागमें कार्तवीर्यने (एक) लिङ्गकी स्थापना की है। (यह लिङ्ग) पापका तत्काल हरण करनेवाला है। (इसके) दर्शन करनेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है। उसके भी उत्तरकी ओर बिलकुल निकट स्थानमें (एक) लिङ्गकी स्थापना हुई है हनुमान्ने उस लिङ्गकी आराधना कर शंकरकी कृपासे सिद्धि प्राप्त की॥ ३९—४२॥

तस्यैव पूर्वदिग्भागे विष्णुना प्रभविष्णुना।
आराध्य वरदं देवं चक्रं लब्धं सुदर्शनम्॥ ४३

तस्यापि पूर्वदिग्भागे मित्रेण वरुणेन च।
प्रतिष्ठितौ लिङ्गवरौ सर्वकामप्रदायकौ॥ ४४

एतानि मुनिभिः साध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तथा।
सेवितानि प्रयत्नेन सर्वपापहराणि वै॥ ४५

स्वर्णलिङ्गस्य पश्चात्तु ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषां संख्या न विद्यते॥ ४६

तथा ह्युत्तरतस्तस्य यावदोघवती नदी।
सहस्रमेकं लिङ्गानां देवपश्चिमतः स्थितम्॥ ४७

उसके भी पूर्वी भागमें प्रभावशाली विष्णुने वरदाता महादेवकी आराधना कर सुदर्शनचक्र प्राप्त किया था। उसके भी पूर्वी भागमें मित्र एवं वरुणने सभी अभिलाषाओंको पूर्ति करनेवाले दो लिङ्गोंकी स्थापना की है। ये दोनों लिङ्ग सभी प्रकारके पापोंका विनाश करनेवाले हैं। मुनियों, साध्यों, आदित्यों एवं वसुओंद्वारा इन लिङ्गोंकी उत्साहपूर्वक सेवा की गयी है तत्त्वदर्शी ऋषियोंने स्वर्णलिङ्गके पीछेकी ओर जिन लिङ्गोंको प्रतिष्ठित किया है उनकी संख्या नहीं गिनी जा सकती उसी प्रकार स्वर्णलिङ्गके उत्तर ओघवती नदीतक पश्चिमकी ओर महादेवके एक हजार लिङ्ग स्थित हैं॥ ४३—४७॥

तस्यापि पूर्वदिग्भागे वालखिल्यैर्महात्मभिः।
प्रतिष्ठिता रुद्रकोटिर्यावत्संनिहितं सरः॥ ४८

दक्षिणेन तु देवस्य गन्धर्वैर्यक्षकिन्नरैः।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषां संख्या न विद्यते॥ ४९

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च लिङ्गानां वायुरब्रवीत्।
असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्राः स्थाणुमाश्रिताः॥ ५०

एतज्ज्ञात्वा श्रद्दधानः स्थाणुलिङ्गं समाश्रयेत्।
यस्य प्रसादात् प्राप्नोति मनसा चिन्तितं फलम्॥ ५१

उस (नदी) के पूर्वी भागमें महात्मा वालखिल्योंने संनिहित सरोवरतक करोड़ों रुद्रोंकी स्थापना की है। गन्धर्वों, यक्षों एवं किन्नरोंने दक्षिण दिशाकी ओर भगवान् शंकरके असंख्य लिङ्गोंकी स्थापना की है। वायुका कहना है कि साढ़े तीन करोड़ लिङ्गोंकी स्थापना हुई है स्थाणुतीर्थमें अनन्त सहस्र रुद्र-लिङ्ग विद्यमान हैं। मनुष्यको चाहिये कि श्रद्धाके साथ स्थाणु-लिङ्गका आश्रय ले। इससे स्थाणु-लिङ्गकी दयासे मनोवाञ्छित फल मिलता है॥ ४८—५१॥

अकामो वा सकामो वा प्रविष्टः स्थाणुमन्दिरम्।
विमुक्तः पातकैर्घोरैः प्राप्नोति परमं पदम्॥ ५२

चैत्रमासे त्रयोदश्यां दिव्यनक्षत्रयोगतः।
शुक्रार्कचन्द्रसंयोगे दिने पुण्यतमे शुभे॥ ५३

जो मनुष्य निष्काम या सकामभावसे स्थाणु-मन्दिरमें प्रवेश करता है, वह घोर पापोंसे छुटकारा पाकर परम पदको प्राप्त करता है जब चैत महीनेकी त्रयोदशी तिथिमें दिव्य नक्षत्रोंका योग हुआ और उसमें शुक्र, सूर्य, चन्द्रका (शुभ) संयोग हुआ तब

प्रतिष्ठितं स्थाणुलिङ्गं ब्रह्मणा लोकधारिणा।
ऋषिभिर्देवसंघैश्च पूजितं शाश्वतीः समाः॥ ५४

तस्मिन् काले निराहारा मानवाः श्रद्धयान्विताः।
पूजयन्ति शिवं ये वै ते यान्ति परमं पदम्॥ ५५

तदारूढमिदं ज्ञात्वा ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षिणीकृता तैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥ ५६

अतीव पवित्र शुभ दिनमें जगत्‌का धारण और पोषण करनेवाले ब्रह्माने स्थाणु-लिङ्गको प्रतिष्ठापित किया। ऋषियों एवं देवताओंके द्वारा अनन्त वर्षोंतक अर्थात् सदैव इसकी अर्चना होती रहेगी। जो मनुष्य उस समय निराहार रहते हुए व्रत करके श्रद्धासे शिवकी पूजा करते हैं, वे परम पदको प्राप्त करते हैं। जिन मनुष्योंने स्थाणु-लिङ्गको शिवसे आरूढ़ (निविष्ट) मानकर उसकी प्रदक्षिणा की, उन्होंने मानो सात द्वीपवाली पृथिवीकी प्रदक्षिणा कर ली॥ ५२—५६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छियालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४६॥

स्थाणुतीर्थके सन्दर्भमें राजा वेनका चरित्र, पृथु-जन्म और उनका अभिषेक, वेनके उद्धारके लिये पृथुका प्रयत्न और वेनकी शिव-स्तुति

मार्कण्डेय उवाच

स्थाणुतीर्थप्रभावं तु श्रोतुमिच्छाम्यहं मुने।
केन सिद्धिरथ प्राप्ता सर्वपापभयापहा॥ १

मार्कण्डेयजीने कहा—मुने! अब मैं आपसे स्थाणुतीर्थके प्रभावको सुनना चाहता हूँ। इस तीर्थमें किसने सभी प्रकारके पापों एवं भयोंको दूर करनेवाली सिद्धि प्राप्त की?॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु सर्वमशेषेण स्थाणुमाहात्म्यमुत्तमम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः॥ २
एकार्णवे जगत्यस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे।
विष्णोर्नाभिसमुद्भूतं पद्ममव्यक्तजन्मनः।
तस्मिन् ब्रह्मा समुद्भूतः सर्वलोकपितामहः॥ ३
तस्मान्मरीचिरभवन्मरीचेः कश्यपः सुतः।
कश्यपादभवद् भास्वांस्तस्मान्मनुरजायत॥ ४
मनोस्तु क्षुवतः पुत्र उत्पन्नो मुखसंभवः।
पृथिव्यां चतुरन्तायां राजासीद् धर्मरक्षिता॥ ५
तस्य पत्नी बभूवाथ भया नाम भयावहा।
मृत्योः सकाशादुत्पन्ना कालस्य दुहिता तदा॥ ६

सनत्कुमारने कहा (उत्तर दिया)—मार्कण्डेय! तुम स्थाणुके उत्तम माहात्म्यको पूर्णतया सुनो, जिसको सुनकर मनुष्य सभी पापोंसे बिलकुल छूट जाता है। इस अचर-सचर संसारके प्रलयकालीन समुद्रमें विलीन हो जानेपर अव्यक्तजन्मवाले विष्णुकी नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ। उससे समस्त लोकोंके पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उनसे मरीचि हुए और मरीचिके पुत्र हुए कश्यप। कश्यपसे सूर्य उत्पन्न हुए एवं उनसे उत्पन्न हुए मनु। मनुके छींकनेपर उनके मुँहसे एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। वह सारी पृथ्वीके धर्मकी रक्षा करनेवाला राजा हुआ। उस राजाकी भया नामकी पत्नी हुई, जो (सचमुच) भय उत्पन्न करनेवाली थी। वह कालकी कन्या थी और मृत्युके गर्भसे उत्पन्न हुई थी॥ २—६॥

तस्यां समभवद् वेनो दुरात्मा वेदनिन्दकः।
स दृष्ट्वा पुत्रवदनं क्रुद्धो राजा वनं ययौ॥ ७

(फिर तो) उससे वेनने जन्म लिया जो दुष्टात्मा था तथा वेदोंकी निन्दा करनेवाला था। उस पुत्रके मुखको देखकर राजा क्रुद्ध हो गया और वनमें चला गया।

तत्र कृत्वा तपो घोरं धर्मेणावृत्य रोदसी।
प्राप्तवान् ब्रह्मसदनं पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ ८

वेनो राजा समभवत् समस्ते क्षितिमण्डले।
स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः॥ ९

घोषयामास नगरे दुरात्मा वेदनिन्दकः।
न दातव्यं न यष्टव्यं न होतव्यं कदाचन॥ १०

उसने वहाँ घोर तपस्या की तथा पृथ्वी एवं आकाशके बीचके स्थानको धर्मसे व्याप्तकर नहीं लौटनेवाले स्थान उस ब्रह्मलोकको प्राप्त कर लिया। (और इधर) वेन सम्पूर्ण भूमण्डलका राजा हो गया। अपने नानाके उस दोषके कारण कालकन्या भयाके उस दुष्टात्मा वेद-निन्दक पुत्रने नगरमें यह घोषणा करा दी कि कभी भी (कोई) दान न दे, यज्ञ न करे एवं हवन न करे—(दान, यज्ञ, हवन करना अपराध माना जायेगा)॥ ७—१०॥

अहमेकोऽत्र वै वन्द्यः पूज्योऽहं भवतां सदा।
मया हि पालिता यूयं निवसध्वं यथासुखम्॥ ११

तन्मत्तोऽन्यो न देवोऽस्ति युष्माकं यः परायणम्।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनमृषयः सर्व एव ते॥ १२

परस्परं समागम्य राजानं वाक्यमब्रुवन्।
श्रुतिः प्रमाणं धर्मस्य ततो यज्ञः प्रतिष्ठितः॥ १३

यज्ञैर्विना नो प्रीयन्ते देवाः स्वर्गनिवासिनः।
अप्रीता न प्रयच्छन्ति वृष्टिं सस्यस्य वृद्धये॥ १४

तस्माद् यज्ञैश्च देवैश्च धार्यते सचराचरम्।
एतच्छ्रुत्वा क्रोधदृष्टिर्वेनः प्राह पुनः पुनः॥ १५

इस संसारमें एकमात्र मैं ही आप लोगोंका वन्दनीय और पूजनीय हूँ। आप लोग मुझसे रक्षित रहकर आनन्दपूर्वक निवास करें। मुझसे भिन्न कोई दूसरा देवता नहीं है, जो आप लोगोंका उत्तम आश्रय हो सके। वेनके इस वचनको सुननेके पश्चात् सभी ऋषियोंने आपसमें मिलकर (निश्चय किया और) राजासे यह वचन कहा—राजन्! धर्मके विषयमें वेद (-शास्त्र) ही प्रमाण हैं। उन्हींसे यज्ञ विहित हैं, प्रतिष्ठित हैं—विष्णुरूपमें मान्य हैं। (उन) यज्ञोंके किये बिना स्वर्गमें रहनेवाले देवता सन्तुष्ट नहीं होते और बिना सन्तुष्ट हुए वे अन्नकी वृद्धिके लिये जलकी वृष्टि नहीं करते। अतः विष्णुमय यज्ञों और देवताओंसे ही चर-अचर समस्त संसारका धारण और पोषण होता है। यह सुनकर वेन क्रोधसे आँखें लालकर बार-बार कहने लगा—॥ ११—१५॥

न यष्टव्यं न दातव्यमित्याह क्रोधमूर्च्छितः।
ततः क्रोधसमाविष्टा ऋषयः सर्व एव ते॥ १६

निजघ्नुर्मन्त्रपूतैस्ते कुशैर्वज्रसमन्वितैः।
ततस्त्वराजके लोके तमसा संवृते तदा॥ १७

दस्युभिः पीड्यमानास्तान् ऋषींस्ते शरणं ययुः।
ततस्ते ऋषयः सर्वे ममन्थुस्तस्य वै करम्॥ १८

सव्यं तस्मात् समुत्तस्थौ पुरुषो ह्रस्वदर्शनः।
तमूचुर्ऋषयः सर्वे निषीदतु भवानिति॥ १९

क्रोधसे झल्लाकर (तिलमिलाकर) उसने 'न यज्ञ करना होगा और न दान देना होगा'—ऐसा कहा। उसके बाद ऋषियोंने भी क्रुद्ध होकर मन्त्रद्वारा वज्रमय कुशोंसे उसे मार डाला। उसके (मर जानेके) बाद (राजासे रहित) संसारमें अराजकता छा गयी, जिससे सर्वत्र अशान्ति फैल गयी। चोरों-डाकुओंने लोकजनोंको पीड़ित कर डाला। दस्युदलोंसे त्रस्त जनवर्ग उन ऋषियोंकी शरणमें गया, जिन ऋषियोंने उस वेनको मार डाला था। उसके बाद उन सभी ऋषियोंने उसके बायें हाथको मथित किया। उससे एक पुरुष निकला जो छोटा बौना दीख रहा था। सभी ऋषियोंने उससे कहा—'**निषीदतु भवान्**' अर्थात् आप बैठें॥ १६—१९॥

तस्मान्निषादा उत्पन्ना वेनकल्मषसंभवाः।
ततस्ते ऋषयः सर्वे ममन्थुर्दक्षिणं करम्॥ २०

मथ्यमाने करे तस्मिन् उत्पन्नः पुरुषोऽपरः।
बृहत्सालप्रतीकाशो दिव्यलक्षणलक्षितः॥ २१

धनुर्बाणाङ्कितकरश्चक्रध्वजसमन्वितः।
तमुत्पन्नं तदा दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः॥ २२

अभ्यषिञ्चन् पृथिव्यां तं राजानं भूमिपालकम्।
ततः स रञ्जयामास धर्मेण पृथिवीं तदा॥ २३
पित्राऽपरञ्जिता तस्य तेन सा परिपालिता।
तत्र राजेतिशब्दोऽस्य पृथिव्या रञ्जनादभूत्॥ २४

स राज्यं प्राप्य तेभ्यस्तु चिन्तयामास पार्थिवः।
पिता मम अधर्मिष्ठो यज्ञव्युच्छित्तिकारकः॥ २५

कथं तस्य क्रिया कार्या परलोकसुखावहा।
इत्येवं चिन्तयानस्य नारदोऽभ्याजगाम ह॥ २६

तस्मै स चासनं दत्त्वा प्रणिपत्य च पृष्टवान्।
भगवन् सर्वलोकस्य जानासि त्वं शुभाशुभम्॥ २७

पिता मम दुराचारो देवब्राह्मणनिन्दकः।
स्वकर्मरहितो विप्र परलोकमवाप्तवान्॥ २८
ततोऽब्रवीन्नारदस्तं ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा।
म्लेच्छमध्ये समुत्पन्नं क्षयकुष्ठसमन्वितम्॥ २९

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य महात्मनः।
चिन्तयामास दुःखार्त्तः कथं कार्यं मया भवेत्॥ ३०

उस बायें हाथके मथनेसे निकले हुए बौने पुरुषसे ऋषियोंद्वारा 'निषीदतु भवान्' कहनेके कारण 'निषीदतु' के आधारपर निषादोंकी उत्पत्ति हुई जो वेनकी पापमूर्ति थे। इसके बाद उस बौने पुरुषको राज्यकार्यसंचालनमें अनुपयुक्त समझकर उन सभी ऋषियोंने (पुनः मरे हुए) वेनके दायें हाथको मथा। उस हाथके मथे जानेपर बड़े शालवृक्षकी भाँति और दिव्य लक्षणोंसे युक्त एक दूसरा पुरुष निकला। उसके हाथमें धनुष, बाण, चक्र और ध्वजाकी रेखाएँ थीं। उस समय उसे उत्पन्न हुआ देखकर इन्द्रके सहित सभी देवताओंने उसको पृथ्वीमें भूलोकका पालन करनेवाले राजाके रूपमें (राज्यपदपर) अभिषिक्त कर दिया। उसके बाद उसने पृथिवीका धर्मपूर्वक रञ्जन किया—प्रजाको प्रसन्न रखा॥ २०—२३॥

उसके पिताने जिस जनताको अपने कुकृत्योंसे अपरागवाली बना दिया था उसी जनताको उसने भलीभाँति पालित किया। सारी पृथ्वीका रञ्जन करनेके कारण ही उसे यथार्थरूपमें 'राजा' शब्दसे सम्बोधित किया जाने लगा। वह पृथ्वीपति राजा उनसे राज्य प्राप्त कर चिन्तन करने लगा कि मेरे पिता अधर्मी, पाप-मति और यज्ञका विशेषतया उच्छेद करनेवाले थे। इसलिये कौन-सी क्रिया की जाय जो उन्हें परलोकमें सुख देनेवाली हो। (उसी समय) इस प्रकार चिन्तन करते हुए उसके पास नारदजी आ गये। उसने उन नारदजीको बैठनेके लिये आसन दिया और साष्टाङ्ग प्रणाम कर पूछा—भगवन्! आप सारे संसारके प्राणियोंके शुभ और अशुभको जानते हैं; (देखें,) मेरे पिता देवताओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले दुराचारी थे। विप्रदेव! वे अपने कर्तव्य कर्मसे रहित थे और अब वे परलोक चले गये हैं (उनकी गतिके लिये मुझे कौन-सी क्रिया करनी चाहिये?)॥ २४—२८॥

उसके बाद नारदभगवान् अपनी दिव्य दृष्टिसे देखकर उससे बोले—राजन्! तुम्हारे पिता म्लेच्छोंके बीचमें जन्मे हैं। उन्हें क्षयरोग और कुष्ठरोग हो गया है। महात्मा नारदके ऐसे वचनको सुनकर वह राजा दुःखी हो गया और विचारने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिये।

इत्येवं चिन्तयानस्य मतिर्जाता महात्मनः।
पुत्रः स कथ्यते लोके यः पितॄंस्त्रायते भयात्॥ ३१

एवं संचिन्त्य स तदा नारदं पृष्टवान् मुनिम्।
तारणं मत्पितुस्तस्य मया कार्यं कथं मुने॥ ३२

नारद उवाच

गच्छ त्वं तस्य तं देहं तीर्थेषु कुरु निर्मलम्।
यत्र स्थाणोर्महत्तीर्थं सरः संनिहितं प्रति॥ ३३
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः।
सचिवे राज्यमाधाय राजा स तु जगाम ह॥ ३४
स गत्वा चोत्तरां भूमिं म्लेच्छमध्ये ददर्श ह।
कुष्ठरोगेण महता क्षयेण च समन्वितम्॥ ३५
ततः शोकेन महता संतप्तो वाक्यमब्रवीत्।
हे म्लेच्छा नौमि पुरुषं स्वगृहं च नयाम्यहम्॥ ३६
तत्राहमेनं निरुजं करिष्ये यदि मन्यथ।
तथेति सर्वे ते म्लेच्छाः पुरुषं तं दयापरम्॥ ३७

ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा यथा जानासि तत्कुरु।
तत आनीय पुरुषाञ्छिबिकावाहनोचितान्॥ ३८

दत्त्वा शुल्कं च द्विगुणं सुखेन नयत द्विजम्।
ततः श्रुत्वा तु वचनं तस्य राज्ञो दयावतः॥ ३९

गृहीत्वा शिबिकां क्षिप्रं कुरुक्षेत्रेण यान्ति ते।
तत्र नीत्वा स्थाणुतीर्थे अवतार्य च ते गताः॥ ४०
ततः स राजा मध्याह्ने तं स्नापयति वै तदा।
ततो वायुरन्तरिक्षे इदं वचनमब्रवीत्॥ ४१

मा तात साहसं कार्षीस्तीर्थं रक्ष प्रयत्नतः।
अयं पापेन घोरेण अतीव परिवेष्टितः॥ ४२

वेदनिन्दा महत्पापं यस्यान्तो नैव लभ्यते।
सोऽयं स्नानान्महत्तीर्थं नाशयिष्यति तत्क्षणात्॥ ४३

एतद् वायोर्वचः श्रुत्वा दुःखेन महताऽन्वितः।
उवाच शोकसंतप्तस्तस्य दुःखेन दुःखितः।
एष घोरेण पापेन अतीव परिवेष्टितः॥ ४४

इस प्रकार सोचते-विचारते उस महात्मा राजाकी बुद्धि उत्पन्न हुई कि संसारमें पुत्र उसको कहते हैं जो पितरोंको नरकके भयसे तार दे। इस प्रकार विचार करके उस राजाने नारदमुनिसे पूछा—मुने! मेरे उस दिवंगत पिताके उद्धारके लिये मुझे क्या करना चाहिये?॥ २९—३२॥

नारदजीने कहा—तुम स्थाणु भगवान्‌के महान् तीर्थस्वरूप संनिहित नामके सरोवरकी ओर जाओ एवं उसकी उस देहको तीर्थोंमें शुद्ध करो। वह राजा महात्मा नारदजीकी यह बात सुन करके मन्त्रीके ऊपर राज्य-भार सौंपकर वहाँ चला गया। उसने उत्तर दिशामें जाकर म्लेच्छोंके बीच महान् कुष्ठ और क्षयरोगसे पीड़ित अपने पिताको देखा। तब महान् शोकसे सन्तप्त होकर उसने कहा कि म्लेच्छो! मैं इस पुरुषको प्रणाम करता हूँ और इसे अपने घर ले जाता हूँ॥ ३३—३६॥

यदि तुम लोग उचित समझो तो मैं इस पुरुषको वहाँ ले जाकर रोगसे मुक्त करूँ। वे सभी म्लेच्छ उस दयालु पुरुषसे साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए बोले—ठीक है; जैसा समझो, वैसा करो। उसके बाद उसने पालकी ढोनेवाले योग्य पुरुषोंको बुलाकर और उन्हें दुगुना पारिश्रमिक देकर कहा—इस द्विजको सुख-पूर्वक ले चलो। उस दयालु राजाकी बात सुनकर वे लोग पालकी उठाकर शीघ्रतासे कुरुक्षेत्र होते हुए स्थाणुतीर्थमें ले जाकर और (उसे) उतारकर (स्वस्थान) चले गये॥ ३७—४०॥

स्थाणु तीर्थमें पहुँचनेपर जब वह राजा म्लेच्छोंके बीच उत्पन्न हुआ एवं क्षय और कुष्ठरोगसे आक्रान्त अपने पिताकी देहको मध्याह्न कालमें स्नान कराने लगा तो अन्तरिक्षमें वायुरूपसे देवताओंने यह वचन कहा कि तात! इस प्रकारका साहस मत करो। तीर्थकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करो। यह अत्यन्त घोर पाप कर चुका है, (इसका) रोम-रोम पापसे भरा है, घिरा है। वेदकी निन्दा करना महान् पाप है, जिसका अन्त नहीं होता। अतएव यह स्नान करके इस महान् तीर्थको तत्काल नष्ट कर देगा। वायुरूपी देवताओंके इस वचनको सुनकर दुःखी एवं शोकसे सन्तप्त हुए राजाने कहा—देवताओ! यह घोर पापसे अत्यन्त परिव्याप्त है॥ ४१—४४॥